

85

पदपाठसहिता

# अथर्ववेदसंहिता

सायणाचार्यकृत-भाष्यसंवलिता

सैव

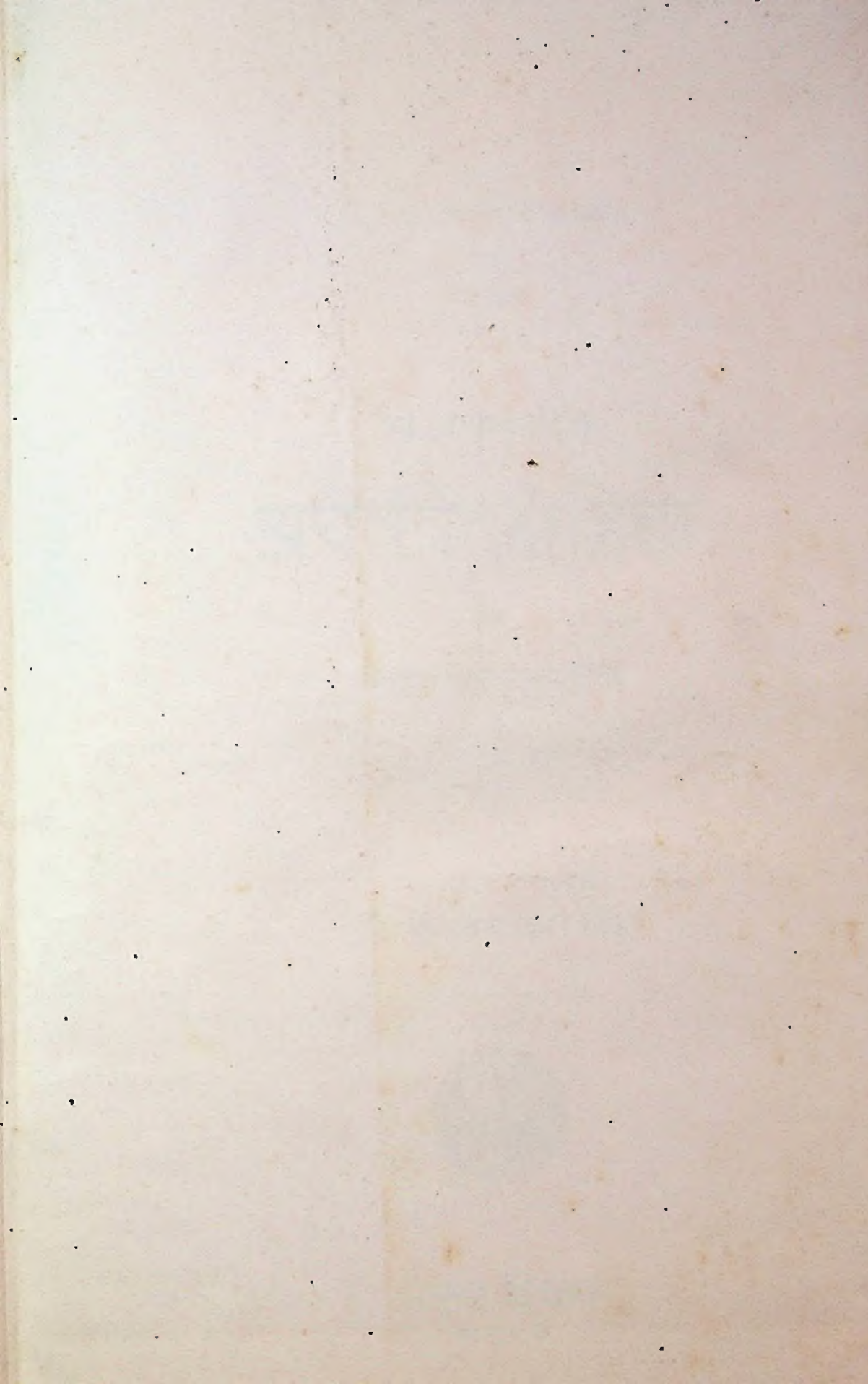
हिन्दीभाषानुवादसमन्विता

व्याख्याकारः - सम्पादकश्च

पं० रामस्वरूपशर्मा गौडः









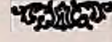




॥ श्रीः ॥

विद्याभवन प्राच्यविद्या ग्रन्थमाला

१८



सायणभाष्यसहिता

# अथर्ववेदसंहिता

सैव

हिन्दीभाषानुवादसंवलित

८

व्याख्याकारः सम्पादकश्च

पं० रामस्वरूपशर्मा गौडः



चौखम्बा विद्याभवन

बा रा ण सी



प्रकाशक

## चौखम्बा विद्याभवन

( भारतीय संस्कृति एवं साहित्य के प्रकाशक तथा वितरक )

चौक ( बैंक ऑफ बड़ोदा भवन के पीछे )

पो. बा. नं. 1069, वाराणसी 221001

दूरभाष : 2420404

ई-मेल : cvbhawan@yahoo.co.in

पुनर्मुद्रित संस्करण २००७

१-८ भाग ( सम्पूर्ण )

मूल्य : रु. ३०००.००

अन्य प्राप्तिस्थान

## चौखम्बा पब्लिशिंग हाउस

4697/2, भू-तल ( ग्राउण्ड फ्लोर )

गली नं. 21-ए, अंसारी रोड

दरियागंज, नई दिल्ली 110002

दूरभाष : 23286537



## चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान

38 यू. ए. बंगलो रोड, जवाहर नगर

पो. बा. नं. 2113

दिल्ली 110007

दूरभाष : 23856391



## चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन

के. 37/117 गोपालमन्दिर लेन

पो. बा. नं. 1129, वाराणसी. 221001

दूरभाष : 2335263



THE  
VIDYABHAWAN PRACHYAVIDYA GRANTHAMALA

18



# ATHARVA-VEDA-SAMHITĀ

*Along with*

**SĀYANABHĀṢYA**

**Volume 8**

**Edited with Hindi Translation**

**By**

**Pt. Ramswaroop Sharma Gaud**



**CHOWKHAMBA VIDYABHAWAN**  
**VARANASI**



*Publishers :*

**CHOWKHAMBA VIDYABHAWAN**

*(Oriental Publishers & Distributors)*

Chowk (Behind Bank of Baroda Building)

Post Box No. 1069

Varanasi 221001

Tel. # 0542-2420404

e-mail : cvbhawan@yahoo.co.in

**All Rights Reserved**

**Reprint Edition 2007**

*Also can be had from :*

**CHAUKHAMBA SURBHARATI PRAKASHAN**

K. 37/117, Gopal Mandir Lane

Post Box No. 1129

Varanasi 221001

**CHAUKHAMBA SANSKRIT PRATISHTHAN**

38 U.A. Bungalow Road, Jawahar Nagar

Post Box No. 2113

Delhi 110007

**CHAUKHAMBA PUBLISHING HOUSE**

4697/2, Ground Floor, Street No. 21-A

Ansari Road, Darya Ganj

New Delhi 110002

---

Printed at Ratna Offsets Ltd.

Kamachha, Varanasi



❀ श्रीहरिः ❀

## ❀ सभाष्य अथर्ववेद की विषयसूची ❀

विषय

पृष्ठ

### ❀ बीसवाँ-काण्ड ❀

प्रथम अनुवाक—

प्रथम सूक्त । इसकी ऋचाओंका अग्निष्टोम आदि यज्ञों में प्रयोग होता है । मरुत् शब्दकी व्याख्या । अग्निस्तुति । १

द्वितीय सूक्त । इसकी ऋचाओंसे पोता आग्नीध्र और ब्राह्मणाच्छंसी यजन करते हैं । ५

तृतीय चतुर्थ पञ्चम षष्ठ और सप्तम सूक्त । ज्योतिष्टोम आदिमें इनका विनियोग होता है । इन्द्र अग्नि और आदित्यके घोड़ोंके नाम । ८

अष्टम सूक्त । इनका ब्राह्मणाच्छंसी आदि उच्चारण करते हैं । २६

नवम दशम एकादश और द्वादश सूक्त । इनकी ऋचायें शस्त्रयाज्या और परिधानीया आदि होती हैं और इनकी ऋचाओंका ब्राह्मणाच्छंसीके शस्त्रमें विनियोग होता है । इत्यादि । ऋजीष शब्द ३४

त्रयोदश सूक्त । इसकी ऋचाओंका ज्योतिष्टोम आदि यज्ञोंमें विनियोग होता है । ६४

द्वितीय अनुवाक—

प्रथम द्वितीय तृतीय और चतुर्थ सूक्त । इनका उक्त्व-ऋतुके ब्राह्मणाच्छंसीशस्त्रमें विनियोग होता है । ६६

तृतीय अनुवाक—

प्रथम द्वितीय तृतीय और चतुर्थ सूक्त । इनका अति-



विषय

पृष्ठ

रात्र क्रतुके ब्राह्मणाच्छंसी शस्त्रमें विनियोग होता है । आदि १०६

पञ्चम षष्ठ सप्तम और अष्टम सूक्त । इनका अतिरात्र क्रतुके मध्यमपर्यायके ब्राह्मणाच्छंसिशस्त्रमें विनियोग होता है १३८

नवम दशम एकादश और द्वादश सूक्त । इनका अतिरात्र क्रतुके तृतीय रात्रिपर्यायके ब्राह्मणाच्छंसिशस्त्रमें विनियोग होता है । १६४

त्रयोदश सूक्त । इसका अतिरात्र ब्राह्मणाच्छंसितृतीयपर्यायशस्त्रमें विनियोग होता है । १८२

चतुर्थ अनुवाक—

प्रथम द्वितीय सूक्त । इनका नाम साम और अहीन सूक्त है । इन्द्र, धुनि और चुमुरि असुर तथा गृत्समद ऋषि का आख्यान ; इन्द्रका अस्तित्व । २००

पञ्चम अनुवाक—

प्रथम सूक्त । अभिसव षडह स्वरसाम आदिमें इसका प्रयोग होता है । २६७

द्वितीय सूक्त । गवामयन आदिमें इसका प्रयोग होता है । २७१

तृतीय सूक्त । पृष्ठयके तृतीय दिन आदिमें इनका पाठ होता है । २७४

चतुर्थ सूक्त । पृष्ठयषडहके चतुर्थ दिनमें इनका विनियोग होता है । २७५

पञ्चम सूक्त । अश्वमेध त्र्यहके द्वितीय दिन आदिमें इनका विनियोग होता है । २७७

षष्ठ सप्तम सूक्त । अग्नीषोमक्रतु आदिमें इसका विनियोग होता है । २७८



विषय

पृष्ठ

अष्टम सूक्त । इसका तीव्र सुदुपशद उपहव्य और व्यु-  
ष्टिद्वयहमें काम पड़ता है । २८१

नवम सूक्त । स्वरसोम आदिमें इसका काम पड़ता है । २८२

दशम सूक्त । इसका अतिरात्र अतिरिक्तोक्त, छन्दोम,  
वैश्वदेव त्र्यह और साकमेध त्र्यहमें विनियोग होता है । २८४

एकादश सूक्त । विषुवत्सौर्यपृष्ठमें यह चतुर्थ स्तोत्रिय  
होता है । २८२

द्वादश सूक्त । यह छठा स्तोत्रिय होता है । २८५

त्रयोदशसूक्त । वाजपेय और गवामयन आदिमें इसका  
प्रयोग होता है । २८८

चतुर्दश सूक्त । चतुर्थमाध्यन्दिनसवन, अभिसवके युग्म  
दिवस, विषुवत् और त्र्यहमें इसका प्रयोग होता है । २८६

पञ्चदशसूक्त । पृष्ठय आदिमें इसका विनियोग होता है । ३०२

षोडश सूक्त । त्रिककुदशाहाहीनमें इसका विनियोग  
होता है । ३०५

सप्तदश सूक्त । पृष्ठयषडह आदिमें इसका विनियोग है । ३०७

अष्टादश सूक्त । पृष्ठय षडह आदिमें इसका विनियोग  
होता है । ३१०

उन्नीसवाँ सूक्त । पृष्ठयपञ्चाहके पञ्चम दिनमें इससे  
काम लिया जाता है । ३१२

बीसवाँ सूक्त । श्येनसंदंशाजिर आदिमें इसका विनि-  
योग होता है ३१५

इक्कीसवाँ सूक्त । विषुवत् सौर्यपृष्ठ आदिमें इसका  
विनियोग होता है ३२२

बाईसवाँ सूक्त । दशरात्रमें इसका काम होता है । ३२६

विषय

पृष्ठ

तेईसवाँ सूक्त । वैकृत पृष्ठत्रयह आदिमें इसका प्रयोग होता है । ३२८

चौबीसवाँ सूक्त । वैश्वदेव त्रयह आदिमें इससे काम लिया जाता है । ३३२

पच्चीसवाँ सूक्त । इसका विनियोग अन्य सूक्तोंमें है । ३३५

छब्बीसवाँ सूक्त । पृष्ठषडह, वाजपेय, अभिजित् विश्वजित् आदिमें इसका प्रयोग होता है । ३३६

सत्ताईसवाँ सूक्त । अभिसवके पञ्चम दिनमें इसका काम होता है । ३४५

अष्टाईसवाँ सूक्त । यह दशाहके नवम दिनमें उक्थस्तोत्रिय होता है । ३४८

उन्तीसवाँ सूक्त । इन्द्रस्तुति । ३६६

छठा अनुवाक—

प्रथम सूक्त । पृष्ठत्रय षडहमें इससे काम लिया जाता है । ३५०

द्वितीय सूक्त । छन्दोमके प्रथम दिनमें यह पढ़ा जाता है । ३५५

तृतीयसूक्त । छन्दोमके द्वितीय दिनमें यह पढ़ा जाता है । ३६०

चतुर्थसूक्त । छन्दोमके तृतीय दिनमें इसका पाठ होता है । ३६४

पञ्चमसूक्त । स्वरसाम आदिमें इसका प्रयोग होता है । ३७१

सप्तम अनुवाक—

प्रथमसूक्त । पृष्ठत्रयषडहमें इसका विनियोग होता है । ३७७

द्वितीयसूक्त । पृष्ठत्रयके चतुर्थ दिनमें इससे काम लिया जाता है । ३७६

तृतीयसूक्त । पृष्ठत्रयके पंचम दिन यह काममें आता है । ३८३

चतुर्थ सूक्त । पृष्ठत्रयके छठे दिन यह काममें आता है । ३८५

पञ्चम पृष्ठ सूक्त । छन्दोम आदिमें इनका विनियोग है । ३८८



विषय

पृष्ठ

- सप्तम सूक्त । वाजपेय आदिमें इसका विनियोग है । ३६८
- अष्टम सूक्त । विष्टवत् सौर्यपृष्ठ आदिमें इससे काम लिया जाता है । ४०१
- नवम सूक्त । वाजपेय आदिमें इसका प्रयोग है । ४०३
- दशम सूक्त । विश्वजित् वैराजपृष्ठ आदिमें इसका विनियोग है । ४०५
- एकादश सूक्त । असोर्याम क्रतु आदिमें इसका विनियोग है । ४०७
- द्वादश सूक्त । विश्वजित् आदिमें इससे काम लिया जाता है । ४०६
- त्रयोदश चतुर्दश सूक्त । चतुर्विंश साम्बत्सरिक, छन्दोम त्रिष्वह आदिमें इसका विनियोग है । ४१०
- पञ्चदश षोडश सप्तदश अष्टादश एकोनविंश सूक्त । छन्दोममें इससे काम लिया जाता है । ४१५

अष्टम अनुवाक—

- प्रथम सूक्त । तृतीय छन्दोम दिन आदिमें इसका विनियोग है । ४३३
- द्वितीय सूक्त । अतिरात्र पृष्ठ्यषडह और अभिजित्में इसका प्रयोग होता है । ४३६
- तृतीय सूक्त । श्येनसंदशाजिरवज्र आदिमें इससे काम लिया जाता है । ४४८
- चतुर्थ सूक्त । तृतीय छन्दोममें इससे काम होता है । ४५२
- पञ्चम सूक्त । महाव्रतमें यह पढ़ा जाता है । ४५८
- छठा सूक्त । महाव्रत माध्यन्दिन सवनमें यह पढ़ा जाता है । ४६१

नवम अनुवाक—

प्रथम सूक्त । सर्वजित् ऋषभ, बृहस्पतिसव, त्रिककुद्द  
दशाह आदिमें इसका प्रयोग है । ४७२

द्वितीय सूक्त । तनूपृष्ठ आदिमें इसका विनियोग है । ४७५

तृतीय सूक्त । अपूर्व एकाहमें यह पृष्ठस्तोत्रिय होता है । ४७६

चतुर्थ सूक्त । व्रात्यस्तोम सवित्र आदि राजसूय आदि  
में इसका काम पड़ता है । ४७७

पञ्चम छठा सूक्त । अग्निष्टुत् एकाह आदिमें इससे  
काम लिया जाता है । ४८०

सप्तम सूक्त । २० । १०१ के साथ इसका विनियोग  
कह दिया है । ४८३

अष्टम सूक्त । २० । ४५ के साथ इसका विनियोग है । ४८४

नवम सूक्त । प्राचीन स्तोम एकाह और राज एकाह  
में इसका विनियोग है । ४८६

दशम सूक्त । इन्द्रस्तोम नामक एकाहमें यह पढ़ा जाता है । ४८६

एकादश सूक्त । विघ्न एकाहमें यह पढ़ा जाता है । ४८०

द्वादश सूक्त । वज्रपुनः स्तोम, पवित्र आदि राजसूय  
वैदस्वरसाम, अभ्यासंग्रह, पञ्चशानदीप, आदिमें इसका  
विनियोग है । ४८८

त्रयोदश सूक्त । अश्वमेधव्यह आदिमें इसका विनियोग है । ५०१

चतुर्दश सूक्त । विराट् आदि चार एकाहोंमें इसका  
विनियोग है । ५०३

पञ्चदश सूक्त । पवित्र राजसूय आदिमें इसका विनि-  
योग है । ५०५



विषय	पृष्ठ
सोलहवाँ सत्रहवाँ सूक्त । विनुति अभिभुत आदिमें इसका विनियोग है ।	५०७
अठारहवाँ सूक्त । पवित्र राजसूय आदिमें इसका विनियोग है ।	५०८
उन्नीसवाँ सूक्त । साद्यःक्र नामक एकाहींमें इसका विनियोग है ।	५१०
बीसवाँ सूक्त । अतिरात्रके सर्वस्तोम आदिमें इसका विनियोग है ।	५११
इक्कीसवाँ सूक्त । त्रिवृत् आदिमें इसका विनियोग है ।	५१३
बाईसवाँ सूक्त । चातुर्मास्य वैश्वदेव, और त्रिककुद् दशाहाहीनमें इसका विनियोग है ।	५१४
तेईसवाँ सूक्त । वैश्वदेव आदि त्र्यहमें इसका विनियोग है ।	५१७
चौबीसवाँ सूक्त । दशाह गवामयनिक आदिमें इसका विनियोग है ।	५१८
पच्चीसवाँ छब्बीसवाँ सूक्त । तनूपृष्ठ षडहमें इसका विनियोग है ।	५१६
सत्ताईसवाँ सूक्त । विषुवत् सौर्यपृष्ठमें इससे काम लिया जाता है ।	५२२
अट्ठाईसवाँ सूक्त । तनूपृष्ठ षडहमें इसका विनियोग है ।	५२३
उन्तीसवाँ सूक्त । पृष्ठ सौत्रामणि आदिमें इससे काम लिया जाता है ।	५२६
तीसवाँ सूक्त । पृष्ठ्यमें इसका गान होता है ।	५३१
३१-४० सूक्त । कुन्ताप-सूक्त	५४१

विषय

पृष्ठ

इकतालीसवाँ सूक्त । सोमयाग और पृष्ठचषडह आदि  
में इसका प्रयोग होता है । ५६४

बयालीसवाँ सूक्त । त्रिककुदशाह आदिमें इसका विनि-  
योग होता है । ५७१

तैंतालीसवाँ सूक्त । अतिरात्रके अतिरिक्तोक्थमें इसका  
पाठ होता है ५७३

चौबालीसवाँ, पैतालीसवाँ छियालीसवाँ और सैंता-  
लीसवाँ सूक्त । अश्विनीकुमारोंकी स्तुति आदि । ५७५

अथर्ववेदसंहिताकी विषयसूची समाप्त-





❀ श्रीहरिः ❀

# अथर्ववेदसंहिता

## विंश-काण्डम्

❀❀❀❀

सायणभाष्य तथा अनुवादसहित

यस्य निश्वासितं वेदा यो वेदेभ्योऽखिलं जगत् ।  
निर्ममे तम् अहं वन्दे विद्यातीर्थमहेश्वरम् ॥  
शान्तिकं पौष्टिकं कर्म प्रायशः प्राक् प्रपञ्चितम् ।  
विशेष्य ब्रह्मवर्ग्याणां शस्त्रयाज्यादि वर्ण्यते ॥

श्रीः । वेद जिनके निश्वासरूप हैं और जिन्होंने वेदोंके अनु-  
सार सम्पूर्ण जगत्की रचना की है, उन विद्यातीर्थ महेश्वरको मैं  
प्रणाम करता हूँ । शान्तिक और पौष्टिक कर्मका वर्णन प्रायः  
पहिले कह दिया है । अब बीसवें काण्डमें ब्रह्मवर्ग्योंके शस्त्रयाज्या  
आदिका वर्णन किया जाता है ॥

तत्र विंशे काण्डे नवानुवाकाः । तत्र प्रथमेनुवाके त्रयोदश  
सूक्तानि । तत्र प्रथमं सूक्तं तृचात्मकम् । तास्तिस्र ऋचः अग्निष्टो-  
मादियज्ञेषु ब्राह्मणाच्छंसिपोत्राग्नीध्राणां क्रमेण प्रातःसवनिक्यः  
प्रस्थिनयाज्याः । सूत्रितं हि वैताने । “प्रस्थितैश्चरिष्यन्नध्वर्युः  
संप्रेष्यति । होतर्यज प्रशास्तर्ब्राह्मणाच्छंसिन् पोतर्नेष्टरग्नीद् इति ।  
इन्द्र त्वा वृषभं वयम् इति ब्राह्मणाच्छंसी यजति । उत्तराभ्यां  
पोत्राग्नीधौ” इति [ वै० ३. ६ ] ॥

इस बीसवें काण्डमें नौ अनुवाक हैं । और पहिले अनुवाक में तेरह सूक्त हैं । इनमें पहिला सूक्त तीन ऋचाओंका है । वे तीनों ऋचाएँ अग्निष्टोम आदि यज्ञोंमें ब्राह्मणाच्छंसी पोता और आग्नीध्र आदिके क्रमसे प्रातःसवनकी प्रस्थितयाज्या हैं । इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि—“प्रस्थितैश्चरिष्यन्नध्वयुः सम्प्रेष्यति । होतर्यज प्रशास्तर्ब्राह्मणाच्छंसिन् पोतर्नेष्टरमीद् इति । इन्द्र त्वा वृषभं वयम् इति ब्राह्मणाच्छंसी यजति । उत्तराभ्यां पोत्राग्नीनौ ।” ( वैतानसूत्र ३ । ६ )

तत्र प्रथमा ॥

इन्द्र त्वा वृषभं वयं सुते सोमे हवामहे ।

स पाहि मध्वो अन्धसः ॥ १ ॥

इन्द्र । त्वा । वृषभम् । वयम् । सुते । सोमे । हवामहे ।

सः । पाहि । मध्वः । अन्धसः ॥ १ ॥

हे इन्द्र परमैश्वर्यगुणविशिष्ट । ॐ इदि परमैश्वर्ये । ॐ जेन्द्र० [उ० २.२८] इत्यादिना रन् प्रत्ययः । निच्वाद् आद्युदात्तः ॐ । अथ वा इन्दौ सोमे निमित्तभूते सति द्रवति त्वरया गच्छतीति इन्द्रः । यद्वा इन्द्रवे सोमाय तत्पानार्थं द्रवतीति वा इन्द्रः । सत्सु अन्येषु दधिपयःप्रभृतिषु द्रव्येषु सोमस्यातिशयेन प्रियत्वाद् उक्तव्युत्पत्तिरिन्द्रशब्दस्यात्र द्रष्टव्या । तादृश इन्द्र त्वा त्वाम् । ॐ “आमन्त्रितं पूर्वम् अविद्यमानवत्” इति पूर्वस्य अविद्यमानवत्त्वेन पदात् परत्वाभावेऽपि अनुदात्तस्त्वादेशश्छान्दसः ॐ । कीदृशं त्वाम् । वृषभम् कामानां वर्षितारं वयं यजमानाः सोमे सुते अभिषुते सति तत्पानार्थं हवामहे आहयामः । ॐ हेव् स्पर्धांशब्दे च । शप्ति “बहुलं छन्दसि” इति संपसारणम् ॐ । स तादृशः अस्माभि-



राहूतस्त्वं मध्वः मधुररसस्य अन्धसः अन्नस्य सोमलक्षणस्य ।  
एकदेशम् इति शेषः । अथ वा मध्वः मधु अन्धसः अन्धः अन्नं  
सोमलक्षणम् । ❀ “क्रियाग्रहणं कर्तव्यम्” इति कर्मणः संप्रदान-  
त्वात् “चतुर्थ्यर्थे बहुलं छन्दसि” इति षष्ठी ❀ । पाहि पिब ॥

हे परम ऐश्वर्यसे सम्पन्न इन्द्रदेव ! ( वा इन्दु ( सोम ) के  
लिये त्वरासे दौड़ने वाले इन्द्र ! ) आप कामनाओंकी वर्षा करने  
वालेको हम सोमके अभिषुत होने पर बुलाते हैं । हमारे बुलाये  
हुए आप मधुर सोमरसरूपी अन्नका पान करिये ॥ १ ॥

द्वितीया ॥

मरुतो यस्य हि क्षये पाथा दिवो विमहसः ।

स सुगोपातमो जनः ॥ २ ॥

मरुतः । यस्य । हि । क्षये । पाथा । दिवः । विमहसः ।

सः । सुगोपातमः । जनः ॥ २ ॥

हे विमहसः विशिष्टेन अतिशयितेन महसा तेजसा युक्ताः ।  
देवेषु मध्ये एषाम् अतिशयितवीर्यत्वात् । हे मरुतः । अत्रियन्ते  
प्राणिन एभिरिति मरुतः । प्राणात्मकस्य वायोर्निर्गमे सति  
प्राणिनां मृतिः प्रसिद्धैव । अथ वा अत्रियन्त इति मरुतः । इन्द्रेण  
अदित्या उदरं प्रविश्य एकोनपञ्चाशद्धा खण्डितत्वात् तादृशा  
एतत्संज्ञया प्रसिद्धा देवा यूयं यस्य हि यस्य खलु यजमानस्य  
क्षये देवानां निवासस्थाने यागगृहे । ❀ “क्षयो निवासे” इति  
आद्युदात्तत्वम् ❀ । दिवः । द्योतमानाद् द्युलोकाद् अन्तरिक्षाद्  
आगत्य । ❀ “ऊडिदम्” इत्यादिना विभक्तेरुदात्तत्वम् ❀ ।  
पाथ पिबथ । सोमम् इति शेषः । स खलु जनः यजमानः सुगो-  
पातमः अतिशयेन गोपायितृतमः लोके ये गोपायितारः स्वाश्रि-

तरक्षका सन्ति तेषां मध्ये स एव श्रेष्ठतम इत्यर्थः । ॐ गोपायतेः  
विःपि अंतोलोपयत्नोर्पो ॐ । यस्माद् एवं तस्माद् ममापि यज्ञ-  
गृहे सोमं पिबतेत्यभिप्रायः ॥

हे देवताओंमें विशिष्ट तेजस्वी मरुतों ! ( मरुत् शब्दकी व्युत्पत्ति  
यह है, कि-“अयन्ते प्राणिनः एभिः-इनसे प्राणी मर जाते हैं”  
इस लिये ये मरुत् कहलाते हैं प्राणरूपी वायुके निकलने पर  
मरण होना प्रसिद्ध ही है । अथवा यह व्युत्पत्ति भी होती है,  
कि “अयन्त इति मरुतः ।-जो मरे हैं वे मरुत् हैं” इन्द्रने इनकी  
माताके उदरमें प्रवेश करके इनके उड़झास दुबड़े कर डाले थे,  
इस कारण ये मरुत् कहलाते हैं, ऐसे हे मरुतों ! तुम जिस  
यजमानके यागगृहमें युलोकसे आकर सोमका पान करते हो  
वह पुरुष, लोकमें जो पुरुष अपने आश्रितोंकी रक्षा करते हैं उन  
में परमश्रेष्ठ ( गोपायितृत्तम ) होजाता है । यह बात है इस लिये  
आप मेरे यज्ञगृहमें भी सोमका पान करिये ॥ २ ॥

तृतीया ॥

उक्षान्नाय वशान्नाय सोमपृष्ठाय वेधसे ।

स्तोमैर्विधेमाग्नये ॥ ३ ॥

उक्षऽअन्नाय । वशाऽअन्नाय । सोमऽपृष्ठाय । वेधसे ।

स्तोमैः विधेम । अग्नये ॥ ३ ॥

उक्षः सेचनसमर्थो गौः अम्भं यस्य स तथोक्तः । तादृशाय  
तथा वशान्नाय । वशा वन्ध्या अजादिका सा अन्नं हविर्यस्य स  
वशान्नः । तस्मै । उक्षवशयोस्त्वेन्नत्वम् “अगोरुधाय” इत्येतं  
मन्त्रं व्याचक्षाणेन आश्वत्थायमेव उक्तम् । “एत एव स उक्षाणश्च  
अपभाश्च वशाश्च भवन्ति” इति [आश्व० गृ० १.१] । तथा सोम-



पृष्ठाय सोमः सोमरसः पृष्ठे उपरिदेशे मुखे यस्य स तादृशाय वेधसे  
विधात्रे सर्वस्य स्रष्ट्रे एवम् उक्तगुणविशिष्टाय अग्नये अङ्गनादि-  
गुणविशिष्टाय देवाय अग्नये अग्न्यर्थम् । ❀ “क्रियाग्रहणं कर्त-  
व्यम्” इति चतुर्थी ❀ । स्तोमैः स्तोत्रैः स्तुतिसाधनभूतैः शस्त्रा-  
दिभिः विधेयं परिचरेम । ❀ निधं विधाने । तौदादिकः ❀ ॥

इति प्रथमं सूक्तम् ॥

वृषभ और बंध्या बकरी आदि जिनका अन्न है, और जिन  
के ऊपर सोम रहता है ऐसे सबके लक्षा अङ्गनादि गुणोंसे संपन्न  
अग्निदेवके लिये हम स्तुतिके भेद शस्त्र आदिसे स्तुति करते हैं ३

प्रथम अनुवाकमें प्रथम सूक्त समाप्त ( ६१७ )

“मरुतः पोत्रात्” इत्याद्याश्चत्वार ऋतुप्रैषाः । तत्र आद्योत्त-  
माभ्यां पोता यजति । द्वितीयतृतीयाभ्याम् आग्नीध्रब्राह्मणाच्छं-  
सिनौ । सूजितं हि । “सदस्युपविष्टा यथाप्रैषम् ऋतून् यजन्ति ।  
मरुतः पोत्राद् इति प्रथमोत्तमाभ्यां पोता । द्वितीययाग्नीध्रः । तृती-  
यया ब्राह्मणाच्छंसी” इति [ वै० ३, ६ ] ॥

“मरुतः पोत्राद्” आदि चार ऋतुप्रैष हैं । इनमेंसे पहिली  
और उत्तमा ( अन्तिम ) ऋचाओंसे पोता यजन करता है ।  
और दूसरी तथा तीसरी ऋचाओंसे आग्नीध्र और ब्राह्मणा-  
च्छंसी यजन किया करते हैं । इस विषयमें सूत्रका प्रमाण भी  
है कि—“सदस्युपविष्टा यथाप्रैषं ऋतून् यजन्ति । मरुतः पोत्राद्  
इति प्रथमोत्तमाभ्यां पोता । द्वितीययाग्नीध्रः । तृतीयया ब्राह्म-  
णाच्छंसी” । ( वैतानसूत्र ३ । ६ ) ॥

तत्र प्रथमः प्रैषः ॥

मरुतः पोत्रात् सुष्टुभः स्वर्कादृतुना सोमं पिबतु १

मरुतः । पोत्रात् । सुऽस्तुभः । सुऽअर्कात् । ऋतुना । सोमम् ।  
पिबतु ॥ १ ॥

मरुतः एतन्नाम्ना प्रसिद्धा देवाः पोत्रात् पोतुः कर्म पोत्रम्  
तस्मात् । तत्कृताद् यागाद् इत्यर्थः । कीदृशात् । सुष्टुभः ।  
ॐ स्तोभतिः स्तुतिकर्मा ॐ । शोभनस्तोभोपेतात् तथा स्वर्कात्  
सुष्टु अर्च्यते देवः अनेनेनि स्वर्कम् तस्मात् स्वर्चनात् । यद्वा  
सुष्टुभः । अत्र स्तोभशब्देन स्तोभोपेतं स्तोत्रम् उच्यते । शोभन-  
स्तोत्रोपेतात् । स्वर्कात् । अर्च्यन्ते एभिरिति अर्का मन्त्राः । शोभ-  
नमन्त्रोपेतात् । शोभनशस्त्रोपेताद् इत्यर्थः । एवंभूतात् पोतुर्यागाद्  
ऋतुना सह सोमम् अभिषवादिसंस्कारोपेतं सोमरसं पिबतु  
पिबन्तु । वचनव्यत्ययः ॥

मरुत् नामक प्रसिद्ध देवता पोताके किये हुए सुन्दर स्तुति  
वाले और शोभन मन्त्रों वाले यागरूपी कर्म पोत्रसे ऋतुके साथ  
अभिषव आदि संस्कारोंसे सम्पन्न सोमको पियें ॥ १ ॥

द्वितीयः ॥

अग्निराग्नीध्रात् सुष्टुभः स्वर्कादृतुना सोमं पिबतु २

अग्निः । आग्नीध्रात् । सुऽस्तुभः । सुऽअर्कात् । ऋतुना । सोमम् ।  
पिबतु ॥ २ ॥

अग्निः अङ्गनादिगुणविशिष्टो देवः आग्नीध्रात् । अग्निम् इन्द्र  
इति अग्नीत् । स एव आग्नीध्रः एतन्नामा ऋत्विक् । तत्कर्मापि  
आग्नीध्रम् । यद्वा अग्नीधः कर्म आग्नीध्रम् । तस्माद् आग्नी-  
ध्रात् । शिष्टं पूर्ववद् ध्याख्येयम् ॥

अङ्गनादि गुणविशिष्ट अग्निदेव, अग्निका समिधन करने वाले  
आग्नीध्र नामक ऋत्विजके कर्म आग्नीध्रसे प्रसन्न होकर ऋतुके



साथ सोमरसका पान करें । इस आग्नीध्रमें सुन्दर स्तुतियों है और सुन्दर मन्त्र हैं ॥ २ ॥

तृतीयः ॥

इन्द्रो ब्रह्मा ब्राह्मणात् सुष्टुभः स्वर्कादृतुना सोमं पिबतु

इन्द्रः । ब्रह्मा । ब्राह्मणात् । सुऽस्तुभः । सुऽअर्कात् । अृतुना ।

सोमम् । पिबतु ॥ ३ ॥

इन्द्रः परमेश्वर्यादिगुणयुक्तो देवः स एव ब्रह्मा । बृहत्त्वाद् बृंहणत्वाच्च । इन्द्रस्य ब्रह्मात्मना स्तुतिः “इन्द्रो ब्रह्मेन्द्र ऋषिः” [ ऋ० ८. १६. ७ ] इत्यादिमन्त्रवर्णाद् अवगन्तव्या । ब्राह्मणात् । अत्र ब्राह्मणशब्देन ब्राह्मणाच्छंस्याख्य ऋत्विग् अभिधीयते । तत्कृतं कर्मापि ब्राह्मणम् इत्युच्यते । यद्वा अत्र ब्रह्मशब्देन ब्राह्मणाच्छंसी निर्दिश्यते । तत्कर्म शस्त्रयागलक्षणं ब्राह्मणम् तस्मात् । शिष्टं पूर्ववत् ॥

परम ऐश्वर्य आदि गुणोंसे सम्पन्न इन्द्र ही ब्रह्मा हैं, क्योंकि वे बृहत् हैं । [ इन्द्रकी ब्रह्मारूपमें स्तुति ‘इन्द्रो ब्रह्मेन्द्र ऋषिः’ ऋग्वेदसंहिता ८ । १६ । ७ आदिक मन्त्रोंसे समझनी चाहिये । ] ऐसे ब्रह्मा इन्द्र ! ब्राह्मणाच्छंसी नामक ऋत्विजके किये हुए सुन्दर स्तुति और सुन्दर मन्त्रोंसे सम्पन्न यागरूपी कर्मसे, अभिषव आदि संस्काररूप ऋतुसे (शुद्ध हुए) सोमरसका पान करें ३ अथ चतुर्थः ॥

देवो द्रविणोदाः पोत्रात् सुष्टुभः स्वर्कादृतुना सोमं पिबतु

देवः । द्रविणऽदाः । पोत्रात् । सुऽस्तुभः । सुऽअर्कात् । अृतुना ।

सोमम् । पिबतु ॥ ४ ॥

द्रविणोदाः । द्रविणं हिरण्यादिलक्षणं धनं बलं वा । तद् ददा-  
तीति द्रविणोदाः एतन्नामको देवः । अस्य धनदातृत्वम् “द्रवि-  
णोदा ददातु नो वसूनि” [ ऋ० १. १५. ८ ] इत्यादिमन्त्रान्त-  
रेषु धनप्रार्थनाविषयतया प्रसिद्धम् । ❀ द्रुदक्षिभ्याम् इनन् [ उ०  
२. ५० ] इति इनन्प्रत्ययान्तो द्रविणशब्दः ❀ ॥

इति द्वितीयं सूक्तम् ॥

धनका प्रदान करने वाले द्रविणोदा नामक देवता, कि-जिन  
का धन देना धर्म “द्रविणोदा ददातु नो वसूनि ।—द्रविणोदा  
देवता हमको धन प्रदान करें” ऋग्वेदसंहिता ( १ । १५ ८ )  
आदिक मन्त्रोंमें प्रसिद्ध है वह पोता नामक ऋत्विजके किये हुए  
सुन्दर स्तुति और सुन्दर मन्त्रोंसे सम्पन्न यागरूपी कर्मसे अभि-  
षव आदि संस्काररूप ऋतुसे शुद्ध हुए सोमरसका पान करें ४

प्रथम अनुवाकमें द्वितीय सूक्त समाप्त ( ६१८ ) ॥

उयोतिष्ठोमादिषु प्रातःसवने ब्राह्मणाच्छंसिशस्त्रे “आ याहि”  
इति पञ्च सूक्तानि विनियुक्तानि । तत्र “आ याहि सुषुमा हिते”  
इत्याद्यौ तृचौ स्तोत्रियानुरूपौ । “अयमु त्वा विचर्षणे” इति सप्तर्चः  
“इन्द्र त्वा वृषभं वयम्” इति नवर्चश्च शंसनीयाः उक्थमुखम् इति  
व्यवहियन्ते । “उद्घेदभि” इति तिस्रः ऋचः पर्यास इत्युच्यते ।  
अत्रोत्तमा परिधानीया । सूत्रितं हि । “आ याहि सुषुमा हि ते  
[ २०. ३ ] आ नो याहि सुतावतः [ २०. ४ ] इति स्तोत्रि-  
यानुरूपौ । अयमु त्वा विचर्षणे [ २०. ५ ] इत्युक्थमुखम् । उद्घे-  
दभि श्रुतामघम् [ २०. ७ ] इति पर्यासः । उत्तमा परिधानीया ।  
त्रिः प्रथमां त्रिरुत्तमाम् अन्वाह । अर्धर्चशस्य ऋगन्तं प्रणवेनोप-  
संतनोति” इति [ वै० ३. ११ ] ॥

उयोतिष्ठोम आदिमें प्रातःसवनके ब्राह्मणाच्छंसिशस्त्रमें “आ  
याहि” आदि पाँच सूक्तोंका विनियोग होता है । इनमें “आ याहि



सुषुमा हि ते” ये आदिम दो तृच स्तोत्रियानुरूप हैं । “अयमु त्वा विचर्षणे” यह सात ऋचाएँ और “इन्द्र त्वा वृषमं वयम्” यह तीन ऋचाएँ शंसनीय और उक्थमुख कहलाते हैं । “उद्घेदभि” आदि तीन ऋचाएँ पर्यास कहलाती हैं । इनमें उत्तमा परिधानीया हैं । सूत्रमें भी कहा है, कि—“आ याहि सुषुमा हि ते ( २० । ३ ) आ नो याहि सुतावतः ( २० । ४ ) इति स्तोत्रियानुरूपौ । अयमु त्वा विचर्षणे ( २० । ५ ) इत्युक्थमुखम् । उद्घेदभि श्रुतमघम् ( २० । ७ ) इति पर्यासः । उत्तमा परिधानीया । त्रिः प्रथमां त्रिरुत्तमां अन्वाह । अर्धर्चस्य ऋगन्तम् प्रणवेनोपसंतनोति” ( वैतानसूत्र ३ । ११ ) ॥

तत्र प्रथमा ॥

आ याहि सुषुमा हि त इन्द्र सोमं पिबा इमम् ।  
एदं बर्हिः सदो मम ॥ १ ॥

आ । याहि । सुषुमा । हि । ते । इन्द्र । सोमम् । पिब । इमम् ।

आ । इदम् । बर्हिः । सदः । मम ॥ १ ॥

हे इन्द्र परमैश्वर्यादिगुणविशिष्ट त्वम् आ याहि आगच्छ । किमर्थम् आगमनम् इति तत्राह । ते त्वदर्थं सोमं सुषुमा हि अभिषुतवन्तः खलु । ॐ पुञ् अभिषवे । “बहुलं छन्दसि” इति शपः खलुः । “हि च” इति निघातप्रतिषेधः । सुषुमा हि त इत्यत्र छान्दसः सांहितिको दीर्घः ॐ । इमम् अभिषुतं सोमं पिब पानं कुरु । इदम् आस्तीर्णं बर्हिः आ सदः आसीद । ॐ लोटि अडागमे इतश्च लोपे च कृते रूपम् ॥

हे इन्द्र ! आप यहाँ आइये, हमने सोमका अभिषव कर लिया

है । इस अभिषुत सोमका आप पान करिये । इन बिन्धी हुई कुशाओं पर आप बैठिये ॥ १ ॥

द्वितीया ॥

आ त्वां ब्रह्मयुजा हरी वहतामिन्द्र केशिना ।

उप ब्रह्माणि न शृणु ॥ २ ॥

आ । त्वा । ब्रह्मयुजा । हरी इति । वहताम् । इन्द्र । केशिना ।

उप । ब्रह्माणि । नः । शृणु ॥ २ ॥

हे इन्द्र त्वा त्वां ब्रह्मयुजा ब्रह्मयुजौ ब्रह्मणा मन्त्रेण रथं युज्यमानौ हरी अभिमतप्रदेशं प्रति आहरणशीलौ पतन्नामानावश्वौ । एताविन्द्रस्य प्रतिनियतौ । ❀ हरी इन्द्रस्य लोहितोग्रैर्हरित आदित्यस्येत्यादि निरुक्तात् [ निघ० १. १५ ] ❀ । तावेव विशिनष्टि केशिनेति । केशिना केशिनौ प्रकुष्ठैः केशैः स्कन्धवाल इत्यादिप्रदेशस्थैर्युक्तौ । अनेन तयोः प्रभूतशक्तिमत्त्वम् उक्तं भवति । तौ आ वहताम् आगमयताम् । तदर्थं नः अस्माकं ब्रह्माणि आह्वानसाधनान् मन्त्रान् उप शृणु । अथ वा आगत्य नः ब्रह्माणि स्तोत्राणि उप शृणु । ❀ बृह बृहि वृद्धौ इत्यस्य बृंहैरम् नलोपश्च [ उ० ४. १४५ ] इति मनिन्प्रत्यये नलोपे च कृते तत्संनियोगेन अमागमे च कृते ब्रह्मेति रूपम् ❀ ॥

हे इन्द्र ! मन्त्रोंके द्वारा रथमें संयुक्त होने वाले, अभीष्टस्थान स्थानको लेजाने वाले, बड़े २ अयालों वाले हरी + नामक घोड़े आपको ( हमारे यज्ञमें ) लावें, आप आकर हमारे आह्वानके मन्त्रोंको सुनिये ॥ २ ॥

+ “हरीन्द्रस्य लोहितोग्रैर्हरित आदित्यस्येत्यादि ।—इन्द्रके घोड़ोंका नाम हरी है । अग्निदेवके घोड़ेका नाम लोहित है और आदित्यके घोड़ोंका नाम हरित है । ( निघंटु १ । १५ )



तृतीया ॥

ब्रह्माणस्त्वा वयं युजा सोमपामिन्द्र सोमिनः ।  
सुतावन्तो हवामहे ॥ ३ ॥

ब्रह्माणः । त्वा । वयम् । युजा । सोमपाम् । इन्द्र । सोमिनः ।  
सुतऽवन्तः । हवामहे ॥ ३ ॥

हे इन्द्र वयं यजमाना ब्रह्माणः ब्राह्मणाः । यद्वा ब्रह्माणः  
ब्राह्मणाच्छंसिनो वयम् । ❀ ब्रह्मशब्दः पुंलिङ्गोन्तोदात्तः ❀ ।  
त्वा त्वां युजा । युज्यत इति युक् । स्तोतव्यदेवताहृदयस्पृशा स्तो-  
त्रेण हवामहे आह्वयामः । कीदृशं त्वाम् । सोमपाम् सोमस्य पाता-  
रम् । इन्द्रस्य सोमपाने अतिशयितप्रियत्वाद् एवं विशेष्यते ।  
कीदृशा वयम् । सोमिनः सोमवन्तः कृतसोमयागाः । अस्तु प्रस्तुते  
किमायातम् इति तत्राह । सुतावन्तैः सोमानभिषुतवन्तः सुतेन  
सोमेन युक्ता वा । अभिषवग्रहणादिसंस्कारैः संपादितसोमा  
इत्यर्थः । ❀ छान्दसो दीर्घः ❀ ॥

इति तृतीयं सूक्तम् ॥

हे इन्द्र ! हम पूजा करने वाले ब्राह्मण सोमयाग कर चुके हैं  
और अभिषव किया हुआ सोम हमारे पास है । ऐसे हम सोम-  
पान करने वाले आपको हृदयस्पर्शी स्तोत्रसे बुलाते हैं ॥ ३ ॥

तृतीय सूक्त समाप्त ( ६९९ )

“आ नो याहि” इति सूक्तस्य पूर्वसूक्तेन सह उक्तो विनियोगः ॥

“आ नो याहि” सूक्तका पहिले सूक्तके साथ विनियोग कह  
दिया है ।

तथ प्रथमा ॥

आ नो याहि सुतावन्तोस्माकं सुदृतीरुप ।

पि॒बा सु शि॒पिन् नन्ध॑सः ॥ १ ॥

आ । नः । या॒हि । सु॒तऽव॑तः । अ॒स्माक॑म् । सु॒स्तु॑तीः । उप ।

पि॒ब । सु । शि॒पिन् । अ॒न्ध॑सः ॥ १ ॥

हे इन्द्र सुतावतः सूयते अभिषूयत इति सुतः सोमः । तद्वतः अभिषुतसोमान् नः अस्मान् प्रति । ❀ “शरादीनां च” इति मतुपि पूर्वपदस्य सांहितिको दीर्घः ❀ । आ याहि आगच्छ । तदेव विशिनष्टि । अस्माकं सुष्ठुतीः शोभनाः स्तुतिः उपा याहि उपागच्छ । सोमे सुसंस्कृते कृते च शस्त्रे अवश्यम् आगच्छेत्यर्थः । आगत्य च हे सुशिपिन् शोभनहनूयुक्त । अनेन सोमपानोचितवक्रोपेतत्वम् उक्तं भवति । अथ वा शोभननासिकोपेत । अनेन सोमरसाग्राणोचितनासायुक्तत्वम् उक्तं भवति । ❀ शिप्रे हनू नासिके वेति निरुक्तम् [ नि० ६. १७ ] । ❀ तादृशत्वम् अन्धसः अन्धः अन्नं सोमरसलक्षणम् अन्धस एकदेशं वा ग्रहेण धृतम् अंशं पिब पानं कुरु ॥

हे इन्द्र ! हम सोम वालोंके पास आप आइये, हमारी सुन्दर स्तुतियोंकी ओर ध्यान देकर आप आइये और सुन्दर नासिका वा ठोड़ी वाले आप इस सोमरूप अन्नके कुछ भागका प्राशन करिये ॥ १ ॥

द्वितीया ॥

आ ते॑ सिञ्चामि कु॒क्ष्योर॑नु गात्रा॒ वि धा॑वतु ।

गृ॒भाय॑ जिह्वा॒या मधु॑ ॥ २ ॥

आ । ते । सि॒ञ्चा॒मि । कु॒क्ष्योः । अनु॑ । गात्रा॑ । वि । धा॒वतु॑ ।

गृ॒भाय॑ । जिह्वा॒या । मधु॑ ॥ २ ॥



हे इन्द्र ते तव कुक्ष्योः । भागद्वयापेक्षया द्विवचनम् । कुक्षेरु-  
भयोः पार्श्वयोः आ सिञ्चामि पूरयामि । सोमरसम् इति शेषः ।  
अनेन दीयमानस्य सोमरसस्य कुक्ष्यवयवपूर्तिपर्यन्तम् अभिवृद्धि-  
रुक्ता भवति । स च उदरस्थो गात्रा गात्राणि । अनेन गात्रशब्देन  
गात्रावयवा लक्ष्यन्ते । सर्वाण्यङ्गानि हस्तपादादीनि विधावतु  
तत्तन्नाडीषु सर्वत्र प्रवहतु । अतस्त्वं मधु मधुवत् स्वादुतरं सोम-  
रसं जिह्वया रसनया गृभाय गृहाण । ॐ ग्रहेः “छन्दसि शाय-  
जपि” इति श्रुः शायजादेशः । संप्रसारणं च । “हृग्रहोर्भः०”  
इति भत्वम् ॐ ॥

हे इन्द्रदेव ! आपकी दोनों कोखोंको मैं सोमरससे पूर्ण करना  
चाहता हूँ, वह सोम आपके हाथ पैर आदि सब अङ्गोंमें अर्थात्  
उनकी नाड़ियोंमें दौड़े अतः आप मधुकी समान स्वादु सोमरस  
को जिह्वासे ग्रहण करिये ॥ २ ॥

तृतीया ॥

स्वादुष्टे अस्तु संसुदे मधुमान् तन्वे३ तव ।

सोमः शमस्तु ते हृदे ॥ ३ ॥

स्वादुः । ते । अस्तु । सम्सुदे । मधुमान् । तन्वे । तव ।

सोमः । सम् । अस्तु । ते । हृदे ॥ ३ ॥

हे इन्द्र संसुदे सम्यक् सुष्ठु दात्रे । अत्र सम् इत्यनेन दानस्य  
सुकरत्वम् अभिधीयते । सु इत्यनेन च दानविषयस्य धनादेः  
प्राशस्त्यं बहुत्वं च विवक्ष्यते । तादृशाय ते तुभ्यं मधुमान् माधु-  
र्योपेतः सोमः अस्माभिर्दीयमानः स्वादुरस्तु स्वदनीयोस्तु । अन-  
न्तरं च स सोमः तव तन्वे शरीराय । बलकार्यस्त्विति शेषः ।  
अथ वा शम अस्तु इत्येतद् अत्राप्यन्वेतव्यम् । तव शरीराय

सुखकरं भवत्वित्यर्थः । तथा ते हृदे हृदयाय च शम् अस्तु मनसे  
सुखकरं भवतु । ❀ स्वादुष्ट इति । “युष्मत्तत्तद्भुःष्वन्तःपादम्”  
इति सकारस्य षत्वम् । ततः ष्टुत्वम् ❀ ॥

इति चतुर्थं सूक्तम् ॥

हे इन्द्र ! धन आदिका भली प्रकार दान करने वाले आपके  
लिये हमारा दिया हुआ मधुररसयुक्त सोम भली प्रकार स्वाद  
लेने योग्य होवे और आपके अरीरके लिये बलप्रद हो, और यह  
सोम आपके हृदयको सुख देने वाला होवे ॥ ३ ॥

चतुर्थं सूक्तं समाप्त ( ६२० ) ॥

“अयमु त्वा विचर्षणे” इति सप्तर्चस्य विनियोग उक्तः ॥

“अयमु त्वा विचर्षणे” इस सात ऋचा वाले सूक्तका विनि-  
योग कह दिया है ।

तत्र प्रथमा ॥

अयमु त्वा विचर्षणे जनीरिवाभि संवृतः ।

प्र सोम इन्द्र सर्पतु ॥ १ ॥

अयम् । ऊं इति । त्वा । विऽचर्षणे । जनीऽइव । अभि । सम्ऽवृतः ।

प्र । सोमः । इन्द्र । सर्पतु ॥ १ ॥

हे इन्द्र विचर्षणे । विचर्षणिः पश्यतिकर्मा । हे विद्रष्टुः इन्द्र  
जनीरिव जनय इव । ❀ विभक्तिव्यत्ययः ❀ । जनयन्त्यपत्या-  
न्यास्विति जनिशब्दव्युत्पत्तिः । ता यथा पुत्रादिभिः अभितः  
संवृता वर्तन्ते एवं श्रयणद्रव्यैः अध्वर्युप्रभृतिभिर्वा अभि संवृतः  
अभित आच्छन्नोयं सोमः । उ इति पूरणः । त्वा त्वां प्र सर्पतु  
प्रगच्छतु । ❀ विचर्षण इति । विपूर्वात् कृष विलेखने इत्यस्मात्  
कुषेरादेशच चः इति [ उ० २. १०३ ] अनिप्रत्ययः आदेः  
ककारस्य चकारश्च ❀ ॥



हे द्रष्टा इन्द्रदेव ! जैसे सन्तानोंको उत्पन्न करने वाली स्त्रियों पुत्र आदिसे चारों ओरसे घिरी रहती हैं । इसी प्रकार अध्वर्यु आदिसे भली प्रकार घिरा हुआ यह सोम आपको प्राप्त होवे ।

द्वितीया ॥

तुविग्रीवो वपोदरः सुबाहुरन्धसो मदे ।

इन्द्रो वृत्राणि जिघ्रते ॥ २ ॥

तुविग्रीवः । वपाऽउदरः । सुबाहुः । अन्धसः । मदे ।

इन्द्रः । वृत्राणि । जिघ्रते ॥ २ ॥

अनया सोमस्य अतिशयितवीर्यसाधनत्वम् अभिधीयते । अन्धसः सोमलक्षणस्य अक्षस्य भक्षणसेन मदे सति इन्द्रो देवः तुविग्रीवः । तुवीति बहुनाम । प्रभूतकन्धरः । भवतीति शेषः । ग्रीवाशब्दः स्कन्धस्योपलक्षणकः । वृषवत् समृद्धस्कन्ध इत्यर्थः । तथा वपोदरः वपा यथा विस्तीर्णा भवति एवं विस्तृतोदरश्च भवति । तथा सुबाहुः शोभनबाहुः पृथुभुजश्च भवति एव सोमपानेन अभिवृद्धगात्रः सन् पश्चाद् वृत्राणि वृत्रवद् आवरकान् शत्रून् जिघ्रते हिनस्ति इत्येवं सोमस्य महिमा ॥ यद्वा तुविग्रीवत्वादयः इन्द्रस्य स्वाभाविका धर्माः । उक्तलक्षण इन्द्रः सत्स्वपि तेषु अन्धसो मदे सत्येव वृत्राणि जिघ्रते इति सोमप्रशंसा ॥

[ इस ऋचामें सोमका परमवीर्यप्रद होना वर्णन किया गया है, कि—] सोमरूपी अन्नके भक्षणसे मद होने पर इन्द्रदेवके कंधे बैलके कन्धोंकी समान मोटे होजाते हैं, पेट वपा ( चरबी ) सा विशाल होजाता है और भुजाएँ मोटी होजाती हैं । इस प्रकार सोमपान शरीर बढ़ जाने पर इन्द्रदेव वृत्रकी समान घेरने वाले शत्रुओंको मार डालते हैं । [ यह सोमकी महिमा है ] ॥ २ ॥

तृतीया ॥

इन्द्र प्रेहि पुरस्त्वं विश्वस्येशान् ओजसा ।

वृत्राणि वृत्रहं जहि ॥ ३ ॥

इन्द्र । प्र । इहि । पुरः । त्वम् । विश्वस्य । ईशानः । ओजसा ।

वृत्राणि । वृत्रऽहन् । जहि ॥ ३ ॥

हे इन्द्र विश्वस्य स्थावरजङ्गमात्मकस्य सर्वस्य ईशानः । अनेन इन्द्रस्य सर्वत्र प्रतिभटराहित्यम् उक्तं भवति । तादृशस्त्वं पुरः प्रेहि अस्माकं सेनायाः पुरतो गच्छ । गत्वा च हे वृत्रहन् वृत्रस्य एतन्नामकस्य असुरस्य हन्तः वृत्राणि अस्मदावरकान् शत्रून् जहि घातय । ❀ “हन्तेर्जः” इति जभावः ❀ ॥

हे स्थावर जङ्गम सब जगत्के ईश इन्द्र ! आप हमारी सेनाके आगे २ चलिये और हे वृत्र नामक शत्रुओंको मारने वाले ! आप वृत्रासुरकी समान घेरने वाले हमारे शत्रुओंका संहार करिये ३ चतुर्थी ॥

दीर्घस्ते अस्त्वङ्कुशो येना वसु प्रयच्छसि ।

यजमानाय सुन्वते ॥ ४ ॥

दीर्घः । ते । अस्तु । अङ्कुशः । येन । वसु । प्रयच्छसि ।

यजमानाय । सुन्वते ॥ ४ ॥

हे इन्द्र ते अङ्कुशः । अङ्कुशवज्राङ्गुलिको हस्तः अङ्कुश इत्युच्यते । स दीर्घोस्तु । प्रदानविषये संकोचरहितोस्त्वित्यर्थः । तमेव विशिनष्टि । येनाङ्कुशेन सुन्वते सोमाभिषवं कुर्वते सोमः



लक्षणस्य इविषो दात्रे यजमानाय वसु धनं प्रयच्छसि । स तादृशो दीर्घोस्तु ॥

हे इन्द्र ! आपका अङ्गुशकी समान नमी हुई अँगुलियों वाला अङ्गुशरूपी हाथ, देनेके लिये लम्बा होवे, जिस हाथसे आप सोमा-भिषव करने वाले सोमरूपी इविके दाता यजमानको धन देते हैं, वह हाथ लम्बा होवे ॥ ४ ॥

पञ्चमी ॥

अयं त इन्द्र सोमो निपूतो अधि बर्हिषि ।

एहिमस्य द्रवा पिब ॥ ५ ॥

अयम् । ते । इन्द्र । सोमः । निपूतः । अधि । बर्हिषि ।

आ । इहि । ईम् । अस्य । द्रव । पिब ॥ ५ ॥

हे इन्द्र अधि बर्हिषि । अधिः सप्तम्यर्थानुवादी । आस्तीर्णं दर्भे निपूतः दशापवित्रेण नितरां शोधितः । उपलक्षणम् एतत् । ग्रहणश्रयणादिसंस्कारैः संस्कृतोयं सोमः ते त्वदर्थः । यस्मादेवं तस्माद् एहि आगच्छ । अस्पृश्यं प्रतीति शेषः । आगमनविलम्बम् असहमान आह द्रवेति । स्वरया आगच्छेत्यर्थः । आगत्य च ईम् इदानीम् अस्य अयं त्वदर्थं निपूतं सोमं पिब पानं कुरु ॥

हे इन्द्रदेव ! दर्भों पर दशापवित्रके द्वाराके ( अंगोछेके द्वारा ) परम पवित्र किया हुआ ( ग्रहण श्रयण आदि संस्कारोंसे संस्कृत ) ये सोम आपके लिये है अतएव आप हमारे यज्ञकी ओर आइये ( आगमनमें विलम्बको न सहता हुआ कहता है, कि—) शीघ्रतासे आइये और आकर इस समय आपके लिये पवित्र किये हुए सोमका पान करिये ॥ ५ ॥

षष्ठी ॥

शाचिगो शाचिपूजनाय रणाय ते सुतः ।

आखण्डल प्र हूयसे ॥ ६ ॥

शाचिगो इति शाचिऽगो । शाचिऽपूजन । अयम् । रणाय । ते । सुतः ।

आखण्डल । प्र । हूयसे ॥ ६ ॥

हे शाचिगो । शाचयः प्रत्यानेतुं शक्ता गावो यस्य स शाचिगुः । पणिभिरपहृतानां गवां प्रत्यानेतृत्वप्रसिद्धेः । तथा शाचिपूजन । पूज्यते एभिरिति पूजनानि स्तोत्राणि । शाचीनि शक्तानि स्तुत्य-विषयगुणप्रकाशकानि स्तोत्राणि यस्य स शाचिपूजनः । तस्य संबोधनम् । ❀ “आमन्त्रितं पूर्वम् अविद्यमानवत्” इति पूर्वस्य अविद्यमानवत्त्वेन पादादित्वान्निघ.ताभावः ❀ । हे उक्तगुणवि-शिष्ट इन्द्र रणाय । ❀ मकारलोपश्चान्दसः ❀ । रमणाय रमणी-याय ते तुभ्यम् । यद्वा ते तव रणाय रमणाय क्रीडनाय अयं सोमः सुतः अभिषवादिना संस्कृतः । तस्मात् कारणात् हे आखण्डल आ समन्तात् खण्डयति शत्रून् इति आखण्डलः । शत्रुर्द्विसक इन्द्र त्वं प्र हूयसे प्रकर्षेण आह्वानविषयः करिष्यसे सोमपानार्थम् अस्मा-भिराहूयसे । ❀ आखण्डलेति । आङ्पूर्वात् कडि खडि भेदने इत्यस्माच्चौरादिकाद्धातोः मङ्गेरलच् [ ८० ५. ७० ] इत्यत्र बाहु-लकाद् अलच् प्रत्ययः । आमन्त्रिताद्युदात्तः ❀ ॥

हे पणि नामक असुरोंके द्वारा हरीं हुई गौओंको लौटानेमें समर्थ शाचिगो ! हे स्तुतिके योग्य गुणोंको प्रकाशित करने वाले स्तोत्रोंसे सम्पन्न शाचिपूजन इन्द्र ! यह सोम आपको आनन्द देनेके लिये अभिषुत होगया है । हे शत्रुओंको चारों ओरसे खण्डित करने वाले आखण्डल इन्द्र ! इस लिये हम आपको बुला रहे हैं ॥ ६ ॥



सप्तमी ॥

यस्ते शृङ्गवृषो नपात् प्रणपात् कुण्डपाय्यः ।

न्यस्मिन् दध्रे आ मनः ॥ ७ ॥

यः । ते । शृङ्गवृषः । नपात् । प्रणपादिति प्रणपात् । कुण्डपाय्यः ।

नि । अस्मिन् । दध्रे । आ । मनः ॥ ७ ॥

हे शृङ्गवृषो नपात् शृङ्गवृणनामा कश्चिद् ऋषिः तस्य न पातयति कुलम् इति नपात् पुत्रः । तस्य संबोधनम् । यद्वा शृङ्गवद् उन्नता रश्मयः शृङ्गशब्देन उच्यन्ते । तैर्वर्षतीति शृङ्गवृद् आदित्यः । तस्य न पातयिता दिवि स्थापयिता इन्द्रः शृङ्गवृषो नपाद् इत्युच्यते । तादृश इन्द्र ते तव यः प्रसिद्धः प्रणपात् कुण्डपाय्यः कुण्डैः पातव्यः सोमो यस्मिन् क्रतौ स कुण्डपाय्यः क्रतुरस्ति । ❀ “क्रतौ कुण्डपाय्यसंचायौ” इति पिबतेः क्यप्प्रत्ययान्तत्वेन निपातितः ❀ । अस्मिन् बहुसोमवति क्रतौ त्वं मनो नि दध्रे धारयसि सर्वतः स्थापयसि । ❀ दधातर्लिटि “इरयो रे” इति रेभावः ❀॥

इति पञ्चमं सूक्तम् ॥

हे शृङ्गकी समान उन्नत किरणों वाले सूर्यदेवका पतन न होने देने वाले शृङ्गवृषो नपात् इन्द्र ! आपका जो पतन न होने देने वाला ( जिसमें कुण्डोंसे सोम पिया जाता है ऐसा ) कुण्डपाय्य नामक क्रतु है, उस बहुतसे सोम वाले यज्ञमें आप मनको लगाइये ॥७॥

पञ्चम सूक्त समाप्त ( ६२१ )

“इन्द्र त्वा वृषभं वयम्” इति नवर्चस्य सूक्तस्य प्रातःसवनशस्त्रे विनियोग उक्तः ॥

“इन्द्र त्वा वृषभं वयम्” इस नौ ऋचा वाले सूक्तका प्रातःसवनशस्त्रमें विनियोग कह दिया है ।

तत्र प्रथमा ॥

इन्द्र त्वा वृषभं वयं सुते सोमे हवामहे ।

स पाहि मध्वो अन्धसः ॥ १ ॥

इन्द्र । त्वा । वृषभम् । वयम् । सुते । सोमे । हवामहे ।

सः । पाहि । मध्वः । अन्धसः ॥ १ ॥

व्याख्यातेयम् अनुवाकादौ ॥

हे इन्द्रदेव ! फलोंकी वर्षा करने वाले आपका हम सोमके अभिषुत होने पर आवाहन करते हैं, आप मधुररससरूपन्न सोम-रूपी अन्नके एक भागका पान करिये ॥ १ ॥

द्वितीया ॥

इन्द्र क्रतुविदं सुतं सोमं हर्यं पुरुष्टुत ।

पिब वृषस्व तातृपिम् ॥ २ ॥

इन्द्र । क्रतुऽविदम् । सुतम् । सोमम् । हर्यं । पुरुऽस्तुत ।

पिब । आ । वृषस्व । तातृपिम् ॥ २ ॥

हे पुरुष्टुत पुरुभिर्बहुभिर्यजमानैः स्तुत बहुप्रकारं स्तुत वा हे इन्द्र क्रतुविदम् क्रतोर्यागस्य लम्भकं निष्पादकं सुतम् अभिषवादिना संस्कृतम् इमं सोमं हर्यं कामय । ❀ हर्यं गतिकान्त्योः इत्यस्य लोटि रूपम् । निघातः ❀ । कामयित्वा च तातृपिम् तर्पकं प्रीणयितारम् इमं सोमं पिब पानं कुरु । तदेव विशिनष्टि । आ वृषस्व जठरे सिञ्च । यथा जठरकुहरस्य अत्यन्तं सर्वतः पूर्तिर्भवति तथा कुर्नित्यर्थः । ❀ तातृपिम् । तृप प्रीणने इत्यस्मात् “छन्दसि सदादिभ्यो दर्शनात्” इति किन् । तस्य लिङ्वद्भावाद् द्विर्वचनादि ।



संहितायाम् “अन्येषामपि दृश्यते” इत्यभ्यासस्य दीर्घः । निश्चाद्  
आद्युदात्तः ॐ ॥

हे बहुतसे यज्ञमानोंसे स्तुति पाने वाले इंद्र ! आप यज्ञको  
साधने वाले, अभिषव आदिसे संस्कृत इस सोमकी कामना करिये ।

और कामना करके इस वृत्त करने वाले सोमका पान करिये  
इससे अपने उदरको सींचिये ॥ २ ॥

तृतीया ॥

इन्द्र प्र णो धितावानं यज्ञं विश्वेभिर्देवेभिः ।

तिर स्तवान विश्पते ॥ ३ ॥

इन्द्र । प्र । नः । धितऽवानम् । यज्ञम् । विश्वेभिः । देवेभिः ।

तिर । स्तवान् । विश्पते ॥ ३ ॥

हे स्तवान् । ॐ कर्मणि कर्तृप्रत्ययः ॐ । स्तूयमान हे विश्पते  
विशो देवविशो मरुतः तेषां स्वामिन् । यद्वा विशां प्रजानां सर्वासां  
पते हे इन्द्र नः अस्माकं धितावानम् धितं धानं तद्वन्तं सोमस्य  
निधानवन्तम् । ग्रहादिभिर्गृहीतसोमम् इत्यर्थः । ॐ “छन्दसी-  
वनिपौ०” इति मत्वर्थीयो वनिप् ॐ । उक्तलक्षणं यज्ञं विश्वेभिः  
सर्वैर्यष्ट्यैः देवेभिः देवैः सह प्र तिर वर्धय । हविःस्वीकारे-  
णेति शेषः । ॐ तरतेर्ग्यत्ययेन शः । प्रत्ययस्वरः । प्र ण इति ।  
“उपसर्गाद् बहुलम्” इति संहितायां णत्वम् ॐ ॥

हे स्तुति पाने वाले ! हे देवप्रजा मरुतोंके स्वामिन् इन्द्र ! आप  
हमारे सोम वाले यज्ञको सब पूजनीय देवताओं सहित हवि स्वी-  
कार करके बढ़ाइये ॥ ३ ॥

चतुर्थी ॥

इन्द्र सोमाः सुता इमे तव प्र यन्ति सत्पते ।

क्षयं चन्द्रास इन्दवः ॥ ४ ॥

इन्द्र । सोमाः । सुताः । इमे । तव । प्र । यन्ति । सत्स्पते ।

क्षयम् । चन्द्रासः । इन्दवः ॥ ४ ॥

हे सत्पते सतां यजमानानां पालक इन्द्र सुताः अभिषुताः चन्द्रासः चन्द्रा आह्लादकारिण इन्दवः क्लिन्ना रसात्मका इमे हूयमानाः सोमाः तव क्षयम् । क्षियन्ति निवसन्ति अत्रेति क्षयो निवासस्थानम् । तव जठरम् इत्यर्थः । ❀ “क्षयो निवासे” इति आद्युदात्तत्वम् ❀ । प्र यन्ति गच्छन्ति । ❀ इन्दव इति । उन्दे-  
रिच्चादेः [उ०१.१२] इति उपत्ययः । निदित्यनुवृत्तेराद्युदात्तः ❀ ।

हे सज्जन यजमानोंका पालन करने वाले इन्द्रदेव ! ये अभि-  
षुत आन्हाद देने वाले सोम आपके जठरको प्राप्त हो रहे हैं ॥४॥

पञ्चमी ॥

दधिष्वा जठरे सुतं सोममिन्द्र वरेण्यम् ।

तव द्युक्षास इन्दवः ॥ ५ ॥

दधिष्व । जठरे । सुतम् । सोमम् । इन्द्र । वरेण्यम् ।

तव । द्युक्षासः । इन्दवः ॥ ५ ॥

हे इन्द्र वरेण्यम् वरणीयं स्पृहणीयं सुतम् अभिषुतम् इमं सोमम् अस्माभिर्हूयमानं जठरे दधिष्व धारय । ❀ दधातेर्लोठि रूपम् । “आगमा अनुदात्ताः” इति इटोनुदात्तत्वात् प्रत्यय-  
स्वरः ❀ । सोमानाम् इन्द्रस्य असाधारणं स्वत्वम् आह । द्युक्षासः दीप्तिमन्तो दीप्तिनिवासस्थानभूता इन्दवः सोमाः तव । असाधा-  
रणस्वभूता इति शेषः ॥



हे इन्द्रदेव ! आप इस स्पृहणीय अभिषुत सोमको अपने हृदय में धारण करिये दीप्तिके निवासरूप ये सोम आपके असाधारण भाग हैं ॥ ५ ॥

षष्ठी ॥

गिर्वणः पाहि नः सुतं मधोर्धाराभिरज्यसे ।

इन्द्र त्वादातमिद् यशः ॥ ६ ॥

गिर्वणः । पाहि । नः । सुतम् । मधोः । धाराभिः । अज्यसे ।

इन्द्र । त्वाऽदातम् । इत् । यशः ॥ ६ ॥

हे गिर्वणः गीर्भिर्वननीय संभजनीय इन्द्र । ❀ वन षण् संभक्तौ इत्यस्माद् असुन् । गिर उपधाया दीर्घाभावश्छान्दसः । “आमन्त्रितस्य च” इति षाष्टिकम् आद्यदातृत्वम् ❀ । नः अस्माकं संबन्धिनं सुतम् अभिषुतं सोमं पाहि पिब । अहूयमानस्य कथं पानप्रसक्तिरित्यत्राह । मधोर्धाराभिरिति । यस्माद् मधोः मधुरस्य सोमस्य धाराभिः अज्यसे आर्द्रीक्रियसे । हूयस इत्यर्थः । अपेक्षितस्य फलस्य अभावे होमस्य का प्रसक्तिरित्यत्राह । हे इन्द्र त्वादानमित् त्वया दातव्यमेव यशः अन्नम् । अस्तीति शेषः । “अस्ति त्वादातम् अद्रिवः” इत्यमुं मन्त्रभागं व्याचक्षाणेन यास्केन त्वया नस्तद् दातव्यम् [ नि० ४. ४ ] इति हि त्वादातशब्दो व्याख्यातः । यद्वा त्वादातम् त्वया शोधितं यशोस्ति । ❀ दैप् शोधने । सत्यपि प्रकारे “नानुबन्धकृतम् अनेजन्तत्त्वम्” इत्येजन्त एवायम् । ततः “आदेचः०” इति आच्वम् । अस्मात् कर्मणि क्तः । “दाधा ददाप्” इत्यत्र अदाप् इति प्रतिषेधेन घुसंज्ञाया अभावाद् “दो दद्द घोः” इति दद्द आदेशो न भवति । त्वेति युष्मच्छब्दस्य तृतीया । “कर्तृकरणे कृता बहुलम्” इति समासः । “तृतीया कर्मणि” इति पूर्वपदप्रकृस्वरः ❀ ॥

हे स्तुतियोंसे सेवा करने योग्य इन्द्र ! हमारे अभिषुत सोम का पान करिये । आप मधुर रस वाले सोमकी धाराओंसे आर्द्र किये जा रहे हैं अर्थात् आपको सोमकी आहुति दी जा रही है । हे इन्द्र ! यह आपका शोधित यश ही है ॥ ६ ॥

सप्तमी ॥

अभि धुम्नानि वनिन इन्द्रं सचन्ते अक्षिता ।

पीत्वी सोमस्य वावृधे ॥ ७ ॥

अभि । धुम्नानि । वनिनः । इन्द्रम् । सचन्ते । अक्षिता ।

पीत्वी । सोमस्य । वावृधे ॥ ७ ॥

वनिनः देवान् संभजमानस्य यजमानस्य धुम्नानि द्योतमानान्यन्नानि सोमलक्षणानि । ॐ धुम्नं द्योततेर्यशो वान्नं वेति यास्कः [ नि० ५. ५ ] ॐ । धुम्नानि विशेष्यन्ते । अक्षिता अक्षितानि अक्षीणानि अतिप्रभूतानि इन्द्रं देवम् अभि सचन्ते अभितः संगच्छन्ते । स च इन्द्रः सोमस्य प्रभूतस्य । अंशम् इति शेषः । अथ वा सोमस्य सोमं पीत्वी पीत्वा । ॐ पा पाने इत्यस्मात् क्त्वाप्रत्ययस्य “स्नात्वाद्यादयश्च” इति निपातनात् त्वीभावः । “घुमास्थागापा०” इत्यादिना ईत्त्वम् । प्रत्ययस्वरः ॐ । वावृधे प्रवृद्धो भवति । देवताओंकी भक्ति करने वाले यजमानके दमकते हुए सोम अतिप्रवृद्धभाष्ये इन्द्रदेवको चारों ओरसे प्राप्त हो रहे हैं । और इन्द्र भी सोमके अंशको पीकर बढ़ रहे हैं ॥ ७ ॥

अष्टमी ॥

अर्वावतो न आ गहि परावतश्च वृत्रहन् ।

इमा जुषस्व नो गिरः ॥ ८ ॥



अर्वा॒वतः । नः । आ । ग॒हि । परा॒वतः । च । वृ॒त्र॒ऽह॒न् ।

इ॒माः । जुष॒स्व । नः । गिरः ॥ ८ ॥

हे वृत्रहन् वृत्रस्य हन्तरिन्द्र नः अस्मान् यजमानान् अर्वावतः अर्वावीनाद् अन्तिकाद् देशाद् आ गहि आगच्छ । तथा परावतः दूरदेशाच्च नः आ गहि आगच्छ । ❀ “उपसर्गाच्चन्दसि धात्वर्थे” इति वतिप्रत्ययः । प्रत्ययस्वरः ❀ । आगत्य च नः अस्माकम् इमा गिरः स्तुतिरूपा वाचो जुषस्व सेवस्व ॥

हे वृत्रासुरका संहार करने वाले इन्द्र ! आप हम यजमानोंके पास समीपके स्थानमें हों तो समीपके स्थानसे आजाइये और दूर हों तो दूरसे आजाइये । और आकर हमारी स्तुतिरूपा वाणियों का सेवन करिये ॥ ८ ॥

नवमी ॥

यद॑न्तरा परा॒वतम॑र्वा॒वतं च हू॒यसे ।

इ॒न्द्रे॒ह त॒त आ ग॒हि ॥ ९ ॥

यत् । अ॒न्तरा । परा॒वतम् । अ॒र्वा॒वतम् । च । हू॒यसे ।

इ॒न्द्र । इ॒ह । त॒तः । आ । ग॒हि ॥ ९ ॥

हे इन्द्र परावतम् परावद् दूरस्थानं तथा अर्वावतं च संनिहित स्थानं च यत् यस्मिन् अन्तरा तयोरन्तरालदेशे । ❀ उभयत्र “अन्तरान्तरेण युक्ते” इति द्वितीया ❀ । तत्र हूयसे सम्यग् इज्यसे ततः तस्माद् देशात् परावतः अर्वावतश्च सकाशाद् इह अस्मद्भागदेशं प्रति आ गहि आगच्छ ॥

इति षष्ठं सूक्तम् ॥

हे इन्द्र ! आप दूर वा पासके जिस अन्तराल स्थानसे बुलाये  
जारहे हैं उस स्थानसे हमारे यागस्थलमें शीघ्रतासे आइये ॥६॥

छठा सूक्त समाप्त ( ६२२ )

“उद्घेदभि” इति तृचस्य ब्राह्मणाच्छंसिनः प्रातःसवने विनि-  
योग उक्तः ॥

“उद्घेदभि” तृचका ब्राह्मणाच्छंसीके प्रातःसवनमें विनियोग  
कह दिया है ।

तत्र प्रथमा ॥

उद्घेदभि श्रुतामघं वृषभं नर्यापसम् ।

अस्तारमेपि सूर्य ॥ १ ॥

उत् । घ । इत् । अभि । श्रुतऽमघम् । वृषभम् । नर्यऽअपसम् ।

अस्तारम् । एपि । सूर्य ॥ १ ॥

हे सूर्य त्वं श्रुतामघम् । मघम् इति धननाम । श्रुतं विख्यातं  
स्तोतृभ्यो यष्टृभ्यश्च दातव्यं धनं यस्यासौ श्रुतमघः तम् ।  
सत्यपि श्रुतधनत्वे दानाभावे प्रयोजनाभावाद् उच्यते वृषभम्  
इति । अभिमतस्य धनस्य वर्षकम् इत्यर्थः । तथा नर्यापसम् नरेभ्यो  
हितं नर्यम् अपः कर्म यस्यासौ नर्यापाः तम् । ❀ “तस्मै  
हितम्” इति यत् । बहुव्रीहौ पूर्वपदप्रकृतिस्वरः ❀ । स्वसेवका-  
नाम् इष्टप्राप्त्यनिष्टपरिहारविषयकर्मवन्तम् इत्यर्थः । तथा अस्ता-  
रम् शत्रूणां निरसितारम् । ❀ असु क्षेपणे । तृनि “रधादि-  
भ्यश्च” इति इङ् विकल्पः ❀ । एवं महानुभावम् इन्द्रम् अभिलक्ष्य  
उद्घेदेषि । घेति प्रसिद्धौ । उद्घेऽर्ध्वं गच्छसि उदयसि । सूर्यो-  
दयाभावे इन्द्रस्य सोमलक्षणहविःप्रदानासंभवाद् उक्तलक्षणम् इन्द्रं  
प्रति उद्घेपीत्युच्यते ॥

हे सूर्यदेव ! इन्द्र श्रुत्मघ हैं अर्थात् स्तोता और यष्टाओंका इन्द्रका धनप्रदान करना प्रसिद्ध है, और इन्द्र अभिमत फलोंकी वर्षा करने वाले हैं, तथा इन्द्र नपर्यास हैं अर्थात् इन्द्रके कर्म अपने सेवक मनुष्योंके इष्टप्राप्ति और अनिष्टपरिहार करने वाले हैं, तथा इन्द्र शत्रुओंका तिरस्कार करने वाले हैं । ऐसे महानुभाव इन्द्रको लक्ष्यमें रख कर आप उदय होते हैं । [ सूर्योदयके अभावमें इन्द्रका सोमात्मकहविःप्रदान असम्भव है अतः यह कहा, कि—हे सूर्यदेव ! आप इन्द्रको लक्ष्यमें रख कर उदय होते हैं ] ॥ १ ॥

द्वितीया ॥

नव यो नवतिं पुरो बिभेद बाह्वोजसा ।

अहिं च वृत्रहावधीत् ॥ २ ॥

नव । यः । नवतिम् । पुरः । बिभेद । बाहुऽओजसा ।

अहिम् । च । वृत्रऽहा । अवधीत् ॥ २ ॥

य इन्द्रः शम्बरस्यासुरस्य नव नवतिं च पुरः नवोत्तरनवति-संख्याका मायानिर्मिताः पुरीः । ❀ “पङ्क्तिविंशति०” इत्यादिना तिप्रत्ययान्तो निपा ततः ❀ । बाह्वोजसा बाहुबलेन अन्य-नैरपेक्ष्येणैव बिभेद भिन्नवान् नाशितवान् । तथा च मन्त्रान्तरम् । “दिवोदासाय नवतिं च नवेन्द्रः पुरो व्यैरच्छस्वरस्य” इति [ ऋ० २. १६. ६ ] । किं च वृत्रहा । वृत्रशब्दः शत्रुसामान्य-वचनः “वृत्राणि वृत्रहं जहि” [ २०. ५. ३ ] “इन्द्रो वृत्राणि जिघ्नते” [ २०. ५. २ ] इत्यादौ तथा दर्शनात् । वृत्राणां शत्रूणां हन्ता इन्द्रः अहिं च । अयति गच्छतीत्यहिर्मेघः । ❀ अहिरयनाद् एतन्तरिक्षे इति निरुक्तम् [ नि० २, १७ ] ❀ ।



अथ वा आगत्य हन्तीत्यहिर्बृत्रः । ॐ इन हिंसागत्योः । आङि  
 श्रिहनिभ्यां ह्रस्वश्च [ उ० ४. १३७ ] इति आङ्पूर्वाद् इम्  
 प्रत्ययः । वातेर्ङित् [ उ० ४. १३३ ] इत्यनुवर्तनात् ङिद्वद्भावः  
 आङो ह्रस्वश्च । जित्वाद् आद्यदात्तः ॐ । तम् अवधीत् हतवान् ।  
 स न इत्युत्तरत्र संबन्धः ॥

जो इन्द्रदेव शम्बरासुरके मायानिर्मित निन्यानवे पुरोंको अपने  
 भुजबलसे नष्ट कर चुके हैं । उन शत्रुनाशक इन्द्रने वृत्रासुरका  
 संहार कर डाला है ॥ २ ॥

तृतीया ॥

स न इन्द्रः शिवः सखाश्वावद् गोमद् यवमत् ।

उरुधारेव दोहते ॥ २ ॥

सः । नः । इन्द्रः । शिवः । सखा । अश्वश्चत् । गोऽमत् ।  
 यवऽमत् ।

उरुधाराऽइव । दोहते ॥ ३ ॥

स पूर्वोक्तगुणविशिष्ट इन्द्रः नः अस्मकं शिवः सुखकारी सखा  
 मित्रभूतः । तादृश इन्द्रः अश्वावत् अश्वैर्बहुभिरुपेतं गोमत् बर्ही-  
 भिर्गोभिरुपेतं यवमत् । यवो धान्यविशेषः । बहुभिर्यवैर्युक्तं धनम्  
 उरुधारेव प्रभूतधारायुक्ता बहुक्षीरा गौरिव दोहते सा यथा  
 सर्वेषां तर्पणसमर्थ बहुक्षीरं दुग्धे एवं सर्वजनतृप्तिसाधनम् अश्वा-  
 द्युपेतं धनं दुग्धाम् प्रयच्छतु । ॐ बाहुलकात् शपो लुगभावः ।  
 लेटि वा अडागमः ॐ ॥

इति सप्तमं सूक्तम् ॥

ऐसे इन्द्रदेव हमारे लिये सुखकारी बनें और हमारे मित्र बनें  
 ऐसे इन्द्रदेव हमको बहुतसे घोड़ोंसे सम्पन्न तथा बहुतसी गौओं

से सम्पन्न और यव आदि बहुतसे धान्योंसे सम्पन्न उरुधारा की समान हमको प्रदान करें अर्थात् विशाल धारा वाली बहु-क्षीरा गौ जैसे सबको तृप्ति करने योग्य दुग्धको देती है इसी प्रकार सबकी तृप्तिके साधन अश्व आदिसे सम्पन्न धनको प्रदान करें ॥ ३ ॥

सप्तम सूक्त समाप्त

“इन्द्र क्रतुविदम्” इत्येषा आद्या ऋक् ब्राह्मणाच्छंसिनः शस्त्रयाज्या । उक्तं हि । “उक्थसंपदः परिधानीयोत्तरा याज्या” इति [ वै० ३. ११ ] ॥

“एवा पाहि” इत्याद्यास्तिस्र ऋचस्तेषामेव ब्राह्मणाच्छंस्यादीनां त्रयाणाम् ऋत्विजां क्रमेण माध्यन्दिनसवनिक्यः प्रस्थितयाज्याः । तथा च वैतानं सूत्रम् । “एवा पाहीति प्रस्थितयाज्या” इति [ वै० ३. ११ ] ॥

“इन्द्र क्रतुविदम्” यह पहिली ऋचा ब्राह्मणाच्छंसीकी शस्त्र-याज्या है । वैतानसूत्र ३ । ११ में कहा भी है, कि—“उक्थसम्पदः परिधानीयोत्तरा याज्या” ।

“एवा पाहि” आदि तीन ऋचाएँ इन ही ब्राह्मणाच्छंसी आदि तीनों ऋत्विजोंकी क्रमशः माध्यन्दिनसवनिकी प्रस्थितयाज्या हैं। इसी बातको वैतानसूत्र ३ । ११ में कहा है, कि—“एवा पाहीति प्रस्थितयाज्या” ॥

तत्र प्रथमा ॥

इन्द्रं क्रतुविदं सुतं सोमं हर्यं पुरुष्टुत ।

पिबा वृषस्व तातृपिम् ॥ ४ ॥

इन्द्र । क्रतुऽविदम् । सुतम् । सोमम् । हर्यं । पुरुऽस्तुत ।

पिव । आ । वृषस्व । तवृषिम् ॥ ४ ॥

हे पुरुषदुत बहुभिर्बहुप्रकारं वा स्तुत इन्द्र क्रतुः प्रज्ञा भवति तस्या लम्भकम् । अथवा क्रतोरेव ज्योतिष्टोमादेर्लम्भकं साधकं सुतम् अभिषुतं तवृषिम् तर्पकं सोमं हयं कामय । ❀ तवृषिम् इत्यत्र “आह्वगमहन०” इति विहितः “छन्दसि सदादिभ्यो दर्शनात्” इति किन् ❀ । पिव । अपि च आ वृषस्व जठरे सिञ्च । पिबे-त्यनेन उक्त एवार्थः पुनरनेन अभिहितः पानस्याधिक्याभिधानाय । व्याख्यातेयम् अस्मिन्नेवानुवाके [ ६. २ ] ॥

हे अनेक प्रकारसे स्तुत इन्द्रदेव ! आप ज्योतिष्टोम आदिको सम्पन्न करने वाले, अभिषुत वृषिजनक सोमकी कामना करिये । और इसका पान करिये तथा जठरमें सींचिये ॥ ४ ॥

अथ द्वितीया ॥

ए॒वा पा॑हि प्र॒त्न॒था म॑न्द॒तु त्वा श्रु॑धि ब्र॒ह्म वा॒वृ॒धस्वो॒त  
गी॒र्भिः ।

आ॒विः सूर्यं॑ कृ॒णु॒हि पी॑पि॒हीषो॑ ज॒हि शत्रूँ॑ग्भि गा॒  
इन्द्र॑ तृ॒न्धि ॥ १ ॥

ए॒व । पा॑हि । प्र॒त्न॒था । म॑न्द॒तु । त्वा । श्रु॑धि । ब्र॒ह्म । वा॒वृ॒धस्व ।  
उ॒त । गी॒र्भिः ।

आ॒विः । सूर्य॑म् । कृ॒णु॒हि । पी॑पि॒हि । इषः॑ । ज॒हि । शत्रूँ॑न् ।  
अ॒भि । गाः । इन्द्र॑ । तृ॒न्धि ॥ १ ॥

हे इन्द्र प्रत्नथा । प्रत्नम् इति पुराणनाम । पूर्वं यथा अङ्गिरः-प्रभृतीनां सोमयागे सोमम् अपाः । ❀ “प्रत्नपूर्वविश्वेमात् थाल्



छन्दसि" इति इवार्थे याल् प्रत्ययः ❀ । एव एवम् अस्मदीयमपि सोमं पाहि पिब । स च पीतः सोमः त्वा त्वां मन्दतु मदयतु । तदर्थम् अस्मदीयं ब्रह्म मन्त्रात्मकं स्तोत्रं श्रुधि शृणु । ❀ "श्र-  
शृणुपकृष्टभ्यश्छन्दासे" इति हेर्धिभावः ❀ । न केवलं श्रवणमेव उत अपि च गीर्भिः अस्मदीयाभिः स्तुतिवाग्भिः बृधस्व वर्धस्व अभिवृद्धो भव । अतस्तव यागार्थं सूर्यम् सर्वकर्मणां प्रेरकं देवम् आविष्कृणुहि प्रकाशितं कुरु । यद्वा अस्माकं व्यवहाराय बहु-  
कालं सूर्यम् आविष्कृणु । तत इषः अन्नानि अस्मदुपभोगसा-  
धनानि पीपेहि प्यायय समर्धय । किं च शत्रून् शातयितुं अस्म-  
द्विरोधिनो द्वेष्यान् जहि घातय । हे इन्द्र गाश्च पण्यभिरपहृता  
अभि तृन्धि प्रयच्छ । ❀ बृधस्वेति । वृधेर्बहुलग्रहणाच्छपः  
श्लुः । "व्यत्ययो बहुलम्" इत्यत्र "क्वचिद् विकरणं च" इति  
वचनात् शप्-प्रत्ययः । विकरणस्वरेण मध्योदात्तः । तृन्धि ।  
उतृदिर् हिंसानादरयोः ❀ ॥

हे इन्द्रदेव ! जैसे पहिले अंगिरा आदिके सोमयागमें आपने सोमका पान किया था, इसी प्रकार आप हमारे सोमका भी पान करिये । वह पिया हुआ सोम आपको प्रसन्न करे । इस लिये आप हमारे मन्त्रात्मक स्तोत्रको सुनिये । केवल सुनिये ही नहीं किन्तु हमारी स्तुतिकी वाणियोंसे बढ़िये और अपने याग के लिये सब कर्मोंके प्रेरक सूर्यदेवको प्रकाशित करिये । फिर हमारे उप भोगोंके साधन अन्नोंको बढ़ाइये और हमसे विरोध करने वाले शत्रुओंको नष्ट करिये । और हे इन्द्रदेव ! पणियोंसे हरी हुई गौओंको हमें प्रदान करिये ॥ १ ॥

तृतीया ॥

अर्वाङ्गेहि सोमकामं त्वाहुरयं सुतन्तम्यं पिबा मदय

उरुव्यचा जठर आ वृषस्व पितेव नः शृणुहि हूयमानः

अर्वाङ् । आ । इहि । सोमऽकामम् । त्वा । आहुः । अयम् ।

सुतः । तस्य । पिब । मदाय ।

उरुऽव्यचाः । जठरे । आ । वृषस्व । पिताऽइव । नः । शृणुहि ।

हूयमानः ॥ २ ॥

हे इन्द्र अर्वाङ् अस्मदभिमुखः सन् एहि आगच्छ । किमर्थम् आगमनम् इति चेद् उच्यते सोमकामं त्वाहुरिति । यतस्त्वा त्वां सोमकामम् सोमं कामयमानं सोमविषये अत्यन्ताभिलषितवन्तम् आहुः अभिज्ञाः कथयन्ति । “सोमकामं हि ते मनः” इति हि मन्त्रान्तरम् [ ऋ० ८. ६१. २ ] । “इमं जम्भसुतं पिब” इति [ ऋ० ८. ६१. २ ] मन्त्रे जम्भनिष्पीडितस्यापि सोमस्य पानाभिधानाद् इन्द्रस्य सोमे अतिशयप्रीतिसद्भाव उक्तो भवति । यस्मादेवं तस्माद् अयं सोमः सुतः अभिषुतः । तस्य । तं सोमम् इत्यर्थः । ❀ “क्रियाग्रहणं कर्तव्यम्” इति कर्मणः संप्रदानत्वाच्चतुर्थ्यर्थे षष्ठी ❀ । पिब पानं कुरु । कस्मै प्रयोजनायेति उच्यते । मदाय । तस्य पिबेति सोमपानमात्रम् अभिहितम् । इदानीं कुक्षिपरिपूर्तिपर्यन्तं पानम् अभिधीयते उरुव्यचा इत्यादिना । उरु प्रभूतं व्यचनं कुक्षिबाहुल्यं यस्य स उरुव्यचाः । ❀ व्यचेरौणादिकः असिप्रत्ययः । “व्यचेः कुडादित्वम् अनसीति वक्तव्यम्” इति वचनात् डित्वाभावेन संप्रसारणाभावः । “परादिश्छन्दसि बहुलम्” इति उत्तरपदाद्य दात्तत्वम् ❀ । तादृशस्त्वं जठरे उदरे अतिविस्तीर्णं आ वृषस्व आसिञ्च सर्वतः पूरय । तदर्थम् आहूयमानस्त्वं पितेव यथा पिता पुत्रस्य वचनं शृणोति एवं नः अस्माकम्

आहानं शृणुहि शृणु । ❀ “उतश्च प्रत्ययाच्छन्दसि वा वचनम्”  
इति हेर्लुगभावः ❀ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप हमारे अभिमुख होकर आइये । क्योंकि—  
विद्वान् पुरुष आपको सोमकी कामना वाला कहते हैं । यह सोम  
अभिषुत होगया है, इसका आप मदके लिये पान करिये । आप  
सोमको प्रभूतमात्रामें अपनी दोनों कोखोंमें भरिये । इसके लिये  
बुलाये हुए आप पिता जैसे पुत्रके वचनको सुनता है, तिसप्रकार  
हमारे आहानको सुनिये ॥ २ ॥

चतुर्थी ॥

आपूर्णो अस्य कलशः स्वाहा सेक्तेव कोशं सिसिचे  
पिबध्यै ।

समुं प्रिया आववृत्रन् मदाय प्रदक्षिणिदुभि सोमास  
इन्द्रम् ॥ ३ ॥

आऽपूर्णः । अस्य । कलशः । स्वाहा । सेक्ताऽइव । कोशम् ।  
सिसिचे । पिबध्यै ।

सम् । ऊं इति । प्रियाः । आ । अववृत्रन् । मदाय । प्रऽदक्षिणित् ।  
अभि । सोमासः । इन्द्रम् ॥ ३ ॥

अस्य अस्मै इन्द्राय । ❀ चतुर्थ्यर्थे षष्ठी ❀ । तदर्थं कलशः  
द्रोणकलश आपूर्णः सोमरसेन सर्वतः पूर्ण आसीत् । तच्च पूरणं  
किमर्थम् इति चेद् उच्यते । स्वाहा स्वाहुतत्वाय । होमार्थम्  
इत्यर्थः । ततः सेक्तेव कोशम् सेक्ता पूरकः पुमान् कोशम् इति  
यथा सिञ्चति पूरयति उदकादिना एवं पिबध्यै इन्द्रस्य पानाय ।  
❀ पा पाने इत्यस्य तुमर्थे शध्यैन् प्रत्ययः । शिच्चात् पिबादेशः ।



निस्वाद् आद्युदात्तः ॐ । सिसिचे सिञ्चति अध्वर्युः सोमरसम् ।  
 सामर्थ्याद् ग्रहादिष्विति लभ्यते । ते च सिक्ताः प्रियाः हृद्याः  
 स्वादवः सोमासः सोमाः मदाय इन्द्रस्य हर्षाय प्रदक्षिणित्वाद् प्राद-  
 क्षिण्येन इन्द्रं सम् अभ्याववृत्रन् सम्यग् अभिमुख्वा वर्तन्ते सम-  
 भिर्याप्नुवन्ति । ॐ वृत्तु वर्तने । लङि “बहुलं छन्दसि” इति श्लुः ।  
 व्यत्ययेन परस्मैपदम् । “बहुलं छन्दसि” इति ऋगुदागमः ॥  
 इति अष्टमं सूक्तम् ॥

इन इन्द्रदेवके लिये द्रोणकलश सोमरससे चारों ओरसे भरा  
 हुआ रखवा था-होम करनेके लिये भरा हुआ रखवा था जैसे  
 सेचक पूरक पुरुष मशकको जल आदिसे पूर्ण करता है, इसी  
 प्रकार अध्वर्यु इन्द्रके पीनेके लिये सोमरसको ग्रहादिकोंमें सिक्त  
 करता है, वे भरे हुए ( सिक्त ) स्वादु सोम इन्द्रदेवके हर्षके लिये  
 चतुरतासे इन्द्रदेवकी ओरको अभिमुख होकर व्याप्त होजाते हैं ३

अष्टम सूक्त समाप्त ( ६२४ )

“तं वो दस्ममृतीषहम्” इत्यादिचत्वारि सूक्तानि माध्यन्दिन-  
 सवने ब्राह्मणाच्छंसिनः शस्त्रे विनियुक्तानि । चतुर्थसूक्तस्यान्तिमा  
 “ऋजीषी वज्री” [ २०. १२. ७ ] इत्येषा ऋक् शस्त्रयाज्या ।  
 “तं वो दस्ममृतीषहम्” [ १ ] “तत् त्वा यामि सुवीर्यम्” [ ३ ]  
 इति प्रगाथौ स्तोत्रियानुरूपौ । “उदु त्ये मधुमत्तमाः” [ २०. १०. १ ]  
 इति सामप्रगाथः । “इन्द्रः पूषित्” [ २०. ११ ] इति सूक्तम्  
 उक्थमुत्थम् । “उदु ब्रह्माणि” [ २०. १२ ] इति सूक्तं पर्यास-  
 संज्ञम् । “एवेदिन्द्रम्” [ २०. १२. ६ ] इति परिधानीया । एतत्  
 सर्वं वेदाने सूत्रितम् । “तं वो दस्ममृतीषहं तत् त्वा यामि सुवी-  
 र्यम्” इति [ वै० ३. १२ ] ॥

“तं वो दस्ममृतीषहम्” आदि चार सूक्त माध्यन्दिनसवनमें  
 ब्राह्मणाच्छंसीके शस्त्रमें विनियुक्त होते हैं । चतुर्थ सूक्तकी अन्तिम

“ऋजीषी वज्री” ( २० । १२ । ७ ) ऋचा शस्त्रयाज्या है । “तं वो दस्ममृतीषहम्” ( १ ) “तत् त्वा यामि सुवीर्यम्” ( ३ ) ये प्रगाथ स्तोत्रियानुरूप हैं । “ उदु त्ये मधुमत्तमाः ” ( २० । १० । १ ) यह सामप्रगाथ है । “इन्द्रः पूर्भित्” ( २० । ११ ) यह सूक्त उक्थमुख है । “उदु ब्रह्माणि” ( २० । १२ ) सूक्त पर्यास कहलाता है । “ एवेदिन्द्रम् ” ( २० । १२ । ६ ) यह परिधानीया है । इस सबको वैतानसूत्रमें कहा है, कि—“तं वो दस्ममृतीषहम् तत् त्वा यामि सुवीर्यम्” ( वैतानसूत्र ३ । १२ ) ॥

तत्र प्रथमा ॥

तं वो दस्ममृतीषहं वसोर्मन्दानमन्धसः ।

अभि वत्सं न स्वसरेषु धेनव इन्द्रं गीर्भिर्नवामहे १

तम् । वः । दस्मम् । ऋतिऽसहम् । वसोः । मन्दानम् । अन्धसः ।

अभि । वत्सम् । न । स्वसरेषु । धेनवः । इन्द्रम् । गीऽभिः ।

नवामहे ॥ १ ॥

हे यजमानाः वः युष्मदर्थं युष्मद्यागनिष्पत्त्यर्थं युष्मदभिमत-  
फलार्थं वा तं प्रसिद्धम् इन्द्रम् अभिलक्ष्य गीर्भिः स्तुतिप्रकाशि-  
काभिर्ऋग्भिः नवामहे स्तुम इति संबन्धः । कीदृशम् इन्द्रम् ।  
दस्मम् दर्शनीयम् । तत्तत्फलार्थिभिरवरयं सेवनीयम् इत्यर्थः ।  
ऋतीषहम् । अर्तेऽर्तिशब्दः । आर्तेरभिभवितारम् नाशकम् ।  
❀“सहेः पृतनर्ताभ्यां च” इत्यत्र सहेरिति योगविभागात् षत्त्वम्❀ ।  
तथा वसोः वासकस्य अन्धसः अन्नस्य सोमलक्षणस्य । पानेनेति  
शेषः । मन्दानम् मन्दमानम् । स्तुतौ दृष्टान्तम् आह । वत्सं न  
स्वसरेषु धेनवः । स्वसरेषु स्वयं सरन्तीति वा स्वः आदित्यः स  
एनानि सारयतीति वा स्वसराण्यहानि । तेषु आगच्छत्सु निर्ग-

च्छत्सु वा । सायंप्रातःकालेष्वित्यर्थः । तेषु धेनवः प्रभूतेन पयसा  
श्रीण्यिज्यो गावः अभिनवप्रसवा वा ता वत्सं न । यथा वत्सं  
स्ननप्रदानाय हम्भाशब्दम् उच्चैर्बहुशः कुर्वन्ति तद्वत् ॥

हे वज्रमानो ! हम तुम्हारे यागकी पूर्णताके लिये वा तुम्हारे  
अभिमत फलके लिये इन्द्रदेवकी स्तुतिप्रकाशिका वाणियोंसे स्तुति  
करते हैं । यह इन्द्रदेव दर्शनीय है अर्थात् फलाभिलाषियोंको  
इनका दर्शन अवश्य करना चाहिये और यह आर्तिका नाश करने  
वाले हैं । और यह वासक सोमरूपी अन्नके पानसे आनन्दमें  
भरे रहते हैं । जैसे सूर्य जिनको करता है उन दिनोंके आने जाने  
के समय धेनुएं हमें २ करती हुई बछड़ोंकी ओरको दूध पिलानेके  
लिये दौड़ती हैं, इसी प्रकार हम भी ( सोम पिलानेके लिये )  
इन्द्रकी ओर स्तुतिवाणियोंसे दौड़ते हैं ॥ १ ॥

द्वितीया ॥

द्युत्तं सुदानुं तविषीभिरावृतं गिरिं न पुरुभोजसम् ।

क्षुमन्तं वाजं शतिनं सहस्रिणं मक्षू गोमन्तमीमहे

द्युत्तम् । सुदानुम् । तविषीभिः । आवृतम् । गिरिम् । न । पुरु-

भोजसम् ।

क्षुमन्तम् । वाजम् । शतिनम् । सहस्रिणम् । मक्षू । गोमन्तम् ।

ईमहे ॥ २ ॥

द्युत्तम् दीप्तं सुदानुम् शोभनदानं विशिष्टदानार्हं तविषीभिः  
बलैः आवृतम् आच्छन्नम् । बलप्रदम् इत्यर्थः । गिरिं न पुरुभोज-  
सम् । पुरु इति बहुनाम् । बहूनां प्रजानां भोगयोग्यं गिरिं न  
पर्वतमिव । यथा दुर्भिसे प्रजा जीवनाय बहुभिः कन्दमूलाद्यन्नैरु-



पेतं गिरिम् अर्थयन्ते तद्वत् । ॐ उदधिः पर्वतो राजा दुर्भिक्षे नव  
वृत्तयः इति हि मन्त्रवर्णः [ नि० ६. ५ ] ॐ । अयम् वाजम्  
ईमहे इत्यत्र दृष्टान्तः । तथा जुमन्तम् । ॐ जु शब्दे ॐ । शब्दो-  
पेतम् । स्तुतिमन्तम् इत्यर्थः । यो लोके बहुजो भवति स शब्दत  
इति प्रसिद्धम् । शतिनम् शतयुक्तं शतसंख्यानां प्रजानां पोषक-  
त्वेन तद्वन्तम् । एवं सहस्रिणम् इत्येतदपि योज्यम् । अपरिमित-  
प्राणिपोषकम् इत्यर्थः । तथा गोमन्तम् बहीभिर्गोभिर्युक्तम् । एवम्  
उक्तैर्विशेषणैर्विशिष्टं वाजम् अन्नं भक्षु शीघ्रम् ईमहे याचामहे ॥

दीप्तिमय, सुन्दरतासे दान करने योग्य, बलप्रद, स्तुतिके पात्र,  
सैकड़ों और सहस्रों प्रजाओंका पोषण करने वाले और बहुतसी  
गौओंसे युक्त धनकी हम इस प्रकार प्रार्थना करते हैं जिस प्रकार  
दुर्भिक्षमें प्रजाएँ जीवनके लिये बहुतसे कन्द मूल आदि अन्नोसे  
सम्पन्न पर्वतकी प्रार्थना करते हैं । [ निरुक्त ६ । ५ में कहा भी  
है, कि—“उदधिः पर्वतो राजा दुर्भिक्षे नव वृत्तयः ।” ] ॥ २ ॥

तृतीया ॥

तत् त्वां यामि सुवीर्यं तद् ब्रह्म पूर्वचित्तये ।

येना यतिभ्यो भृगवे धने हिते येन प्रस्कण्वमाविथ ३

तत् । त्वा । यामि । सुवीर्यम् । तत् । ब्रह्म । पूर्वचित्तये ।

येन । यतिभ्यः । भृगवे । धने । हिते । येन । प्रस्कण्वम् । आविथ ३

हे इन्द्र तत् वक्ष्यमाणलक्षणं सुवीर्यम् शोभनवीर्योपेतं ब्रह्म  
परिवृढम् अन्नं त्वा त्वां यामि याचे । ॐ वर्णलोपश्चान्दसः ।  
“तत् त्वा यामीति द्विवर्णलोपइति हि यास्कः [ नि० २. १ ] ॐ ।  
उक्तमेवार्थं पुनराह इतरेभ्यः पूर्वलाभाय । तत् उक्तलक्षणं ब्रह्म  
अन्नं पूर्वचित्तये पूर्वप्रज्ञानाय । यामीति संबन्धः । तद् इत्युक्तम् ।

कीदृक् तद् इत्याह । येन ब्रह्मणा अन्नेन यतिभ्यः कर्मभ्यो निवृत्तेभ्यः सकाशाद् आहृत्य भृगवे एतन्नामकाय महर्षये धने हिते अभिमतो सति तं भृगुं प्रीणितवान् असि । यद्वा येन सुवीर्येण अन्नेन यतिभ्यः नियतिमद्भ्यः कर्मसु नियतेभ्यः अन्येभ्यो महर्षिभ्यः तदर्थं धने हिते सति परितोषितवान् असि । तथा भृगवे एतन्नामकाय महर्षये च । येन च धनेन प्रस्कएवम् कएवस्य पुत्रम् एतन्नामानम् ऋषिम् आविथ ररक्षिथ ॥

हे इंद्रदेव ! मैं आपसे सुन्दर वीर्यसम्पन्न दृढ़ अन्नकी याचना करता हूँ । उस अन्नको पूर्वप्रज्ञानके लिये याचना करता हूँ । जिस धनके देने पर नियम वालोंको और भृगु ऋषिको शांति प्राप्त हुई थी और जिस धनसे आपने कएव नामक ऋषिके पुत्र प्रस्कएव ऋषिकी रक्षा की थी उस धनकी हम आपसे याचना करते हैं ॥ ३ ॥

चतुर्थी ॥

येनां समुद्रमसृजो महीरपस्तदिन्द्र वृष्णि ते शवः ।

सद्यः सो अस्य महिमा न संनशे यं क्षोणीरनुचक्रदे

येन । समुद्रम् । असृजः । महीः । अपः । तत् । इन्द्र । वृष्णि । ते । शवः ।

सद्यः । सः । अस्य । महिमा । न । समुद्रनशे । यम् । क्षोणीः ।

अनुचक्रदे ॥ ४ ॥

हे इन्द्र येन शवसा बल्लेन समुद्रम् । समभिद्रवन्त्येनम् आप इति समुद्रः उदधिः । तं प्रति महीः महतीः अतिप्रभूता अपः समुद्रपूर्तिपर्यन्तानि उदकानि असृजः सृष्ट्यादौ सृष्टवान् असि । तत् तादृक् ते शवः बलं वृष्णि वर्षकं सर्वेषाम् अभिमतप्रदात् ।

भवतीति शेषः ॥ अथ परोक्षम् आह । अस्य इन्द्रस्य स महिमा  
बहुभिरुदकैः समुद्रपूर्त्यादिलक्षणः सद्यः तदानीमेव न संनशो परैर्न  
सम्यग् व्याप्तुम् अर्हः । महिम्न आनन्त्याद् अनन्यसाधारणत्वात्  
च्चेति भावः । ॐ नशतिर्व्याप्तिकर्मा । कृत्यार्थे केन् प्रत्ययः ॐ ।  
यं महिमानं क्षोणीः । क्षोणी पृथिवी । तेन तन्निष्ठः प्राणिनि-  
करो लक्ष्यते । अनुचक्रदे अनुक्रन्दति । उद्घोषयतीत्यर्थः ॥

इति नवमं सूक्तम् ॥

हे इन्द्रदेव ! जिस बलसे आपने समुद्रके निमित्त सृष्टिकी आदि  
में समुद्रका पूर्णरूपसे भरने वाले जलोंकी सृष्टि की है । वह बल  
सबको अभिलषित फल प्रदान करता है । बहुतसे जलोंमें समुद्र-  
पूर्ति आदिकी इनकी महिमाको शत्रु नहीं पासकते इनकी महिमा  
का पृथिवीवासी वर्णन करते हैं ॥ ४ ॥

नवम सूक्त समाप्त ( ६२५ )

“उदु त्ये” इति सूक्तस्य विनियोगः पूर्वसूक्तेन सह उक्तः ॥

“उदु त्ये” सूक्तका विनियोग पहिले सूक्तके साथ कह दिया है।

तत्र प्रथमा ॥

उदु त्ये मधुमत्तमा गिर स्तोमांस ईरते ।

सत्राजितो धनसा अक्षितोतयो वाजयन्तो रथा इव १

उत् । ऊं इति । त्ये । मधुमत्तमाः । गिरः । स्तोमांसः । ईरते ।

सत्राजितः । धनऽमाः । अक्षितऽऊतयः । वाजऽयन्तः । रथाऽइव ।

त्ये । तच्छब्दसमानार्थस्त्यच्छब्दः । ते वक्ष्यमाणाः स्तोमांसः  
स्तोमांसः त्रिवृदादयः प्रगीतमन्त्रसाध्यानि स्तोत्राणीत्यर्थः । ते  
त्रिशोष्यन्ते । मधुमत्तमाः अतिशयेन मधुराः वस्तुतश्च वाच्यपि  
माधुर्यम् अस्त्येव । ते उदीरते मादुर्भवन्ति । तथा गिरः अत्रापि



मधुपक्षमा इत्येतत् संबध्यते । अतिशयेन मधुरा गिरः शस्त्राश्रय-  
भूना वाचः अप्रगीतमन्त्रसाध्यान्यपि शस्त्राणि उदीरते । ते विशे-  
ष्यन्ते । सत्राजितः सहैव एकवारमेव जयन्ति शत्रून् इति सत्रा-  
जितः । तथा धनसाः धनानां संभक्तारो धनप्रदाः । ❀ “जन-  
सनखनक्रमगमो विट्” इति विट् । “विड्वनोरनुनासिकस्यात्”  
इति आत्त्वम् ❀ । एवम् अक्षितोत्तयः । क्षितं क्षयः । न विद्यते  
क्षितं यासां ता अक्षिताः । अक्षिता ऊतयो येषां ते तथोक्ताः ।  
सर्वदा रक्षका इत्यर्थः । ❀ “निष्ठायाम् अण्यदर्धे” इति पर्युदासाद्  
दीर्घाभावः । अत एव “क्षियो दीर्घात्” इति निष्ठानत्वाभावः ❀ ।  
वाजयन्तः वाजम् अन्नम् इच्छन्तः । ❀ क्वचि “नच्छन्दस्य-  
पुत्रस्य” इति इत्वदीर्घयोः प्रतिषेधः ❀ । तत्र दृष्टान्तः । रथा  
इव । अत्र सत्राजितइत्यादिविशेषणानि दृष्टान्तेपि योजयितव्यानि ।  
यथोक्तलक्षणा रथा यथा रथस्वामिनः प्रयोजनाय उदीरते एवम्  
इन्द्रस्य परितोषाय स्तोमा उदीरत इत्यर्थः ॥

ये आगे कहे जाने वाले प्रगीतमन्त्रसाध्य त्रिवृद् आदि स्तोत्र  
और अप्रगीतमन्त्रसाध्य शस्त्र आदिकी मधुर वाणियों प्रादुर्भूत  
होरही हैं, ये धन प्रदान करने वाली हैं और एकवार ही शत्रुओं  
को जीत लेती हैं, ये सदा रक्षक हैं और यह अन्न प्रदान करने  
वाली हैं और रथ जैसे रथमें बैठने वालेके प्रयोजनके लिये दौड़ता  
है तैसे ही यह इन्द्रके संतोषके लिये प्रकट होती हैं ॥ १ ॥

द्वितीया ॥

कण्वा इव भृगवः सूर्या इव विश्वमिद्धीतमानशुः ।  
इन्द्रं स्तोमेभिर्महयन्त आयवः प्रियमेधासो अस्वरन् २

कण्वाऽइव । भृगवः । सूर्याऽइव । विश्वम् । इत् । धीतम् ।

आनशुः ।

इन्द्रम् । स्तोमेभिः । महयन्तः । आयवः । प्रियमेधासः । अस्वरन्

कण्वा इव कण्वगोत्रोत्पन्ना महर्षयोपि कण्वाः । ते यथा विश्वम् व्याप्तं लोकत्रयस्वामिनम् । इत् शब्दः अव्यवाहतेन इन्द्रम् इत्यनेन संबध्यते । धीतम् ध्यातं तत्तत्फलार्थिभिः सर्वैर्ध्यानोपलक्षितेन स्तोत्रेण विषयीकृतम् इन्द्रमित् इन्द्रमेव आनशुः स्तोत्रशस्त्रादिभिः प्राप्ताः । भृगवः । केवलोपि भृगुशब्दः इवेन विशिष्टार्थः परिगृह्यते । भृगव इव ते यथा उक्तलक्षणम् इन्द्रम् आनशुः । सूर्या इव सूर्या धात्र्यमादयः । ते यथा स्वनियन्तारम् इन्द्रम् आनशुः । एवम् उक्तगुणकम् इन्द्रं प्रियमेधासः । येषां मेधाः प्रियभूतस्ते प्रियमेधाः । एतन्नामानः आयवः मनुष्या महर्षयः महयन्तः पूजयन्तः स्तोमेभिः स्तोत्रैः अस्वरन् शब्दम् अकुर्वन् । अस्तु च न्नित्यर्थः ॥

इति दशमं सूक्तम् ॥

कण्व गोत्रमें उत्पन्न हुए महर्षि जिस प्रकार, तीनों लोकोंके स्वामी, फलाभिलाषियोंके द्वारा ध्याये हुए इन्द्रको ही स्तोत्र शस्त्र आदि स्तुतियोंसे प्राप्त होते हैं, जैसे धाता अर्यमा आदि सूर्य अपने नियन्ता इन्द्रको प्राप्त होते हैं अर्थात् इन्द्रकी स्तुति करते हैं । और भृगुवंशी महर्षि जिस प्रकार इन्द्रकी शरणमें जाते हैं इसी प्रकार प्रियमेधा नामक मनुष्य पूजा करते समय स्तोत्रोंसे इन्द्रकी स्तुति करते हैं ॥ ३ ॥

दशम सूक्त समाप्त ( ६२३ )

“इन्द्रः पूर्भित्” इति सूक्तस्य उक्तो विनियोगः ॥

“इन्द्रः पूर्भित्” सूक्तका विनियोग पहिले कह दिया है ।

तत्र प्रथमा ॥

इन्द्रः पू॒र्भि॒दाति॑र॒द् दा॒स॒म॒र्कैर्वि॒दद्व॑ सु॒र्दय॑मा॒नो वि श॒त्रून्  
ब्रह्म॑जू॒तस्त॒न्वा वा॒वृ॒धानो॑ भू॒रि॒दात्र॑ आ॒पृ॒णाद् रो॒द॒सी  
उ॒भे ॥ १ ॥

इन्द्रः । पूःऽभित् । आ । अतिरत् । दासम् । अर्कैः । विदत्स्वसुः ।

दयमानः । वि । शत्रून् ।

ब्रह्मऽजूतः । तन्वा । वृ॒धानः । भूरि॒दात्रः । आ । अपृ॒णत् ।

रो॒द॒सी इति । उ॒भे इति ।

इन्द्रो देवः पू॒र्भित् शत्रु॑पुरां भेत्ता दासम् उपक्षपयितारं शत्रुम्  
अर्कैः अर्चनीयैः स्ववीर्यैः आतिरत् सर्वतो हिंसितवान् । सूर्या-  
त्मना वा अर्कैः अर्चनीयै रश्मिभिः दासम् तमसः क्षपयितारं  
वासरम् आतिरत् सर्वतो वर्धितवान् । प्रकाशितवान् इत्यर्थः ।  
किं कुर्वन् । विदद्वसुः लब्धधनः । शत्रुधनापहर्तेत्यर्थः । शत्रून्  
वृत्रादीन् वि दयमानः विशेषेण हिंसन् । ❀ तथा च यास्कः ।  
विदद्वसुर्दयमानो वि शत्रून् इति हिंसाकर्मा इति [नि० ४.१७] ❀ ।  
ब्रह्मजूतः ब्रह्मणा प्रभूतेन स्तोत्रेण अभिवृद्धः तन्वा शरीरेण ववृ-  
धानः वर्धमानः । ❀ वृधु वर्धने । कानचि रूपम् । संहितायाम्  
अभ्यासस्य “अन्येषामपि दृश्यते” इति दीर्घः ❀ । भूरिदात्रः ।  
दात्यनेन खण्डयति शत्रून् इति दात्रम् आयुधम् । प्रभूतायुध  
इत्यर्थः । यद्वा दीयत् इति दात्रं धनम् । बहुधनः । उक्तगुणविशिष्ट  
इन्द्रः उभे रोदसी उभे आवापृथिव्यौ आपृणत् । व्याप्नोद् इत्यर्थः ॥

इन्द्रदेव शत्रुओंके नगरोंका नाश करनेवाले हैं । इन्होंने गड़-



बड़ी डालने वाले शत्रुओंको अपने प्रशसनीय वीर्योंसे नष्ट कर डाला है । यह शत्रुओंके धनको पाने वाले हैं । और वृत्र आदि शत्रुओंको इन्होंने विशेषरूपसे नष्ट कर डाला है, इनका शरीर मन्त्रसे बढ़ जाता है, इनके पास शत्रुओंको नष्ट करनेवाले बहुत से आयुध हैं । ऐसे इन्द्रदेवने ध्रुलोक और पृथिवीलोक दोनोंको व्याप्त कर लिया है ॥ १ ॥

द्वितीया ॥

मखस्य ते तविषस्य प्र जूतिमियमि वाचममृताय भूषन्  
इन्द्रं क्षितीनामसि मानुषीणां विशां दैवीनामुत पूर्व-  
यावा ॥ २ ॥

मखस्य । ते । तविषस्य । प्र । जूतिम् । इयमि । वाचम् । अमृ-  
ताय । भूषन् ।

इन्द्र । क्षितीनाम् । असि । मानुषीणाम् । विशाम् । दैवीनाम् ।  
उत । पूर्वयावा ॥ २ ॥

हे इन्द्र मखस्य मंहनीयस्य मखात्मकस्य वा तविषस्य । तवः बलम् । अतिशयितबलस्य ते तव जूतिम् प्रेरयित्रीं वर्धयित्रीं वा वाचम् स्तुतिलक्षणां प्रेयमि प्रेरयामि । ❀ इयतिर्जुहोत्यादिः । “अतिपिपत्योश्च” इति अभ्यासस्य इत्त्वम् । “अभ्यासस्यासवर्णे” इति इयङ् आदेशः । पादादित्वाद् अनिघातः । “अभ्यस्तानाम् आदिः” इत्यानुदात्तः ❀ । किमर्थम् । अमृताय अमृतत्वाय अन्नाय वा । किं कुर्वन् । भूषन् त्वाम् अलङ्कुर्वन् । ❀ भूष अलंकारे । शतृप्रत्ययः ❀ । हे इन्द्र यस्माद् मानुषीणाम् मनुषः संबन्धिनीनां क्षितीनाम् प्रजानाम् उत अपि च दैवीनाम् देवसंबन्धिनीनां ।

नीनां विशाम् प्रजानां पूर्वयावा पुरोगन्तासि । सर्वेषां प्राणिनां  
श्रेष्ठो भवसीत्यर्थः । तस्माद् वाचम् इयमीति संबन्धः ॥

हे इन्द्रदेव ! मैं यज्ञस्वरूप परम-बली आपको बढ़ाने वाली  
वाणीको अन्नके लिये विभूषित करता हुआ उच्चारण करता  
हूँ । हे इन्द्र ! आप मनुष्योंकी और देवताओंकी प्रजाके आगे जाने  
वाले हैं । अर्थात् सबसे श्रेष्ठ हैं इस लिये मैं वाणीको प्रेरित  
करता हूँ ॥ २ ॥

तृतीया ॥

इन्द्रो वृत्रमवृणोच्छर्धनीतिः प्र मायिनाममिनाद् वर्ष-  
णीतिः ।

अहन् व्यसमुशधग् वनेष्वविधेना अकृणोद् राम्या-  
णाम् ॥ ३ ॥

इन्द्रः । वृत्रम् । अवृणोत् । शर्धेऽनीतिः । प्र । मायिनाम् । अमि-  
नात् । वर्षेऽनीतिः ।

अहन् । विऽअसम् । उशधक् । वनेषु । आविः । धेनाः । अकृ-  
णोत् । राम्याणाम् ॥ ३ ॥

इन्द्रो देवः शर्धनीतिः । शर्धः हिंसकं बलम् । ॐ अत्र अका-  
रान्तत्वं छान्दसम् ॐ । तस्य नीतिर्नयनं प्रापणं यस्य स तथोक्तः ।  
शत्रुं प्रति स्वबलप्रापक इत्यर्थः । तादृशः सन् वृत्रम् अपावरकं  
मेघं सर्वतो व्याप्नुवानम् असुरम् । ॐ वृत्रो मेघ इति नैरुक्ता-  
स्त्वाष्ट्रोसुर इत्यैतिहासिका इति निरुक्तम् [ नि० २. १६ ] ॐ ।  
तम् अवृणोत् अरुधत् । तथा स एव इन्द्रः वर्षनीतिः । वर्ष इति

रूपनाम । अत्र अकारान्तः । तस्य नेता । युद्धे शत्रुं प्रति स्वशरीर-  
प्रापक इत्यर्थः । अनेन तस्य गतम् अयत्नम् उक्तं भवति । तादृशः  
सन् मायिनाम् मायावताम् असुराणाम् अत्र सामर्थ्याद्बलानीति  
गम्यते । यद्वा । ❀ द्वितीयार्थे षष्ठी ❀ । मायिन इत्यर्थः । प्राप्ति-  
नात् प्रावधीत् । ❀ मीञ् हिंसायाम् । “मीनातेर्निगमे” इति  
ह्रस्वत्वम् ❀ । इन्द्रो वृत्रम् अवृणोत् इत्युक्तमेवार्थं विस्पष्टम् आह ।  
उशधक् कामयित्वा शत्रुदाहकः । यद्वा उशतां युद्धं कामयमानानां  
शत्रूणां दाहक इन्द्रः वनेषु उदकेषु निमित्तभूतेषु वृत्रम् आवरकं  
मेघं व्यंसम् विगतांसं यथा भवति तथा विदार्य अहन् अवधीत् ।  
ततो राम्याणाम् रमणीयानाम् अपाम् अर्थाय धेनाः । बाहूना-  
मैतत् । वाचः स्तनितानि आविरकृणोत् प्रकाशम् अकार्षीत् ॥  
वृत्रासुरपक्षे वनेषु आच्छन्नं वृत्रम् उशधक् सन् व्यंसम् विगतांसं  
कृत्वा अंसाद्यज्ञानि विच्छिद्य अहन् अवधीत् । राम्याणाम् रम-  
णार्हाणां क्रीडासाधनानां तद्योषिताम् । ❀ रामम् अर्हतीत्यर्थे  
“छन्दसि च” इति यत् प्रत्ययः । प्रत्ययस्वरेणान्तोदात्तः ❀ ।  
आर्तिवाच आविरकृणोद् इत्यर्थः । अथ वा राम्याणाम् क्रीडा-  
र्हाणां रात्रीणां संबन्धिनीर्धेनागाः । रात्रौ तमसा वृताः असुरा-  
पहृता गा इत्यर्थः । ताः आविरकृणोत् असुरान् अपहृत्य ताः  
स्पृष्टाश्चकार । असुरैर्देवानां गवादिलक्ष्णधनम् अपहृत्य रात्रि-  
प्रवेशस्तैत्तिरीयके । “अहर्देवानाम् आसीद् । रात्रिरसुराणाम् ।  
तेसुरा यद् देवानां वित्तं वेद्यम् आसीत् तेन सह रात्रिं प्राविशन्”  
इति [ तै० सं० १. ५. ६. २ ] ॥

इन्द्रदेव शत्रु पर अपने हिंसक बलको डाल देते हैं. ऐसे इन्द्रने  
वृत्र ( असुर वा आवरक मेघ ) को रोक लिया था और युद्धमें  
अपने शरीरको शत्रुकी ओर लोजाने वाले इन्द्रने मायावी असुरों  
को नष्ट कर डाला था, कामना करके शत्रुओंको नष्ट कर डालने



वाले इन्द्रने वनसे घिरे हुए वृत्रासुरको कंधों रहित करके नष्ट कर डाला था और क्रीड़ा करनेके योग्य रात्रियोंमें पणियोंकी हरी हुई गौओंको ( शत्रु संहार करके ) प्रकट कर दिया था ३ चतुर्थी ॥

इन्द्रः स्वर्षा जनयन्नहानि जिगायोशिग्भिः पृतना अभिष्टिः ।

प्रारोचयन्मनवे केतुमह्नामविन्दज्ज्योतिर्बृहते रणाय

इन्द्रः । स्वःऽसाः । जनयन् । अहानि । जिगाय । उशिक्ऽभिः ।

पृतनाः । अभिष्टिः ।

प्र । अरोचयत् । मनवे । केतुम् । अह्नाम् । अविन्दत् । ज्योतिः ।

बृहते । रणाय ॥ ४ ॥

स्वर्षाः स्वर्गस्य लम्भकः । ॐ षण्णु दाने । क्विप् । “जन-सनत्सनां सन्भ्रलोः” इति आत्वम् । “सनोतेरनः” इति षत्वम् । “अहरादीनां पत्यादिषूपसंख्यानम्” इति रत्वम् ॐ । अभिष्टिः अभिगन्ता शत्रूणाम् अभिभविता । ॐ इषु गतौ । “मन्त्रे वृष०” इत्यादिना क्तिन उदात्तत्वम् । स हि भावपरोपि भवितारं लक्षयति । “तितुत्रतथसि०” इत्यादिना इट्प्रतिषेधः । शकन्ध्वादित्वात् पररूपत्वम् । कुदुत्तरपदप्रकृतिस्वरः ॐ । तादृश इन्द्रः अहानि जनयन् प्रादुर्भावयन् तमोनिवर्तनेन युद्धानुकूलानि कुर्वन् उशिग्भिः युद्धं कामयमानैरसुरैः सह युद्धं कृत्वा पृतनाः तेषां सेना जिगाय अजैषीत् । किं च । मनवे मनुष्याय । जातावेकवचनम् । मनुष्येभ्यो यजमानेभ्यः बृहते मृहते रणाय रमणाय क्रीडनाय । प्रभूत-

वैदिकलौकिकव्यवहारायेत्यर्थः । तदर्थम् अह्नां केतुम् प्रज्ञापकम्  
आदित्यं प्रारोचयत् दिवि अदीपयत् । ततो ज्योतिः सर्वपदार्थ-  
प्रकाशकं तेजः अविन्दत् लब्धवान् ॥

स्वर्गको प्राप्त कराने वाले, शत्रुओंका अभिभव करने वाले  
इन्द्रदेवने दिनोंको प्रकट करके ( तमको दूर कर उनको युद्धके  
अनुकूल करके ) युद्धामिलायी असुरोंसे युद्ध कर उनकी सेनाको  
जीत लिया था और उन्होंने यजमान मनुष्योंके लौकिक वैदिक  
व्यवहारोंके लिये दिनके प्रज्ञापक आदित्यको अलोकमें दमका  
रक्खा है । इस प्रकार सर्वपदार्थप्रकाशक तेजको प्राप्त कर  
रक्खा है ॥ ४ ॥

पञ्चमी ॥

इन्द्रस्तुजो बर्हणा आ विवेश नृवद् दधानो नर्या पुरुणि  
अचेतयद् धियं इमा जरित्रे प्रेमं वर्णमतिरच्छुक्रमा-  
साम् ॥ ५ ॥

इन्द्रः । तुजः । बर्हणाः । आ । विवेश । नृवत् । दधानः ।  
नर्या । पुरुणि ।

अचेतयत् । धियः । इमाः । जरित्रे । प्र । इमम् । वर्णम् । अति-  
रत् । शुक्रम् । आसाम् ॥ ५ ॥

इन्द्रो देवः बर्हणाः अभिवृद्धाः तुजः हिंसिकाः शत्रुसेनाः ।  
❀ तुज हिंसायाम् । विवप् । धातुस्वरः ❀ । आ विवेश प्रावि-  
क्षत् । तत्र दृष्टान्तः । नृवत् मनुष्य इव स यथा शत्रुसेना युद्धार्थं  
प्रविशति तद्वत् । किं कुर्वन् । नर्या नर्याणि नरेभ्यः ऋत्विगादि-  
रूपेभ्यो मनुष्येभ्यो हितानि पुरुणि बहूनि । सामर्थ्याच्चत्रधना-

नीति गम्यते । दधानः धारयन् । ❀ दधातेः शानचि रूपम् ।  
 “अभ्यस्तानाम् आदिः” इति आद्यदात्तत्वम् ❀ । किं च इमाः  
 परिदृश्यमानाः प्रसिद्धा धियः । धीजनकत्वात् सर्वध्यायमान-  
 स्वाश्च धिय उषसः । धीशब्दस्य उषःपरत्वं मन्त्रान्तरे । “शुक्र-  
 वर्णामृदुं नो यंसते धियम्” इति [ ऋ० १४३. ७ ] । जरित्रे  
 स्तोत्रे स्तोतृणाम् अर्थाय अचेतयत् प्राज्ञापयत् । उषसि हि प्रबु-  
 द्धायां स्तोत्रशस्त्रादीनि प्रवर्तन्ते । उक्त एवार्थः प्रकारान्तरेण  
 उच्यते । आसां धियाम् उषसाम् इमं प्रसिद्धं शुक्रवर्णं प्रातिरत्  
 प्रावर्धयत् । ❀ आसाम् । “इदमोन्वादेशेशनुदात्तस्तीयादौ”  
 इति इदमः अश् आदेशः । सोऽप्यनुदात्तः । प्रत्ययश्च सुप्त्वाद्  
 अनुदात्तः । अतः सर्वानुदात्तम् आसाम् इति पदम् ❀ ॥

मनुष्य युद्ध करनेके लिये जिस प्रकार शत्रुसेनामें प्रवेश करता  
 है, तिसी प्रकार इन्द्रदेव भी ऋत्विज आदिरूप मनुष्योंके बहुत  
 से हितोंको और शत्रुधनोंको ग्रहण करनेके लिये बढ़ी हुई शत्रु-  
 सेनाओंमें घुस जाते हैं, और ( सबसे ध्यान करने योग्य इन धी  
 अर्थात् ) उषाओंको स्तोताओंके लिये प्रकट करते हैं [ उषःकाल  
 के होने पर ही स्तोत्र शस्त्र आदि स्तुतियाँ होती हैं, इसी बातको  
 बढ़ाते हैं कि—] इन उषाओंके शुक्रवर्णको इन्द्रदेव बढ़ाते हैं ॥५॥

षष्ठी ॥

महो महानि पनयन्त्यस्येन्द्रस्य कर्म सुकृता पुरुणि ।  
 वृजनेन वृजिनान्तसं पिपेष मायाभिर्दस्यूरभिभूत्योजाः ६

महः । महानि । पनयन्ति । अस्य । इन्द्रस्य । कर्म । सुकृता ।

पुरुणि ।



वृजनेन । वृजिनान् । सम् । पिपेष । मायाभिः । दस्यून् । अभि-  
भूतिऽओजाः ॥ ६ ॥

महः मंहनीयस्य महतो गुणैः प्रवृद्धस्य वा । ❀ मह पूजा-  
याम् । विवप् । “सावेकाचः०” इत्यादिना विभक्तेरुदात्तत्वम् ।  
महच्छब्दस्य वा । छान्दसः शतृप्रत्ययलोपः ❀ । अस्य प्रसिद्धस्य  
इन्द्रस्य महानि मंहनीयानि सुकृता सुकृतानि सुष्ठु संपादितानि  
पुरुषि बहूनि कर्म कर्माणि पनयन्ति स्तुवन्ति स्तोतारः । तेषु  
एकं कर्म अत्रोपवर्ण्यते । अभिभूत्योजाः अभिभूतिरभिभवः ।  
अभिभवित् ओजो बलं यस्य । अथ वा शब्दविभवे समर्थम्  
ओजो यस्य स तथोक्तः । ❀ अभिभूतिरभिभवनम् । भावे  
क्तिन् । “तादौ च निति०” इत्यभेः प्रकृतिस्वरत्वम् । अभि-  
भूतौ ओजः अस्येति “सप्तम्युपमानपूर्वपदस्य बहुव्रीहिः” इति  
समासः । बहुव्रीहौ पूर्वपदप्रकृतिस्वरः ❀ । तादृश इन्द्रो वृजनेन  
आवर्जकेन बलेन आयुधेन वा वृजिनान् पापरूपान् असुरान् सं-  
पिपेष सम्यक् चूर्णीकृतवान् । तथा मायाभिः स्वशक्तिभिः दस्यून्  
उपक्षपयितुं शत्रून् सं पिपेष ॥

इन पूजनीय इन्द्रदेवके प्रशंसनीय पूर्णरूपसे पूर्ण किये हुए  
बहुतसे कर्मोंकी स्तोता पुरुष स्तुति करते हैं । ( उनमेंका एक  
कर्म यहाँ वर्णन किया जाता है, कि- ) जिनमें शत्रुओंको दवाने  
की शक्ति है ऐसे इन्द्रने अपने आवर्जक आयुधसे पापरूप असुरों  
को भली प्रकार चूर्ण कर डाला है । तथा अपनी शक्तियोंसे  
क्षीण करने वालोंको पीस डाला है ॥ ६ ॥

सप्तमी ॥

युधेन्द्रो मूहा वरिवश्चकार देवेभ्यः सत्पतिश्चर्षणिप्राः ।

विवस्वतः सदने अस्य तानि विप्रा उक्थेभिः कवयो  
गृणन्ति ॥ ७ ॥

युधा । इन्द्रः । महा । वरिवः । चकार । देवेभ्यः । सत्पतिः ।  
चर्षणिष्ठाः ।

विवस्वतः । सदने । अस्य । तानि । विप्राः । उक्थेभिः । कवयः ।  
गृणन्ति ॥ ७ ॥

इन्द्रो देवः युधा युद्धेन । ॐ युध संपहारे । भावे संपदादि-  
लक्षणः क्विप् । “सावेकाचः०” इति विभक्तोरुदात्तता ॐ । महा  
स्वमहस्वेन । अन्यनैरपेक्ष्येत्यर्थः । देवेभ्यः । दीव्यतिरत्र स्तु-  
त्यर्थः । स्तोतृभ्यः तेषामर्थाय वरिवः । धननामैतत् । वरणीयं  
धनं चकार कृतवान् । ॐ वृञ् वरणे इत्यस्य यङ्लुकि रूपम् ।  
“ऋतश्च” इति अभ्यासस्य रिगागमः । तदन्ताद् अस्तुन् । बाहु-  
लकाटिलोपः । निस्स्वरः ॐ । इन्द्रो विशेष्यते । सत्पतिः सतां  
कर्मानुष्ठापिनां यजमानानां पालकः चर्षणिष्ठाः चर्षणयो मनुष्याः ।  
तेषाम् अभिमतफलपूरकः । कुत्र वरिवश्चकारेति उच्यते । विव-  
स्वतः । विवस्वान् आदित्यः । तस्य सदने स्थाने वृष्टिप्रतिबन्ध-  
कान् असुरान् पराजित्य वृष्टिलक्षणं धनं चकारेत्यर्थः । अथ वा  
एतद् उत्तरत्र संबध्यते । विवस्वतः विशेषेण अग्निहोत्रादिकर्मार्थं  
वसतो यजमानस्य सदने गृहे । ॐ विपूर्वाद् वस निवासे इत्य-  
स्मात् संपदादिलक्षणो भावे क्विप् । तद् अस्यास्तीति मतुप् ।  
“मादुपधायाः०” इत्यादिना तस्य वत्वम् । प्रत्ययस्य पित्वाद्  
अनुदात्तत्वे धातुस्वर एव । अवग्रहाभावश्चान्दसः ॐ । अस्य  
उक्तमहिमोपेतस्य इन्द्रस्य तानि प्रतिदानि वृत्रवधादिलक्षणानि  
कर्माणि विप्रा मेधाविन ऋत्विजः । कीदृशाः । कवयः क्रान्त-

मज्ञाः अनूचाना वा । “ये वा अनूचानास्ते कवयः” इति [ ऐ०  
ब्रा० २. २ ] श्रुतेः । उक्थेभिः । उक्थैः आज्यप्रउगादिशस्त्रैः  
गृणन्ति स्तुवन्ति ॥

इन्द्रदेवने किसी दूसरेकी अपेक्षा न रख अपनी ही महिमासे  
युद्ध करके स्तोताओंके लिये धनको किया है । यह इन्द्रदेव  
कर्मानुष्ठानी सज्जन यजमानोंके पालक हैं । मनुष्योंके अभिल-  
षित फलको देने वाले हैं । ( कहाँ ? ) विशेषरूपसे अग्निहोत्र  
आदि कर्मके लिये ही बसने वाले यजमानके घरमें ( यह उक्त  
फल करते हैं ) इन महिमावान् इन्द्रके वृत्रवध आदिक प्रसिद्ध  
कर्मोंका विद्वान् पुरुष उक्थोंसे गान करते हैं ॥ ७ ॥

अष्टमी ॥

सत्रासाहं वरेण्यं सहोदां ससर्वांसं स्वर्गपथं देवीः ।  
ससान यः पृथिवीं द्यामुतेमामिन्द्रं मदन्त्यनु धीरणासः ८  
सत्राऽसहम् । वरेण्यम् । सहऽदाम् । ससर्वांसम् । स्वर्गः । अपः ।  
च । देवीः ।

ससान । यः । पृथिवीम् । द्याम् । उत । इमाम् । इन्द्रम् । मदन्ति ।

अनु । धीरणासः ॥ ८ ॥

सत्रासाहम् । सह त्रायते स्वामिनम् इति सत्रा सेना । शत्रु-  
सेनाया अभिभवितारम् अथ वा सत्रासहम् एकप्रयत्नेनैव शत्रु-  
सेनाया अभिभवितारम् । ❀ वह वर्षणे । छान्दस उपधावृद्ध-  
भावः । कृदुत्तरपदप्रकृतिस्वरेण मध्योदात्तः ❀ । वरेण्यम् सर्वैः  
स्वस्वफलार्थिभिर्वरणीयं सेवनीयं सहोदाम् । सह इति बलनाम ।  
बलस्य दातारम् तथा स्वः स्वर्गस्य देवीः देवनशीला अपथ  
ससर्वांसम् । ❀ वन षण् संभक्तौ । अस्य क्वसौ इडभावे नका-



रलोपे रूपम् ॐ । एवंमहानुभावंम् इन्द्रं धीरणासः धीरणाः धीषु  
स्तुतिषु कर्मसु वा रणं रमणं येषां ते तथोक्ताः तादृशस्तोतारो  
यजमानाश्च इन्द्रम् अनु मदन्ति अनुक्रमेण हर्षयन्ति स्तुत्या हवि-  
रादिना च । इन्द्रमेव विशिनष्टि । य इन्द्रः पृथिवीम् विस्तीर्णां  
द्याम् दिवम् इमां पृथिवीं च द्यावापृथिव्यौ ससान देवेभ्यो मनुष्ये-  
भ्यश्च प्रादात् । तम् इन्द्रं मदन्तीति संबन्धः ॥

जो शत्रुसेनाको एक बार ही दबा देते हैं, सब फल चाहने  
वाले अपने २ लिये जिनका वरण करते हैं, जो बलदाता हैं, जो  
स्वर्गका और जलोंका सेवन करने वाले हैं, जिन इन्द्रदेवने इस  
विस्तीर्ण पृथिवीको और छलोकको देवता और मनुष्योंके लिये  
प्रदान किया है, ऐसे महानुभाव इन्द्रको स्तुतियोंमें रमण करने  
वाले स्तोता और यजमान स्तुति और हवि आदिसे प्रसन्न  
करते हैं ॥ ८ ॥

नवमी ॥

ससानात्याँ उत सूर्यं ससानेन्द्रः ससान पुरुभोजसं  
गाम् ।

हिरण्यमुतभोगं ससान हत्वी दस्यून् प्रार्यं वर्ण-  
मावत् ॥ ९ ॥

ससान । अत्यान् । उत । सूर्यम् । ससान । इन्द्रः । ससान । पुरु-

भोजसम् । गाम् ।

हिरण्यम् । उत । भोगम् । ससान । हत्वी । दस्यून् । प्र ।

आर्यम् । वर्णम् । आवत् ॥ ९ ॥

अत्यान् अतनार्हान् अश्वान् । उपलक्षणम् एतत् । तुरगग-

जोष्रादिकानि वाहनानि प्राणिनां व्यवहाराय इन्द्रो देवः ससान  
 प्रादात् । ❀ षण्णु दाने । लिटि रूपम् ❀ । उत अपिच सूर्यम्  
 सर्वस्य प्रकाशकं देवं प्राणिनां व्यवहारार्थं ससान । एवं पुरुभो-  
 जसम् पयोदध्यादिलक्षणबहुप्रकारभोगसाधनां बहुविधप्राणिभो-  
 गसाधनां वा गाम् । ❀ जातावेकवचनम् ❀ । गाः ससान ।  
 एतन्महिष्यादेरपि उपलक्षणम् । उत अपि च हिरण्ययम् हिरण्यमयं  
 हिरण्यविकारात्मकं भोगम् भोगसाधनं कटकमुकुटादिकं ससान ।  
 ❀ हिरण्यशब्दाद् विकारार्थे “मयड्वैतयोः०” इति विहितस्य  
 छन्दसि विषये “ऋत्व्यवास्त्व्यवास्त्वमाध्वीहिरण्ययानि छ-  
 न्दसि” इति निपातनाद् मयटो मकारलोपः । प्रत्ययस्वरः ❀ ।  
 किंच दस्यून् उपलपयितुं प्राणिविधातकान् असुरादीन् हत्वी  
 हत्वा । ❀ हन्तेः त्ववार्थे “स्नात्वाद्यश्च” इति निपातितः ❀ ।  
 आर्यम् उत्तमं वर्णं ब्राह्मणक्षत्रियवैश्यात्मकं यजनादिकर्माधिकार-  
 वन्तं प्रावत् प्रकर्षेण रक्षितवान् ॥

इन्द्रदेवने सदा गमन करने वाले घोड़े गज ऊँट आदिको  
 प्राणियोंके व्यवहारके लिये प्रदान किया है । और सर्वप्रकाशक  
 सूर्यदेवको भी प्राणियोंके व्यवहारके लिये प्रदान किया है ।  
 और घृत दुग्ध आदि बहुतसे रूपोंमें प्राणियोंके उपभोगकी साधन  
 गौ भैंस आदिको भी प्रदान किया है और सुवर्णके बने हुए  
 भोगसाधन मुकुट कंकण आदिको भी प्रदान किया है । और  
 प्राणियोंका संहार करने वाले असुरोंको मार कर इन्द्रदेवने यज्ञ  
 करनेके अधिकार वाले ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्य ( आर्य ) की  
 बड़ी भारी रक्षा की है ॥ ६ ॥

दशमी ॥

इन्द्र ओषधीरसनोदहानि वनस्पतीरसनोदन्तरिक्षम् ।  
 बिभेद बलं नुनुदे विवाचोथाभवद् दमिताभिकतूनाम् ।

इन्द्रः । ओषधीः । असनोत् । अहानि । वनस्पतीन् । असनोत् ।

अन्तरिक्षम् ।

विभेद । बलम् । नुनुदे । विवाचः । अथ । अभवत् । दमिता ।

अभिऽक्रतूनाम् ॥ १० ॥

उक्तमहिमोपेतः स एव इन्द्रः ओषधीः व्रीहियवादिका असनोत् प्राण्युपभोगार्थं सृष्ट्वा प्रादात् । तथा अहानि असनोत् दिवसान्यपि प्राण्युपभोगार्थं कल्पयित्वा प्रायच्छत् । एवं वनस्पतीन् तरुंश्चूतपनसाद्यान् असनोत् सृष्ट्वा प्रायच्छत् । एवम् अन्तरिक्षम् अन्तरा क्षान्तं भवति सर्वम् इत्यन्तरिक्षम् आकाशः । तदपि सर्वोपकारार्थम् असनोत् । किंच बलम् एतन्नामानम् असुरं विभेद अदारयत् । विवाचः विरुद्धा प्रतिकूला वाग् येषां ते विवाचः । तानपि नुनुदे दूरं निराचकार । अथ अनन्तरम् अभिऽक्रतूनाम् । क्रतवः कर्माणि । अभिगतकर्मणाम् अनुष्ठितविरुद्धकर्मणां दुष्टानां दमिता शमयिता अभवत् अभूत् । अनेन प्राणिनाम् इष्टप्राप्तिम् अनिष्टपरिहारं च कृतवान् इत्युक्तं भवति ॥

पूर्वोक्त महिमा वाले इन्द्रदेवने ही व्रीहि यव आदि औषधियों को प्राणियोंके भोगके लिये रच कर प्राणियोंको प्रदान किया है । दिनोंको भी प्राणियोंके उपभोगके लिये रच कर प्रदान किया है आस्र आदि वनस्पतियोंको भी रच कर प्रदान किया है । और अन्तरिक्षको भी सबके उपकारके लिये दिया है । और शक्रने बलासुरको विदीर्ण कर डाला था और विरुद्ध बोलने वालोंको भी तिरस्कृत कर दिया था और विरुद्ध कर्मोंका अनुष्ठान करने वालोंको भी शमन कर दिया था । [ इससे यह कहा है, कि-शक्रने प्राणियोंकी इष्टप्राप्ति और अनिष्टपरिहार किया है ] ॥



एकादशी ॥

शुनं हुवेम मघवानमिन्द्रमस्मिन् भरे नृतमं वाजसातौ ।  
शृण्वन्तमुग्रमूतये समत्सु घ्नन्तं वृत्राणि संजितं  
धनानाम् ॥ ११ ॥

शुनम् । हुवेम । मघवानम् । इन्द्रम् । अस्मिन् । भरे । नृतमम् ।  
वाजसातौ ।

शृण्वन्तम् । उग्रम् । ऊतये । समत्सु । घ्नन्तम् । वृत्राणि । सम्-  
जितम् । धनानाम् ॥ ११ ॥

शुनम् शुनम् अभिवृद्धं सर्वैर्गुणैरुत्कृष्टम् । अथ वा शुनम्  
इति सुखनाम । सुखकरं वा । ॐ दुग्धोशिव गतिवृद्धयोः । निष्ठायां  
“यस्य विभाषा” इति इट्प्रतिषेधः । यजादित्वात् संप्रसारणम् ।  
दीर्घाभावश्चान्दसः । “ओदितश्च” इति निष्ठानत्वम् । प्रत्यय-  
स्वरः ॐ । मघवानम् । मघम् इति धननाम । धनवन्तम् अस्मिन्  
एतस्मिन् भरे । भर इति संग्रामनाम भरणात् हरणाच्च । संग्रामे ।  
यद्वा ये ये संग्रामनामानस्ते सर्वे यज्ञनामान इति व्यपदेशाद् अस्मिन्  
भरे अस्मिन् यज्ञे वाजसातौ । वाजः अन्नम् । तस्य सातिर्लाभः  
अन्नलाभे निमित्तभूते । अथ वा एतद् भरविशेषणम् । वाजस्य  
सातिर्यस्मिन् तस्मिन् भरे नृतमम् नेतृतमं संग्रामे पुरतो गन्तारं  
यज्ञस्य नेतारं वा शृण्वन्तम् आह्वानस्य श्रोतारम् उग्रम् उद्गूर्ण-  
बलं समत्सु संग्रामेषु वृत्राणि आवरकान् शत्रून् घ्नन्तम् हिंसन्तं  
धनानाम् शत्रुसंबन्धिनां संजितम् सम्यग्जेतारम् एवंमहानुभावम्  
इन्द्रम् ऊतये रक्षणाय हुवेम आह्वयेम ॥

इति एकादशं सूक्तम् ॥

सुखदायक धनवान् इन्द्रको हम इस संग्राममें बुलाते हैं ( वा इस यज्ञमें बुलाते हैं ) हम जिसमें अन्नकी प्राप्ति होती है उस संग्राम ( वा यज्ञ ) में आह्वानको सुनने वाले प्रचण्ड बली इन्द्र को रक्षाके लिये बुलाते हैं । संग्रामोंमें शत्रुओंका नाश करने वाले और धनोंको भली प्रकार जीतने वाले इन्द्रदेवको बुलाते हैं ११

प्रथम अनुवाकमें एकादश सूक्त समाप्त ( ६२७ ) ॥

“उदु ब्रह्माणि” इति सूक्तस्य विनियोग उक्तः ॥

“उदु ब्रह्माणि” इस सूक्तका विनियोग कह दिया है ।

तत्र प्रथमा ॥

उदु ब्रह्माण्यैरत श्रवस्येन्द्रं समर्ये महया वसिष्ठ ।

आ यो विश्वानि शवसा ततानोपश्रोता म ईवतो  
वचांसि ॥ १ ॥

उत् । ऊं इति । ब्रह्माणि । ऐरत । श्रवस्या । इन्द्रम् । सऽमर्ये ।  
महय । वसिष्ठः ।

आ । यः । विश्वानि । शवसा । ततान । उपऽश्रोता । मे ।

ईवतः । वचांसि ॥ १ ॥

हे ऋत्विजः यूयं श्रवस्या श्रवस्यया । श्रयत इति श्रवः अन्नम् । तस्येच्छया ब्रह्माणि स्तोत्राणि उदैरत प्रेरयत । हे वसिष्ठ यजमान समर्ये मर्यैर्मर्त्यैर्ऋत्विग्भिः सहिते । यद्वा मर्या मर्यादा । तत्सहिते यज्ञे इन्द्रं देवं महय पूजय । हविरादिभिः साधनैरिति शेषः । एवम् आत्मानमेव परोक्षीकृत्य निर्दिदेश । य इन्द्रः शवसा बलेन विश्वानि भूतजातानि आ ततान वितस्तात्र । स इन्द्रः ईवतः गच्छतः परिचरतः । ॐ ईङ् गतौ । विवप् । ईर्गमनम् । “तदस्यास्त्य-

स्मिन्०” इति मतुप् । “छन्दसीरः” इति मतुपो वत्वम् । मतुपः  
पिच्चाद् अनुदात्तत्वे धातुस्वरः ॐ । तादृशस्य मे वचांसिस्तुति-  
रूपाणि वाक्यानि उपश्रोता उपेत्य श्रोता । भवत्विति शेषः ॥

हे ऋत्विजों ! तुम अन्नकी इच्छासे मन्त्रोंका ( स्तोत्रोंका )  
उच्चारण करो । हे इन्द्रियोंको वशमें रखने वाले यजमान ! आप  
मर्त्यधर्मी ऋत्विजोंसे सम्पन्न यज्ञमें इन्द्रदेवकी हवि आदिसे पूजा  
करिये । जिन इन्द्रदेवने अपने बलसे सब प्राणियोंको विस्तृत किया  
है वह इन्द्र हम सेवा करने वालोंके स्तुतिरूप वाक्योंको सुने ॥१॥

द्वितीया ॥

अयामि घोषं इन्द्र देवजामिरिज्यन्त यच्छुरुधो

विवाचि ।

नहि स्वमायुश्चिकिते जनेषु तानीदं ह्यस्यति पर्ष्यस्मान्

अयामि । घोषः । इन्द्र । देवजामिः । इरज्यन्त । यत् । शुरुधः ।

विवाचि ।

नहि । स्वम् । आयुः । चिकिते । जनेषु । तानि । इत् । अंहांसि । अति ।

पर्षि । अस्मान् ॥ २ ॥

हे इन्द्र देवजामिः देवा जामयो बन्धवो यस्य स तादृशो घोषः  
शब्दः उक्तलक्षणं स्तोत्रम् अयामि । अकारीत्यर्थः । ॐ यम  
उपरमे । कर्मणि चिण् ॐ । यत् यस्मात् कारणाद् विवाचि विग-  
तवचसि नियमस्थे । अथ वा त्रिविधा मन्त्ररूपा वाचो यस्य तादृशो  
यजमाने तस्मिन्निमित्तभूते सति शुरुधः शुचं रुन्धन्तीति शुरुधः ।  
ॐ ककारलोपश्छान्दसः ॐ । जनिमृतातलक्षणशोकनिवर्तकाः  
स्वर्गफलकाः सोमा इरज्यन्त अवर्धन्त । ॐ इरज् ईर्ष्यायाम् इति



धातुरत्र वृद्धयर्थः । अस्मात् कण्ड्वादर्थक् । सनादित्वाद् धातु-  
संज्ञायाम् अस्माल्लङ् । “बहुलं छन्दसि” इति अडभावः ! एका-  
देशस्वरेण मध्योदात्तः ॐ । एवं स्तोत्रेण हविषा च इन्द्रं परि-  
तोष्य अथ स्वाभिमतं याचते नहीत्यादिना । जनेषु मनुष्येषु ।  
मनुष्याणाम् इत्यर्थः । यद्वा जनाः जननात् जन्मानि निमित्तभू-  
तानि । तेषु सत्सु अयं जनो यजमानः स्वम् स्वकीयम् आयुः  
आयुष्यं न चिकित्ते न ज्ञातवान् । एतावद् आयुष्यं ममास्तीति न  
जानातीत्यर्थः । अतस्त्वदीययागाद्यनुष्ठानोपयोगार्थं दीर्घम् आयुः  
प्रयच्छेति शेषः । क्लृप्तस्य शतसंवत्सरलक्षणस्यायुषोऽन्धीभावे  
अंहसां कारणत्वात् तदसंस्पर्शं प्रार्थयते । तानीत् तान्यपि आयुः  
क्षपणहेतुत्वेन प्रसिद्धान्यपि अंहांसि पापानि अस्मान् त्वां संभ-  
जमानान् अति अतिक्रम्य पर्वि पालय ॥

हे इन्द्रदेव ! मैं देवता जिसके बंधु हैं ऐसे घोष ( स्तोत्र ) का  
उच्चारण करता हूँ, क्योंकि—इससे अनेक प्रकारकी मंत्ररूपा वाणियों  
से सम्पन्न यजमानके निमित्त जन्ममरणकी निवृत्तिरूप स्वर्गफल-  
प्रद सोम ( याग ) बढ़ते हैं [ इस प्रकार स्तोत्र और हविसे इन्द्र  
को संतुष्ट करके अपने अभिमत फलकी याचना करते हैं, कि—]  
मनुष्योंमें रहता हुआ यह यजमान मेरी इतनी आयु है, इस बात  
को नहीं जानता है । अतः आप इसको अपने यागके अनुष्ठानकी  
उपयोगी आयुः प्रदान करिये । [ पापोंके ही कारण सौ वर्षकी  
पूर्ण आयुसे कम आयु होती है अतः पापोंसे शुन्य रहनेकी प्रार्थना  
करते हैं, कि—] आयुका नाश करनेमें प्रसिद्ध जो पाप हैं आप  
अपना सेवन करने वालोंको उन पापोंसे दूर रखतेहुए पालन करिये

तृतीया ॥

युजे रथं गवेषणं हरिभ्यामुप ब्रह्माणि जुजुषाणमस्थुः ।

विबाधिष्ट स्य रोदसी महित्वेन्द्रो वृत्रायप्रती जघ-  
नवान् ॥ ३ ॥

युजे । रथम् । गोऽएषणम् । हरिऽभ्याम् । उप । ब्रह्माणि ।  
जुजुषाणम् । अस्थुः ।

वि । बाधिष्ट । स्यः । रोदसी इति । महिऽत्वा । इन्द्रः । वृत्राणि ।  
अप्रति । जघनवान् ॥ ३ ॥

य इन्द्रो गवेषणम् गवां प्रापयितारं रथम् । ❀ “अवङ् स्फो-  
टायनस्य” इति अवङ् आदेशः ❀ । हरिभ्याम् । हरी इन्द्रस्या-  
साधारणावश्वौ । ताभ्यां युजे युयुजे युनक्ति । यागसदनं प्राप्तुम्  
इति शेषः । ब्रह्माणि अस्मदीयानि प्रवृद्धानि स्तोत्रायपि जुजु-  
षाणम् सेवमानं सर्वैः सेव्यमानं वा इन्द्रम् उपास्थुः उपतिष्ठन्ते  
सेवन्ते । स्यः स इन्द्रः महित्वा स्वमहत्त्वेन रोदसी द्यावापृथिव्यौ  
वि बाधिष्ट व्यबाधिष्ट । आचक्रामेत्यर्थः । किं च वृत्राणि स्वाव-  
रकान् शत्रून् अप्रति न विद्यते प्रतिगतिः पुनःप्राप्तिर्यस्मिन् कर्मणि  
तद् अप्रति । तद् यथा भवति तथा जघनवान् नाशितवान् ।  
❀ हन्तेऽतिटः क्वसुः । अभ्यासस्य कुत्वम् । “विभाषा गमहन०”  
इति इडभावः ❀ ॥

इन्द्रदेव गौओंको प्राप्त कराने वाले अपने रथमें अपने असा-  
धारण अश्व हरी नामक घोड़ोंको यागगृहमें आनेके लिये जोतते  
हैं । और हमारे स्तोत्र भी सर्वोंसे सेवनीय इन्द्रकी ही सेवा करते  
हैं । इन इन्द्रदेवने अपनी महिमासे द्यावापृथिवीको दबा रक्खा  
है । और इन इन्द्रदेवने अपने शत्रुओंको जिस प्रकार उन परफिर  
न जाना पड़े, इस प्रकार नष्ट कर डाला है ॥ ३ ॥

चतुर्थी ॥

आपंश्चित् पिप्यु स्तर्यो न गावो नक्षन्नृतं जरि-  
तारस्त इन्द्र ।

याहि वायुर्न नियुतो नो अच्छा त्वं हि धीभिर्दयसे  
वि वाजान् ॥ ४ ॥

आपः । चित् । पिप्युः । स्तर्यः । न । गावः । नक्षन् । ऋतम् ।  
जरितारः । ते । इन्द्र ।

याहि । वायुः । न । नियुतः । न । अच्छ । त्वम् । हि । धीभिः ।  
दयसे । वि । वाजान् ॥ ४ ॥

हे इन्द्र आपश्चित् आपोपि सोमाभिषवार्थाः स्तर्यो न गावः  
स्तर्यो वशा गाव इव पिप्युः अभिवृद्धा आसन् । ❀ प्यायी वृद्धौ ।  
“प्यागः पी” इति पीभावः ❀ । हे इन्द्र ते तव जरितारः स्तो-  
तार ऋत्विजः ऋतम् सत्यफलं यज्ञं नक्षन् प्राप्तुवन् । ❀ नक्ष  
गतौ ❀ । यत एवम् अतो नः अस्माकं नियुतः नियोजनानि स्तो-  
त्राणि अच्छ लक्ष्मीकृत्य याहि आगच्छ । तत्र दृष्टान्तः । वायुर्न  
नियुतः । नियुतो वायोरश्वाः । वायुर्देवो यथा स्वीयान् अश्वान्  
प्रति याति यज्ञदेशप्राप्त्यर्थम् तद्वत् । त्वं हि त्वं खलु धीभिः कर्म-  
भिस्तुष्टः सन् वाजान् । वाजः अन्नम् । अन्नानि वि दयसे ।  
❀ दयतिरत्र दानार्थः ❀ । प्रयच्छसि ॥

हे इन्द्र ! ये सोमके अभिषवके जल वशा गौ आदिकी समान  
बढ़ गए हैं और हे इन्द्र ! आपकी स्तुति करने वाले ऋत्विज  
सत्यफल वाले यज्ञमें आगए हैं, इस कारण आप हमारे स्तोत्रों



को ध्यानमें रख कर यज्ञभूमिमें इस प्रकार आइये जिस प्रकार वायुदेव यागमें जानेके लिये अपने नियुक्त नानक घोड़ोंकी ओर जाते हैं । आप कर्मोंसे सन्तुष्ट होकर अन्न प्रदान करते हैं ॥४॥

पञ्चमी ॥

ते त्वा मदा इन्द्र मादयन्तु शुष्मिणं तुविराधसं जरित्रे  
एको देवत्रा दयसे हि मर्तानस्मिन्धूर सवने मादयस्व

ते । त्वा । मदाः । इन्द्र । मादयन्तु । शुष्मिणम् । तुविऽराधसम् ।  
जरित्रे ।

एकः । देवऽत्रा । दयसे । हि । मर्तान् । अस्मिन् । धूर । सवने ।  
मादयस्व ॥ ५ ॥

हे इन्द्र ते अभिषवादिना संस्कृताः प्रसिद्धा मदा मदकराः सोमास्त्वा त्वाम् मादयन्तु मदयुक्तं कुर्वन्तु । कीदृशं त्वाम् । शुष्मिणम् बलवन्तं जरित्रे स्तोत्रे स्तोतुरर्थाय तुविराधसम् प्रभूतधनम् । किं च त्वं देवत्रा देवेषु मध्ये । ❀ “देवमनुष्य०” इत्यादिना सप्तम्यर्थे आप्रत्ययः ❀ । त्वम् एक एव मर्तान् मनुष्यान् दयसे हि दयां करोषि रक्षसि खलु । ❀ हिशब्दयोगाद् अनिघातः ❀ । मनुष्यरक्षणे त्वम् एक एव नान्यो देव इत्यर्थः । यस्माद् एवं तस्मात् हे धूर शौर्योपेत इन्द्र अस्मिन् सवने यागे माध्यंदिनसवने वा मादयस्व अभिमतप्रदानेन अस्मान् हर्षय स्वात्मानं वा सोमपानेन हर्षय ॥

हे इन्द्रदेव ! अभिषव आदिसे संस्कृत मद करने वाले सोम आपको हर्षित करें, आप बलवान् हैं, और स्तुति करने वालोंके लिये आपके पास बहुतसा धन है, और देवताओंमें आप एक

ही मनुष्यों पर दया करते हैं—उनकी रक्षा करते हैं । इस कारण है शूरतासम्पन्न शक्र ! आप इस माध्यन्दिनसवनमें अभिलषित फल देकर हमको हर्षित करिये ॥ ५ ॥

षष्ठी ॥

एवेदिन्द्रं वृषणं वज्रबाहुं वसिष्ठासो अभ्यर्चन्त्यर्कैः ।  
स न स्तुतो वीरवद् धातुगोमद्यूयं पात स्वस्तिभिः  
सदा नः ॥ ६ ॥

एव । इत् । इन्द्रम् । वृषणम् । वज्रऽबाहुम् । वसिष्ठासः । अभि ।  
अर्चन्ति । अर्कैः ।

सः । नः । स्तुतः । वीरऽवत् । धातु । गोऽमत् । यूयम् । पात ।  
स्वस्तिऽभिः । सदा । नः ॥ ६ ॥

उक्तां स्तुतिम् उपसंहरति । एव एवम् उक्तप्रकारेण वृषणम् वर्षकं कामानां वज्रबाहुम् वज्रं बाहौ यस्य स तादृशम् इन्द्रं वसिष्ठासः वसिष्ठा अर्कैः अर्चनीयैः स्तोत्रैः अभ्यर्चन्ति अभिपूजयन्ति । स इन्द्रः स्तुतः स्तोत्रैः पूजितः सन् नः अस्मभ्यं वीरवत् बहुभिर्वीरैः पुत्रादिभिरुपेतं गोमत् बह्वीभिर्गोभिरुपेतं धनं धातु दधातु प्रयच्छतु । ❀ “बहुलं छन्दसि” इति श्लोरभावः ❀ । हे देवा यूयं च इन्द्रम् अनुसृत्य नः अस्मान् स्वस्तिभिः क्षेमैः सदा पात रक्षत ॥

[ अब इस स्तुतिका उपसंहार करते हैं, कि—] इस प्रकार कामनाओंकी वर्षा करने वाले, हाथमें वज्रको धारण करने वाले शक्रकी इन्द्रियोंको दमन करने वाले पुरुष स्तोत्रोंसे स्तुति करते हैं । स्तोत्रोंसे पूजित होते हुए इन्द्रदेव हमको बहुतसे पुत्र आदि

वीरों वाला, बहुतसी गौओं वाला धन प्रदान करें । और हे देवताओं ! तुम भी इन्द्रकी ओर ध्यान देकर हमारी रक्षा करो ६

पञ्चमी ॥

ऋजीषी वज्री वृषभस्तुराषादशुष्मी राजा वृत्रहा सोम-  
पावा ।

युक्त्वा हरिभ्यामुप यासदर्वाङ् माध्यंदिने सवने  
मत्सदिन्द्रः ॥ ७ ॥

ऋजीषी । वज्री । वृषभः । तुराषाट् । शुष्मी । राजा । वृत्रहा ।  
सोमऽपावा ।

युक्त्वा । हरिऽभ्याम् । उप । यासत् । अर्वाङ् । माध्यंदिने । सवने ।  
मत्सत् । इन्द्रः ॥ ७ ॥

ऋजीषी प्रातर्माध्यंदिनसवनाभ्याम् अभिषवेण गतसारस्तृतीयसवन उपयोच्यमाणः सोम ऋजीषः । “तस्मात् तृतीयसवन ऋजीषम् अभिषुएवन्ति” इति [ तै० सं० १. ६. ४ ] श्रुतेः । तद्वान् ऋजीषी । अनेन सवनत्रयेपि इन्द्रस्य सोमसम्बन्ध उक्तो भवति । वज्री वज्रवान् वृषभः कामानां वर्षिता तुराषाट् । तुरास्त्वरमाणाः शत्रवः । तेषाम् अभिभविता शुष्मी । शुष्मं शत्रुशोषकं बलम् । तद्वान् राजा देवेषु मध्ये क्षत्रियजातीयः सर्वस्य स्वामी वा वृत्रहा वृत्रस्य हन्ता सोमपावा यत्रयत्र सोमाभिषवोस्ति तत्र तत्र नियमेन सोमस्य पाता एवमहानुभाव इन्द्रः हरिभ्याम् अश्वाभ्यां युक्त्वा रथं योजयित्वा अर्वाङ् अस्मदभिमुखाञ्चनः सन् उप



यासत् उपांगच्छतु गत्वा च अस्मिन् माध्यंदिने सवने मत्सत् अस्मा-  
भिर्दत्तेन सोमेन माद्यतु ॥

इति द्वादशं सूक्तम् ॥

[ प्रातःसवन और माध्यन्दिन सवनोंके द्वारा अभिषवसे गत-  
सार तृतीय सवनमें उपयोगमें लाया जाने वाला सोम ऋजीष  
कहलाता है । तैत्तिरीयसंहिता ६ । १ । ६ । ४ की श्रुतिमें कहा  
है, कि—“तस्मात् तृतीयसवन ऋजीषम् अभिषुण्वन्ति ।—इस  
लिये तृतीयसवनमें ऋजीषका अभिषव करते हैं” ऐसे ऋजीष  
भाग वाले ] ऋजीषी [ इससे तीनों सवनोंमें इन्द्रका सोमसंबंध  
बता दिया ] वज्रधारी, कामनाओंकी वर्षा करने वाले, त्वरा  
करने वाले शत्रुओंको दवाने वाले, शत्रुशोषक बलसे सम्पन्न,  
देवताओंमें राजा, वृत्रासुरका संहार करने वाले, और जहाँ कहीं  
सोमका अभिषव हो तहाँ नियमपूर्वक सोमका पान करने वाले  
इन्द्रदेव अपने हरि नामक अश्वोंसे रथको जोत कर हमारे अभि-  
मुख आवें और माध्यंदिनसवनमें हमारे दिये हुए सोमसे प्रसन्न  
होवें ॥ ७ ॥

प्रथम अनुवाकमें द्वादश सूक्त समाप्त ( ६२८ ) ॥

ज्योतिष्टोमादिषु क्रतुषु “इन्द्रश्च सोमं पिबतं बृहस्पते” इत्याद्या-  
स्तिस्र ऋचस्तेषामेव त्विजां त्रयाणां क्रमेण तार्तीयसवनिक्यः प्र-  
स्थितयाज्याः । सूत्रितं हि । “इन्द्रश्च सोमं पिबतं बृहस्पत इति  
प्रस्थितयाज्याः” इति [ वै० ३. १२ ] ॥

“ऐभिरग्ने” [ ४ ] इत्यनया आग्नीध्रः पात्नीवतग्रहं यजेत ।  
सूत्रितं हि । “ऐभिरग्ने इत्युपांशु पात्नीवतस्य आग्नीध्रो यजति”  
इति [ वै० ३. १३ ] ॥

ज्योतिष्टोम आदि क्रतुओंमें “इन्द्रश्च सोमं पिबतं बृहस्पते”  
इत्यादि तीन ऋचाएँ इन ही तीन ऋत्विजोंकी क्रमशः तार्तीय-

सवनिकी प्रस्थितयाज्या है । सूत्रमें भी कहा है, कि—“इन्द्रश्च सोमं पिबतं बृहस्पते इति प्रस्थितयाज्याः” ( वैतानसूत्र ३ । १२ ) ॥

“ऐभिरग्ने” इस चौथी ऋचासे आग्नीध्र पात्नीवतग्रहका यजन करे । इस विषयमें वैतानसूत्र ३ । १३ का प्रमाण है, कि—“ऐभिरग्ने इत्युपांशु पात्नीवतस्य आग्नीध्रो यजति” ।

तत्र प्रथमा ॥

इन्द्रश्च सोमं पिबतं बृहस्पतेस्मिन् यज्ञे मन्दसाना  
वृषणवसू ।

आ वां विशन्तिवन्दवः स्वाभुवोस्मे रयिं सर्ववीरं नि  
यच्छतम् ॥ १ ॥

इन्द्रः । च । सोमम् । पिबतम् । बृहस्पते । अस्मिन् । यज्ञे । मन्द-  
साना । वृषणवसू इति वृषणवसू ।

आ । वाम् । विशन्तु । इन्द्रवः । सुऽआभुवः । अस्मे इति । रयिम् ।  
सर्वऽवीरम् । नि । यच्छतम् ॥ १ ॥

हे बृहस्पते बृहतो वेदराशोः स्वामिन् एतन्नामकदेव त्वम् इन्द्रश्च युवां सोमं पिबतम् । कीदृशौ युवाम् । अस्मिन् यज्ञे मन्दसाना हृष्यन्तौ वृषणवसू वर्षितधनौ । यजमानाय दीयमानधनावित्यर्थः । वाम् युवां स्वाभुवः सुष्ठु सर्वतो भवन्तः । कृत्स्नशरीरव्यापन-समर्था इत्यर्थः । तादृशा इन्द्रवः सोमाः आ विशन्तु युवयोः शरीरं प्रविशन्तु । अस्मे अस्मभ्यं रयिम् धनं सर्ववीरम् सर्वपुत्रायुपेतं नि यच्छतम् दत्तम् ॥

हे बृहत् वेदराशिके स्वामी बृहस्पति नामक देव ! आप और

इन्द्रदेव दोनों सोमका पान करिये । आप इस यज्ञमें हर्षमें भरे हुए हैं । और यजमानके लिये धन प्रदान करने वाले हैं, ऐसे आप दोनोंके शरीरोंमें सम्पूर्ण शरीरमें व्याप्त होसकने वाले सोम प्रवेश करें । और हमारे लिये आप पुत्र आदि सब वीर्यसे उत्पन्न होने वालों सहित धन दीजिये ॥ १ ॥

द्वितीया ॥

आ वो वहन्तु सप्तयो रघुष्यदो रघुपत्वानः प्र जिगात  
बाहुभिः ।

सीदता बर्हिरुरु वः सदस्कृतं मादयध्वं मरुतो मध्वो  
अन्धसः ॥ २ ॥

आ । वः । वहन्तु । सप्तयः । रघुऽस्यदः । रघुऽपत्वानः । प्र ।  
जिगात् । बाहुऽभिः ।

सीदत । आ । बर्हिः । उरु । वः । सदः । कृतम् । मादयध्वम् । मरुतः ।  
मध्वः । अन्धसः ॥ २ ॥

हे मरुतः रघुष्यदः लघुस्यन्दना लघुगतयः सप्तयः सर्पणशीला अश्वाः वः युष्मान् आ वहन्तु यज्ञगृहं प्रति प्रापयन्तु । यूयं च बाहुभिः शीघ्रगमनसाधनै रघुपत्वानः लघुपतनाः । ❀ पत्नृ गतौ । “अन्येभ्योपि दृश्यन्ते”, इति वनिप् । कृदुत्तरपदप्रकृतिस्वरेण प्रत्ययस्य पित्वाद् धातुस्वर एव ❀ । तादृशः सन्तः प्र जिगात प्रकर्षेण गच्छत । ❀ जिगातीत्ययं गतिकर्मसु पाठितः । गा स्तुतौ । जौहोत्यादिकः । लोएमध्यमबहुवचनस्य “तप्तन०” इत्यादिना तवादेशः । तस्य पित्त्वेन कित्वाभावाद् “ई हन्यघोः” इति ईत्वा-



भावः ॐ । वः युष्माकम् उरु विस्तीर्णं सदः सीदत्यत्रेति सदः  
सदनं स्थानं वेदिलक्षणं कृतम् निष्पादितम् । तत्र बर्हिः आस्तीर्णं  
बर्हिः सीदत बर्हिषि निषण्णा भवत । बर्हिरित्येतत् सद इत्यस्य  
विशेषणं वा । बर्हिरूपेतं सदनम् इत्यर्थः । अथ वा सदः सदनार्हं  
कृतं बर्हिः सीदतेति योज्यम् । निषद्य च मध्वः मधुरस्य अन्धसः  
सोमलक्षणस्य अन्नस्य अंशम् । यद्वा मध्वः मधु अन्धसः अन्नं  
सोमम् । पीत्वेति शेषः । मादयध्वम् तृप्ता भवत । ॐ मद तृप्ति-  
योगे । चुरादिः । आत्मनेपदी ॐ ॥

हे मरुत् देवताओं ! शीघ्रतासे चलने वाले, सर्पणशील घोड़े  
तुमको यज्ञगृहमें लावें, तुम भी शीघ्रगमनकी साधन भुजाओंसे  
शीघ्रतासे चलते हुए आओ । आपके लिये विशाल वेदीरूप  
स्थान बना दिया गया है । तहाँ कुशा विद्यादी गई है उस कुशा-  
सन पर तुम बैठो और बैठकर मधुररस वाले सोमके अंशका पान  
करके तृप्त होओ ॥ २ ॥

तृतीया ॥

इ॒मं स्तो॒मम॑र्ह॒ते जा॒तवे॑द॒से रथ॑मि॒व सं म॑हे॒मा मनी॑षया ।  
भ॒द्रा हि नः॑ प्र॒मति॑रस्य सं॒सद्य॑मे स॒ख्ये मा रि॑षामा  
व॒यं तव॑ ॥ ३ ॥

इ॒मम् । स्तो॒मम् । अ॒र्ह॒ते । जा॒तवे॑द॒से । रथ॑म् इ॒व । स॒म् । म॒हे॒म ।  
मनी॑षया ।

भ॒द्रा । हि । नः॑ । प्र॒मतिः॑ । अ॒स्य । स॒म् । स॒दि । अ॒ग्ने । स॒ख्ये ।  
मा । रि॒षाम् । व॒यम् । तव॑ ॥ ३ ॥

अर्हते पूज्याय । ॐ अर्ह प्रशंसायाम् इति धातोः लटः शत्रा-

देशः ॐ । जातवेदसे जातप्रज्ञाय जातधनाय वा जातानाम् उत्प-  
न्नानां वेदिने वा इमम् इदानीं क्रियमाणं स्तोमम् एतत् स्तोत्रं  
मनीषया निशितया बुद्ध्या सं महेम सम्यक् पूजयेम निष्पादयेम ।  
तत्र दृष्टान्तः । रथमिव यथा रथं रथकारः अक्षफलकाद्यवयवसं-  
योजनेन संस्करोति तद्वत् । महानुभावस्याग्नेः स्तोमनिष्पादने अति-  
शयितया बुद्ध्या भवितव्यम् इति प्राप्तं तत्सद्भाव दर्शयति । अस्य  
पूज्यस्याग्नेः संसदि संसदने उपसत्तौ तद्विषये नः अस्माकं प्रभृतिः  
प्रकृष्टा मतिः भद्रा हि कल्याणी खलु । अतः हे अग्ने तव सख्ये  
बन्धुभावे सति वयं स्तोतारो मा रिषाम हिंसिता न भवेम ॥

पूजनीय, उत्पन्नहुओंको जानने वाले जातवेदा अग्निके लिये  
हम इस स्तोत्रको अपनी तीक्ष्ण बुद्धिसे इस प्रकार निष्पन्न  
करते हैं, जिस प्रकार रथको रथकार अक्षफलक आदि अवयवों  
से संस्कृत करता है [ महानुभाव अग्निकी पूजाके लिये बड़ी  
बुद्धि होनी चाहिये ऐसी प्राप्ति होने पर दिखाते हैं, कि— ] इन  
पूजनीय अग्निदेवके संसदनमें हमारी श्रेष्ठ बुद्धि कल्याणमयी है,  
अतः एव हे अग्ने ! हम स्तोता बंधुभावके होने पर हिंसित न हों ३  
चतुर्थी ॥

ऐभिर्ऋ सरथं याह्यर्वाङ् नानारथं वा विभवो ह्यश्वाः  
पत्नीवतस्त्रिंशतं त्रींश्च देवाननुष्वधमा वह मादयस्व ४

आ । एभिः । अग्ने । सरथम् । याहि । अर्वाङ् । नानाऽरथम् ।

वा । विभवः । हि । अश्वाः ।

पत्नीऽवतः । त्रिंशतम् । त्रीन् । च । देवान् । अनुऽस्वधम् । आ ।

वह । मादयस्व ॥ ४ ॥

हे अग्ने एभिः वक्ष्यमाणैस्त्रिंशत्संख्याकैर्देवैः सह सरथम्  
समानः एक एव रथो यस्मिन्नागमनकर्मणि तत् सरथं तद् यथा  
भवति तथा अर्वाङ् अस्मदभिमुखम् आ याहि आगच्छ । सरथम्  
इति न नियम इत्याह । नानारथं वा नाना पृथग्भूता रथा यस्मिन्  
कर्मणि तद् नानारथम् । तत्तत्प्रतिनियतं रथम् आरुह्येत्यर्थः ।  
सरथपक्षे बहूनां देवानाम् एकेनैव रथेन आनयनम् अतिभारत्वात्  
कथं घटत इति तत्राह विभवो ह्यश्वा इति । अश्वास्तव रथे नियुक्ता  
विभवो हि शक्ताः खलु । अतः पत्नीवतः स्वकीयाभिः पत्नी-  
भिर्युक्तान् त्रिंशत् त्रींश्च अयुत्तरत्रिंशत्संख्याकान् देवान् “ये  
देवा दिव्येकादश स्थ” इति [ तै० सं० १. ४. १०. १ ] मन्त्रो-  
क्तान् अनुष्वधम् । स्वधेत्यन्नाम । तां तां स्वधाम् अनुलक्ष्य यदा-  
यदा सोमो हूयते तदातदेत्यर्थः । आ वह तान् देवान् प्रापय ।  
आवाह्य च मादयस्व सोमप्रदानेन हर्षय ॥

इति त्रयोदशं सूक्तम् ॥

विंशे काण्डे प्रथमोऽनुवाकः ॥

हे अग्निदेव ! आगे कहे जाने वाले तैंतीस देवताओंके साथ  
एक रथमें बैठ कर आइये । वा अनेक रथोंमें बैठ कर आइये  
( सब देवता एक रथमें बैठ कर आवेंगे तो घोड़े उस रथको कैसे  
खेंचेंगे तो कहते हैं, कि— ) आपके रथमें जुते हुए घोड़े समर्थ हैं ।  
अतः अपनी २ पत्नियोंसे युक्त उन तैंतीस देवताओंको जब २  
उनको स्वधा ( अन्न ) दी जावे तब २ प्राप्त कराइये और आवा-  
हन करके उनको सोमप्रदानसे हर्षित करिये ॥ ४ ॥

त्रयोदश सूक्त समाप्त ( ६२९ )

वीसवें काण्डमें प्रथम अनुवाक समाप्त ॥

द्वितीयोऽनुवाके चत्वारि सूक्तानि । तानि च उक्थ्ये क्रतौ ब्राह्म-  
णाच्छंसिनः शस्त्रे विनियुक्तानि । अतुर्थसूक्तस्यान्तिमा शस्त्रयाज्या ।



“उक्थ्ये मैत्रावरुणादिभ्यः” इति प्रक्रम्य सूत्रितं वैताने । “वयमु त्वामपूर्य [ २०. १४. १ ] यो न इदमिदं पुरा [ २०. १४. ३ ] इति स्तोत्रियानुरूपौ । स्तोत्रियस्य प्रथमां शस्त्वा तस्या उत्तमं पादं द्वितीयस्याः पूर्वेण संधायावसाय द्वितीयेन द्वितीयां शंसति । तस्याश्चोत्तमम् उत्तरेण संधायावसायोत्तमेन तृतीयाम् । एवं काकुभानां स्तोत्रियानुरूपाणां प्रग्रथनम् । इतः पच्छः शंसति । प्रमंहिष्ठाय बृहते बृहद्रये [ २०. १५ ] इत्युक्थमुखम् । उदप्रुतो न वयो रक्षमाणाः [ २०. १६ ] इति बार्हस्पत्यं सांशंसिकम् । अच्छा म इन्द्रं मतयः स्वर्विदः [ २०. १७ ] इति पर्यासः । इत्यैकाहिकानाम् उत्तमया परिदधाति परया यजति” इति [वै०४.१]॥

दूसरे अनुवाकमें चार सूक्त हैं । वे उक्थ्य क्रतुमें ब्राह्मणाच्छंसीके शस्त्रमें विनियुक्त होते हैं । चतुर्थसूक्तकी अन्तिम ऋचा शस्त्रयाज्या है । “उक्थ्ये मैत्रावरुणादिभ्यः” को कह कर वैतानसूत्र ४ । १ में कहा है, कि—“वयमु त्वामपूर्य ( २० । १४ । १ ) यो न इदमिदं पुरा ( २० । १४ । ३ ) इति स्तोत्रियानुरूपौ । स्तोत्रियस्य प्रथमां शस्त्वा तस्या उत्तमं पादं द्वितीयस्याः पूर्वेण संधायावसाय द्वितीयेन द्वितीयां शंसति । तस्याश्चोत्तमं उत्तरेण संधायावसायोत्तमेन तृतीयाम् । एवं काकुभानां स्तोत्रियानुरूपाणां प्रग्रथनम् । इतः पच्छः शंसति । प्रमंहिष्ठाय बृहते बृहद्रये ( २० । १५ ) इत्युक्थमुखम् उदप्रुतो न वयो रक्षमाणाः ( २० । १६ ) इति बार्हस्पत्यं सांशंसिकम् । अच्छा म इन्द्रं मतयः स्वर्विदः ( २० । १७ ) इति पर्यासः । इत्यैकाहिकानां उत्तमया परिदधाति परया यजति” ( वैतानसूत्र ४ । १ ) ॥

तत्र प्रथमा ॥

वयमु त्वामपूर्य स्थूरं न कञ्चिद् भरन्तोवस्यवः ।  
वाजे चित्रं हवामहे ॥ १ ॥

वयम् । ऊं इति । त्वाम् । अपूर्व्यम् । स्थूरम् । न । कत् । चित् ।

भरन्तः । अवस्यवः ।

वाजे । चित्रम् । हवामहे ॥ १ ॥

हे अपूर्व्यम् । पूर्वम् अर्हतीति पूर्यः । न पूर्यः अपूर्व्यः । सत्यपि सर्वदा गमने नूतन इत्यर्थः । अनेन तस्य सर्वदा अनादरविषयत्वाभाव उक्तो भवति । तादृश इन्द्र चित्रम् चायनीयं पूजनीयं त्वां भरन्तः हविरादिना पोषयन्तः अवस्यवः रक्षाकामाः । ❀ अवतेरसुनि “क्याच्छन्दसि” इति उपत्ययः ❀ । वाजे । वाजः अन्नम् । अन्ने निमित्तभूते सति । अथ वा वाजः संग्रामः । तस्मिन् तज्जयार्थं वयम् वयमेव हवामहे आह्वयामः । अस्मान् प्रत्येव त्वम् आगच्छ नाम्मत्प्रतिपत्तान् इत्यमुम् अर्थं द्योतयितुम् उशब्दः । तत्र दृष्टान्तः स्थूरं न कच्चित् । यथा लोके कच्चित् कदाचित् स्थूरम् स्थूलं गुणाढ्यं राजादिकं भरन्तः तदभिमतप्रदानेन पोषयन्तो जनाः स्वजयार्थम् आह्वयन्ति तद्वत् ॥

हे वारम्बार गमन करने पर भी नवीन ही रहने वाले अपूर्व्य (अर्थात् आपका अनादर कभी नहीं होता) इन्द्र! आप पूजनीयका अन्नप्राप्ति वा संग्राममें हवि आदिसे पोषण करने वाले हम रक्षाकाम ही, आवाहन करते हैं आप हमारी ओर ही विजय दिलाने के लिये आइये हमारे प्रतिपत्तियोंकी ओर न जाइये, क्योंकि— हम ही आपका आवाहन कर रहे हैं । जैसे मनुष्य किसी परमगुणी राजाको अभिमत फलदेकर पुष्ट करते हैं उसको ही अपनी विजयके लिये बुलाते हैं, इसी प्रकार हम आपका आवाहन करते हैं।

द्वितीया ॥

उप त्वा कर्मन्नूतये स नो युवोग्रश्चक्राम यो धृषत् ।

त्वामिच्छावितारं ववृमहे सखाय इन्द्र सानसिम् ॥ २ ॥

उप । त्वा । कर्मन् । ऊतये । सः । नः । युवा । उग्रः । चक्राम ।  
यः । धृषत् ।

त्वाम् । इत् । हि । अवितारम् । ववृमहे । सखायः । इन्द्र ।  
सानसिम् ॥ २ ॥

हे इन्द्र त्वा त्वां कर्मन् कर्मणि युद्धादिलक्षणो भस्तुते सति  
ऊतये रक्षायै उप । गच्छाम इति शेषः । य इन्द्रो धृषत् शत्रूणां  
धर्षको भवति । युवा नित्यतरुणः उग्रः उद्गूर्णबलः । स इन्द्रो  
नः अस्मान् चक्राम क्रामति । सहायत्वेन गच्छत्वित्यर्थः । हे इन्द्र  
सानसिम् संभक्तारम् अवितारम् रक्षितारं त्वामिच्छि त्वामेव हि  
सखायः तव मित्रभूता वयं ववृमहे वृणीमहे संभजामहे ॥

हे इन्द्रदेव ! युद्ध आदिक कर्मके आने पर रक्षाके लिये हम  
आपकी ही शरणमें जाते हैं । जो इन्द्रदेव शत्रुओंको दबा देते हैं  
नित्य तरुण रहते हैं, प्रचण्ड बली हैं वह इन्द्रदेव हमको सहायक  
रूपसे प्राप्त होंगे । हे इन्द्रदेव ! मित्ररूप हम, प्रीति करने वाले  
और रक्षा करने वाले आपका ही वरण करते हैं ॥ २ ॥

तृतीया ॥

यो न इदमिदं पुरा प्र वस्य आनिनाय तमु व स्तुषे ।

सखाय इन्द्रमूतये ॥ ३ ॥

यः । नः । इदम् इदम् । पुरा । प्र । वस्यः । आनिनाय । तम् ।

ऊं इति । वः । स्तुषे ।

सखायः । इन्द्रम् । ऊतये ॥ ३ ॥



हे सखायः समानख्याना मित्रभूता यजमानाः वः युष्माकम्  
ऊतये रत्तार्थं तम् इन्द्रं स्तुवे स्तौमि । य इन्द्रः पुरा पूर्व नः अस्माकं  
वस्यः वसीयः । ❀ ईकारलोपश्चान्दसः ❀ । अग्निमशस्तं वसु  
हिरण्यादिकम् इदमिदम् इदं गवादिकम् इति निर्दिश्य निर्दिश्य  
प्रानिनाय प्रानैषीत् । तमु तमेव अभिमतप्रदातारम् इन्द्रम् । स्तुवे  
इति संबन्धः ॥

हे समान ख्याति वाले मित्र हुए यजमानों ! मैं तुम्हारी रत्ता  
के लिये उन इन्द्रदेवकी स्तुति करता हूँ, कि—ओ इन्द्रदेव पहिले  
हमारे लिये यह गौ है आदिक रीतिसे धन दे चुके हैं । उन ही  
अभिमत फल देने वाले इन्द्रदेवकी मैं स्तुति करता हूँ ॥ ३ ॥

चतुर्थी ॥

हर्यश्वं सत्पतिं चर्षणीसहं स हि ष्मा यो अमन्दत  
आ तु नः स वयति गव्यमश्व्यं स्तोतृभ्यो मघवा  
शतम् ॥ ४ ॥

हरिऽअश्वम् । सत्ऽपतिम् । चर्षणिऽसहम् । सः । हि । स्म ।

यः । अमन्दत ।

आ । तु । नः । सः । वयति । गव्यम् । अश्व्यम् । स्तोतृऽभ्यः ।

मघऽवा । शतम् ॥ ४ ॥

हर्यश्वम् । हरिनामकावश्वौ यस्य स हर्यश्वः । तं सत्पतिम् ।  
सतां कर्मश्रेष्ठाना पालकं चर्षणीसहम् चर्षणयोः मनुष्याः तेषाम्  
अभिभवितारम् । नियन्तारम् इत्यर्थः । तम् इन्द्रं स्तुवे इति सं-  
बन्धः । य इन्द्रः अमन्दत स्तुत्या तृप्तो भवति स हि स्म स हि

खलु । स्तुत्य इति शेषः । अतः उक्तगुणविशिष्टत्वात् तमेवेन्द्रं  
स्तुषे इत्यर्थः । यद्वा यः अमन्दत यो नरः इन्द्रदत्तेन धनेन तप्त  
आसीत् स हि स्म स एव नरः उक्तलक्षणम् इन्द्रं तु दूषति । स  
मघवा धनवान् इन्द्रः । तुशब्दो वाक्यच्छेदे । स्तोतृभ्यो नः अ-  
स्पभ्यं शतम् शतसंख्याकं गव्यम् गोसमूहम् अश्व्यम् शतसंख्या-  
कम् अश्वसमूहं च आ वयति प्रापयतु । ❀ वीगत्यादिषु ।  
अस्मान्त्वोऽटि अडागमः ❀ ॥

इति द्वितीयेनुवाके प्रथमं सूक्तम् ॥

जिन इन्द्रदेवके हरि नामक घोड़े हैं, जो श्रेष्ठ कर्म करने वाले  
मनुष्योंके पालक हैं और मनुष्योंको नियममें रखने वाले हैं, उन  
इन्द्रदेवकी मैं स्तुति करता हूँ । जो इन्द्रदेव स्तुतिसे प्रसन्न होते  
हैं, उनकी मैं स्तुति करता हूँ । वह धनवान् इन्द्र हम स्तुति करने  
वालोंको सौ गौओंका और सौ घोड़ोंका झुण्ड प्रदान करें ॥४॥

द्वितीय अनुवाकमें प्रथम सूक्त समाप्त ( ६३० )

“प्र मंहिष्ठाय बृहते बृहद्रये” इति सूक्तस्य उक्थ्ये क्रतौ ब्राह्मण-  
च्छंसिशस्त्रे विनियोग उक्तः ॥

“प्र मंहिष्ठाय बृहते बृहद्रये” सूक्तका उक्थ्य क्रतुके ब्राह्मणा-  
च्छंसिशस्त्रमें विनियोग कहा है, कि—

तत्र प्रथमा ॥

प्र मंहिष्ठाय बृहते बृहद्रये सत्यशुष्माय तवसे मतिं भरे ।

अपामिव प्रवणे यस्य दुर्धरं राधो विश्वायु शवसे

अपावृतम् ॥ १ ॥

प्र । मंहिष्ठाय । बृहते । बृहद्रये । सत्यशुष्माय । तवसे ।

मतिम् । भरे ।

अपामुऽइव । प्रवणे । यस्य । दुःऽधरम् । राधः । विश्वऽआयु

शवसे । अपऽवृतम् ॥ १ ॥

मंहिष्ठाय अतिशयेन मंहनीयाय दातृतमाय वा बृहते महते गुणैः  
मृद्व्वाय वृद्धये । रयिरिति धननाम । प्रभृतधनाय सत्यशुष्माय  
सत्यवलाय अविश्वसःमध्यर्थाय तवसे । तवो बलम् । अतिशयि-  
तवलाय इन्द्राय । अथ वा तवसे बललाभाय उक्तगुणकाय इन्द्राय  
मतिं प्र भरे स्तोत्रं संपादयामि । यस्य उक्तगुणविशिष्टेन्द्रस्य  
विश्वायु । आयवो मनुष्याः । विश्वेषां मनुष्याणां पोषणसमर्थं  
राधः धनम् अपामिव प्रवणे । प्रवणः अवनतो देशः । तस्मिन्  
अपां पूर इव स यथा दुर्धरो भवति एतं दुर्धरं धनं शवसे बलाय  
प्रयोजनाय अपावृतम् अपगतावरणं कृतम् । तस्मा इन्द्राय मतिं  
भर इति संबन्धः ॥

परम दाता गुणोंमें वृद्ध, महाधनी, अमोघ सामर्थ्य वाले इन्द्र  
के स्तोत्रका मैं उच्चारण करता हूँ । जिन इन्द्रदेवका धनबल  
सम्पूर्ण मनुष्योंका पोषण करनेमें समर्थ है । और बलकाय वाले  
स्थानमें जलका अहला जैसे दुराधर्ष होता है ऐसे ही प्रयोजन  
के समय जिनका धनबल दुराधर्ष होता है, उन इन्द्रदेवके लिये  
मैं स्तुति करता हूँ ॥ १ ॥

द्वितीया ॥

अथ ते विश्वमनु हासदिष्ट्य आपो निम्नेव सर्वना  
हविष्मंतः ।

यत् पर्वते न समशील ह्येत इन्द्रस्य वज्रः श्रथिना  
हिरण्ययः ॥ २ ॥



अथ । ते । विश्वम् । अनु । ह । असत् । इष्टये । आपः । निम्ना-  
ऽइव । सवना । हविष्मतः ।

यत् । पर्वते । न । सम्ऽअशीत । हर्यतः । इन्द्रस्य । वज्रः ।

श्रथिना । हिरण्ययः ॥ २ ॥

अथ अथ हे इन्द्र ते तत्र इष्टये एषणाय यागाय वा विश्वम् सर्वं जगत् अनु हासत् । हेति प्रसिद्धौ । अनुकूल भवेत् । तत्र दृष्टान्तः । आपो निम्नेव निम्नानि स्थलानि आप इव । ता यथा अनुक्रमेण प्रवहन्ति तद्वद् विश्वम् अनु हासद् इति संबन्धः । अथ वा उत्तरत्र दृष्टान्तः । आपो निम्नानीव हविष्मतः यजमानस्य सवना सवनानि त्रीण्यपि त्वाम् अनुगच्छन्ति । यत् यस्मात् हर्यतः कान्तः कमनीयः श्रथिता शत्रूणां हिंसको हिरण्ययः हिरण्यमयो हिरण्येन भूषित इन्द्रस्य वज्रः पर्वते न । नशब्दः अप्यर्थे । पर्वतेषु न समशीत न सक्तोभूत् किं तु व्यदारयदेव । अतो विश्वम् अनु हासद् इति पूर्वत्र संबन्धः ॥

हे इन्द्रदेव ! आपकी इष्टिके लिये सब जगत् इस प्रकार अनु-कूल होवे, जिस प्रकार जल निम्नस्थलके अनुकूल होता है । इसी प्रकार हवि वाले यजमानके तीनों सवन आपके अनुकूल होते हैं । क्योंकि कमनीय, शत्रुओंको मसलने वाले, सुवर्णविभूषित इन्द्रका वज्र पर्वतमें भी नहीं हिलगा, किंतु उसको विदीर्ण न कर सका अत एव जगत् उनके अनुकूल होता है ॥ २ ॥

तृतीया ॥

अस्मै भीमाय नमसा समध्वर उषो न शुभ्र आ भरा  
पनीयसे ।

यस्य धाम श्रवसे नामेन्द्रियं ज्योतिरकारि हरितो नायसे

अस्मै । भीमाय । नमसा । सम । अध्वरे । उषः । न । शुभ्रे ।

आ । भर । पनीयसे ।

यस्य । धाम । श्रवसे । नाम । इन्द्रियम् । ज्योतिः । अकारि ।

हरितः । न । अयसे ॥ ३ ॥

हे शुभ्रे दीप्ते हे उषः उषोदेवते भीमाय । बिभेत्यस्माद् इति भीमः । शत्रूणां भयंकराय पनीयसे अतिशयेन स्तोतव्याय अस्मै इन्द्राय । यागः क्रियत इति शेषः । अतो नमसा न । नमः अन्नं च । नशब्दः चार्थे । चकाराद् उक्तलक्षणम् इन्द्रं च समा भर सम्यग् आहर अस्मद्यज्ञं प्रापय । अस्मदभिमतम् अन्नं यष्टव्यम् इन्द्रं च आनयेत्यर्थः । उषस्युदितायां सत्यामेव इन्द्रस्यागमनाद् उषस इन्द्राहरणव्यपदेशः । अथ वा नशब्दः अनर्थकः । उक्तलक्षणाय इन्द्राय नमसा । नमः अन्नम् । आ भर । अन्ने समृद्धे सत्येव इन्द्रम् उद्दिश्य यागप्रवृत्तेरेवम् उक्तम् । यस्य इन्द्रस्य धाम सर्वेषां धारकं पोषकम् इन्द्रियम् इन्द्रहितम् इन्द्रदत्तं वा । ❀ “इन्द्रियम् इन्द्रलिङ्गम् इन्द्रदृष्टम् इन्द्रसृष्टम्” इत्यादिना इन्द्रियशब्दो निपातितः ❀ । उक्तलक्षणं नाम सर्वेषां नामकम् उदकं श्रवसे अन्नाय तत्समृद्धये भवति । येन च इन्द्रेण हरितो न हरितामिव दिशामिव अयसे प्राणिनां गमनाय गमनादिव्यवहाराय । ❀ अथ पय गतौ इत्यस्माद् असुन ❀ । ज्योतिः अकारि क्रियते । तं समा भरेति पूर्वत्र संबन्धः ॥

हे दीप्ते उषा देवते ! जिनसे शत्रु डरते हैं उन भीम स्तुतिके परम पात्र इन इन्द्रदेवके लिये याग किया जा रहा है अतः अन्नको

और इन्द्रको भी हमारे यज्ञमें ला । [ उषाके उदित होने पर ही इन्द्रका आगमन होनेसे उषाका इन्द्रानयनका वर्णन किया है । अथवा मूलका न शब्द अनर्थक माना जाय तो पूर्वोक्त लक्षणों वाले इन्द्रके लिये अन्नको ला, क्योंकि-समृद्ध अन्नके होने पर ही इन्द्रके उद्देश्यसे यागकी प्रवृत्ति होसकती है ] जिन इन्द्रका सबका पोषक धाम ( जल ) अन्नसमृद्धिके लिये होता है, जिन इन्द्रने प्राणियोंके गमन आदिके व्यवहारके लिये दिशाओंमें ज्योति की है उनको यज्ञमें ला ॥ ३ ॥

चतुर्थी ॥

इमे त इन्द्र ते वयं पुरुष्टुत ये त्वारभ्य चरामसि प्रभूवसो  
नहि त्वदन्यो गिर्वणो गिरः सघत् क्षोणीरिव प्रति  
नो हर्य तद् वचः ॥ ४ ॥

इमे । ते । इन्द्र । ते । वयम् । पुरुऽस्तुत । ये । त्वा । आरभ्य ।  
चरामसि । प्रभूवसो इति प्रभुऽवसो ।

नहि । त्वत् । अन्यः । गिर्वणः । गिरः । सघत् । क्षोणीऽइव ।  
प्रति । नः । हर्य । तत् । वचः ॥ ४ ॥

हे इन्द्र त इमे । प्रसिद्धिवाचकस्तच्छब्दः । इदम् शब्दः अप-  
रोक्षवाची । त्वदर्थकत्वेन प्रसिद्धा वयं ते तव स्वभूताः । हे पुरु-  
ष्टुत बहुभिर्बहुप्रकारं वा स्तुत । एतद् इन्द्रेत्यस्य विशेषणम् ।  
त इत्युक्तम् कीदृशास्त इत्यत्राह । ये वयम् हे प्रभूवसो प्रभूतधन  
इन्द्र त्वा त्वाम् आरभ्य आश्रित्य त्वामेव शरणं प्राप्य चरामसि  
चरामः । ते वयम् इति पूर्वत्र संबन्धः । हे गिर्वणः गीर्भिर्वननीय



इन्द्र त्वदन्यः त्वत्तो व्यतिरिक्तो देवः गिरः अस्मदीयानि वचांसि नहि सघत् न खलु सहते । स्तुत्यस्य तव महिम्नो निरवधित्वाद् अस्मदीयानां स्तुतिवचसाम् अत्यल्पत्वाच्च तादृग्वचस्त्वयैव सोढव्यम् इत्यर्थः । ❀ सहेर्लेटि अडागमः । वर्णविपर्ययेण हकारस्य घकारः ❀ । तत्र दृष्टान्तः क्षोणीरिव क्षोण्य इव । क्षोणीशब्देनात्र प्रजा विवक्ष्यन्ते । प्रजा राज्ञो यद्यद् विज्ञापयन्ति तत् सर्वं स राजा यथा सहते तद्वद् इत्यर्थः । यस्माद् एवं तस्माद् नः अस्माकं तद् वचः तादृग्वचनं मतिं हर्यं प्रतिकामय ॥

हे वाणियोंसे स्तुति करने योग्य ! हे बहुतसे धन वाले ! जो हम आपका ही आश्रय लेकर रहते हैं, वे हम आपके ही हैं आपके अतिरिक्त और कोई देव हमारी वाणियोंको नहीं सह सकता, क्योंकि—आप स्तुति करने वालेकी महिमा अवधिरहित है और हमारे स्तुतिवचन थोड़े ही हैं अत एव ऐसे वचन आपको सहने ही चाहिये । जैसे प्रजाएँ राजासे जो कुछ कहती हैं, राजा उनको सहन करता है, इसी प्रकार आप हमारे वचनोंकी कामना करिये ॥ ४ ॥

पञ्चमी ॥

भूरिं त इन्द्र वीर्यं तव स्मस्यस्य स्तोतुर्मघवन् काममा पृण ।

अनु ते द्यौर्बृंहती वीर्यं मम इयं च ते पृथिवी नेम ओजसे ॥ ५ ॥

भूरि । ते । इन्द्र । वीर्यम् । तव । स्मसि । अस्य । स्तोतुः ।

मघवन् । कामम् । आ । पृण ।

अनु । ते । द्यौः । बृहती । वीर्यम् । ममे । इयम् । च । ते ।

पृथिवी । नेमे । ओजसे ॥ ५ ॥

हे इन्द्र ते तव वीर्यम् वीरकर्म वृत्रवधादिलक्षणं भूरि अतिबहु यतः अतो वयं तव स्मसि स्मः तव विधेया भवामः । ❀ “असो-रलोपः” इति अकारलोपः । “इदन्तो मसिः” ❀ । अस्य स्तोतुः स्तवं कुर्वतोस्य यजमानस्य कामम् अभिलाषितम् । हे मघवन् धनवन् इन्द्र आ पूण आपूरय । ❀ पूण मीरणे । तौदादिकः । अत्र पूरणार्थः । “अतो हेः” इति हेर्लुक् ❀ । भूरि त इन्द्र वीर्यम् इत्युक्तं वीर्यबहुत्वमेव स्पष्टयति । ते तव वीर्यं बृहती महती द्यौः महान् द्युलोकः अनु ममे अनुक्रमेण माति परिछिनत्ति । इन्द्रस्य वृष्ट्युदकादेरास्पदत्वेन द्यौरेव ममे । अन्यः कश्चित् परि-च्छेत्ता नास्तीत्यर्थः । ❀ माङ् माने । लिङादि सर्वम् ❀ । न केवलं द्यौरेव इयं पृथिवी च ते ओजसे तव ओजसा बलेन निमि-त्तेन नेमे ननाम नम्रा भवति । त्वदोजासंभूतेन गिरितरुगुल्मप्रा-ण्यादिधारणेनेत्यभिप्रायः । अतः पृथिवी च वीर्यं ममे इति भावः ।

हे इन्द्रदेव ! आपका वृत्रवध आदि वीरकर्म बहुत बड़ा है, अत एव हम आपके सेवक बनते हैं । इस स्तुति करने वाले यजमानकी अभिलाषाको हे धनी इन्द्र ! आप पूर्ण करिये आपके वीर्यको विशाल द्युलोक ही, वृष्टिजल आदिका स्थान होनेसे मान करता है । और कोई परिच्छेत्ता नहीं है । वा—यह पृथिवी भी आपके बलसे नम्र होजाती है । अत एव यह भी मान करती है ॥ ५ ॥

षष्ठी ॥

त्वं तमिन्द्र पर्वतं महामुरुं वज्रेण वज्रिन् पर्वशश्च कर्तिथ ।

अवा॑सृजो निवृ॒ताः सर्त॑वा अपः स॒न्ना विश्वं॑ दधिषे  
केवलं॑ सहः ॥ ६ ॥

स्वम् । तम् । इन्द्र । पर्वतम् । महाम् । उरुम् । वज्रेण । वज्रिन् ।  
पर्व॑ऽशः । च॒कर्ति॒थ ।

अव॑ । असृ॒जः । निवृ॒ताः । सर्त॑वै । अपः । स॒न्ना । विश्वम् ।  
दधिषे॑ । केवलम् । सहः ॥ ६ ॥

हे इन्द्र वज्रिन् वज्रवन् त्वं तं प्रसिद्धं महाम् महान्तं महर्षो-  
पेतम् । ❀ नकारतकारयोर्लोपश्चान्दसः ❀ । उरुम् अतिप्रभूतं  
पर्वतम् पर्वतन्तं गिरिम् । ❀ जातावेकवचनम् ❀ । गिरीन् वज्रे-  
ण आयुधेन पर्वशः अवयवशः पक्षादिक्रमेण चकर्तिथ शकली-  
कृतवान् असि । ❀ कृती छेदने । यत्ति क्रादिनियमात् इट् ।  
गुणः ❀ । यद्वा अत्र पर्वतशब्दः उत्तरत्र वृष्ट्यभिधानाद् मेघ-  
वाची । उक्तलक्षणं मेघं वज्रेण पर्वशो विदारितवान् असीत्यर्थः ।  
अनन्तरं निवृताः नितरां मेघेन वृता अपः सर्तवै नद्याद्यात्मना  
सरणाय अवासृजः अत्राङ्मुखं विमृष्टवान् असि । एवमाद्यात्मकं  
केवलम् असाधारणं विश्वम् सर्वं बलं त्वं दधिषे धारयसि ।  
एतत् सन्ना सत्यं न मृषा । सन्नेति सत्यनाम ॥

इति द्वितीयेनुवाके द्वितीयं सूक्तम् ॥

हे वज्रधारी इन्द्र ! आपने महत्वमय परमविशाल पर्व बाले  
पर्वत ( वा मेघ ) को ( पर आदिके क्रमसे ) टुकड़े २ कर डाला  
था । तथा आपने मेघसे घिरे हुए जलको सरकनेके लिये नदी-  
रूपसे छोड़ दिया था । ऐसे असाधारण सब बलोंको आप धारण  
करते हैं । यह बात सत्य है, मिथ्या नहीं है ॥ ६ ॥

द्वितीय अनुवाकमें द्वितीय सूक्त समाप्त ( ६३१ )



“उदप्रुतः” इति सूक्तस्य उक्थ्ये क्रतौ ब्राह्मणाच्छंसिशास्त्रे  
विनियोग उक्तः ॥

“उदप्रुतः” सूक्तका उक्थ्य क्रतुके ब्राह्मणाच्छंसिके शास्त्रमे  
विनियोग कद दिया है ॥

तत्र प्रथमा ॥

उदप्रुतो नवयो रक्षमाणा वावदतो अभ्रियस्येव घोषाः  
गिरिभ्रजो नोर्मयो मदन्तो बृहस्पतिमभ्यर्कं अनावन्  
उदप्रुतः । न । वयः । रक्षमाणाः । वावदतः । अभ्रियस्य ऽइव ।

घोषाः ।

गिरिऽभ्रजः । न । ऊर्मयः । मदन्तः । बृहस्पतिम् । अभि ।

अर्कः । अनावन् ॥ १ ॥

उक्थ्यः उदकेषु गच्छन्तश्चरन्तः । ॐ आन्दसत्वाद् असंज्ञा-  
माहेति उदकशब्दस्य उदादेशः ॐ । रक्षमाणाः आस्त्रान् व्याध-  
द्विष्यः वाञ्छयन्तो वयो न पक्षिण इव ते यथा उक्थ्यैर्व्यभि-  
तान्मदन्तः भृशं शब्दं कुर्वन्तः । ॐ वदेर्यङ्गुलिं सतरि रूपम् ।  
“अस्यस्तनाम् आदिः” इति आनुदात्तः ॐ । अभ्रियस्य मेघ-  
समूहस्य घोषाः शब्दा इव । तथा गिरिभ्रजः । गिरिरिति मेघ-  
नाम । मेघेभ्यः सकाशाद् गच्छन्तः अधः पतन्तः मदन्तः सस्या-  
दींस्तर्पयन्तः । अनेन धाराध्वनिरूपत्वव्ययते । ऊर्मयो न ऊर्मयः  
उदकवृत्ति ते यथा अधःपतनसमये शब्दं कुर्वन्ति एवम् अर्कः  
अर्चनसाधना मन्त्राः । ॐ अर्को मन्त्रो भवति यदनेनार्चन्तीति  
निरुक्तम् [ नि० ५, ४ ] ॐ । अथ वा अर्काः अर्चकाः स्तोतारो  
बृहस्पतिम् बृहतो मन्त्रराशेः स्वामिनम् एतन्नामार्चं देवम् अभ्य-  
नावन् अभिस्तुवन्ति । ॐ नौतेरआन्दसे वाङ्मन्यत्ययेन शप् ॐ ।

जलमें विचरण करने वाले, व्याधि आदिसे बचाने वाले, पक्षियोंकी समान उच्च ध्वनि वाले, मेघोंके गड़गड़ानेकी समान शब्द करने वाले, मेघोंसे धारापातरूपसे चलने वाली शब्दायमान ऊर्मिये नीचेको गिरनेके समथ शब्दको करती हैं, इसी प्रकार पूजा के मन्त्र मन्त्रराशिके स्वामी बृहस्पतिदेवकी स्तुति करते हैं ॥१॥

द्वितीया ॥

सं गोभिराङ्गिरसो नक्षमाणो भग इवेदर्यमणं निनाय ।  
जने मित्रो न दम्पती अनक्ति बृहस्पते वाजयाशू-  
रिवाजौ ॥ २ ॥

सम् । गोभिः । आङ्गिरसः । नक्षमाणः । भगः इव । इत् । अर्य-  
मणम् । निनाय ।

जने । मित्रः । न । दम्पती इति दम्पती । अनक्ति । बृहस्पते ।  
वाजय । आशून् इव । आजौ ॥ २ ॥

आङ्गिरसः अङ्गिरो गोत्रोत्पन्नः एतन्नामा महर्षिः गोभिः ।  
विकारे प्रकृतिशब्दः । गोविकारैराज्यैः । यद्वा गोभिः स्तुति-  
वाग्भिः नक्षमाणः व्याप्नुवन् भग इवेत् एतन्नामको देव इव स  
यथा बधूवरौ अर्यमणं देवं नयति विवाहसमये एवम् अर्यमणम्  
विवाहहोमाभिमानिनम् एतन्नामानं देवं दम्पती सं निनाय नयतु ।  
किं च जने प्राणिसमूहे मित्रो न मित्राख्यो देव इव स यथा स्व-  
रश्मीन् अनक्ति प्रकाशाय एवं स एव महर्षिः दम्पती बधूवरौ  
अनक्ति योजयति ॥ हे बृहस्पते देव त्वं च आशून् आज्ञाविव-  
यथा संग्रामे योद्धारः आशून् व्यापकाम् अश्वान् योजयन्ति एवं  
बधूवरौ वाजय संयोजय ॥

अंगिरामोत्रमें उत्पन्न हुए अंगिरस नामक महर्षि भगदेवता की समान गोघृत आदिसे विवाहके समय दम्पतीको जिस प्रकार अर्यमा देवकी शरणमें लेजाते हैं। इसी प्रकार विवाहहोमाभि-  
मानी अर्यमा नामक देवको दम्पतीको प्राप्त करावें और प्राणियों में सूर्य जैसे अपनी किरणोंको प्रकाशके लिये संयुक्त करते हैं, इसी प्रकार महर्षि बधूवरोंको संयुक्त करें। और हे बृहस्पति देव ! आप भी संग्राममें योधा जैसे व्यापक अश्वोंको युक्त करते हैं, इसी प्रकार बधू और वरको संयुक्त करें ॥ २ ॥

तृतीया ॥

साध्वर्या अतिथिनीः। रिषिरा स्पर्हाः सुवर्णा अनवद्य-  
रूपाः ।

बृहस्पतिः पर्वतेभ्यो वितूर्या निर्गा ऊपे यवमिव स्थि-  
विभ्यः ॥ ३ ॥

साधुऽअर्याः । अतिथिनीः । रिषिराः । स्पर्हाः । सुऽवर्णाः ।  
अनवद्यऽरूपाः ।

बृहस्पतिः । पर्वतेभ्यः । विऽतूर्य । निः । गाः । ऊपे । यवमऽइव ।  
स्थिऽविभ्यः ॥ ३ ॥

साध्वर्याः साध्वभिगन्तव्या अतिथिनीः अतिथितर्पका अतन-  
शीला वा रिषिराः एकणीयाः स्पर्हाः सर्वैः स्पृहणीयाः सुवर्णाः  
शोभन्शुक्लादिवर्णोपेता अनवद्यरूपाः अनिन्दितरूपाः प्रशस्त-  
रूपाः । ❀ “अवद्यपण्य०” इत्यादिना गार्हार्थि अवद्यशब्दो निषा-  
तितः । पूर्वपदप्रकृतिस्वरः ❀ । एवंलक्षणा गाः बृहस्पतिर्देवः पर्व-



तेभ्यः बलसंबन्धिभिरसुरैः पिहितेभ्यः पर्वतेभ्यः सकाशाद् वितूर्व  
निर्गम्य निरूपे निर्वपति निष्कृष्य प्रयच्छति स्तोतृभ्यः । तत्र  
वृष्टान्तः । यवमिव स्थिविभ्यः । स्थिवयः स्थिरा यवकाण्डाः ।  
तेभ्यः सकाशाद् यथा यवं निष्कृष्य वपति तद्वत् । यद्वा स्थिवयः  
कुक्षुलाः । तेभ्यः सकाशाद् यवमिव ॥

जैसे कोठियोंमेंसे यवोंको निकालते हैं इसी प्रकार बृहस्पतिदेव  
स्तुति करने वालोंके लिये, साधुओंके योग्य, अतिथियोंको कृप  
करने वाली, अभिलाषा करने योग्य, सबसे स्पृहणीय, शुक्र  
आदि शोभन वर्णसे सम्पन्न अनिन्दित रूप वाली बल नामक  
असुरोंके द्वारा छिपाई हुई मौओंको पर्वतोंसे निकाल कर प्रदान  
करते हैं ॥ ३ ॥

चतुर्थी ॥

आशुषायन् मधुन ऋतस्य योनिमवक्षिपन्नर्क उल्का-  
मिव द्योः ।

बृहस्पतिरुद्धरन्नश्मनो गा भूम्या उद्वे वि त्वचं  
विभेद ॥ ४ ॥

आशुषायन् । मधुना । ऋतस्य । योनिम् । अवक्षिपन् । अर्कः ।  
उल्काम् । इव । द्योः ।

बृहस्पतिः । उद्धरन् । अश्मनः । गाः । भूम्याः । उद्वे ।  
वि । त्वचम् । विभेद ॥ ४ ॥

बृहस्पतिर्देवः मधुना । मधु इति उदकनाम । उदकेन आशुषा-  
यन् भूमिं सर्वतः सिञ्चन् । ❀ अथ प्लुष स्नेहनेचनपूरणेषु ।

व्यत्ययेन विकरणस्य शायजादेशः । चित्स्वरः ॐ । ऋतस्य  
 योनिम् उदकस्य कारणभूतं मेघम् । यद्वा ऋतस्य योनिरित्यु-  
 दकनाम । मेघम् उदकं वा । ॐ मधुन ऋतस्येत्यत्र संहितायाम्  
 “ऋत्यकः” इत्यत्र ह्रस्व इत्यनुवर्तनात् ह्रस्वत्वम् ॐ । घो घुः  
 लोकसकाशाद् अवक्षिपन् अवाङ्मुखं प्रेरयन् । तत्र दृष्टान्तः ।  
 अर्कः आदित्यः घोः सकाशाद् उल्कामिव तां यथा अवक्षिपति  
 तद्वत् । किं च स बृहस्पतिः अश्मनः मेघसकाशाद् गा उदकानि  
 उद्धरन् व्यावयन् । अथ वा अश्मनः पणिभिः पिहितात् पर्वतात्  
 तदुद्धारेण गाः तैरपहत्य स्थापिता उद्धरन् अपगमयन् उद्ने उद-  
 केनेव तेन यथा भूम्यास्त्वचं विभिनत्ति उच्छूनां करोति एवं भूम्या-  
 स्त्वचं गोखुराग्रैः वि विभेद विदारितवान् । सर्वत्र गाः समचार-  
 यद् इत्यर्थः ॥

जिस प्रकार सूर्यदेव धुलोकसे उल्काको अधोमुखी करके गिराते  
 हैं, इसी प्रकार बृहस्पतिदेव जलसे भूमिको सींचते हुए मेघको  
 नीचेकी ओर मुख वाला करके प्रेरित करते हैं, और वह बृहस्पति  
 देव पणि नामक असुरोंके द्वारा पर्वतमें छिपाई हुई गौओंको  
 निकाल कर भूमिकी त्वचाको गोखुरोंसे इस प्रकार विभिन्न कर  
 डालते हैं, जिस प्रकार जलसे भूमिको फुला देते हैं अर्थात् सर्वत्र  
 गौओंका सञ्चार कर देते हैं ॥ ४ ॥

पञ्चमी ॥

अप ज्योतिषा तमो अन्तरिक्षादुद्गः शीपालमिव वातं  
 आजत् ।

बृहस्पतिरनुमृश्या वलस्याभ्रमिव वात आ चक्र आ  
 गाः ॥ ५ ॥

अप । ज्योतिषा । तमः । अन्तरिक्षात् । उद्गनः । शीपालम्ऽइव ।

वातः । आजत् ।

बृहस्पतिः । अनुऽमृश्य । बलस्य । अभ्रम्ऽइव । वातः । आ । चक्रे ।

आ । गाः ॥ ५ ॥

बृहस्पतिर्देवः ज्योतिषा दीप्त्या प्रकाशेन अन्तरिक्षात् आकाश-  
शाद् गिरिकुहरात् तमः अन्धकारं गवाम् आवरकम् उदाजत् उद्ग-  
मयत् । तत्र दृष्टान्तः । वातः वायुः उद्गनः उदकात् । ❀ “पद्मं”  
इत्यादिना उदकशब्दस्य उदन्नादेशः । “अङ्गीपोमः” इति अङ्का-  
रलोपः । उदात्तनिवृत्तिस्वरः ❀ । तत्सकाशात् शीपालमिव  
शीपालं शीपालम् । ❀ वर्णव्यत्ययेन ऐकारवकारयोरीकार-  
कारौ ❀ । तद् यथा उदजति अपगमयति तद्वत् । किं च बृह-  
स्पतिर्देवो बलस्य एतन्नामकस्यासुरस्य गवाम् अवस्थानप्रदेशम्  
अनुमृश्य परामृश्य वातः वायुः अभ्रमिव स यथा मेघम् आकरोति  
सर्वतः प्रसारयति अन्तरिक्षे एवं गाः बलेन अपहृत्य आच्छन्नाः  
आ चक्रे सर्वतो व्याप्ता अकरोत् ॥

जिस प्रकार वायु जलसे सिकारको दूर कर देता है, तिसी  
प्रकार बृहस्पतिदेव गिरिकन्दरासे प्रकाशके द्वारा गौओंको  
रोकने वाले अन्धकारको हटा देते हैं । और बृहस्पतिदेव बल  
नामक असुरके गोस्थानको विचार कर, वायुके मेघको छितरा  
देनेकी समान बलके द्वारा रोकी हुई गौओंको चारों ओर फैला  
देते हैं ॥ ५ ॥

षष्ठी ॥

यदा बलस्य पीयतो जसुं भेद् बृहस्पतिरमितपोभिर्कैः ।



दद्भिर्न जिह्वा परिविष्टमादंदाविर्निर्धारिकृणोदुस्त्रिया-  
णाम् ॥ ६ ॥

यदा । बलस्य । पीयतः । जसुम् । भेत् । बृहस्पतिः । अग्निपः-  
ऽभिः । अकैः ।

दत्ऽभिः । न । जिह्वा । परिऽविष्टम् । आदत् । आभिः ।  
निऽधीन् । अकृणोत् । उस्त्रियाणाम् ॥ ६ ॥

बृहस्पतिर्देवो यदा यस्मिन् काले बलस्य एतन्नामकस्यासुरस्य  
पीयतः । हिंसकमैतत् । हिंसकस्य तस्य जसुम् हिंसासाधनम्  
आयुधं भेत् अभेद् अभिनत् । ॐ भिदिर् विदारणे । लेट् ।  
लघूपधगुणः । “इतश्च लोपः” संयोगान्तलोपश्च । छान्दसत्वाद्  
अडभावः ॐ । कैः साधनैरित्युच्यते । अग्निपोभिः अग्निवत्ता-  
पकैः अकैः दीप्तैः स्वरश्मिभिः मन्त्रैर्वा । तदा दद्भिः दन्तैः परि-  
विष्टम् परितः खादितं मण्टकादिलक्षणम् अन्नं जिह्वा यथा अस्ति  
तद्वद् बलनामानम् असुरम् आदत् अभक्षयत् । ततश्च उस्त्रिया-  
णाम् गवां निधीन् आविरकृणोत् स्पष्टान् अकरोत् ॥

बृहस्पति देवने जिस समय बल नामक असुरके हिंसक आयुध  
को अग्निकी समान संतप्त करने वाले मन्त्रोंसे तोड़ डाला, उस  
समय दाँतोंसे तोड़े हुए अन्नको जिस प्रकार जिह्वा खाती है  
जिस प्रकार वह बल नामक असुरको खागए, फिर उन्होंने दूध  
देने वाली उसरिया गौओंकी निधियोंको प्रकट किया ॥ ६ ॥

सप्तमी ॥

बृहस्पतिरमतं हित्यदासां नाम स्वरीणां सद्ने गुहा  
यत् ।

आण्डेव भित्वा शकुनस्य गर्भमुदुस्त्रियाः पर्वतस्य  
त्मनाजत् ॥ ७ ॥

बृहस्पतिः । अमत । हि । त्यत् । आसाम् । नाम । स्वरीणाम् ।  
सदने । गुहा । यत् ।

आण्डाऽइव । भित्वा । शकुनस्य । गर्भम् । उत् । उस्त्रियाः ।  
पर्वतस्य । त्मना । आजत् ॥ ७ ॥

बृहस्पतिर्देवः गुहा गुहायां सदने । सीदत्यग्रेति सदनं स्थानम् ।  
तस्मिन् स्वरीणाम् शब्दायमानानाम् आसां गवां त्यत् तत् प्रसिद्धं  
नामधेयं यत् यदा अमत हि ज्ञातवान् । ❀ मनु अवबोधने ।  
लुङि “तनादिभ्यस्तथासोः” । इति सिचो लुक् । “हि च” इति  
निघातप्रतिषेधः । अडागमस्वरः ❀ । तदानीं पर्वतस्य गिरेरन्तः  
स्थिता उस्त्रियाः । उस्त्रम् उत्स्त्रावणं क्षीरस्यन्दनम् अर्हन्तीत्युस्त्रिया  
गावः । ताः त्मना आत्मनैव सहायनैरपेक्ष्येणैव । ❀ “मन्त्रेष्वा-  
ङ्यादेरात्मनः” इति आदेराकारस्य लोपः ❀ । उदाजत् पर्वत-  
विभेदनेन उदगमयत् । तत्र दृष्टान्तः । आण्डेव भित्त्वेति । शकु-  
नस्य पक्षिणो मयूरादेः आण्डानि भित्त्वा तदन्तःस्थितं गर्भम्  
उद्गमयति तद्वत् ॥

बृहस्पतिदेवने गुहास्थानमें शब्द करती हुई इन गौओंके नाम  
को जब जाना, तब इन पर्वतके भीतर स्थित गौओंको अपने  
आप पर्वत भेद करके इस प्रकार निकाल लिया जिस प्रकार  
मयूर आदि पक्षियोंके अण्डोंको भेद कर उसके भीतर स्थित गर्भ  
को प्रकट किया जाता है ॥ ७ ॥

अष्टमी ॥

अश्रापिनद्धं मधु पर्यपश्यन्मत्स्यं न दीन उदनि  
क्षियन्तम् ।

निष्टज्जभार चमसं न वृक्षाद् बृहस्पतिर्विरवेणा विकृत्य

अश्रा । अपिऽनद्धम् । मधु । परि । अपश्यत् । मत्स्यम् । न ।

दीने । उदनि । क्षियन्तम् ।

निः । तत् । जभार । चमसम् । न । वृक्षात् । बृहस्पतिः । विऽ-

रवेण । विऽकृत्य ॥ ८ ॥

बृहस्पतिर्देवः अश्रा अश्मना पर्वतेन अपिनद्धं मधु मधुवद्भो-  
गयोग्यं गोसमूहं पर्यपश्यत् अद्राक्षीत् । आवरणभूतपर्वतापसार-  
णेनेति शेषः । तत्र दृष्टान्तः । दीने परिक्षीणे अल्पे उदनि उदके ।  
❀ उदकशब्दस्य उदन्नादेशे “विभाषा क्षिप्रः” इत्यन्लोपा-  
भावपक्षे रूपम् ❀ । तस्मिन् क्षियन्तम् निवसन्तं मत्स्यं न मत्स्य-  
मिव । तं यथा जनः पश्यति तद्वत् । तत् गोलक्ष्णं मधु चमसं  
न वृक्षात् । चम्यते भक्ष्यते अनेनेति चमसः सोमपात्रम् । चमसं  
यथा तदुपादानभूतान्निष्कृष्य हरति तद्वत् । विरवेण विविध-  
शब्देन इम्भालक्षणेन लिङ्गेन ज्ञात्वा विकृत्य बलाख्यम् असुरं  
गोरूपधारिणं क्षिप्या निर्जभार विलान्निजहार ॥

जिस प्रकार जलके सूखने पर अल्प जलमें मनुष्य मछलीको  
देख लेता है, इसी प्रकार बृहस्पतिदेवने, आवरणभूत पर्वतको  
हटा कर पथरोंसे ढके हुए मधुकी समान भोगनेयोग्य गोसमूह  
को देखा और जैसे चमस नामक भोजनपात्रको उपादानभूत



वृक्षसे निकालते हैं तिस प्रकार हंभा आदि विविध लिंगोंसे गौओं को जान कर गोरूपधारी बल नामक असुरको मार कर गौओं को बिलसे निकाल डाला ॥ ८ ॥

नवमी ॥

सोषामविन्दत् स स्व१ः सो अग्निं सो अर्केण वि  
बबाधे तमांसि ।

बृहस्पतिर्गोवपुषो बलस्य निर्मज्जानं न पर्वणो जभार६

सः । उषाम् । अविन्दत् । सः । स्व१रिति स्वः । सः । अग्निम् ।

सः । अर्केण । वि । बबाधे । तमांसि ।

बृहस्पतिः । गोवपुषः । बलस्य । निः । मज्जानम् । न । पर्वणः ।

जभार ॥ ६ ॥

स पूर्वोक्तो बृहस्पतिः पर्वतकुहरे अन्धकारावस्थितानां गवां दशनाय उषाम् उषासम् उषसम् । ❀ छान्दसः सकारलोपः ❀ । अविन्दत् अलभत । स एव बृहस्पतिः स्वः । स्वरादित्यः । आदित्यं च प्रकाशाय अविन्दत् । एवम् असौ अग्निं च अविन्दत् । लब्ध्वा च अर्केण तेजसा तमांसि त्रि बबाधे विशेषेण बाधितवान् । तदनन्तरं गोवपुषः वृषभरूपधारिणो बलस्य असुरस्य हननेन मज्जानं न पर्वणः अस्थनः संबन्धिनं मज्जानम् षष्ठं धातुं पर्वणः अस्थिपर्वसकाशाद् यथा बलाद् निर्हन्ति तद्वत् गा निर्जभार निष्कृष्य आहूतवान् ॥

इन बृहस्पतिदेवने पर्वतकी गुफामें अन्धकारमें पड़ी हुई गौओं को देखनेके लिये उषाको पाया, और इन ही बृहस्पतिदेवने सूर्य को भी प्रकाशके लिये प्राप्त किया, और अग्निको भी प्राप्त किया ।

और प्राप्त करके तेजसे अन्धकारोंको विशेषरूपसे नष्ट कर डाला, तदनन्तर वृषभका रूप धारण करने वाले असुरको नष्ट करके अस्थियोंके जोड़से मञ्जा नष्ट करनेकी समान वल्लपूर्वक गौओंको निकाल लिया ॥ ६ ॥

दशमी ॥

हिमेव पर्णा मुषिता वनानि बृहस्पतिनाकृपयद् बलो

गाः ।

अनानुकृत्यमपुनश्चकार यात् सूर्यामासा मिथ उच्चरातः

हिमाऽइव । पर्णा । मुषिता । वनानि । बृहस्पतिना । अकृपयत् ।

बलः । गाः ।

अननुकृत्यम् । अपुनरिति । चकार । यात् । सूर्यामासा । मिथः ।

उत्सचरातः ॥ १० ॥

बृहस्पतिना देवेन हिमेव पर्णा हिमानि पर्णानीव । यथा हिमानि पर्णानि निःसाराणि कृत्वा मुष्णन्ति एवं वनानि वननीयानि वनानि गोलक्षणानि मुषिता मुषितानि आसन् । स च बलोपि गाः मुषिता अकृपयत् । प्रायच्छद् इत्यर्थः । किं च स बृहस्पतिः तादृक् कर्म अननुकृत्यम् अन्यैरननुकरणीयम् अन्येन कर्तुम् अशक्यं तथा अपुनः न विद्यते पुनस्तत् कर्म यस्मिन् तद् अपुनः पुनःकरणरहितं च चकार कृतवान् । अन्यकर्तव्यरहितं स्वेनपि पुनः कर्तव्यरहितं चाकरोद् इत्यर्थः । किं तत् कर्मेति उच्यते । यात् । यद् इत्यर्थः । ॐ छान्दसो दीर्घः ॐ । सूर्यामासा । मस्यते परिमीयते स्वकलावृद्धिहानिभ्याम् इति माश्वन्द्रमाः । मातीति वा माश्वन्द्रः । सूर्याचन्द्रमसौ । ॐ “देवताद्वन्द्वे

च" इति आनङ् । "देवताद्वन्द्वे च" इति उभयपदप्रकृतिस्वर-  
स्वम् । "सुपां सुलुक्०" इत्यादिना विभक्तेराकारः ॐ । तौ  
मिथः परस्परम् अहोरात्रयोः उच्चरातः उच्चरतः ऊर्ध्वं गच्छत इति  
यत् तच्चकार ॥

बृहस्पति नामक देवने, हिम जैसे पत्तों को निःसार करके ग्रहण  
कर लेता है तिस प्रकार, सेवनीय गोरूप धनको ग्रहण कर  
लिया था । और बलने भी चुराई हुई गौएँ बृहस्पतिजीको देदी  
यीं । तथा बृहस्पति देवने एक और भी ऐसा कर्म किया है, कि-  
दूसरे उसको नहीं कर सकते और उन्हें भी उसको दूसरी बार  
नहीं करना पड़ा । वह कर्म यह है, कि—सूर्य और चन्द्रमा दिन  
और रातको करते हुए ऊपर विचरणा करते रहते हैं ॥ १० ॥

एकादशी ॥

अभि श्यावं न कृशनेभिश्च नक्षत्रेभिः पितरो द्याम-  
पिंशन् ।

राज्यां तमो अदधुज्योतिरहन् बृहस्पतिर्भिनदद्रिं विदद्  
गाः ॥ ११ ॥

अभि । श्यावम् । न । कृशनेभिः । अश्वम् । नक्षत्रेभिः । पितरः ।  
द्याम् । अपिंशन् ।

राज्याम् । तमः । अदधुः । ज्योतिः । अहन् । बृहस्पतिः । भिनत् ।  
अद्रिम् । विदत् । गाः ॥ ११ ॥

बृहस्पतिर्देवः यदा अद्रिम् गवाम् आच्छादकं गिरिं भिनत्  
अभिनद् विदारितवान् विदार्य च यदा गाश्च विदत् । ॐ विद्मः  
लाभे । लुङि लृटित्वाद् अङ् ॐ । तदा पितरः पालका देवा



इन्द्राद्याः श्यावं न अश्वम् कपिशवर्णम् अश्वमिव तं यथा लोके  
 कुशनेभिः । कुशनम् इति सुवर्णनाम । कुशनैः सुवर्णमयैराभरणैः  
 पिशन्ति अलंकुर्वन्ति एवं नक्षत्रेभिः । नक्षत्रात् नाशात्त्रायन्तीति  
 नक्षत्राणि न विद्यते क्षत्रं बलम् एषाम् इति वा नक्षत्राणि ग्रह-  
 तारकादीनि । तैः धाम् द्युलोकम् अपिशन् अलंचक्रुः । ॐ पिश  
 अवयवे । रुधादिः ॐ । एवं रात्र्याम् । निशि तमः अन्धकारम्  
 अदधुः स्थापितवन्तः । एवम् अहन् अहनि ज्योतिः सर्वस्य दीपकं  
 तेजः आदित्याख्यम् अददुः ॥

जब बृहस्पतिदेवने गौओंके आच्छादक गिरिको विदीर्ण  
 किया और विदीर्ण करके गौओंको प्राप्त किया, उस समय पालक  
 देवता ( पितर ) इन्द्र आदिने, कपिश वर्ण वाले घोड़ेको जिस  
 प्रकार सुवर्णके आभूषणोंसे अलंकृत करते हैं, तिस प्रकार  
 द्युलोकको नक्षत्रोंसे अलंकृत किया था । और उन्होंने रात्रिमें  
 अंधकारको स्थापित किया तथा दिनमें सबको दिपाने वाले तेज  
 सूर्यको स्थापित किया ॥ ११ ॥

द्वादशी ॥

इदमकर्म नमो अभियाय यः पूर्वोऽन्वानोनवीति ।

बृहस्पतिः स हि गोभिः सो अश्वैः स वीरेभिः स

नृभिर्नो वयो धातु ॥ १२ ॥

इदम् । अकर्म । नमः । अभियाय । यः । पूर्वोः । अनु । आऽ-  
 नोनवीति ।

बृहस्पतिः । सः । हि । गोभिः । सः । अश्वैः । सः । वीरेभिः ।

सः । नृभिः । नः । वयः । धातु ॥ १२ ॥

अभ्रियाय अभ्रम् अर्हतीति अभ्रियः । ❀ “०अभ्राद् घः”  
इति घप्रत्ययः ❀ । मेघविदारणेन जलं प्रयच्छते बृहस्पतये इदं  
नमः नमस्कारोपलक्षितम् अन्नम् अन्नसाधनं वा स्तोत्रम् अकर्म  
वयम् अकार्ष्णम् । ❀ करोतेर्लुङि “मन्त्रे घस०” इत्यादिना क्ले-  
र्लुङि कृते “छन्दस्युभयथा” इति तिङ् आर्धधातुकत्वाद् ङिङ्-  
ज्ञावाभावे गुणः ❀ । यो बृहस्पतिः पूर्वीः बह्वीश्चः अनुक्रमेण  
आनोनवीति अत्यर्थम् आभिमुख्येन ब्रवीति साधु स्तुतवान् इति  
ब्रूते । स हि स खलु बृहस्पतिः नः गोभिः बह्वीभिः सहितं वयः  
अन्नम् अधात् प्रयच्छत्विति संबन्धः । एवम् उत्तरत्रापि योज्यम् ।  
स एव बृहस्पतिः अश्वैर्बहुभिः सहितं वयोधात् । स बृहस्पतिः  
वीरेभिः वीरैः पुत्रैरुपेतं वयोधात् । स च बृहस्पतिः नृभिः नेतृ-  
भिर्भृत्यादिभिः सहितं वयोधात् ॥

इति द्वितीयेनुवाके तृतीयं सूक्तम् ॥

मेघको विदीर्ण करके जलको प्रदान करनेवाले बृहस्पति देवके  
लिये हम इस हवि वा स्तोत्रको अर्पण करते हैं, कि—जो बृहस्पतिदेव  
बहुतसी ऋचाओंके विषयमें अनुक्रमसे कहते हैं कि—बड़ी अच्छी  
स्तुति हुई । वह बृहस्पति देव हमको गौओं सहित अन्न प्रदान  
करें, वह घोड़ों सहित, पुत्रोंसहित और भृत्य आदिसे सम्पन्न  
अन्न प्रदान करें ॥ १२ ॥

द्वितीय अनुवाकमें तृतीय सूक्त समाप्त ( ६३२ ) ।

“अच्छा म इन्द्रम्” इति सूक्तमपि तत्रैव उक्त्ये ब्रह्मशस्त्रे  
विनियुक्तम् । तत्र “बृहस्पतिर्नः परि पातु” [११] इत्येषा परि-  
धानीया । “बृहस्पते युवमिन्द्रश्च” [१२] इत्येषा शस्त्रयाज्या ॥

“अच्छा म इन्द्रम्” यह सूक्त भी तहाँ ही उक्त्यमें ब्रह्मशस्त्र  
में विनियुक्त होता है । तहाँ “बृहस्पतिर्नः परि पातु” (११) यह  
परिधानीया है । “बृहस्पते युवमिन्द्रश्च” (१२) यह शस्त्रयाज्या है

तत्र प्रथमा ॥

अच्छां म॒ इन्द्रं॑ म॒तयः॑ स्व॒र्विदः॑ स॒ध्रीची॑र्वि॒श्वां उ॒श-  
तीर॑नूषत ।

परि॑ ष्वजन्ते॒ जन॑यो॒ यथा॑ पतिं॒ मर्यं॑ न शु॒न्ध्युं म॒घ-  
वान॑मूतये ॥ १ ॥

अच्छ॑ । मे॒ । इन्द्र॑म् । म॒तयः॑ । स्व॒र्विदः॑ । स॒ध्रीचीः॑ । वि॒श्वाः ।  
उ॒शतीः॑ । अ॒नूष॒त ।

परि॑ । स्व॒जन्ते॑ । जन॑यः । यथा॑ । पति॑म् । मर्य॑म् । न । शु॒न्ध्युम् ।  
म॒घवा॑नम् । ऊ॒तये॑ ॥ १ ॥

इन्द्रं देवम् अच्छ अभिमुखीकृत्य मे मम सुहस्त्यस्य घौषेयस्य  
मतयः स्तुतयः अनूषत स्तुवन्ति । ❀ नु स्तुतौ । च्लेः सिच् ।  
“लिङ्सिचावात्मनेपदेषु” इति किद्वद्भावाद गुणाभावः ❀ ।  
मतयो विशेष्यन्ते । स्वर्विदः स्वर्गस्य सुखस्य वा लम्भयिज्यः  
सध्रीचीः सहाश्रनाः परस्परं संगताः । ❀ अश्नु गतिपूजनयोः ।  
“ऋत्विग्दधृक्स्त्रिगुं” इत्यादिना नकारलोपः । सहस्य सध्रया-  
देशः । “अश्नतेश्चोपसंख्यानम्” इति ङीप् । भसंज्ञायाम्  
“अचः” इत्यकारलोपः ❀ । विश्वाः व्याप्ता उशतीः इन्द्रं काम-  
यमानाः । आदरातिशयद्योतनाय उक्तमेवार्थं सदृष्टान्तं पुनराह  
परि ष्वजन्त इति । जनयः जनयन्ति उत्पादयन्ति अपत्यम् इति  
जनयो योषिनः । ता यथा पतिं परि ष्वजन्ते दृढम् आलिङ्गन्ति ।  
किं च शुन्ध्युम् शोधकं मर्यं न मर्त्यमिव यथा पित्रादिकं दूराद्  
आगतं पुत्रादयो बन्धुजना ऊतये स्वरक्षणाय परिष्वजन्ते तद्वद्



मघवानम् मघवन्तं धनवन्तम् इन्द्रम् ऊतये रक्षणेयमे मतयः परि  
ष्वजन्ते । निर्धनस्य रक्षाकरणायोगाद् मघवन्तम् इत्युक्तम् ॥

इन्द्रदेवको लक्ष्यमें रख कर मुझ सुन्दर हाथ और घोष वाले  
की स्तुतियों स्तुति करती हैं । यह स्तुतियों स्वर्गकी प्राप्ति कराने  
वाली हैं, परस्पर मिली हुई हैं, व्याप्त हैं और इन्द्रकी कामना करती  
रहती हैं । जिस प्रकार सन्तानको उत्पन्न करने वाली स्त्रियों  
पतिका दृढ़तासे आलिंगन करती हैं और जिस प्रकार शोधक  
पिता आदिको दूरसे आते देख कर पुत्र आदि बांधव अपनी  
रक्षाके लिये उससे लिपट जाते हैं । इसी प्रकार धनवान् इन्द्रको  
रक्षाके लिये मेरी स्तुतियों आलिंगन करती हैं ॥ १ ॥

द्वितीया ॥

न घा त्वद्रिगप वेति मे मनस्त्वे इत् कामं पुरुहूत  
शिश्नय ।

राजेव दस्म नि षदोधि बर्हिष्यस्मिन्त्सु सोमेवपानं-  
मस्तु ते ॥ २ ॥

न । घ । त्वद्रिक् । अप । वेति । मे । मनः । त्वे इति । इत् ।

कामम् । पुरुहूत । शिश्नय ।

राजाऽइव । दस्म । नि । सदः । अधि । बर्हिषि । अस्मिन् । सु ।

सोमे । अवऽपानम् । अस्तु । ते ॥ २ ॥

हे पुरुहूत बहुभिराहूत इन्द्र त्वद्रिक् त्वां गच्छत् मे मम मनः  
न घ न खलु अप वेति अपगच्छति कदाचिदपि त्वत्तो नापसरति  
किं तु त्वे इत् त्वय्येव कामम् अभिलाषं शिश्नय श्रयनि आश्र-

यति । ॐ श्रिञ् सेवायाम् । छान्दसे लिटि “एलुत्तमो वा” इति वृद्ध्यभावे रूपम् ॐ । यस्माद् एवं तस्मात् हे दस्म शत्रूणाम् उपक्षयितः दर्शनीय वा इन्द्र त्वं राजेव यथा राजा सिंहासने निषीदति । एवम् अधि बर्हिषि । ॐ अधिः सप्तम्यर्थानुवादी ॐ । आस्तीर्णे दर्भे निषदः निषीद । निषीदतेऽत्र को लाभ इति उच्यते । अस्मिन् सोमे सोमयागे संस्कृते वा सोमे ते तव अवपानम् अवनतं पानम् अस्तु भवतु ॥

हे पुरुहूत इन्द्र ! आपको प्राप्त होता हुआ मेरा मन, कभी भी आपसे अलग नहीं होता है, किंतु आपमें ही अभिलाषा रखता है । इस कारण हे शत्रुओंका संहार करने वाले इन्द्र ! जिस प्रकार राजा सिंहासन पर बैठता है, तिस प्रकार कुशासन पर बैठिये । इस संस्कृतसोमयागमें आपका अवपान होवे ॥२॥

तृतीया ॥

विषू॒वृदिन्द्रो॒ अ॒म॒ते॒रु॒त जु॒धः॒ स इ॒द्रा॒यो म॒घ॒वा व॒स्व ई॒श॒ते ।

तस्ये॒दि॒मे प्र॒व॒णे स॒प्त सि॒न्ध॒वो व॒यो वर्ध॑न्ति वृष॒भस्य॑ शु॒ष्मि॒णः ॥ ३ ॥

वि॒षुऽवृ॒त् । इन्द्रः । अ॒म॒तेः । उ॒त । जु॒धः । सः । इ॒त् । रा॒यः ।

म॒घ॒वा । व॒स्वः । ई॒श॒ते ।

तस्य । इ॒त् । इ॒मे । प्र॒व॒णे । स॒प्त । सि॒न्ध॒वः । व॒यः । वर्ध॑न्ति ।

वृष॒भस्य॑ । शु॒ष्मि॒णः ॥ ३ ॥

इन्द्रो देवः अस्वाकम् अमतेः दारिद्र्यस्य शून्याया मतेर्वा

वर्ततेः विषूदत् विष्वग् वर्तयिता प्रच्यावयिता भवतु । ❀ विषु-  
शब्दोपपदाद् वर्ततेः विवप् ❀ । उत अपि च इन्द्रः क्षुधः बुभु-  
क्षाया विषूदद् भवतु । सत्स्वन्येषु देवेषु इन्द्र एव कथं प्रार्थ्यते  
इति तत्राह । स इत् स एव मघवा धनवान् इन्द्रः रायः दानार्हस्य  
वस्वः वसुनो वासकस्य धनस्य ईशते ईष्टे स्वामी भवति । ❀ “तिष्ठो  
तिष्ठो भवन्ति” इत्येकवचनस्थाने बहुवचनम् ❀ । किं च वृष-  
भस्य वर्षकस्य शुष्मिणः बलवतः तस्येत् तस्यैवेन्द्रस्य संबन्धिनः  
इमे प्रसिद्धाः सप्त सिन्धवः स्यन्दनशीलाः “इमं मे गङ्गे” [ ऋ०  
१०. ७५. ५ ] इतिमन्त्रोक्ता गङ्गाद्याः सप्त सिन्धवः प्रवणे अव-  
नते देशे वयो वर्धन्ति अन्नं समर्धयन्ति । ❀ वृधु वृद्धौ । णिच् ।  
“छन्दस्युभयथा” इत्यार्धधातुकसंज्ञायां णिलोपः ❀ ॥

इन्द्रदेव हमारी दरिद्रताको भली भाँति नष्ट करने वाले बनें,  
और इन्द्रदेव हमारी भूखको दूर करें ( और देवताओंके होने  
पर भी इन्द्रदेवकी ही प्रार्थना क्यों की जाती है तो कहते हैं,  
कि—)यह धनी इन्द्र ही वासक धनके स्वामी हैं । और इन वर्षक  
बली इन्द्रदेवकी ही गंगा आदि सात नदियें अवनत स्थानमें  
अन्नको बढ़ाती हैं ॥ ३ ॥

चतुर्थी ॥

वयो न वृत्तं सुपलाशमासदन्त्सोमास इन्द्रं मन्दिन-  
श्चमूषदः ।

प्रेषामनीकं शवसा दविद्युतद् विदत् स्वर्धनवे  
ज्योतिरार्यम् ॥ ४ ॥

वयः । न । वृत्तम् । सुपलाशम् । आ । असदन् । सोमासः ।

इन्द्रम् । मन्दिनः । चमूषदः ।



प्र । एषाम् । अनीकम् । शवसा । दविद्युतत् । विदत् । स्वः ।

मनवे । ज्योतिः । आर्यम् ॥ ४ ॥

वयो न वृत्तम् यथा वयः पक्षिणः सुपलाशम् शोभनपर्णोपेतं पल्लवितं वृत्तम् आसीदन्ति तद्वद् मन्दिनः मदकराः चमूषदः चम्बोरधिषवणफलकयोरवास्थिताः सोमासः सोमा इन्द्रम् आसदन् । एषां सोमानाम् अनीकम् समूहो मुखं वा शवसा दविद्युतत् द्योतते । ❀ “दाधर्ति दधर्ति” इत्यादिना यङ्लुगन्ताद् द्योतेः शतरि अभ्यासस्य संप्रसारणाभावः अभ्यासस्य अत्वं विगागमश्च निपात्यते । “अभ्यस्तानाम् आदिः” इत्याद्युदात्तः ❀ । किं च तद् अनीकं स्वः आदित्याख्यम् आर्यम् अर्यम् अरणीयम् अभिगमनीयं ज्योतिः मनवे मनुष्याय मनुष्याणां प्रकाशाय विदत् अविदत् प्रायच्छद् इत्यर्थः ॥

जैसे पक्षी सुन्दर पत्तों वाले पल्लवित वृत्त पर बैठते हैं, इसी प्रकार मद करने वाले अधिषवणके फलकों पर स्थित सोम इन्द्र का आश्रय लेते हैं । इन सोमोंका मुख दमकता रहता है । उस मुखने आदित्य नाम वाली सेवनीय ज्योतिको मनुष्योंके प्रकाश के लिये दिया है ॥ ४ ॥

पञ्चमी ॥

कृतं न श्वघ्नी वि चिनोति देवने संवर्गं यन्मघवा सूर्यं जयत् ।

न तत् ते अन्यो अनु वीर्यं शकन्न पुराणो मघवन् नोत नूतनः ॥ ५ ॥

कृतम् । न । श्वघ्नी । वि । चिनोति । देवने । समुस्वर्गम् ।

यत् । मघवा । सूर्यम् । जयत् ।

न । तत् । ते । अन्यः । अनु । वीर्यम् । शक्त् । न । पुराणः ।

मघऽवन् । न । उत । नूतनः ॥ ५ ॥

कृतं न श्वघ्नी । वर्षव्यत्ययेन सकारस्य शकारः । स्वम्  
आत्मानं हन्त्यनेनेति श्वघ्नं घृतम् । तद् अस्यास्तीति श्वघ्नी ।  
यद्वा स्वम् आत्मानं हतवान् श्वघ्नी कितवः । स यथा देवने घृते  
कृतम् कृतशब्दवाच्यं लाभहेतुम् अयं विचिनोति विचयं करोति  
एवम् इन्द्रम् अस्मदीया स्तुतिः देवने क्रीडने प्रमोदे वा निमित्त-  
भूते सति वि चिनोति । ॐ श्वघ्नीति । स्वशब्दोपपदात् हन्तेः  
“घञर्थे कविधानम्” इति कप्रत्ययः । “अत इनिठनौ” इति  
इनिप्रत्ययः । यद्वा “बहुलं छन्दसि” इति वचनाद् ब्रह्मादिव्य-  
तिरिक्तेऽप्युपपदे हन्तेः क्विप् । “अन्नेभ्यः०” इति ङीप् । “अल्लो-  
षोनः” इत्यकारलोपः । “हो हन्तेः०” इति घत्वम् । व्यत्ययेन  
स्त्रीलिङ्गता ॐ । यत् यस्मात् कारणाद् मघवा धनवान् इन्द्रः  
संवर्गं रसस्य तमसो वा संवर्जकं सूर्यं देवं जयत् अजयत् । सकल-  
जगत्प्रकाशनाय दिवि स्थापितवान् इत्यर्थः ॥ अथ प्रत्यक्षकृतः ।  
हे मघवन् इन्द्र ते तव तत् उक्तलक्षणं वीर्यम् अन्यस्त्वत्तोऽपरो  
नानु शक्त् अनुकर्तुं न शक्नोति । अन्यमेव विशिनष्टि । त्वत्तो-  
ऽन्यः पुराणः पूर्वकालीनः नानु शक्त् । उत अपि च नूतनः  
आधुनिकोपि नानु शक्त् ॥

जैसे जुआरी जुएमें लाभ देने वाले कृत नामक फाँसेका वरण  
करता है, इसी प्रकार हमारी स्तुति प्रमोदके लिये इन्द्रका वरण  
करती है, क्योंकि— इन्द्रदेवने अंधकारको दूर करने वाले संवर्जक  
सूर्यको सकल जगत्को प्रकाशित करनेके लिये ग्लोकमें स्थापित  
कर दिया है । हे इन्द्रदेव ! आपके ऐसे वीर्यकी और कोई अनु-  
कृति ( नकल ) नहीं कर सकेगा, और आपसे प्राचीन भी कोई

ऐसा काम नहीं कर सका था और आज कलका भी कोई नहीं कर सका है ॥ ५ ॥

षष्ठी ॥

विशंविशं मघवा पर्यशायत् जनानां धेनां अवचा-  
कशद् वृषा ।

यस्याह शक्रः सवनेषु रणयति स तीव्रैः सोमैः सहते  
पृतन्यतः ॥ ६ ॥

विशम् विशम् । मघऽवा । परि । अशायत् । जनानाम् । धेनाः ।

अवऽचाकशत् । वृषा ।

यस्य । अह । शक्रः । सवनेषु । रणयति । सः । तीव्रैः । सोमैः ।  
सहते । पृतन्यतः ॥ ६ ॥

वृषा कामानां वर्षिता मघवा धनवान् । अभिमतप्रदानं धन-  
वत एव युज्यत इत्यस्य प्रकृष्टधनवत्त्वाभिधानाय अत्र मघवेत्यु-  
क्तम् । उक्तगुणक इन्द्रो विशंविशम् तंतं यजमानं पर्यशायत् परि-  
शेते । ये ये यष्टारः सन्ति तांस्तान् सर्वानपि स्वविभूत्या समकाल  
एव प्राप्तवान् इत्यर्थः । किं च जनानाम् स्तोतृणां धेनाः प्रीण-  
यित्रीः स्तुतीरेककाल एव अवचाकशत् । ॐ पश्यतिकर्मैतत् ॐ ।  
अभिपश्यति । स्तोत्रं शृणोतीत्यर्थः । एवं शक्रः शक्त इन्द्रो यस्य  
यजमानस्य सवनेषु त्रिष्वपि रणयति रमते । ॐ रणतिः क्रीडा-  
कर्मा । व्यन्ययेन श्यन् । यच्छब्दयोगाद् अनिघातः ॐ । स  
यजमानः तीव्रैः अत्यन्तमदकरैः सोमैः सोमरसैः । ॐ सवनत्र-  
यापेक्षया बहुवचनम् ॐ । सोमपानेन पृतन्यतः संग्रामम् इच्छतः  
शत्रून् सहने अभिभवति ॥



कामनाओंकी वर्षा करने वाले धनवान् इन्द्रदेव जो २ पूजा करने वाले हैं उन सबके पास अपनी विभूतिसे एक समयमें ही प्राप्त होजाते हैं। और स्तोता मनुष्योंकी प्रसन्न करनेवाली स्तुतियों को एक समयमें ही सुनते हैं ऐसे समर्थ इन्द्रदेव जिस यजमानके तीनों सबनोंमें रमण करते हैं वह यजमान बड़ा मद करने वाले सोमपानके प्रभाववश सेना लेकर संग्राम करना चाहने वाले शत्रुओंको दबा देता है ॥ ६ ॥

सप्तमी ॥

आपो न सिन्धुमभि यत् समक्षरन्त्सोमास इन्द्रं  
कुल्या इव हृदम् ।

वर्धन्ति विप्रा महो अस्य सादने यवं न वृष्टिर्दिव्येन  
दानुना ॥ ७ ॥

आपः । न । सिन्धुम् । अभि । यत् । सम्ऽअक्षरन् । सोमासः ।

इन्द्रम् । कुल्याऽइव । हृदम् ।

वर्धन्ति । विप्राः । महः । अस्य । सादने । यवम् । न । वृष्टिः ।

दिव्येन । दानुना ॥ ७ ॥

यत् यदा सोमासः सोमाः आपो न सिन्धुम् आपः सिन्धुम् समुद्रमिव कुल्याः अल्पाः सरितश्च हृदमिव इन्द्रं देवं प्रति अभि समक्षरन् अभिक्षरन्ति तदा विप्राः मेघाविनः स्तोतारः सादने यज्ञगृहे अस्य इन्द्रस्य महः माहात्म्यं वर्धन्ति वर्धयन्ति । स्तुतिभिरिति शेषः । अभिवर्धने दृष्टान्तः यवं न वृष्टिरिति । वृष्टिः । वर्षतीति वृष्टिर्मेघः । स यथा दिव्येन दिनि भवेन दानुना उदकदानेन वृष्टिरेव वा दिव्येन स्वकीयेन दानेन यवं न यवमिव तं यथा वर्धयति तद्वत्

जब सोम, जलके सिंधुमें प्रवेश करनेकी समान, छोटी २ नदियोंके सरोवरमें प्रवेश करनेकी समान, इंद्रदेवकी ओर अभि-  
क्षरण करते हैं, तब स्तुति करने वाले विद्वान् पुरुष यज्ञगृहमें इन  
इंद्रदेवके माहात्म्यको स्तुतियोंसे बढ़ाते हैं। जैसे मेघ दिव्य जलदान  
से यवको बढ़ाते हैं इसी प्रकार स्तोता स्तुतियोंसे इंद्रको बढ़ाते हैं ७

अष्टमी ॥

वृषा न क्रुद्धः पतयद् रजःस्वा यो अर्यपत्नीरकृणोदिमा  
अपः ।

स सुन्वते मघवा जीरदानवेविन्दज्ज्योतिर्मनवे हवि-  
ष्मते ॥ ८ ॥

वृषा । न । क्रुद्धः । पतयत् । रजः । सु । आ । यः । अर्यपत्नीः । अकृ-  
णोत् । इमाः । अपः ।

सः । सुन्वते । मघवा । जीरदानवे । अविन्दत् । ज्योतिः ।  
मनवे । हविष्मते ॥ ८ ॥

य इंद्रः अर्यपत्नीः अर्येण अभिगन्त्रा आदित्येन पालिता इमाः  
प्रसिद्धा अपः उदकानि अकृणोत् करोति भूमिष्ठानि करोति स  
इन्द्रो वृषा न क्रुद्धः यथा क्रुद्धः क्रोधेन अन्धीभूतो वृषा वृषभः  
सर्वतः पतति गच्छति स्वप्रतिमल्लं वृषभं पराभवितुम् एवं स इन्द्रो  
रजःसु लोकेषु आ सर्वतः पतयत् पतति गच्छति । मेघं दारयि-  
तुम् इति शेषः । अनन्तरं मघवा धनवान् इन्द्रः सुन्वते सोमाभि-  
पत्रं कुर्वते जीरदानवे क्षिप्रदानाय शीघ्रं हविः प्रयच्छते हविष्मते  
हविर्भिः सोमादिभिस्तद्गते मनवे मननवते यजमानाय ज्योतिः प्रका-  
शकं तेजः अविन्दत् अलभत प्रायच्छत् प्रयच्छति ॥

जो इंद्रदेव सूर्यसे पालित इन जलोंको भूमिष्ठ करते हैं, वह इंद्रदेव क्रोधमें भरा हुआ बैल जैसे अपने प्रतिभट मन्त्र का पराभव करनेके लिये सर्वतो भावसे जाता है, इसी प्रकार लोकों पर मेघको विदीर्ण करनेके लिये पूर्णरीतिसे गमन करते हैं, इसके अतिरिक्त वह धनी इंद्र, सोमाभिषेक करने वाले, शीघ्रतासे हवि प्रदान करने वाले हविष्मान् यजमानके लिये तेज प्रदान करते हैं ॥ ८ ॥

नवमी ॥

उज्जायतां परशुज्योतिषा सह भूया ऋतस्य सुदुघा  
पुराणवत् ।

वि रोचतामरुषो भानुना शुचिः स्वर्णं शुक्रं शुशुचीत  
सत्पतिः ॥ ६ ॥

उत् । जायताम् । परशुः । ज्योतिषा । सह । भूयाः । ऋतस्य ।

सुदुघा । पुराणवत् ।

वि । रोचताम् । अरुषः । भानुना । शुचिः । स्वर्णः । न । शुक्रम् ।

शुशुचीत । सत्पतिः ॥ ६ ॥

परशुः इंद्रस्य वज्रः ज्योतिषा स्वतेजसा सह उज्जायताम् ऊर्ध्वं प्रादुर्भवतु मेघविदारणार्थम् । किं च ऋतस्य उदकस्य संबन्धिनी सुदुघा सुष्ठु दोहयित्री माध्यमिका वाक् । ❀ “दुहः कध्वश्च” इति कप् । इकारस्य घकारः ❀ । पुराणवत् पूर्वं यथा इदानीमपि एवं भूयाः भूयात् । ❀ पुरुषव्यत्ययः ❀ । किं च अरुषः आरोचमानो भानुना स्वतेजसा शुचिः प्रज्वलन् वि रोच-



ताम् प्रकाशताम् । उक्तमेवार्थं सदृष्टान्तं पुनराह । स्वर्ग्यं शुक्रम्  
स्वः आदित्यः स यथा शुक्रम् दीप्तं तेजः प्रकाशयति । तेजसा  
स्वयं दीप्यत इत्यर्थः । एवं सत्पतिः सतां पालक इन्द्रः शुशुचीत  
अत्यन्तं दीप्यताम् । ॐ शुच शोके । व्यत्ययेन आत्मनेपदम् ।  
लिङि “बहुलं छन्दसि” इति शपः श्लुः । सीयुडादिः ॐ ॥

इंद्रदेवका वज्र मेघका विदारण करनेके लिये अपने तेजके  
साथ ऊपरको प्रकट होवे । और जलको दुहने वाली माध्यमिका  
वाणी पहिलेकी समान इस समय भी प्रकट होवे । और अपने  
तेजसे दमकती हुई प्रकाशित होवे और जैसे दमकता हुआ सूर्य  
अपने तेजसे अपने आप ही दमकता है, इसी प्रकार सज्जनोंके  
पालक इंद्रदेव परम प्रदीप्त हों ॥ ६ ॥

दशमी ॥

गोभिष्टरेमामतिं दुरेवां यवेन क्षुधं पुरुहूत विश्वाम् ।  
वयं राजभिः प्रथमा धनान्यस्माकेन वृजनेना जयेम  
गोभिः । तरेम । अमतिम् । दुःस्पृशाम् । यवेन । क्षुधम् । पुरुहूतम् ।  
विश्वाम् ।

वयम् । राजऽभिः । प्रथमाः । धनानि । अस्माकेन । वृजनेन ।  
जयेम ॥ १० ॥

हे पुरुहूत बहुभिराहू । इन्द्र वयं घौषेयाः सुहस्त्या यजमाना-  
स्त्वयानुगृहीताः सन्तो गोभिः त्वया दत्ताभिः दुरेवाम् दुष्टगम-  
नाम् अमतिम् दारिद्र्यं तरेम निस्तराम । किं च यवेन । उपलक्ष-  
णम् एतत् । त्वया दत्तैर्यवव्रीह्यादिभिः विश्वाम् सर्वा पुत्रभृत्या-  
दिविषयां क्षुधम् अशनेच्छाम् । तरेमेति शेषः । किं च प्रथमाः

तवानुग्रहेण समानानां मध्ये मुख्यभूता वयं राजभिः क्षत्रियैर्भू-  
पालैर्धनानि बहूनि । लभेमहीति शेषः एषु संपन्नेषु सत्सु अस्मा-  
केन अस्मत्संबन्धिना । ❀ संबन्धार्थे अणि विहिते “तस्मिन्नणि  
चयुष्माकास्माकौ” इति अस्माकादेशः । वृद्धयभावश्चान्दसः ❀ ।  
वृजनेन बलेन जयेम । शत्रून् इति शेषः ॥

हे पुरुहूत इंद्र ! हम यजमान आपका अनुग्रह पाते हुए आप  
की दी हुई गौओंसे दुर्दशामें डालने वाले दरिद्रके पार जावें ।  
और आपके दिये हुए जौ धान आदिसे पुत्र भृत्य आदिकी भूख  
को दूर कर सकें । और आपके अनुग्रहसे समान पुरुषोंमें मुख्य  
हुए हम राजाओंसे बहुतसे धनको प्राप्त करें, इन सबके होनेपर  
हम अपने बलसे शत्रुओंको जीतें ॥ १० ॥

एकादशी ॥

बृहस्पतिर्नः परि पातु पश्चादुतोत्तरस्मादधरादघायोः  
इन्द्रः पुरस्तादुत मध्यतो नः सखा सखिभ्यो वरिवः  
कृणोतु ॥ ११ ॥

बृहस्पतिः । नः । परि । पातु । पश्चात् । उत । उत्तरस्मात् ।

अधरात् । अघायोः ।

इन्द्रः । पुरस्तात् । उत । मध्यतः । नः । सखा । सखिभ्यः ।

वरिवः । कृणोतु ॥ ११ ॥

बृहस्पतिर्देवः पश्चात् पश्चिमदेशाद् आगच्छतः अघायोः अघं  
पापं परेषाम् इच्छतो हिंसकात् । ❀ “छन्दसि परेच्छायाम्” इति  
क्यच् प्रत्ययः । “क्याच्छन्दसि” इति उपत्ययः । “अश्वाघस्यात्”  
इति आत्वम् । प्रत्ययस्वरः ❀ । तस्माद् नः अस्माम् परि पातु

सर्वतो रक्षतु । उत अपि च उत्तरस्माद् अधराच्च देशाद् आ-  
गच्छतः अघायोः नः अस्मान् परि पातु । एवम् इन्द्रोपि देवः  
पुरस्ताद् आगच्छतः अघायोः परि पातु । मध्यतः मध्यमाद् देशा-  
दप्यागच्छतः परि पातु । एवं सर्वतो रक्षां कृत्वा सखा मित्रभूत  
इन्द्रः सखिभ्यः सखिभूतेभ्यः अस्मभ्यं वरिवः । धननामैतत् ।  
धनं कृणोतु करोतु प्रयच्छतु । हविःप्रदानवरप्रदानाभ्यां परस्परं  
सखिभावो द्रष्टव्यः ॥

बृहस्पतिदेव हमको, दूसरेके लिये हिंसारूपी पापको चाहने  
वाले हिंसक-अघायुसे सर्वत्र बचावें । और उत्तर तथा अधर दिशा  
से आते हुए अघायुसे हमको बचावें । इंद्रदेव सामनेसे आते हुए  
मध्यदेशसे आते हुए हिंसकसे भी हमारी रक्षा करें । इस प्रकार  
चारों ओरसे रक्षा करके मित्रभूत इन्द्र हम मित्र बने हुआंको  
धन प्रदान करें । [ यहाँ हविः प्रदान और वरदानसे मित्रभाव  
समझना चाहिये ] ॥ ११ ॥

द्वादशी ॥

बृहस्पते युवमिन्द्रश्च वस्वो दिव्यस्येशाथे उत पार्थिवस्य  
धत्तं रयिं स्तुवते कीरये चिन्मूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः

बृहस्पते । युवम् । इन्द्रः । च । वस्वः । दिव्यस्य । ईशाथे इति ।

उत । पार्थिवस्य ।

धत्तम् । रयिम् । स्तुवते । कीरये । चित् । यूयम् । पात ।

स्वस्तिभिः । सदा । नः ॥ १२ ॥

हे बृहस्पते त्वं च इन्द्रश्च युवम् युवाम् ॥ “मथभायाश्च दि-  
वचने भाषायाम्” इति विहितम् आत्वं छन्दसि न भवति ॥



दिव्यस्य दिवि भवस्य वस्वः वसुनः ईशाथे स्वामिनो भवथः ।  
उत अपि च पार्थिवस्य पृथिवीसंबन्धिनो वस्व ईशाथे । यस्माद्  
एवं तस्मात् स्तुवते स्तोत्रं कुर्वते कीरये स्तोत्रे मह्यम् । चिद् इति  
पूरणः । रयिम् धनं धत्तम् प्रयच्छतम् । गतम् अन्यत् ॥

द्वितीयेनुवाके चतुर्थं सूक्तम् ॥

इति विंशे काण्डे द्वितीयोऽनुवाकः ॥

हे बृहस्पते ! आप और इन्द्रदेव ! दोनों दुलोकके धनके  
स्वामी हो और पृथिवीलोकके धनके भी स्वामी हो, इस कारण  
मुझ स्तुति करने वालेको धन प्रदान करो और आप अपनी  
रत्नक शक्तियोंसे सदा हमारी रक्षा करो ॥ १२ ॥

द्वितीय अनुवाकमें चतुर्थ सूक्त समाप्त ( ६३३ )

बीतवें काण्डमें द्वितीय अनुवाक समाप्त

तृतीयेनुवाके त्रयोदश सूक्तानि । तत्र आद्यानि चत्वारि  
सूक्तानि अतिरात्रे क्रतौ प्रथमपर्याये ब्राह्मणाच्छंसिनः शस्त्रे विनि-  
युक्तानि । चतुर्थसूक्तस्य अन्तिमा “य उदचीन्द्र” इत्येषा परि-  
धानीया । “अतिरात्रेहोरात्रादिभ्यः” इति प्रक्रम्य सूत्रितं वैताने ।  
“वयमुत्वा तदिदृथाः [ १ ] वयमिन्द्र त्वायवः [ ४ ] इति स्तो-  
त्रियानुरूपौ । ऊर्ध्वं सर्वत्र त्रीणि सूक्तानि । अन्त्यं पच्छः पर्यासः ।  
य उदचि [ २०. २१. ११ ] इति परिधानीया । अप्सु धूतस्य  
[ २०. ३३. १ ] इति याज्या” । इति [ वै० ४. २ ] ॥

स्तोत्रियानुरूपाणां शंसनप्रकारस्तत्रैव उक्तः । “स्तोत्रियानु-  
रूपयोः प्रथमे पर्याये प्रथमानि पदानि पुनरादायम् अर्धर्चशस्य-  
वच्छंसति । मध्यमे पर्याये मध्यमानि । उत्तम उत्तमानि” इति  
[ वै० ४. २ ] ॥

तीसरे अनुवाकमें तेरह सूक्त हैं । इनमें पहिले चार सूक्त  
अतिरात्र क्रतुके प्रथम पर्यायमें ब्राह्मणाच्छंसीके शस्त्रमें विनि-

युक्त होते हैं। चौथे सूक्तकी अंतिम “य उद् ऋचीन्द्र” ऋचा परिधानीया है। “अतिरात्रेऽहोरात्रादिभ्यः” का आरम्भ करके वैतानसूत्रमें कहा है, कि—“वयमु त्वा तदिदधाः ( १ ) वयमिन्द्र त्वायवः ( ४ ) इति स्तोत्रियानुरूपौ । ऊर्ध्व सर्वत्र त्रीणि सूक्तानि । अन्त्यं पच्छः पर्यासः । य उद्वचि ( २० । २१ । ११ ) इति परिधानीया । अप्सु धूतस्य ( २० । ३३ । १ ) इति याज्या” ( वैतानसूत्र ४ । २ ) ॥

स्तोत्रियानुरूपोंका शंसनप्रकारभी तहाँ ही कहा है, कि—“स्तोत्रियःनुरूपयोः प्रथमे पर्याये प्रथमानि पदानि पुनरादायं अर्धर्चशस्यवच्छंसति । मध्यमो पर्याये मध्यमानि । उत्तम उत्तमानि । वैतानसूत्र २ । ४

तत्र प्रथमा ॥

वयमु त्वा तदिदधा इन्द्र त्वायन्तः सखायः ।

कण्वा उक्थेभिर्जरन्ते ॥ १ ॥

वयम् । ऊं इति । त्वा । तदित् अर्थाः । इन्द्र । त्वाऽयन्तः । सखायः ।

कण्वा । उक्थेभिः । जरन्ते ॥ १ ॥

हे इन्द्र तदिदधाः तदेव स्तोत्रम् अर्थः प्रयोजनं येषां ते तदिदधाः त्वायन्तः त्वाम् आत्मन इच्छन्तो वयं सखायः तव सखिभूनाः । अथवा त्वां यन्तः सखायो वयं कण्वाः तदिदधाः तदेकप्रयोजनाः । जरन्त इत्यभिधानात् स्तुत्येकप्रयोजनत्वं गम्यते ॥ अथ परोक्षवद् आह । कण्वाः कण्वगोत्रोत्पन्ना महर्षयः कणतिः शब्दार्थः । ❀ अशुप्रर्वान्यादिना [ उ० १. १४६ ] क्वन् प्रत्ययः । निच्चाद् आद्य दात्तः । “कण्वादिभ्यो गोत्रे” इति अण् । तस्य बहुवृत्तं लुक् । स एव स्वरः ❀ । उक्थेभिः उक्थैः । उच्यन्त इत्यु-

कथानि स्तोत्राणि । तैर्जरन्ते स्तुवन्ति । ❀ जरतिर्नैरुक्तो धातुः  
स्तुत्यर्थे वर्तते ❀ ॥

हे इन्द्रदेव ! वह स्तोत्र ही हैं प्रयोजन जिनका ऐसे, आपको  
चाहते हुए, आपके मित्रभूत हम कण्वगोत्री उक्थों ( स्तोत्रों ) से  
आपकी स्तुति कर रहे हैं ॥ १ ॥

द्वितीया ॥

न घेमन्यदा पपन वज्रिन्नपसो नविष्टौ ।

तवेदु स्तोमं चिकेत ॥ २ ॥

न । घ । ईम् । अन्यत् । आ । पपन । वज्रिन् । अपसः । नविष्टौ ।

तव । इत् । ऊँ इति । स्तोमम् । चिकेत ॥ २ ॥

हे वज्रिन् वज्रवन्निन्द्र अपसः कर्मणो यागान्मनो नविष्टौ नव-  
नस्य स्तुतेरेषणायां सत्यां नवायाम् इष्टौ वा नूतने यागे कर्तव्ये  
सति । ❀ शकन्वादित्वात् पररूपत्वम् ❀ । ईम् इदानीम् अन्यत्  
त्वद्विषयाद् अपरम् अन्यदेवताविषयं स्तोत्रं न घ नैव आ पपन  
अभिष्टौमि । ❀ पनतेः स्तुतिकर्मणः उत्तमे णलि रूपम् ❀ । किं  
तु तवेदु तवैव स्तोमम् स्तोत्रं चिकेत जानामि ॥

हे वज्रधारी इन्द्रदेव ! अप्कर्म नवीन यज्ञके समय में आपके  
अतिरिक्त दूसरे देवताकी स्तुति नहीं करता हूँ किंतु आपके ही  
स्तोत्रको जानता हूँ ॥ २ ॥

तृतीया ॥

इच्छन्ति देवाः सुन्वन्तं न स्वप्नाय स्पृहयन्ति ।

यन्ति प्रमादमतन्द्राः ॥ ३ ॥

इच्छन्ति । देवाः । सुन्वन्तम् । न । स्वप्नाय । स्पृहयन्ति ।



यन्ति । प्रऽमादम् । अतन्द्राः ॥ ३ ॥

देवाः इन्द्राद्याः सुन्वन्तम् सोमाभिषवं कुर्वन्तम् यजमानम् इच्छन्ति रक्षितुम् इच्छां कुर्वन्ति । स्वप्नाय । स्वप्नशब्देन अनादरो लक्ष्यते । तद्विषयानादराय न स्पृहयन्ति नेच्छन्ति । औदासीन्यं न कुर्वन्तीत्यर्थः । ❀ “स्पृहेरीप्सितः” इति कर्मणि चतुर्थी ❀ । किं तु प्रमादम् प्रकर्षेण मादयितारं तं तस्य मदकरं सोमं वा उद्दिश्य अतन्द्राः अनलसाः सन्तो यन्ति गच्छन्त्येव । ❀ स्पृहयन्तीति । स्पृह ईप्सायाम् । चुरादिरदन्तः ❀ ॥

इन्द्र आदि देवता सोमका अभिषव करने वाले यजमान की इच्छा करते हैं—अर्थात् उसकी रक्षा करना चाहते हैं उसके विषय में उदासीनता नहीं करते हैं, किंतु प्रकृष्टतासे मदमें भरने वाले सोमको लक्ष्यमें रख आलस्यशून्य हो जाते ही हैं ॥ ३ ॥

चतुर्थी ॥

वयमिन्द्र त्वायवोभि प्र णानुमो वृषन् ।

विद्धी त्वस्य नो वसो ॥ ४ ॥

वयम् । इन्द्र । त्वायवः । अभि । प्र । नोनुमः । वृषन् ।

विद्धि । तु । अस्य । नः । वसो इति ॥ ४ ॥

हे वृषन् कामानां वर्षक इन्द्र त्वायवः त्वाम् इच्छन्तो वयम् । ❀ “सुप आत्मनः क्यच्” । “प्रत्ययोत्तरपदयोश्च” इति त्वादेशः । कृदन्तत्वात् प्रातिपदिकसङ्गायां सुपो लुक् । “क्याच्छन्दसि” इति उपत्ययः । प्रत्ययस्वरेण मध्योदात्तः ❀ । अभि प्र णानुमः आभिमुख्येन प्रकर्षेण स्तुमः । तु अपि च हे वसो वासक इन्द्र त्वमपि नः अस्मदीयम् अस्य एतत् स्तोत्रं विद्धि कामय ॥

हे कामनाओंकी वर्षा करने वाले इन्द्रदेव ! आपको चाहते हुए हम अभिमुख होकर आपकी स्तुति करते हैं, और हे वासक इन्द्र ! आप भी हमारी स्तुतिकी कामना करिये ॥ ४ ॥

पञ्चमी ॥

मा नो निदे च वक्तव्ये रन्धीरावणे ।

त्वे अपि क्रतुर्मम ॥ ५ ॥

मा । नः । निदे । च । वक्तवे । अर्यः । रन्धीः । अरावणे ।

त्वे इति । अपि । क्रतुः । मम ॥ ५ ॥

अर्यः स्वामी त्वम् हे इन्द्र नः अस्मान् निदे च निन्दकाय त्व मा रन्धीः वशं मा नैषीः । ॐ रधेलुङि सिचि “इट ईटि” इति सिञ्जलोपे “रधिजभोरचि” इति जुमि कृते “न माङ्गयोगे” इत्यङ्भावे रूपम् ॐ । वक्तवे च परुषभाषिणे च मा रन्धीः । अरावणे अदात्रे शत्रवे मा रन्धीः । अपि अपि च मम क्रतुः मदीयः संकल्पः स्तुतिलक्षणं कर्म वा त्वे त्वयि । यत् एवम् अतो निन्दकादिभ्योऽस्मान् मा रन्धीरिति संबन्धः ॥

हे स्वामी इन्द्र ! आप हमें निन्दकके वशमें न डालिये, कठोर भाषण करने वालेके वशमें न डालिये, दान न देने वाले शत्रुके वशमें न डालिये, मेरा संकल्प वा स्तुतिरूप कर्म आपके लिये ही है अतः मुझको निन्दक आदिके वशमें न डालिये ॥ ५ ॥

षष्ठी ॥

त्वं वर्मासि सप्रथः पुरोयोधश्च वृत्रहन् ।

त्वया प्रति ब्रुवे युजा ॥ ६ ॥

त्वम् । वर्म । असि । सप्रथः । पुरोऽयोधः । च । वृत्रहन् ।

त्वया । प्रति । अवे । युजा ॥ ६ ॥

हे वृत्रहन् वृत्रस्य हन्तरिन्द्र सप्रथः सर्वत्र पृथुः सर्वत्र महान् पुरोयोधश्च संग्रामे अग्रतो योद्धा त्वं मम वर्मासि कवचं भवसि । शत्रुभिर्मुक्तानाम् इष्वादीनां पुरत एव निवारणाद् वर्मत्वव्यपदेशः । तादृशेन युजा सहायभूतेन त्वया प्रति अवे शत्रून् प्रति अवीमि भर्त्सयामि । प्रतिहन्मीत्यर्थः ॥

इति तृतीयेनुवाके प्रथमं सूक्तम् ॥

हे वृत्रासुरका संहार करने वाले इन्द्र ! सर्वत्र महान् और आगे बढ़कर युद्ध करनेवाले आप मेरे कवचरूप होजाते हैं अर्थात् शत्रुओंके छोड़े हुए बाण आदिको पहिलेसे ही निवारण कर देनेके कारण आप मुझे कवचका काम देते हैं । ऐसे सहायक आपके कारण मैं शत्रुओंको धमकाता हूँ ॥ ६ ॥

तृतीय अनुवाकमें प्रथम सूक्त समाप्त ( ६३५ ) ।

“वार्त्रहत्याय शवसे” इति सूक्तस्य अतिरात्रे प्रथमपर्याये ब्राह्मणच्छंसिशस्त्रे विनियोगः उक्तः ॥

“वार्त्रहत्याय शवसे” सूक्तका अतिरात्रके प्रथमपर्यायके ब्राह्मणच्छंसिशस्त्रमें विनियोग कहा है ।

तत्र प्रथमा ॥

वार्त्रहत्याय शवसे पृननाषाहाय च ।

इन्द्र त्वा वर्तयामसि ॥ १ ॥

वार्त्रहत्याय । शवसे । पृननाऽसहाय । च ।

इन्द्र । त्वा । आ । वर्तयामसि ॥ १ ॥

वार्त्रहत्याय वृत्रहन्ननिमित्ताय । “तस्येदम्” इति अण्



द्रष्टव्यः । वृत्रघ्नः कर्म इत्यर्थे वा ब्राह्मणादित्वात् व्यञ् । विज्वाद्वा  
आद्युदात्तः ॐ । शत्रुसे बलाय अपि च पृतनाषाह्याय परकीय  
सेनाभिभवाय । ॐ षट् अभिभवे इत्यस्माद्भावे “शक्तिसंहोश्च”  
इति यत् । सहितायां “सहेः पृतनर्ताभ्यां च” इति षत्वम् । छान्दसो  
दीर्घः ॐ । तदर्थं त्वा त्वाम् आवर्तयामसि आवर्तयामः । अस्म-  
दभिमुखं कुर्मः ॥

हम वृत्रहननरूप कर्मके लिये, बल दिखानेके लिये, शत्रुओं  
की सेनाओंका तिरस्कार करनेके लिये आपको अपने अभिमुख  
करते हैं ॥ १ ॥

द्वितीया ॥

अर्वाचीनं सु ते मन उत चक्षुः शतक्रतो ।

इन्द्रं कृण्वन्तु वाघतः ॥ २ ॥

अर्वाचीनम् । सु । ते । मनः । उत । चक्षुः । शतक्रतो इति शतः शतक्रतो ।

इन्द्र । कृण्वन्तु । वाघतः ॥ २ ॥

हे शतक्रतो बहुकर्मेन्द्रते तव मनः वाघतः यज्ञनिर्वाहका ऋत्विजः  
सु सुष्ठु अर्वाचीनम् अस्मदभिमुखं कृण्वन्तु । ॐ “विभाषाऽञ्चे-  
रदिक्स्त्रियाम्” इति खप्रत्ययः । खस्य ईनादेशः । प्रत्ययस्वरः ॐ ।  
उत अपि च ते चक्षुः तव दृष्टिमपि अस्मदभिमुखाम् अस्मासु  
कृपावर्ती कुर्वन्तु ॥

हे अनेक कर्मोंसे सम्पन्न शतक्रतो इन्द्र ! यज्ञके निर्वाहक  
ऋत्विज आपको भली प्रकार हमारे अभिमुख करें आपकी दृष्टि  
को भी हमारी ओर कृपा भरी करें ॥ २ ॥

तृतीया ॥

नामानि ते शतक्रतो विश्वाभिर्गीर्भिरीमहे ।

इन्द्राभिमातिपाह्ये ॥ ३ ॥

नामानि । ते । शतक्रतो इति शतऽक्रतो । विश्वाभिः । गीऽभिः ।

इन्द्र । अभिमातिऽसह्ये ॥ ३ ॥

हे शतक्रतो बहुकर्मेन्द्र अभिमातिपाह्ये । अभिमातयः शत्रवः तेषां सहनयोग्ये संग्रामे । अथ वा अभिमातिः पाप्मा । “पाप्मा वा अभिमातिः” इति श्रुतेः [ तै०सं० २.१.३.५ ] । तस्य सहनयोग्ये पापक्षयनिमित्तभूते कर्मणि ते तव नामानि सहस्राक्षः पुरन्दरादिरूपाणि । अथ वा नमनीयानि वृत्रवधादिकर्माणि विश्वाभिः सर्वाभिः गीर्भिः स्तुतिलक्षणाभिर्वाग्भिः ईमहे याचामहे संकीर्तयामः । ❀ ई गतौ । व्यत्ययेन आत्मनेपदम् । अदादित्वात् शपो लुक ❀ ॥

हे शतक्रतो इन्द्र ! शत्रुओंको दवानेके स्थलसंग्राममें वा पाप-क्षयके निमित्तभूत यज्ञमें हम आपके सहस्राक्ष पुरन्दर आदि-नामोंका सकल स्तुतिरूप वाणियोंसे संकीर्तन करते हैं ॥ ३ ॥

चतुर्थी ॥

पुरुष्टुतस्य धामभिः शतेन महयामसि ।

इन्द्रस्य चर्षणीधृतः ॥ ४ ॥

पुरुऽस्तुतस्य । धामऽभिः । शतेन । महयामसि ।

इन्द्रस्य । चर्षणिऽधृतः ॥ ४ ॥

पुरुष्टुतस्य पुरुभिर्बहुभिः स्तोतृभिः स्तुतस्य । ❀ “स्तुतस्तो-मयोरञ्जन्दसि” इति षत्वम् ❀ । शतेन शतसंख्याकैः धामभिः तेजोभिः । युक्तस्येति शेषः । यद्वा । ❀ षष्ठ्यर्थे तृतीया ❀ ।

धात्रां स्थानानां शतेन युक्तस्य । असंख्यातस्थानवत् इत्यर्थः ।  
चर्षणीधृतः । चर्षणयो मनुष्याः । तान् धारयति रक्षतीति चर्षणी-  
धृत् । तस्य उक्तलक्षणस्येन्द्रस्य । उक्तलक्षणम् इन्द्रम् इत्यर्थः ।  
महयामसि महयामः पूजयामः स्तुमः । यद्वा शतेन शतसंख्याकेन  
स्तोत्रेण उक्तलक्षणम् इन्द्रं महयामसीति योज्यम् ॥

बहुतसे स्तोताओंसे स्तुत, सैकड़ों तेजोंसे सम्पन्न और मनुष्यों  
की रक्षा करने वाले इन्द्रदेवकी हम पूजा करते हैं ॥ ४ ॥

पञ्चमी ॥

इन्द्रं वृत्राय हन्तवे पुरुहूतमुप ब्रुवे ।

भरेषु वाजसातये ॥ ५ ॥

इन्द्रम् । वृत्राय । हन्तवे । पुरुहूतम् । उप । ब्रुवे ।

भरेषु । वाजसातये ॥ ५ ॥

पुरुहूतम् बहुभिर्यजमानैराहूतं संग्रामे वा स्वस्वजयाथे बहुभि-  
राहूतम् इन्द्रं वृत्राय । ❀ “क्रियाग्रहणं कर्त्तव्यम्” इति कर्मणः  
संप्रदानत्वम् ❀ । वृत्रनामानम् असुरं पापं वेत्यर्थः । हन्तवे  
हन्तुम् । ❀ “तुमर्थे०” तवेन् प्रत्ययः । नित्स्वरः ❀ । किं च  
भरेषु । संग्रामनामैतत् । संग्रामेषु वाजसातये । वाजः अन्नम् ।  
“अन्नं वै वाजः” इति श्रुतेः [ तै० सं० ५. ४. ६. ६ ] । अन्न-  
लाभाय । शत्रुजयम् अन्तरेण तदीयस्यान्नस्य लाभाभावात् तज्ज-  
यायेत्युक्तम् भवति । उक्तलक्षणोभयविधमयोजनाय इन्द्रम् उप  
ब्रुवे उपेत्य स्तौमि ॥

यज्ञमें बहुतसे यजमानोंसे और संग्राममें अपनी २ विजयके  
लिये बहुतसे योधाओंसे आह्वान किये हुए इन्द्रदेवको मैं पापको



मष्ट करनेके लिये और संग्राममें वाज अर्थात् अन्न ‡ पानेके लिये  
इंद्रकी स्तुति करता हूँ ॥ ५ ॥

षष्ठी ॥

वाजेषु सासहिर्भव त्वामीमहे शतक्रतो ।

इन्द्र वृत्राय हन्तवे ॥ ६ ॥

वाजेषु । सासहिः । भव । त्वाम् । ईमहे । शतक्रतो इति शतऽक्रतो ।

इन्द्र । वृत्राय । हन्तवे ॥ ६ ॥

हे इन्द्र त्वं वाजेषु संग्रामेषु सासहिः शत्रूणाम् अभिभविता  
भव । ॐ सहैर्यङन्तात् किप्रत्ययः ॐ । तदर्थम् हे शतक्रतो बहु-  
कर्मेन्द्र त्वाम् ईमहे याचामहे ॥ अथ परोक्षवादः । किं च इन्द्रं  
देवं वृत्राय हन्तवे वृत्रम् असुरं पापं वा हन्तुम् । स्तौमीति शेषः ।  
अथ वा इन्द्रशब्दो यौगिकोत्र द्रष्टव्यः । इन्द्रं परमैश्वर्ययुक्तं त्वा  
वृत्राय हन्तवे ईमहे इति संबन्धः ॥

हे इन्द्रदेव ! आप संग्राममें शत्रुओंके तिरस्कारक बनें, इसके  
लिये हे शतक्रतो ! हम आपकी प्रार्थना करते हैं । हे इंद्रदेव ! मैं  
पापका संहार करनेके लिये आपकी स्तुति करता हूँ ॥ ६ ॥

सप्तमी ॥

द्युम्नेषु पृथनाज्ये पृथुतूर्षु श्रवःसु च ।

इन्द्र साक्षाभिमांतिषु ॥ ७ ॥

द्युम्नेषु । पृथनाज्ये । पृथुतूर्षु । श्रवःसु । च ।

‡ तैत्तिरीयसंहिता ५ । ४ । ६ । ६ में अन्नको वाज कहा है,  
यथा “अन्नं वै वाजः” ॥

इन्द्र । साच्च । अभिऽमातिषु ॥ ७ ॥

हे इन्द्र पृतनाज्ये । संग्रापनामैतत् । पृतनानांम् अजनं जयो वाऽत्रेतितद्धृत्पत्तिः । संग्रामे । ॐ पृतनाशब्दोपपदाद् अजतेर्जयतेर्वा “अध्यादयश्च” [ उ० ४. १११ ] इति यक् प्रत्ययः । अजतिपक्षे “वा यति” इति वीभावधिकल्पः । जयतेस्तु टिलोपी निपातनात् ॐ । घग्नेषु द्योतमानेषु धनेषु प्राप्तव्येषु पृत्सुतृषु पृतनासु तर्तव्यासु च । ॐ पृतनाशब्दस्य सौ परतो “मास्पृत्सूनाम् उप-संख्यानम्” इति पृदादेशः । जित्वरा संभ्रमे इति संपदादिलक्षणः क्विप् । “उवरत्वर०” इत्यादिना ऊट् । “तत्पुरुषे कृति बहु-लम्” इति सप्तम्या अलुक् । कुटुत्तरपदप्रकृतिस्वरः ॐ । तथा श्रवःसु च । अन्ननामैतत् । ॐ श्रव इत्यन्ननाम श्रयत इति सत निरुक्तम् [ नि० १०. ३ ] ॐ । अन्नेषु च लब्धव्येषु एवम् अभि-मातिषु शत्रुषु पापेषु वा । हन्तव्येष्विति शेषः । एतेषु फलेषु निमित्त-भूतेषु साच्च अस्मान् सचस्व अनुसर । ॐ षट् अभिभवे । लोटि “बहुलं छन्दसि” इति शपोलुक् कुत्वषत्वे । दीर्घश्छान्दसः ॐ ॥

इति तृतीयेनुवाके द्वितीयं सूक्तम् ॥

हे इन्द्रदेव ! संग्रामके समय, दमकते हुए धनोको प्राप्त करते समय सेनाओंको तरनेके समय, अन्नप्राप्तिके अवसर पर और शत्रु वा पापोंको नष्ट करनेके अवसरों पर आप हमारा अनुसरण करिये ॥ ७ ॥

तृतीय अनुवाकमें द्वितीय सूक्त समाप्त ( ६३५ )

“शुष्मिन्तमं न ऊतये” इति सूक्तस्य अतिरात्रे ब्राह्मणाच्छंसिनः प्रथमपर्यायशस्त्रे विनियोग उक्तः ॥

“शुष्मिन्तमं न ऊतये” सूक्तका अतिरात्रमें ब्राह्मणाच्छंसि के प्रथमपर्यायशस्त्रमें विनियोग कहा है ।

तत्र प्रथमा ॥

शुष्मिन्तमं न ऊतये द्युम्निनं पाहि जागृविम् ।

इन्द्र सोमं शतक्रतो ॥ १ ॥

शुष्मिन्तमम् । न । ऊतये । द्युम्निनम् । पाहि । जागृविम् ।

इन्द्र । सोमम् । शतक्रतो इति शतऽक्रतो ॥ १ ॥

हे शतक्रतो बहुकर्मेन्द्र नः अस्माकं संबन्धिनं शुष्मिन्तमम् अतिशयेन बलवन्तम् । ❀ “नाद् घस्य” इति जुडागमः ❀ । द्युम्निनम् द्योतनवन्तं जागृविम् जागरणशीलं स्वप्ननिवारकम् । न हि सोमं पीतवतः स्वप्नप्रसङ्गोस्ति अस्वप्नत्वसाधनत्वात् तस्य । चक्षुमहिमोपेतं सोमम् ऊतये अस्माकं रक्षणाय पाहि पिब ॥

हे शतक्रतु इन्द्रदेव ! आप हमारे परमबलप्रद, दमकृते हुए, स्वप्ननिवारक सोमका हमारी रक्षाके लिये पान करिये ॥ १ ॥

द्वितीया ॥

इन्द्रियाणि शतक्रतो या ते जनेषु पञ्चसु ।

इन्द्र तानि त आ वृणे ॥ २ ॥

इन्द्रियाणि । शतक्रतो इति शतऽक्रतो । या । ते । जनेषु । पञ्चऽसु

इन्द्र । तानि । ते । आ । वृणे ॥ २ ॥

हे शतक्रतो हे इन्द्र ये तव संबन्धीनि यानि प्रसिद्धानि इन्द्रियाणि इन्द्रसृष्टानि इन्द्रदत्तानि वा वीर्याणि दर्शनश्रवणादिलक्षणानि पञ्चसु जनेषु देवमनुष्यपित्रसुररक्षःसु निषादपञ्चमेषु चतुर्षु वर्णेषु वा विद्यन्ते ते तव स्वभूतानि तानि आ वृणे संभजेय । ❀ वृङ् संभक्तौ इत्यस्य लटि रूपम् ❀ ॥



हे इन्द्रदेव ! हे शतक्रतो ! आपके जो दर्शन श्रवण आदिरूप वीर्य, देव मनुष्य पितर असुर और राक्षसोंमें हैं उन सबको मैं प्राप्त करूँ ॥ २ ॥

तृतीया ॥

अगन्निन्द्र श्रवो बृहद् द्युम्नं दधिष्व दुष्टरम्

उत् ते शुष्मं तिरामसि ॥ ३ ॥

अगन् । इन्द्र । श्रवः । बृहत् । द्युम्नम् । दधिष्व । दुष्टरम् ।

उत् । ते । शुष्मम् । तिरामसि ॥ ३ ॥

हे इन्द्र तव संबन्धि बृहत् महत् प्रभूतं श्रवः अन्नम् अगन् अस्मान् गच्छतु । यद्वा उक्तरूपं सोमलक्षणम् अन्नं त्वाम् अगन् प्राप्नोत् । ❀ गमेर्लङि “बहुलं छन्दसि” इति शपो लुक् । “हल्-ङ्या०” इत्यादिना तिलोपः । “मो नो धातोः” इति मकारस्य नकारः । अडागमः । स्वरः ❀ । त्वं च दुष्टरम् शत्रुभिस्तरितुम् अयोग्यं द्युम्नम् द्योतमानं यशो द्रविणं वा दधिष्व अस्मासु स्थापय । वयं तु ते शुष्मम् बलम् उत् तिरामसि सोमेन स्तोत्रेण च वर्धयामः । ❀ तृ सवनतरणयोः । लटि व्यत्ययेन शः । “ऋत इद्धातोः” इति इत्त्वम् । “इदन्तो मसिः” ❀ ॥

हे इन्द्रदेव ! आपका विशाल अन्न हमको प्राप्त होवे और आप शत्रुओंसे तरनेके अयोग्य दमकते हुए धनको हममें स्थापित करिये, और हम तो आपके बलको सोम और स्तोत्रसे बढ़ाते हैं

चतुर्थी ॥

अर्वावतो न आ गृह्यथो शक्र परावतः ।

उ लोको यस्तं अद्रिव इन्द्रेह तत आ गंहि ॥ ४ ॥

अर्वाऽवतः । नः । आ । गहि । अथो इति । शक्र । पराऽवतः ।

ऊँ इति । लोकः । ते । अद्रिऽवः । इन्द्र । इह । ततः । आ । गहि

हे शक्र बलवन्निन्द्र अर्वावतः अर्वाचीनात् समीपाद् देशाद् अथो अपि च परावतः अतिदूराद् देशात् । ❀ “उपसर्गा-  
च्छन्दसि धात्वर्थे” इति वतिः । प्रत्ययस्वरः ❀ । नः अस्मान्  
अभिलक्ष्य आ गहि आगच्छ । उ इति वाक्यालंकारे । अद्रिवः ।  
अस्ति भक्षयति शत्रून् इति अद्रिर्वज्रः । आहणातीति वा । तद्वन्  
ते तव यो लोकः उत्तमो लोकोस्ति हे इन्द्र ततस्तस्मादपि लोकाद्  
इह अस्मिन् देवयजने देशे सोमपानार्थम् आ गहि आगच्छ ।  
❀ गम्लृ सृप्लृ गतौ । “बहुलं छन्दसि” इति शपो लुक् । सेहि-  
रादेशः । हेरपिच्चाद् छिद्ब्रवावेन “अनुदात्तोपदेशः” इत्यादिना  
अनुनासिकलोपः ❀ ॥

हे बलवान् इन्द्र ! आप समीपके स्थलमें हों तो समीपके स्थल  
से और दूरके स्थलमें हों तो दूरसे हमारे पास आइये, हे वज्र-  
धारिन् इन्द्र ! आपका जो उत्तम लोक है उस स्थानसे भी आप  
सोमपान करनेके लिये इस पूजाके स्थानमें आइये ॥ ४ ॥

पञ्चमी ॥

इन्द्रो अङ्ग महद्भयमभी षदप चुच्यवत् ।

स हि स्थिरो विचर्षणिः ॥ ५ ॥

इन्द्रः । अङ्ग । महत् । भयम् । अभि । सत् । अप । चुच्यवत् ।

सः । हि । स्थिरः । विऽचर्षणिः ॥ ५ ॥

अङ्गेति आत्मानम् ऋत्विजं वा अभिमुखीकृत्य ब्रूते । इन्द्रो  
देवः अस्माकम् उत्पन्नं महत् मभूतम् अन्यैः परिहर्तुम् अशक्यं

भयम् अभी षत् अभिभवति परिहरति । ❀ अभिपूर्वात् सदेर्लङ् । बहुलवचनाद् अडभावः । “इतश्च” लोपः । संयोगान्तलोपः । “सदिरमतेः” इति षत्वम् । निपातस्य च” इति दीर्घः, ❀ । किं भयस्य अभिभवमात्रम् नेत्याह अप चुच्यवद् इति । भयम् अप-  
च्यावयति अस्मत्तः पृथक्कृत्य दूरतोपसारयति । ईदृशः सामर्थ्यस्य संभावनाम् आह । स हि स खल्विन्द्रः स्थिरः स्वयम् अन्येन न च्याव्यः विचर्षणिः विश्वस्य द्रष्टा । भयकृतः प्रच्छन्नान् प्रका-  
शांश्च रक्षणीयान् अस्मांश्च जानातीत्यर्थः । ❀ अप चुच्यवद् इति । चुङ् प्लुङ् गतौ इत्यस्मात् लुङि णिलोपे उपधाह्रस्वत्वे “स्रवतिशृणोति०” इत्यादिना अभ्यासस्य विकल्पेन इत्त्वम् । “बहुलं छन्दसि०” इति अडभावः ❀ ॥

हे आत्मा वा ऋत्विज ! इन्द्रदेव हमारे ऊपर पड़े हुए, दूसरों से न हटाने योग्य बड़े भारी भयका तिरस्कार कर डालते हैं । और भयको हमसे अलग करके दूर भगा देते हैं, वह इन्द्रदेव स्थिर रहने वाले हैं अर्थात् कोई उनको च्युत नहीं कर सकता और वह सबको देखने वाले हैं अर्थात् छिपे हुए भय देने वालों को और प्रकाशित हम रक्षणीयोंको भी जानते हैं ॥ ५ ॥

पृष्ठी ॥

इन्द्रश्च मृलयाति नो न नः पश्चादधं नशत् ।

भद्रं भवाति नः पुरः ॥ ६ ॥

इन्द्रः । च । मृलयाति । नः । न । नः । पश्चात् । अधम् । नशत् ।

भद्रम् । भवाति । नः । पुरः ॥ ६ ॥

इन्द्रश्च । च शब्दश्चेदर्थे । अस्माभिः शरणं गन्तव्यो देवः इन्द्रश्चेन् परमैश्वर्यगुणविशिष्टः सर्वभूतस्य रक्षकश्चेद् नः अस्मान्



मृत्नयाति सुखयतु । ❀ मृडयतेर्लेटि आटि कृते रूपम् ❀ । स  
तादृशश्चेत् पश्चात् पृष्ठतो नः अस्मान् अघम् दुःखं च नशत् न  
भामोतु । ❀ नशेर्लेट् ❀ । किं च नः अस्माकं पुरः पुरस्ताद्  
भद्रम् मङ्गलं च भवति भवतु । ❀ भवतेर्लेट् ❀ ॥

यदि इन्द्रदेव हमारे रक्षक हों तो वह हमको सुख देवें, यदि  
इन्द्रदेव हमारे रक्षक हों तो पीछे हमारा दुःख नष्ट होजावे, और  
हमारे सामने मङ्गल होवे ॥ ६ ॥

सप्तमी ॥

इन्द्र आशाभ्यस्परि सर्वाभ्यो अभयं करत् ।

जेता शत्रून् विचर्षणिः ॥ ७ ॥

इन्द्रः । आशाभ्यः । परि । सर्वाभ्यः । अभयम् । करत् ।

जेता । शत्रून् । विचर्षणिः ॥ ७ ॥

स इन्द्रः सर्वाभ्य आशाभ्यस्परि । ❀ परीति पञ्चमीद्योतकः ❀ ।  
दिग्भ्यो विदिग्भ्यः उपर्यधोदिग्भ्यां च अस्माकम् अभयम् भय-  
राहित्यं क्षेमं करत् करोतु । संकलदिग्गतभयपरिहारसामर्थ्यं तस्य  
संभावयति । स इन्द्रः शत्रून् जेता सर्वास्वपि दिक्षु अस्माकं ये  
भयकारिणः शत्रवः सन्ति तेषां सर्वेषाम् अभिभविता विचर्षणिः  
तेषां विद्रष्टा च ॥

इति तृतीयेनुवाके तृतीयं सूक्तम् ॥

इन्द्रदेव सब दिशा विदिशाओंसे हम पर पड़ सकने वाले  
भयोंको दूर करें । यह इन्द्रदेव सब दिशाओंमें जो हमारे शत्रु  
होंगे उनको मूर्छमतासे देखने वाले हैं ॥ ७ ॥

तृतीय अनुवाकमें तृतीय सूक्त समाप्त ( ६३६ )

“न्यूषु वाचम्” इति सूक्तस्य ब्राह्मणाच्छंसिनः प्रथमपर्यायशस्त्रे विनियोग उक्तः । अत्र “य उद्वचि” इत्येषा अन्तिमा परिधानीया ॥

“न्यूषु वाचम्” सूक्तका ब्राह्मणाच्छंसीके प्रथम शस्त्रपर्यायमें विनियोग कहा है । यहाँ “य उद्वचि” यह अन्तिम श्रृचा परिधानीया है ।

तत्र प्रथमा ॥

न्यू॒षु वाचं॑ प्र॒महे॑ भ॒रामहे॑ गिर॒ इन्द्रा॑य॒ स॒दने॑ वि॒वस्व॑तः  
नू॒ चि॒द्धि रत्नं॑ स॒स॒तामि॒वावि॑दन्न दु॒ष्टुति॑र्द्रवि॒णो॒देषु॑  
शस्य॑ते ॥ १ ॥

नि । ऊ॒ इति । सु । वाचम् । प्र । महे । भ॒रामहे॑ । गिरः ।  
इन्द्रा॑य । स॒दने॑ । वि॒वस्व॑तः ।

सु । चि॒त् । हि । रत्नम् । स॒स॒ताम् इ॒व । अवि॑दत् । न । दुः॒ऽस्तु॒तिः ।  
द्रवि॒णः॒ऽदेषु॑ । शस्य॑ते ॥ १ ॥

महे महते । ❀ महच्छब्दस्य अच्छब्दलोपश्चान्दसः ❀ ।  
इन्द्राय देवाय सु वाचम् शोभनां स्तुतिं नि प्र भरामहे नितरां  
प्रयुञ्जमहे । उ इति पदपूरणः । ❀ न्यूष्विति । “उदात्तस्वरित-  
योर्यणः स्वरितोऽनुदात्तस्य” इति स्वरितत्वम् । तच्च उदात्तपर-  
त्वात् संहितायां कम्पते । “इकः सुञि” इति दीर्घत्वम् । “सुञः”  
इति षत्वम् ❀ । यतो विवस्वतः परिचरतो यजमानस्य स॒दने यज्ञ-  
गृहे इन्द्राय गिरः स्तुतयः क्रियन्ते । हि यस्मात् स इन्द्रः नू चित्  
क्षिप्रमेव रत्नम् रमणीयम् असुराणां धनम् अविदत् विन्दति ।  
तत्र दृष्टान्तः । स॒स॒तामि॒व यथा स॒स॒ताम् स्व॑पतां पुरुषाणां धनं

चोरः क्षिप्रं लभते तद्वत् । अतोऽस्मभ्यं धनं दातुं शक्त इति भावः ।  
द्रविणोदेषु धनस्य दातृषु पुरुषेषु दुष्टुतिः असमीचीना स्तुतिः  
न शस्यते नाभिधीयते न युज्यते वा । अतः सुवाचं प्रभरामहे इति  
पूर्वेण संबन्धः ॥

महान् इन्द्रदेवके लिये हम सुन्दर बाणी वाली स्तुतिका पूर्ण-  
रीतिसे प्रयोग करते हैं, क्योंकि-सेवा करने वाले यजमानके यज्ञ-  
गृहमें इन्द्रके लिये स्तुतियें उच्चारण की जा रही हैं, क्योंकि-वह  
इन्द्रदेव, चोर जैसे सोने वालोंके धनको शीघ्रतासे लेलेता है इसी  
प्रकार असुरोंके धनका शीघ्रतासे प्राप्त कर लेते हैं [ तात्पर्य यह  
है, कि-तब हमको धन दे सकते हैं ] और धनको प्रदान करने  
वाले पुरुषोंके लिये ओछी स्तुति उपयुक्त नहीं होती अत एव मैं  
सुन्दर बाणी वाली स्तुतिका पूर्णरीतिसे प्रयोग करता हूँ ॥१॥

द्वितीया ॥

दुरो अश्वस्य दुर इन्द्र गोरसि दुरो यवस्य वसुन  
इनस्पतिः ।

शिञ्जानरः प्रदिवो अकामकर्शनः सखा सखिभ्यस्तमिदं  
गृणीमसि ॥ २ ॥

दुरः । अश्वस्य । दुरः । इन्द्र । गोः । असि । दुरः । यवस्य ।  
वसुनः । इनः । पतिः ।

शिञ्जाऽनरः । प्रऽदिवः । अकामऽकर्शनः । सखा । सखिऽभ्यः ।  
तम् । इदम् । गृणीमसि ॥ २ ॥

हे इन्द्र त्वम् अश्वस्य । ❀ जातावेकवचनम् ❀ । अश्वानाम्



एतद् गजादीनामपि उपलक्षणम् । अश्वगजादिवाहनानां दुरः  
दाता असि । ❀ डदाञ् दाने । मन्दिवाशीत्यादिना [ उ० १.  
३८ ] विधीयमान उरच् प्रत्ययो बहुलवचनाद् अस्मादपि भवति ।  
अत एव आकारलोपः ❀ । तथा गोः । एतद् उपलक्षणं महि-  
ष्यादेः । गोमहिष्यादीनां दुरोसि । तथा यवस्य । एतद् ब्रीह्या-  
दिधान्यजातस्य उपलक्षणम् । तस्य दुरोसि । एवं वसुनः धनस्य  
हिरण्यमणिमुक्तादिरूपस्य इनः स्वामी पतिः पालकश्चासि । शिञ्जा-  
नरः । ❀ शिञ्जतिर्दानकर्मा ❀ । शिञ्जाया दानस्य नेतासि ।  
यद्वा शिञ्जाविषयभूता नरो मनुष्या यस्य स शिञ्जानरः प्रदिवः  
प्रमता दिवो दिवसा यस्य स तथोक्तः । पुराण इत्यर्थः । अकाम-  
कर्शनः कामानां कर्शकः कामकर्शनः स न भवतीत्यकामकर्शनः ।  
स्वसेविनां कामवर्धक इत्यर्थः । एवं सखिभ्यः समानख्यानेभ्यः  
सखिभूतेभ्य ऋत्विग्भ्यः सखा मित्रभूतः एवंमहिमा य इन्द्रोस्ति  
तं तादृशम् इन्द्रम् इदं स्तोत्रं गृणीमसि गृणीमः उच्चारयामः कुर्मः ।  
❀ गृ शब्दे । क्रैगादिकः । “प्वादीनां ह्रस्वः” इति ह्रस्वत्वम् ।  
“इदन्तो मसिः” इति मस इकारः ❀ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप अश्व गज आदि वाहनोंको प्रदान करने  
वाले हैं, गौ भैंस आदिके प्रदान करने वाले हैं, जौ धान आदि  
के दाता हैं तथा हिरण्य मुक्ता आदि धनके स्वामी और रक्षक  
हैं, मनुष्योंको शिञ्जा देने वाले हैं, आपको बहुत दिन बीत गए  
हैं अर्थात् आप प्राचीन हैं, आप अपने सेवकोंके कामोंको बढ़ाने  
वाले हैं और आप समान ख्याति वाले ऋत्विजोंके मित्ररूप हैं,  
ऐसे इन्द्रदेवके लिये हम इस स्तोत्रका उच्चारण करते हैं ॥ २ ॥

तृतीया ॥

शचीव इन्द्र पुरुकृद् द्रुमत्तम तवेदिदमभितश्चकिते वसुं

अतः संगृह्याभिभूत आ भर मा त्वायतो जरितुः

काममूनयीः ॥ ३ ॥

शचीऽवः । इन्द्र । पुरुऽकृत् । धुमत्ऽतम । तव । इत् । इदम् ।

अभितः । चेकिते । वसु ।

अतः । सम्ऽगृह्य । अभिऽभूते । आ । भर । मा । त्वाऽयतः ।

जरितुः । कामम् । ऊनयीः ॥ ३ ॥

हे शचीवः । प्रज्ञानामैतत् । प्रज्ञानवन्निन्द्र । ❀ “मत्तुवसो रुः  
संबुद्धौ छन्दसि” इति रुत्वम् । षाष्टिकम् आमन्त्रिताद्य दात्तत्वम् ❀ ।  
हे इन्द्र परमैश्वर्यगुणविशिष्ट पुरुकृत् बहूनां कर्तः अमत्तम दीप्ति-  
मत्तमः । ❀ एषाम् इन्द्रादीनाम् आष्टमिकं सर्वानुदात्तत्वम् । न  
च “आमन्त्रितं पूर्वम् अविद्यमानवत्” इत्यविद्यमानवत्त्वम् । “ना-  
मन्त्रिते समानाधिकरणे०” इति निषेधात् ❀ । एवमहानुभाव  
इन्द्र अभितः सर्वत्र यद् वसु धनं विद्यते तद् इदं सर्वं तवेत् तवैव  
स्वम् । धनजातस्य सर्वस्यापि त्वमेव स्वामीत्यर्थः । इत्थं चेकिते  
भृशम् अस्माभिर्ज्ञायते । ❀ कित ज्ञाने । अस्माद् यच्छन्ताद् वर्त-  
माने लिटि “०अमन्त्रे०” इति निषेधाद् आम्प्रत्ययाभावे सति  
लिटि आर्धधातुकत्वाद् अतोलोपयतो लोपो ❀ । हे अभिभूते शत्र-  
णाम् अभिभवितरिन्द्र अतः अस्मात् कारणात् संगृह्य सर्वं धनं  
संगृह्य आ भर आहर अस्मभ्यं प्रयच्छ । त्वायतः त्वाम् आत्मन  
इच्छतो जरितुः स्तोतुर्मम कामं मोनयीः ऊनं मा कार्षीः । पूरये-  
त्यर्थः । ❀ ऊन परिहाणे । लुङि “णिश्रिद्रुसभ्यः०” इति च्लेश-  
ङादेशस्य “नोनयति ध्वनयति०” इत्यादिना प्रतिषेधे “ह्ययन्त-  
क्षण०” इति सिचिवृद्धिप्रतिषेधः ❀ ॥

हे प्रज्ञानवान्, परमैश्वर्यविशिष्ट, बहुतसे कर्मोंको करने वाले, परम प्रदीप्त इन्द्रदेव ! चारों ओर जो धन है वह सब आपका ही है अर्थात् उस सब धनके आप ही स्वामी हैं, इस बातको हम अच्छी तरह जानते हैं । हे शत्रुओंको दबाने वाले इन्द्र ! इस कारण आप सब धनको संग्रह करके हमें प्रदान करिये, अपने लिये आपकी इच्छा करने वाले मुझ स्तोताको आप कम मत करिये, पूरा करिये ॥ ३ ॥

चतुर्थी ॥

एभिर्द्युभिः सुमना एभिरिन्दुभिर्निरुन्धानो अमतिं  
गोभिरश्विना ।

इन्द्रेण दस्युं दरयन्त इन्दुभिर्युतद्वेषसः समिषा रभेमहि  
एभिः । द्युभिः । सुमनाः । एभिः । इन्दुभिः । निरुन्धानः ।  
अमतिम् । गोभिः । अश्विना ।

इन्द्रेण । दस्युम् । दरयन्तः । इन्दुभिः । युतद्वेषसः । सम् ।  
इषा । रभेमहि ॥ ४ ॥

हे इन्द्र एभिः अस्माभिर्दत्तैः द्युभिः दीप्तैश्चरुपुरोडाशादिभिः  
एवम् एभिः अस्माभिर्दत्तैः इन्दुभिः सोमैश्च प्रीतस्त्वम् अस्माकम्  
अमतिम् दारिद्र्यम् गोभिर्बहीभिः अश्विना अश्ववता धनेन च  
निरुन्धानः निवर्तयन् सुमनाः शोभनमनाः । भवेति शेषः । वयम्  
इन्दुभिः अस्माभिर्दत्तैः सोमैः प्रीतेन इन्द्रेण दस्युम् उपक्षपयि-  
तारं शत्रुं दरयन्तः दारयन्तो हिंसन्तः अत एव युतद्वेषसः । ❀ अत्र  
यौतिरमिश्रणार्थः ❀ । पृथग्भूतद्वेषाः अपगतशत्रवः सन्तः इषा  
अन्नेन इन्द्रदत्तेन सं रभेमहि संरब्धा भवेम । संगता भवेमेत्यर्थः ॥



हे इन्द्र ! हमारे दिये हुए इन दमकते हुए पुरोडाश आदि से और हमारे दिये हुए इन सोमोंसे प्रसन्न हुए आप हमारी दरिद्रताको बहुतसा गौ घांड़े वाले धनसे दूर करते हुए शोभन भग्न बालों हूजिये । हम अपने दिये हुए सोमोंसे प्रसन्न हुए इन्द्र-देवके द्वारा अपना क्षय करने वाले शत्रुओंको विदीर्ण करते हुए शत्रुरहित होकर इन्द्रप्रदत्त अन्नसे संगत हों ॥ ४ ॥

पञ्चमी ॥

समिन्द्र राया समिषा रभेमहि सं वाजेभिः पुरुश्चन्द्रै-  
रभिद्युभिः ।

सं देव्या प्रमत्या वीरशुष्मया गोअग्रयाश्वावत्या  
रभेमहि ॥ ५ ॥

सम् । इन्द्र । राया । सम् । इषा । रभेमहि । सम् । वाजेभिः ।

पुरुश्चन्द्रैः । अभिद्युभिः ।

सम् । देव्या । प्रमत्या । वीरशुष्मया । गोअग्रया । अश्व-  
वत्या । रभेमहि ॥ ५ ॥

हे इन्द्र राया धनेन त्वदीयेन सं रभेमहि संगच्छेमहि । तथा इषा सर्वैरिष्यमाणेन अन्नेन सं रभेमहि तथा वाजेभिः वाजैर्बलैः सं रभेमहि । कीदृशैः । पुरुश्चन्द्रैः पुरुषां बहूनां प्रजानाम् आ-  
ह्लादकैः अभिद्युभिः अभितो दीप्यमानैः । किं च देव्या देवस्य इन्द्रस्य संबन्धिन्या प्रमत्या प्रकृष्टया बुद्ध्या अनुग्रहरूपया सं रभेमहि । प्रमतिं विशिनष्टि । वीरशुष्मया विविधम् ईरकं निवा-  
रकं शुष्म बलं यस्याः सा तादृश्या । गोअग्रया गावो दातव्या अत्रे यस्यां प्रमत्यां सा तथोक्ता तादृश्या । ॐ “सर्वत्र विभाषा

गोः” इति प्रकृतिभावः ॐ । अश्वावत्या अश्वैरस्मभ्यं दातव्यै-  
स्तद्वत्या । ॐ “मन्त्रे सोमाश्वेन्द्रिय०” इति मतुपि दीर्घत्वम् ॐ ।  
एवंमहानुभावया प्रमत्या सं रभेमहीति संबन्धः ॥

हे इन्द्रदेव ! हम आपके धनसे संगत होवें तथा सबोंसे अभि-  
लषित धनोंसे सम्पन्न होवें, तथा बहुतसी प्रजाओंको प्रसन्न  
करने वाले दमकते हुए बलोंसे सम्पन्न होवें, आपकी अनुग्रह-  
मयी श्रेष्ठ बुद्धिसे संगत होवें, अनेक प्रकारसे निवारण करने  
वाले बलोंको देने वाली, गौओंको पहिले प्रदान करने वाली  
आपकी अनुग्रहमयी बुद्धिसे सम्पन्न होवें ॥ ५ ॥

षष्ठी ॥

ते त्वा मदा अमदन् तानि वृष्ण्या ते सोमांसो वृत्र-  
हत्येषु सत्पते ।

यत् कारवे दश वृत्राण्यप्रति बर्हिष्मते नि सहस्राणि  
बर्हयः ॥ ६ ॥

ते । त्वा । मदाः । अमदन् । तानि । वृष्ण्या । ते । सोमांसः ।

वृत्रहत्येषु । सत्पते ।

यत् । कारवे । दश । वृत्राणि । अप्रति । बर्हिष्मते । नि । सह-

स्राणि । बर्हयः ॥ ६ ॥

हे सत्पते सतां पालक इन्द्र वृत्रहत्येषु वृत्राणां शत्रूणां हत्येषु  
हननेषु निमित्तभूतेषु सत्सु ते प्रसिद्धा मदाः मदकरा आज्यपुरो-  
डाशादयो मरुतो वा त्वा त्वाम् अमदन् हर्षं प्रापयन् । तथा तानि  
प्रसिद्धानि वृष्ण्या वर्षकस्य तव हर्षसाधनत्वेन संबन्धीनि स्तोत्रा-

एयपि त्वाम् अमदन् । ते प्रसिद्धाः सोमासः सोमा अपि त्वाम्  
अमदन् । यत् यदा कारवे । स्तोतृनामैतत् । स्तोत्रे बर्हिष्मते याग-  
वते यजमानाय दश सहस्राणि वृत्राणि आवरकाणि पापानि  
अमित्रान् वा अप्रति प्रतिराहतं यथा भवति तथा नि बर्हयः न्य-  
वधीः । तदानीम् इति पूर्वेण संबन्धः । ❀ बर्हयर्तिर्हि साकर्मा ।  
लङि “बहुलं छन्दस्यमाङ्गयोगेपि” इत्यङ्भावः । शपः पित्वाद्  
अनुदात्तत्वे णिचः स्वरः शिष्यते । यद्द्वृत्तयोगाद् अनिघातः ❀ ॥

हे सज्जनो के पालक इन्द्रदेव ! शत्रुओं के नाश करने के अव-  
सरों पर मदकारी घृत पुरोडाश आदि आपको हर्ष देवें और  
फलों की वर्षा करने वाले आपके स्तोत्र भी आपको हर्ष दें, और  
वह प्रसिद्ध सोम भी आपको हर्ष में भरें । जिस समय आप स्तुति  
करने वाले कुशा वाले यजमान के लिये दश हजार घेरने वालों  
को अपुनर्भव रूप में मारें तब ये सोम आदि आपको आनंद देवें ६  
सप्तमी ॥

युधा युधमुप घेदेषि धृष्णुया पुरा पुरं समिदं हंस्योजसा  
नम्या यदिन्द्र सख्या परावति निबर्हयो नमुचिं नाम  
मायिनम् ॥ ७ ॥

युधा । युधम् । उप । घ । इत् । एषि । धृष्णुया । पुरा । पुरम् ।

सम् । इदम् । हंसि । ओजसा ।

नम्या । यत् । इन्द्र । सख्या । परावति । निबर्हयः । नमुचिम् ।

नाम । मायिनम् ॥ ७ ॥

हे इन्द्र त्वं युधा महरणसाधनेन वज्रेण आयुधेन । अथवा



योधनं युध् तेन । प्रहरणेनेत्यर्थः । ॐ संपदादिलक्षणः विवप् ॐ ।  
कीदृशेन । धृष्णुया धर्षकेण युधम् शत्रोरायुधं प्रहरणं वा उप  
घेदेषि । घेति पूरणः । उपैष्येव उपगच्छस्येव । अनेनास्य द्वन्द्व-  
युद्धकुशलत्वम् उक्तं भवति । एवं पुरा नगरेण । अत्र पूरशब्देन  
तत्रस्था भटा लक्ष्यन्ते । पुरस्थैः स्वकीयैर्योद्धृभिर्मरुत्प्रभृतिभिः  
इदम् इदानीं पुरम् शत्रुनगरं पुरस्थान् योद्धुन् वा ओजसा बलेन  
संहंसि सम्यग् नाशयसि । यत् यस्मात् कारणात् नम्या नम्यया  
सर्वैः प्रह्वीभवितुम् अर्हया सख्या सखिभूतया शक्त्या आंयुधेन  
परावति दूरदेशे नमुचिं नाम नमुचिनामधेयम् असुरं मायिनम्  
मायावन्तं निवर्हयः नितराम् अहिंसीः । अतस्त्वम् एवं स्तूयस  
इत्यर्थः ॥

हे इंद्रदेव ! आप धर्षक प्रहारके साधन आयुधसे शत्रुके आयुध  
पर टूट ही पड़ते हैं, इससे इंद्रदेवका 'द्वन्द्वयुद्धमे' कुशल होना  
कहा और अपने पुरमें स्थित मरुत् आदि भटोंसे शत्रुनगर-  
निवासी योधाओंको बलपूर्वक मरवा देते हैं । क्योंकि-आपने  
सबसे नमनीय मित्ररूपा शक्ति आयुधसे दूरदेशमें मायावी नमुचि  
को मार डाला है अत एव आपकी स्तुति की जाती है ॥ ७ ॥

अष्टमी ॥

त्वं करञ्जमुत पर्णयं वधीस्तेजिष्ठयातिथिग्वस्यं वर्तनी ।

त्वं शता वङ्गदस्याभिनत् पुरो'नानुदः परिष्ठा

ऋजिश्वना ॥ ८ ॥

त्वम् । करञ्जम् । उत । पर्णयम् । वधीः । तेजिष्ठया । अतिथि-

ग्वस्य । वर्तनी ।

त्वम् । शता । वङ्गुदस्य । अभिनत् । पुरः । अननुदः । परि-  
 ऽसूताः । ऋजिश्वना ॥ ८ ॥

हे इन्द्र त्वं करञ्जम् एतन्नामानम् असुरं वधीः अवधी हतवान्  
 असि । ❀ हन्तेर्लुङि सिपि “लुङि च” इति वधादेशः । तस्य  
 अदन्तत्वाद् वृद्ध्यभावः । अत एव अनेकात्त्वाद् इट्प्रतिषेधा-  
 भावः । “इट ईटि” इति सिचो लोपः ❀ । उत अपि च पर्यायम्  
 एतत्संज्ञकम् असुरं वधीः । किमर्थम् अवधीरिति तत्राह । अति-  
 थिग्वस्य अतिथ्यर्था गावो यस्यासौ अतिथिग्वः । तस्य राज्ञः  
 प्रयोजनाय । केन साधनेनेति उच्यते । तेजिष्ठ्या अतिशयेन  
 तेजोवत्या । ❀ तेजःशब्दाद् “अस्मायामेधास्त्रजो विनिः” इति  
 मत्वर्थीयो विनिः । तस्माद् आतिशायनिकष्ठन् । “विन्मतोर्लुक्”  
 इति विनो लुक् । “टेः” इति टिलोपः । निच्वाद् आद्युदात्त-  
 त्वम् ❀ । तादृश्या वर्तनी वर्तन्या शक्त्या एतन्नामकेन आयु-  
 धेन ॥ किं च त्वम् ऋजिश्वना एतन्नामकेन राज्ञा निमित्तेन  
 परिषूताः परितोऽवष्टब्धाः शता शतानि शतसंख्याका वङ्गुदस्य  
 एतत्संज्ञकस्य असुरस्य पुरः पुराणि नगराणि अभिनत् नाशि-  
 तवान् । कीदृशस्त्वम् । अननुदः नुदति शत्रून् अपसारयतीति  
 नुदः न तादृशोऽनुदः अप्रेरकः । तादृशो न भवतीत्यनानुदः ।  
 सर्वदा शत्रव्यावक इत्यर्थः । अथ वा अनु पश्चाद् घति खण्डय-  
 तीत्यनुदः अनुचरः । स यस्य नास्ति सोऽनानुदः । असहाय-  
 भूत इत्यर्थः । ❀ दो अवखण्डने । “आदेचः०” इत्यात्त्वम् ।  
 “आतश्चोपसर्गे” इति कप्त्ययः । नास्ति अनुदोस्य इति बहुव्रीहौ  
 “नञ्मुभ्याम्” इति उत्तरपदान्तोदात्तत्वम् ❀ ॥

हे इन्द्रदेव ! आपने अतिथिगु नाम वाले राजाके कारण परम  
 तेजोमयी वर्तनी नामक शक्तिसे करञ्ज नाम वाले असुरको मार

हाला था, और पर्ण्य नामक असुरको भी आपने मार डाला था और आपने किसीकी सहायता न लेकर अभिश्वन् नामक राजाके लिये वङ्गद नामक असुरके सौ रक्षित पुरोंको तष्ट कर डाला था ॥ ८ ॥

नवमी ॥

त्वमेतां जनराज्ञो द्विर्दशाबन्धुना सुश्रवसोपजग्मुषः ।  
षष्टिं सहस्रां नवतिं नव श्रुतो नि चक्रेण रथ्यां  
दुष्पदावृणक् ॥ ९ ॥

स्वम् । एतान् । जनराज्ञः । द्विः । दश । अबन्धुना । सुश्रवसा ।  
उपजग्मुषः ।

षष्टिम् । सहस्रा । नवतिम् । नव । श्रुतः । नि । चक्रेण । रथ्यां ।  
दुःस्पदा । अवृणक् ॥ ९ ॥

हे इन्द्र श्रुतः विख्यातस्त्वम् अबन्धुना बन्धुरहितेन सहायव-  
जितेन सुश्रवसा एतन्नामकेन राज्ञा निमित्तेन एतान् प्रसिद्धान्  
उपजग्मुषः उपगतान् निरोधं कृतवतः द्विर्दश द्विगुणितान् दशसं-  
ख्याकान् । विंशतिसंख्याकान् इत्यर्थः । तथा षष्टिं सहस्रा सह-  
स्राणां षष्टिम् षष्टिसहस्रसंख्याकान् तथा नवतिं नव नवोत्तरनव-  
तिसंख्याकान् जनराज्ञः जनानां भटानां स्वामिनः उक्तसंख्या-  
कान् सेनानायकान् दुष्पदा दुष्पदनेन शत्रुभिर्गन्तुम् अशक्येन  
रथ्या रथाहेण । ❀ “रथाद् यत्” इति यत् ❀ चक्रेण न्यवृ-  
णक् न्यवर्जयः अनाशयः । ❀ वृजी वर्जने । रौधादिकः । लङ्  
प्रथमैकवचने “हल्लुङ्याब्भ्यः” इति सिपो लोपः । “चोः कुः”  
इति कुत्वम् ❀ ॥



हे इन्द्रदेव ! आप मसिद्ध हैं आपने सहायकरहित सुश्रवा राजाके कारण उसको घेरने वाले बीस, साठ हजार और निन्यानवे सेनानायकोंको चक्रसे मार डाला था शत्रु उस चक्रको पहुँच नहीं सकते थे ॥ ९ ॥

दशमी ॥

त्वमाविथ सुश्रवसं तवोतिभिस्तव त्रामभिरिन्द्र तूर्व-  
याणम् ।

त्वमस्मै कुत्समतिथिग्वमायुं महे राज्ञे यूने अरन्धनायः

त्वम् । आविथ । सुश्रवसम् । तव । ऊतिभिः । तव । त्रामभिः ।

इन्द्र । तूर्वयाणम् ।

त्वम् । अस्मै । कुत्सम् । अतिथिग्वम् । आयुम् । महे । राज्ञे । यूने ।

अरन्धनायः ॥ १० ॥

हे इन्द्र त्वम् सुश्रवसम् पूर्वमन्त्रे अबन्धुना सुश्रवसेत्युक्तम् असहायं दुर्बलम् एतन्नामानं राजानं तव ऊतिभी रक्षाभिः आविथ ररक्षिथ । तथा तस्यैव राज्ञोर्थाय तूर्वयाणम् एतत्संज्ञकं राजानं तव त्रामभिः पालनैः । आविथेति संबन्धः । ॐ त्रैङ् पालने । “आदेचः०” इति आस्वम् । “आतो मनिन्०” इति मनिन् । निच्वाद् आशुदात्तत्वम् ॐ । एवं त्वम् अस्मै सुश्रवसे राज्ञे । कीदृशाय । महे महेते यूने वयःस्थाय युवराजभूताय सुश्रवसे कुत्सम् अतिथिग्वम् आयुं च अरन्धनायः वशम् अनैषीः । ॐ रन्धनं वशीकरणं करोति । “तन् करोति०” इति शिच् । “इष्टवर्णो मातिपदिकस्म” इति इष्टवर्णावाहितलोपः । लङि सिपि दीघेश्लान्दयः ॐ ॥

हे इन्द्रदेव आपने सुश्रवा नामक राजाकी अपनी रक्षक शक्तियोंसे रक्षा की है और उसी राजाके लिये तूर्वयाण नामक राजाका पालकशक्तियोंसे पालन किया है । इस युवराज सुश्रवा राजाको कुत्स अतिथिगु और आयुको सौँव दिया था ॥ १० ॥

एकादशी ॥

य उदचीन्द्रदेवगोपाः सखायस्ते शिवतमा असाम ।  
त्वां स्तोषाम त्वया सुवीरा द्राघीय आयुः प्रतरं  
दधानाः ॥ ११ ॥

ये । उत्ञ्चि । इन्द्र । देवगोपाः । सखायः । ते । शिवस्तमाः ।  
असाम ।

त्वाम् । स्तोषाम । त्वया । सुवीराः । द्राघीयः । आयुः ।

प्रतरम् । दधानाः ॥ ११ ॥

हे इन्द्र ये वयम् उदचि उदकं यज्ञममाप्तौ वर्तमाना देवगोपाः  
देवेन त्वया पालिताः ते तव सखायः सांख्यवद् अत्यन्तप्रियाः  
अत एव शिवतमा असाम अतिशयेन कन्याणा अभूम । ॐ अस  
भुवि । लुङ्गर्थे लोटि ‘आहुत्तमस्य पिब्व’ इति पिब्वद्भावात् “पिब्व  
ङिन्न” इति ङिच्वाभावे “असोरल्लोपः” इत्यकारलोपाभावः ।  
पित्रादेव तिङोनुदात्तत्वम् । धातुस्वरः शिष्यते ॐ । ते वयं  
यज्ञममाप्त्युत्तरकालंपि त्वां स्तोषाम स्तवाम । ॐ स्तोतेर्लोडि  
“सिब्वहुलं लोटि” इति बहुलग्रहणात् लोट्यपि सिप् । तस्य  
पित्राद् गुणः ॐ । अस्माभिः स्तुतेन त्वया सुवीराः शोभनपुत्र-  
वन्तः सन्तः द्राघीयः अतिशयेन दीर्घम् आयुः । जीवनं प्रतरम्  
प्रकृष्टतरं यथा भवति तथा दधानाः धारयन्तो भूयास्म ॥

इति तृतीयेनुवाके चतुर्थं सूक्तम् ॥

हे इन्द्र ! जो हम हैं वह इस यज्ञकी समाप्तिके समय आपसे देवतासे रक्षित रहें हम आपके मित्रकी समान परम प्रिय हैं अत एव हम परम कल्याणको प्राप्त होवें । हम यज्ञसमाप्तिके अनंतर भी आपकी स्तुति करते रहें, आपकी स्तुति करनेसे आपकी दया पानेके कारण हम शोभन पुत्रोंसे सम्पन्न रहें, दीर्घायु पावें और श्रेष्ठतासे तरने योग्य आयुको पावें ॥ ११ ॥

तृताय अनुवाकमे चतुर्थे सूक्त समाप्त ( ६३७ ) ।

अतिरात्रे क्रतौ मध्यमपर्याये ब्राह्मणाच्छंसिनः शस्त्रे “अभि त्वा वृषभा सुते” इत्यादीनि चत्वारि सूक्तानि विनियुक्तानि । चतुर्थसूक्तस्य अन्तिमा “बर्हिर्वा यत्स्वपत्याय” इत्येषा परिधानीया । सूत्रितं हि । “मध्यमे त्रिवृदसि” इति प्रक्रम्य “अभि त्वा वृषभा सुते [ १. ] अभि प्र गोपति गिरा [ ४ ] इति स्तोत्रियानुरूपौ । बर्हिर्वा यत्स्वपत्याय [ २०, २५. ६ ] इति परिधानीया । प्रोग्रां पीतिम् [ २०. २५. ७ ] इति “याज्या” इति [ वै० ४. २ ] ।

“ऊर्ध्वं सर्वत्र त्रीणि सूक्तानि । अन्त्यं पच्छः पर्यासः” इति [ वै० ४. २ ] सूत्रितत्वात् सर्वत्र त्रिषु पर्यायेषु स्तोत्रियानुरूपाभ्याम् ऊर्ध्वं सूक्तत्रयं शंसनीयम् । अतः “आ तू न इन्द्र पद्रथक्” [ २०, २३ ] इत्यादिसूक्तत्रयस्य मध्यमपर्यायशस्त्रे विर्नियोग उपपन्नः । अत एव “अश्वावति” [ २०. २५ ] इत्यस्य तृतीयसूक्तस्य अन्तिमा परिधानीयात्वेन सूत्रकृता सूत्रिता ॥ ६

अतिरात्र क्रतुके मध्यम पर्यायमें ब्राह्मणाच्छंसिके शस्त्रमें “अभि त्वा वृषभा सुते” आदि चार सूक्तोंका विनियोग है । चतुर्थसूक्तकी अन्तिम ऋचा “बर्हिर्वा यत्स्वपत्याय” ऋचा परिधानीया है । इस विषयमें सूत्रका प्रमाण भी है, कि—“मध्यमे त्रिवृदसि” इति प्रक्रम्य “अभि त्वा वृषभा सुते ( १ ) अभि प्र



गोपतिं गिरा ( ४ ) इति स्तोत्रियानुरूपौ । बर्हिर्वा यत्स्वपत्याय ( २० । २५ । ६ ) इति परिधानीयां प्रोग्रां पीतिम् ( २० । २५ । ७ ) इति याज्या' ( वैतानसूत्र ४ । २ ) ॥

“ऊर्ध्वं सर्वत्र त्रीणि सूक्तानि । अन्त्यं पच्छः पर्यासः । पहिले सर्वत्र तीन सूक्तोंको कहे, फिर अन्त्य पच्छः पर्यासको कहे” इस प्रकार वैतानसूत्र ४ । २ में सूत्रित होनेके कारण सर्वत्र तीनों पर्यायोंमें स्तोत्रियानुरूपोंसे पहिलेतीनों सूक्तोंको कहना चाहिये । अतः “आ तू न इन्द्र मद्रथक्” ( २० । २३ ) आदि तीन सूक्तों का मध्यमपर्यायशस्त्रमें विनियोग उपपन्न है । अत एव ‘अश्वाव्रति’ ( २० । २५ ) इस तृतीयसूक्तकी अन्तिम ऋचाको सूत्रकारने परिधानीया बताया है ।

तत्र प्रथमा ॥

अभि त्वां वृषभा सुने सुतं सृजामि पीतये ।

तृम्पा व्यश्नुही मदम् ॥ १ ॥

अभि । त्वा । वृषभ । सुते । सुतम् । सृजामि । पीतये ।

तृम्पा । वि । अश्नुहि । मदम् ॥ १ ॥

हे वृषभ वर्षक इन्द्र सुते सोमे अभिषुते सति सुतम् अभिषवादिना संस्कृतं सोमं पीतये पानाय त्वा त्वाम् अभि सृजामि संयोजयामि तेन सृष्टेन सोमेन तृम्प प्रीतो भव । ❀ तृम्प तृप्सौ । तुदादित्वात् शः । हेलोपः । विकरणस्वरेण अन्तोदात्तः ❀ । त्वं च मदम् मदकरं सोमं व्यश्नुहि विशेषेण व्यामहि । ❀ अशू व्याप्सौ । व्यत्ययेन परस्मैपदम् ❀ ॥

हे वर्षक इन्द्रदेव ! हम सोमके अभिषुत होने पर अभिषव आदिसे संस्कृत सोमका पान करनेके लिये आपको संयुक्त करते

हैं । आप उस सोमसे तुम हूजिये और आप उस मदकर सोमको  
व्याप्त कर लीजिये ॥ १ ॥

द्वितीया ॥

मा त्वां मूरा अविष्यवो मोपहस्वान् आ दभन् ।

माकीं ब्रह्मद्विषो वनः ॥ २ ॥

मा । त्वा । मूराः । अविष्यवः । मा । उपऽहस्वानः । आ । दभन् ।

माकीम् ब्रह्मऽद्विषः । वनः ॥ २ ॥

हे इन्द्र त्वा त्वाम् अविष्यवः अविं कर्तुम् इच्छन्तः अथ वा  
आत्मानं पालयितुं कामयमानाः त्वदनुग्रहम् अन्तरेण आत्मानं  
रक्षन्तः । ❀ अविशब्दात् क्यच् “क्याच्छन्दसि” इति उपत्ययः ।  
प्रत्ययस्वरेण अन्तोदात्तः ❀ । अत एव मूराः मूढा आत्माहितो-  
पायम् अजानन्तः । ❀ मूरशब्दस्य मूढशब्दपर्यायतां यास्क  
आह ‘मूरा अमूर न वयं विकित्वः’ । मूढा वयं स्मः अमूढ-  
स्त्वम् असीति नि० ६. ८ ❀ । मा दभन् मा हिंसन्तु । तथा  
उपहस्वानः उपहसनकर्तारोपि त्वां मा दभन् । ❀ उपपूर्वात् हसतैः  
“अन्येभ्योपि दृश्यन्ते” इति वनिप् । कृदुत्तरपदप्रकृतस्वरेण मध्यो-  
दात्तः ❀ त्वं च ब्रह्मद्विषः ब्राह्मणद्वेषुन् माकीम् । माशब्दपर्यायो  
माकींशब्दः । मा वनः मा भजेथाः । ❀ वन षण् संभक्तौ लङ् ।  
मध्यमैकवचनम् । “न माङ्योगे” इति अङभावः ❀ ॥

हे इन्द्रदेव ! आपके बिना अपनी रक्षा करना चाहने वाले  
मूढ पुरुष आपका हनन न कर सकें, तथा हँसी उड़ाने वाले भी  
आपको न दबा सकें, आप ब्रह्मद्वेषियों का सेवन न करिये । २।

तृतीया ॥

इह त्वा गोपरीणसा महे मन्दन्तु राधसे ।

सरो गौरो यथा पिब ॥ ३ ॥

इह । त्वा । गोऽपरीणसा । महे । मन्दन्तु । राधसे ।

सरः । गौरः । यथा । पिब ॥ ३ ॥

हे इन्द्र त्वा त्वाम् इह यागे गोपरीणसा । ॐ विकारे प्रकृति-  
शब्दः ॐ । गोविकारेण पयसा मिश्रतेन सोमेन । ॐ परिपूर्वाद्  
व्याप्तिकर्मणो नसतेः क्तिप् । “अन्येषामपि दृश्यते” इति दीर्घः ॐ ।  
महे महते राधसे धनाय मन्दन्तु ऋत्विजो मादयन्तु । त्वं च सरः  
सरणीशीलम् उदकं सरःस्थं वा गौरः गौरमृगो यथा अत्यन्त-  
तृपितः सन् निकामं पिबति तथा पिब ॥

हे इन्द्र ! इस यागमें ऋत्विज आपको गोदुग्ध मिले हुए सोम  
से महाधनकी प्राप्तिके लिये हर्षित करें और आप भी प्यासा  
गौरमृग सरोवरके जलको जैसे पीता है तिस प्रकार सोमको  
पीजिये ॥ ३ ॥

चतुर्थी ॥

अभि प्र गोपतिं गिरेन्द्रमर्च यथा विदे ।

सूनुं सत्यस्य सत्पतिम् ॥ ४ ॥

अभि । प्र । गोऽपतिम् । गिरा । इन्द्रम् । अर्च । यथा । विदे ।

सूनुम् । सत्यस्य । सत्ऽपतिम् ॥ ४ ॥

हे स्तोत्रः गोपतिम् स्वर्गस्य गवां वा स्वामिनम् इन्द्रम् यथा  
येन प्रकारेण विदे अस्मान् स्वीयतया जानाति । ॐ विदेर्व्यत्य-  
येन लिङात्पनेपदम् । द्विर्वचनप्रकरणे “छन्दसि वेति वक्तव्यम्”  
इति द्विर्वचनाभावः । “यावद्यथाभ्याम्” इति निघातप्रतिषेधः ।



प्रत्ययस्वरेण अन्तोदात्तः ॐ । तथा गिरा अभि प्रार्च प्रकर्षेण  
अभ्यर्च पूजय । कीदृशम् इन्द्रम् । सत्यस्य सत्यफलस्य यज्ञस्य  
सत्यस्यैव वा सूनुम् पुत्रस्थानीयम् । यत्र यज्ञस्तत्रेन्द्र इति पितृ-  
पुत्रवद् अव्यवहितसंबन्धात् सूनुत्वोपचारः । सत्पतिम् सतां स्व-  
सेवकानां पालयितारम् ॥

हे स्तोतः ! स्वर्गके स्वामी इन्द्रदेव जिस प्रकार हमको अपना  
समर्थें तैसी वाणीसे आप उनकी पूजा करिये । यह इन्द्रदेव सत्य-  
फल वाले यज्ञके पुत्रस्थानीय हैं [ जहाँ यज्ञ होता है तहाँ इन्द्र  
होते हैं, इस प्रकार पिता पुत्रकी समान अव्यवहित सम्बंध होने  
से पुत्रत्वका उपचार है ] और यह इन्द्रदेव सज्जन सेवकोंका  
पालन करने वाले हैं ॥ ४ ॥

पञ्चमी ॥

आ हरयः ससृज्जिरेरुषीरधि बर्हिषि ।

यत्राभि संनवामहे ॥ ५ ॥

आ । हरयः । ससृज्जिरे । अरुषीः । अधि । बर्हिषि ।

यत्र । अभि । समुनवामहे ॥ ५ ॥

अरुषीः अरुष्यः । अरुषम् इति रूपनाम । आरोचमानाः ।  
ॐ आङ् पूर्वाद् रुचेर्बाहुलकाद् उषच् । टिलोपः । आङोहस्वश्च ।  
“अन्यतो ङीष्” । वृषादित्वाद् आद्युदात्तः ॐ । उक्तरूपा हरयः  
अधि बर्हिषि । ॐ अधिः सप्तम्यर्थानुवादी ॐ । बर्हिषि आस्तृते  
आ ससृज्जिरे आससृजिरे आसृजन्तु । इन्द्ररथम् इति शेषः । यत्र  
यस्मिन् बर्हिषि इन्द्रम् अभि संनवामहे अभिसंस्तुमः । ॐ नु  
स्तुतौ । “आहुत्तमस्य पिच्च” इति पिच्वाद् धातुस्वरेण आद्यु-  
दात्तः ॐ ॥

रूपवान् घोड़े कुशाओंके बिछाने पर इन्द्रके रथको उन कुशाओं पर लावे जहाँ कि—हम स्तुति कर रहे हैं ॥ ५ ॥

षष्ठी ॥

इन्द्राय गाव आशिरं दुदुहे वज्रिणे मधु ।

यत् सीमुपहरे विदत् ॥ ६ ॥

इन्द्राय । गावः । आशिरम् । दुदुहे । वज्रिणे । मधु ।

यत् । सीम् । उपहरे । विदत् ॥ ६ ॥

वज्रिणे वज्रयुक्ताय इन्द्राय गावो मधु मधुरम् आशिरम् आश्रयणासाधनं पयः दुदुहे दुहते । ❀ दुह प्रपूरणे । “बहुलं छन्दसि” इति लिटि रुट् । वचनव्यत्ययः । प्रत्ययस्वरेण अन्तोदात्तः । यद्वा इरेच इकारलोपश्छान्दसः । चित्त्वाद् अन्तोदात्तः ❀ । यत् यदा उपहरे समीपे वर्तमानं मधु मधुवत् स्वादुभूतं सोमं सीम् सर्वतः विदत् स इन्द्रो लभते । ❀ विद्वल् लाभे । लृट्त्वाद् अङ् । “बहुलं छन्दसि०” इति अङभावः । “निपातैर्यद्यदि०” इत्यादिना निघातप्रतिषेधः । प्रत्ययस्वरेण अन्तोदात्तः ❀ ॥

इति तृतीयेनुवाके पञ्चमं सूक्तम् ॥

जब इन्द्रदेव समीपमें वर्तमान मधुकी समान स्वादु सोमको सब ओरसे पाते हैं तब वज्रधारी इन्द्रके लिये गौएँ मधुर दुग्धको दुहती हैं ॥ ६ ॥

तृतीय अनुवाकमें पञ्चम सूक्त समाप्त ( ६३८ )

“आ तू न इन्द्र मद्रथक्” इति सूक्तस्य अतिरात्रे मध्यमे रात्रिपर्याये ब्राह्मणाच्छंसिनः शस्त्रे विनियोग उक्तः ॥

“आ तू न इन्द्र मद्रथक्” सूक्तका अतिरात्रके मध्यम रात्रिपर्यायमें ब्राह्मणाच्छंसीके शस्त्रमें विनियोग कहा है ।

तत्र प्रथमा ॥

आ तू न इन्द्र मद्रथ्यधुवानः सोमपीतये ।

हरिभ्यां याह्यद्रिवः ॥ १ ॥

आ । तु । नः । इन्द्र । मद्रथ्यक् । धुवानः । सोमपीतये ।

हरिभ्याम् । याहि । अद्रिवः ॥ १ ॥

हे अद्रिवः । अद्रिरिति वज्रनाम इन्द्र धुवानः हूयमानस्त्वं मद्रथक् मद्रभिमुखः सन् नः अस्पदीये यज्ञसोमपीतये सोमपानार्थम् हरिभ्याम् आ याहि आगच्छ । ॐ मद्रथग इति । माम् अश्र्वतीति “ऋत्विग्दधृक्” इत्यादिना विवन् प्रत्ययः । “प्रत्ययोत्तरपदयोश्च” इति अस्मच्छब्दस्यैकवचने मपर्यन्तस्य मादेशः । “विष्वग्देवयोश्च देद्रथश्चान्वपत्यये” इति टेः अद्रि इत्यादेशः । अद्रिसधयोरन्तोदात्तनिपातनं कृत्स्नरनिवृत्त्यर्थम्” इति वचनाद् अद्रयादेशोऽन्तोदात्तः । यणादेशे कृते “उदात्तस्वरितयोर्यणः” इति यणः स्वरितत्वम् । “विवन्प्रत्ययस्य कुः” इति कुत्वम् ॐ ॥

हे वज्रधारिन् इन्द्र ! आहान किये जाते हुए आप हमारे अभिमुख होकर हमारे यज्ञमें सोमपान करनेके लिये हरि नामक घोड़ोंके द्वारा आइये ॥ १ ॥

द्वितीया ॥

सत्तो होता न ऋत्वियस्तिस्तिरे बर्हिरानुषक् ।

अयुञ्जन् प्रातरद्रयः ॥ २ ॥

सत्तः । होता । नः । ऋत्वियः । तिस्तिरे । बर्हिः । आनुषक् ।

अयुञ्जन् । प्रातः । अद्रयः ॥ २ ॥



हे इन्द्र नः अस्मदीये यज्ञे होता एतन्नामक ऋत्विक् ऋत्विग्यः  
प्राप्तकालः सन् । ❀ “छन्दसि घम्” इति घम् । यणादेशः ।  
प्रत्ययस्वरः ❀ । सत्तः निषण्णोभूत् । ❀ कर्तरि क्तः । सर्व-  
विधीनां छन्दसि विकल्पितत्वाद् निष्ठानत्वाभावः ❀ । तथा बर्हिः-  
वेद्याम् आनुषक् अनुषक्तं परस्परसंबद्धं यथा भवति तथा तिस्तिरे  
स्तीर्णम् अभूत् । ❀ स्तब्जः कर्मणि लिटि रूपम् । “ऋत् इद्धातोः”  
इति इत्त्वम् । द्विर्वचनम् । “शर्पूर्वाः खयः” इति तकारस्य शेषः ।  
“लिटस्तभ्योरेशिरेच्” इति एश् इत्यादेशः ❀ । एव प्रातः  
प्रातःसवने अद्रयः ग्रावाणः सोमाभिषवावार्थम् अयुक्त्वा संगता  
अभूवन् ॥

हे इन्द्रदेव ! हमारे यज्ञमें होतानांमक ऋत्विज समय आने पर  
उपस्थित है तथा वेदीमें कुशाभी परस्पर मिले हुए बिछे हुए हैं ।  
इसी प्रकार प्रातःसवनमें सोमाभिषवके पत्थर भी सोमका अभि-  
षव करनेके लिये संगत होगए हैं ॥ २ ॥

तृतीया ॥

इमा ब्रह्म ब्रह्मवाहः क्रियन्त आ बर्हिः सीद ।

वीहि शूर पुरोलाशम् ॥ ३ ॥

इमा । ब्रह्म । ब्रह्मवाहः । क्रियन्ते । आ । बर्हिः । सीद ।

वीहि । शूर । पुरोलाशम् ॥ ३ ॥

हे ब्रह्मवाहः । ब्रह्मणा मन्त्रेण स्तोत्ररूपेण प्राप्यत इति ब्रह्म-  
वाहाः । तस्य संबोधनम् । तादृश इन्द्र तुभ्यम् इमा इमानि ब्रह्म  
ब्रह्माणि स्तोत्राणि अस्माभिः क्रियन्ते । अतस्तदर्थं बर्हिः आ  
सीद उपविश । हे शूर शौर्योपेत इन्द्र आसन्नस्त्वं पुरोलाशम्  
अस्माभिर्दीयमानं वीहि भक्षय ॥

हे सन्त्रोसे प्राप्त होने योग्य ब्रह्मवाह इन्द्र ! हम आपके लिये  
इन स्तोत्रोंको कर रहे हैं, अत एव आप कुशाओं पर विराजिये ।  
हे शूरतासम्पन्न इन्द्र ! विराजयाम हुए आप हमारे दिये हुए  
सुहोडाकका भक्षण करिये ॥ ३ ॥

चतुर्थी ॥

ररन्धि सवनेषु ए एषु स्तोमेषु वृत्रहन् ।

उक्थेष्विन्द्र गिर्वणः ॥ ४ ॥

ररन्धि । सवनेषु । नः । एषु । स्तोमेषु । वृत्रहन् ।

उक्थेषु । इन्द्र । गिर्वणः ॥ ४ ॥

हे गिर्वणः गीर्भिः स्तुतिभिर्वननीय इन्द्र वृत्रहन् वृत्रहन् इन्द्रः  
हे इन्द्र नः अस्याकं सवनेषु त्रिष्वपि एषु क्रियमाणेषु स्तोमेषु  
स्तोत्रेषु उक्थेषु शस्त्रेषु च ररन्धि रमस्व । ॐ रमतेर्लोहि “बहुलं  
छन्दसि” इति शपः श्लुः । “ना छन्दसि” इति हेः पितृत्वेन  
छिन्नाभावाद् “अकितश्च” इति हेधिः ॥

हे स्तुतियोंसे सेवनीय इन्द्र ! हे वृत्रासुरका संहार करने वाले  
इन्द्र ! आप तीनों सवनोंमें किये जाने वाली स्तोत्रोंमें और शस्त्रों  
में भी रमण करिये ॥ ४ ॥

पञ्चमी ॥

मतयः सोमपामुरुं रिहन्ति शवसस्पतिम् ।

इन्द्रं वत्सं न मातरः ॥ ५ ॥

मतयः । सोमपामुः । उरुम् । रिहन्ति । शवसः । वसिम् ।

इन्द्रम् । वत्सम् । न । मातरः ॥ ५ ॥

मतयः अस्माभिः क्रियमाणाः स्तुतयः । ॐ मनं ज्ञाने इत्य-  
स्मात् कर्मणि "मन्त्रे वृष०" इत्यादिना क्तिन्नुदात्तः ॐ । बलम्  
महान्तं सोमपाम् सोमस्य पातारं शवसः बलस्य पतिम् स्वामि-  
नम् इन्द्रं रिहन्ति लिहन्ति प्राप्नुवन्ति । तत्र दृष्टान्तः । वत्सं न  
पातरः यथा वत्सं पातरो गावो लिहन्ति तद्वत् ॥

हमारी की हुई स्तुतियों सोमका पान करनेवाले बलके स्वामी  
महान् इन्द्रदेवको इस प्रकार प्राप्त होती हैं, जिस प्रकार बछड़ेको  
गौएँ चाटती हैं ॥ ५ ॥

षष्ठी ॥

स मन्दस्वा ह्यन्धसो राधसे तन्वा महे ।

न स्तोतारं निदे करः ॥ ६ ॥

सः । मन्दस्व । हि । अन्धसः । राधसे । तन्वा । महे ।

न । स्तोतारम् । निदे । करः ॥ ६ ॥

हे इन्द्र स तथाविधस्त्वं तन्वा तत्र शरीरेण निमित्तेन शरीर-  
बलाय अन्धसः अन्नस्य सोमलक्षणस्य पानेन मन्दस्व हृष्टो भव ।  
ॐ मदेर्षोदार्थस्य लोटि रूपम् । नात्र हिशब्दयोगाद् निघातमति  
षेधः । हेरत्र समुच्चयार्थत्वात् ॐ । महे राधसे घनाय प्रभूतय-  
नार्थं च । हर्षणस्य प्रयोजनद्वयम् । हृष्टस्येन्द्रस्य शरीरवृद्धिः  
हविःप्रदातुर्यजमानस्य धनलाभश्च हि । किंच ते स्तोतारं मां निदे  
परकृतनिन्दायै । ॐ संपदादिलक्षणः क्विप् । आगमानुशास-  
नस्य अनित्यत्वान्नुमभावः ॐ । न करः नाकार्षीः । ॐ करो-  
तेलुङि उत्तरङ् ॐ ॥

हे इन्द्रदेव ! ऐसे आप शारीरिक बलके लिये सोमरूपी अन्न  
के पानसे हर्षमें भरिये, बहुतसे धनके लिये भी हर्षमें भरिये ।



[ हर्षमें भरनेके दो प्रयोजन हैं, १ हर्षमें भरे हुए इन्द्रके शरीरकी अभिवृद्धि और २ इन्द्रप्रदाता यज्ञमानको धनकी प्राप्ति ] और शुभ स्तोत्राको दूसरेकी निक्षामें न लगाइये ॥ ६ ॥

सप्तमी ॥

वयमिन्द्र त्वायवो हविष्मन्तो जरामहे ।

उत त्वमस्मयुवसो ॥ ७ ॥

वयम् । इन्द्र । त्वायवः । हविष्मन्तः । जरामहे ।

उत । त्वम् । अस्मयुः । वसो इति ॥ ७ ॥

हे इन्द्र त्वायवः त्वां कामयमाना वयं हविष्मन्तः दिव्यस्तेन सोमलक्षणो हविषा तद्वन्तः सन्तो जरामहे त्वां स्तुमः । ॐ त्वायव इति । इच्छार्थे क्यञ्चि मप्यन्तस्य त्वादेशो “क्याच्छन्दसि” इति उपत्यये त्वयव इति प्राप्तौ “युष्मदस्मदोरजादेशो” इति अविभक्तावपि हलादौ व्यत्ययेन आत्वम् । प्रत्ययस्वरः ॐ । उत अपि च हे वसो सर्वस्य वासक इन्द्र त्वम् अस्मयुः अभिमतप्रदानाय अस्मान् कामयिता भव ॥

हे इन्द्रदेव ! आपकी कामना करते हुए हम, दी जाने वाली सोमरूपी हविसे सम्पन्न होकर आपकी स्तुति करते हैं । और हे वासक इन्द्रदेव ! आपको हमें अभिमत फल देना चाहिये ७

अष्टमी ॥

मारे अस्मद् वि मुमुचो हरिप्रियावाङ् याहि ।

इन्द्र स्वधावो मत्स्वेह ॥ ८ ॥

मा । मारे । अस्मद् । वि । मुमुचः । हरिप्रिय । अवाङ् । याहि ।

इन्द्र ! स्वधाऽवः । मत्स्व । इह ॥ ८ ॥

हे हरिप्रिय । हरी एतन्नामानावश्वौ प्रियौ यस्य स तथोक्तः । तस्य संबोधनम् । अस्मत् अस्मत्तः आरै दूरे मा वि मुमुचः । हरिप्रियेत्युक्तत्वाद् रथयुक्तावश्वौ मा विमोचय किं तु रथारूढ एव अर्वाङ् अस्मदभिमुखं याहे आगच्छ । आगत्य च हे स्वधावः हवित्तण्णोनान्नेन तद्वन्निन्द्र इह अस्मिन् देवयजने मत्स्व सोमपानेन हृष्टो भव । ॐ यदि स्तुतीत्यादि । अस्य लोटि “बहुलं छन्दसि” इति विकरणस्य लुक् । आमन्त्रितस्य अविश्रमानवत्त्वाद् अनिघातः ॥

हे हरि नामक अश्वोंको प्रिय, समझने वाले इन्द्र ! आप अपने रथमें जुड़े हुए घोड़ोंको दूर पर मत छोड़िये, किंतु रथ पर आरूढ़ ही हमारे अभिमुख आइये । और आकर हे हविरूप अन्नके प्राप्त इन्द्र ! इस देवयागमें सोमपानसे प्रसन्न हजिये ॥ ८ ॥

भवमी ॥

अर्वाञ्च त्वा सुखे रथे वहतामिन्द्र केशिना ।

घृतस्नू बर्हिः आसदे ॥ ९ ॥

अर्वाञ्चम् । त्वा । सुखे । रथे । वहताम् । इन्द्र । केशिना ।

घृतस्नू इति घृतऽस्नू । बर्हिः । आसदे ॥ ९ ॥

हे इन्द्र त्वा त्वा सुखे शरीरापीडनेन सुखकरे रथे केशिना केशवन्तौ स्कन्धप्रदेशे लम्बमानकेशयुक्तौ घृतस्नू श्रमजनितस्वेदोदकस्रोत्रिणावश्वौ आसदे आसदनीयं बर्हिः अर्वाञ्चम् अभिमुखं वहताम् प्रापयताम् । ॐ घृतस्नू इति । घृतशब्दात् ण्यु प्रस्रवणे इत्यस्मात् संप्रदात्रिलक्षणा । क्तिप् । घृतस्य स्नू स्रवणं

ययोस्ताविति बहुव्रीहौ पूर्वपदप्रकृतिस्वरेण मध्योदात्तः । आसदे ।  
कृत्यार्थे केन प्रत्ययः । नित्स्वरः । कुदुत्तरपदप्रकृतिस्वरः ॥

इति तृतीयेनुवाके षष्ठं सूक्तम् ॥

हे इन्द्रदेव ! शरीरको सुख देने वाले रथमें विराजमान आप  
को लम्बे अयाल वाले, श्रमकी बूँदोंको वहाने वाले घोड़े, बैठने  
योग्य कुशासन पर हमारे अभिमुख लावें ॥ ६ ॥

तृतीय अनुवाकमें छठा सूक्त समाप्त ( ६३९ )

“उप नः सुतमा गहि” इति सूक्तस्य अतिरात्र एव मध्यम  
रात्रिपर्याये ब्राह्मणाच्छंसिशस्त्रे विनियोग उक्तः ॥

“उप नः सुतमागहि” इस सूक्तका अतिरात्रमें ही मध्यम रात्रि-  
पर्यायके ब्राह्मणाच्छंसिशस्त्रमें विनियोग कहा है ।

तत्र प्रथमा ॥

उप नः सुतमा गहि सोममिन्द्र गवाशिरम् ।

हरिभ्यां यस्ते अस्मयुः ॥ १ ॥

उप । नः । सुतम् । आ । गहि । सोमम् । इन्द्र । गोऽग्वाशिरम् ।

हरिऽभ्याम् । यः । ते । अस्मयुः ॥ १ ॥

हे इन्द्र नः अस्मदीयं सुतम् अभिषुतं गवाशिरम् गव्यं ययः  
आश्रयणसाधनं यस्य तम् । ॥ आङ्पूर्वात् श्रीणातेः विवर्षि  
“अपस्पृधेथाम् आनृचुः” इत्यादिना शिर् इत्यादेशः । बहुव्रीहौ  
पूर्वपदस्वरः ॥ तं सोमं प्रति उपा गहि समीपे आगच्छ । यतः  
हरिभ्याम् अश्वाभ्यां युक्तः ते तव रथः अस्मयुः अस्मान् काम-  
यमानो वर्तते ॥

हे इन्द्रदेव ! हमारे अभिषुत गवाशिर ( गौके दूधमें आँटे  
हुए ) सोमके समीप आइये, क्योंकि—हरि नामक अश्वोंसे जुता  
हुआ आपका रथ हमारी कामना कर रहा है ॥ १ ॥



द्वितीया ॥

तमिन्द्र मदमा गहि बहिष्ठां प्रावभिः सुतम् ।

कुविन्वस्य तृणवः ॥ २ ॥

तम् । इन्द्र । मदम् । आ । गहि । बहिःस्थाम् । प्रावधि । सुतम् ।

कुवित् । नु । अस्य । तृणवः ॥ २ ॥

हे इन्द्र तं प्रसिद्धं मदम् मदकरं बहिष्ठाम् बहिषि स्थितं प्रावभिः पाषाणैः सुतम् अभिषुतं सोमम् अभिलक्ष्य आ गहि आगच्छ । नु क्षिप्रम् अस्व सोमस्य पानेन कुवित् । बहुनामैतत् । मथूर्तं यथा भवति तथा तृणवः तृणो भव । ❀ तृण पीणने इत्यस्य लेटि अडागमः । व्यत्ययेन रनुविकरणः ❀ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप कुशाओं पर स्थित, मदकारी, पाषाणोंसे अभिषुत सोमको लक्ष्यमें रख कर आइये और शीघ्र ही इस सोमके पानसे अतिवृत्त हुईये ॥ २ ॥

तृतीया ॥

इन्द्रमिथा गिरो ममाच्छागुरिषिता इतः ।

आवृते सोमपीतये ॥ ३ ॥

इन्द्रम् । इत्या । गिरः । मम । अच्छ । अगुः । इषिताः । इतः ।

आवृते । सोमपीतये ॥ ३ ॥

इन्द्रम् अच्छ इन्द्रम् अभिलक्ष्य मम गिरः स्तुतिरूपा वाचः इषिताः अस्माभिः प्रेरिताः सत्यः इतः अस्माद् देवव्रजसका-  
शाद् इत्या इत्थम् उच्चार्यमाणप्रकारेण अगुः प्राप्ताः । ❀ इदम्-  
शब्दात् “या हेतौ च क्वन्दसि” इति व्यत्ययेन या प्रत्ययः । इदम्

“एतेतौ रथोः” इति इत् इत्यादेशः । प्रत्ययस्वरः ॐ । किमर्थम् ।  
 आवृते आवर्तनाय अस्मद्यज्ञं प्रति आगमनाय । ॐ वृत्तु वर्तने ।  
 अस्य संपदादिलक्षणः क्विप् । प्रादिसमासः । कृदुत्तरपदप्रकृति-  
 स्वरः ॐ । आवृत्तिरपि किमर्थेति तत्राह । सोमपीतये सोमपानाय ॥

इन्द्रको लक्ष्यमें रख कर हमसे प्रेरित हुई इस देवयज्ञस्थलसे  
 उच्चारण की हुई स्तुतिरूपा वाणियों हमारे यज्ञमें खानेके लिये  
 और सोमपानके लिये इन्द्रको प्राप्त होती हैं ॥ ३ ॥

चतुर्थी ॥

इन्द्रं सोमस्य पीतये स्तोमैरिह हवामहे ।

उक्थेभिः कुविदागमत् ॥ ४ ॥

इन्द्रम् । सोमस्य । पीतये । स्तोमैः । इह । हवामहे ॥ ४ ॥

उक्थेभिः । कुवित् । आगमत् ॥ ४ ॥

इन्द्रं देवं सोमस्य पीतये पानाय इह अस्मिन् यज्ञे स्तोमैः त्रि-  
 वृत्पञ्चदशादिस्तोमसाध्यैः स्तोत्रैः उक्थेभिः उक्थैः आज्यप्रउसा-  
 दिशस्त्रसाध्याभिः स्तुतिभिश्च हवामहे आहवामः । स च आहूत  
 इन्द्रः कुवित् बहुवारम् आगमत् अस्मद्यज्ञं प्रति आगच्छतु । ॐ गमे-  
 र्तेति अडागमः । कुविद्योगाद् अनिघातः । “आगमा अनुदात्ताः”  
 इति अटानुदात्तत्वाद् धातुस्वरः । “तिङ्गि चोदात्तवति” इति गते-  
 निघातः ॐ ॥

हम इन्द्रदेवका सोमपानके लिये इस यज्ञमें त्रिवृत् पञ्चदश आदि  
 स्तोमसाध्य स्तोत्रोंसे और आज्य प्रउसादि शस्त्रसाध्य स्तुतियों  
 से भी आह्वान करते हैं । वह पुन्नाये हुए इन्द्रदेव हमारे यज्ञमें  
 बहुत बार आवें ॥ ४ ॥

पञ्चमी ॥

इन्द्र सोमाः सुता इमे तान् दधिष्व शतक्रतो ।

जठरे वाजिनीवसो ॥ ५ ॥

इन्द्र । सोमाः । सुताः । इमे । तान् । दधिष्व । शतक्रतो इति शतऽक्रतो ।

जठरे । वाजिनीवसो इति वाजिनीऽवसो ॥ ५ ॥

हे इन्द्र इमे ग्रहचमससंस्थिताः सोमाः सुताः त्वदर्थम् अभिष-  
वादिना संस्कृताः हे शतक्रतो बहुकर्मन् हे वाजिनीवसो अन्नधन ।  
यद्वा वाजः अन्नं फलरूपम् आस्त्विति वाजिन्यः क्रियास्तासां  
वासक इन्द्र । ❀ वाजशब्दान्मत्वर्थीय इति । “ऋन्नेभ्यः०” इति  
ङीप् ❀ । तासां वसो । ❀ “संबुद्धौ च” इति गुणः ❀ । तान्  
त्वदर्थम् अभिषुतान् सोमान् जठरे दधिष्व धारय ॥

हे इन्द्र ! ये ग्रह चमस आदिमें स्थित सोम अभिषव आदि  
से आपके लिये संस्कृत किये गए हैं, हे अन्नधन इन्द्र ! इनको  
आप अपने उदरमें धारण करिये ॥ ५ ॥

षष्ठी ॥

विज्ञा हि त्वां धनंजयं वाजेषु दधृषं कवे ।

अर्धा ते सुम्नमीमहे ॥ ६ ॥

विज्ञा । हि । त्वा । धनम्ऽजयम् । वाजेषु । दधृषम् । कवे ।

अथ । ते । सुम्नम् । ईमहे ॥ ६ ॥

हे कवे क्रान्तपङ्क इन्द्र त्वा त्वां वाजेषु संग्रामेषु दधृषम् अतिशयेन  
शत्रुधर्पकं धनंजयम् शत्रुधनस्य जेतारं विज्ञ जानीमः । अथ अतः  
कारणात् ते तव सुम्नम् सुखं मुखकरं धनं वा ईमहे गाचामहे ।



❀ धनंजयम् इति । जि जये इत्यस्माद् धन उपपदे “संज्ञायां भृ-  
तृजि०” इति खच् । “अरुद्विषदजन्तस्य०” इति मुम् आगमः ।  
दधृषम् इति । धृषेर्घङ्लुगन्तात्पचः चिचि “यङोऽचिच” इति यङो  
लुक् । लघूपाधगुणे प्राप्त “न धातुलांप्” इति तस्य प्रतिषेधः ❀॥

हे बुद्धिमान् इंद्र ! आपको हम संग्रामोंमें शत्रुओंको दवाने  
वाला और शत्रुओंके धनको जीतने वाला जानते हैं । इस कारण  
हम आपके सुखकर धनकी याचना करते हैं ॥ ६ ॥

सप्तमी ॥

इममिन्द्र गवांशिरं यवांशिरं च नः पिब ॥

आगत्या वृषभिः सुतम् ॥ ७ ॥

इमम् । इन्द्र । गोऽआशिरम् । यवऽआशिरम् । च । नः । पिब ।

आगत्या । वृषभिः । सुतम् ॥ ७ ॥

हे इन्द्र गवाशिरम् । ❀ विकारे प्रकृतिशब्दः ❀ । गव्याख्या-  
शीर्द्रव्योपेतं तथा यवाशिरं च यवलक्षणमिश्रणद्रव्योपेतं वृषभिः  
वर्षकैर्ग्राभिः सुतं नः अस्मदीयम् इमं सोमम् आगत्य अस्मदभि-  
मुखं प्राप्य पिब पानं कुरु । ❀ गवाशिरं यवाशिरम् इत्युभयत्र  
आङ्पूर्वस्य श्रीणातेः । क्वपि “अपस्पृधेयाम् आनृदुः०” इत्या-  
दिना शिर् इत्यादेशः । बहुव्रीहौ पूर्वपदप्रकृतिस्वरः ❀ ॥

हे इंद्र ! आप गव्य और जौ मिले हुए, वर्षक पत्थरोंसे निचोड़े  
हुए इस सोमको आकर पीजिये ॥ ७ ॥

अष्टमी ॥

तुभ्येदिन्द्र स्व ओकोऽसोमं चोदामि पीतये ।

एव शरन्तु ते हृदि ॥ ८ ॥

तुभ्य । इत् । इन्द्र । स्वे । ओक्वे । सोमम् । चोदामि । पीतये ।  
एवः । ररन्तु । ते । हृदि ॥ ८ ॥

हे इन्द्र तुभ्य इत् तुभ्यमेव । ❀ “सुतां सुलुक्” इति सुतो  
लुक् ❀ । पीतये पानार्थं स्वे स्वीये ओक्वे ओकासि स्थाने जठरे ।  
❀ वस्यादित्वात् स्वार्थिको यत् ❀ । सोमं पीतये पानाय चोदामि  
प्रेरयामि । स एव पीतः सोमः ते तत्र हृदि हृदये ररन्तु अन्यर्थं  
रमताम् । ❀ रमु क्रीडायाम् इत्यस्य यङ्लुकि लोटि सर्वविधीनां  
छन्दसि विकल्पितत्वाद् अभ्यासस्य जुगभावाः । संहितायाम्  
“अन्येषामपि दृश्यते” इति अभ्यासस्य दीर्घः ❀ ॥

हे इन्द्रदेव ! मैं आपको ही पान करनेके लिये अपने जठररूप  
स्थानमें सोमको धारण करनेके लिये प्रेरणा करता हूँ, वह पिया  
हुआ सोम आपके हृदयमें बारम्बार रमण करता रहे ॥ ८ ॥

नवमी ॥

त्वां सुतस्य पीतये प्रत्नमिन्द्र हवामहे ।

कुशिकासो अवस्यवः ॥ ९ ॥

त्वाय् । सुतस्य । पीतये । प्रत्नम् । इन्द्र । हवामहे ।

कुशिकासः । अवस्यवः ॥ ९ ॥

हे इन्द्र प्रत्नम् पुगतनं त्वां सुतस्य अभिपुतस्य भीमस्य पीतये  
पानाय कुशि कासः कुशिकर्मात्रान्पन्ना नमस् अवस्यवः रक्षाकामाः  
सन्तो हवामहे आह्वयामः । ❀ कुशिकालो अवस्यव इत्यत्र संहि  
तायाम् “अव्यादवआदवक्रमुत्रतायमनत्वनस्युषु च” इति एङः  
प्रकृतिभावः ❀ ॥

इति तृतीयेनुवाके सप्तमं सूक्तम् ॥

हे इंद्रदेव ! कुशिकगोत्रमें उत्पन्न हुए रक्षा चाहते हुए हम आप प्राचीन देवताको अभिषुत सोमका पान करनेके लिये आह्वान करते हैं ॥ ६ ॥

तृतीय अनुवाकमें सप्तम सूक्त समाप्त ( ६४० )

“अश्वावति प्रथमः” इति सूक्तस्य अतिरात्रे क्रतौ मध्यमे रात्रिपर्याये ब्राह्मणाच्छंसिशस्त्रे विनियोग उक्तः । अस्यान्तिमा “बर्हिर्वा यत्” [ ६ ] इत्येषा परिधानीया ॥

“अश्वावति प्रथमः” इस सूक्तका अतिरात्र क्रतुके मध्यम रात्रि-पर्यायके ब्राह्मणाच्छंसिशस्त्रमें विनियोग कहा है । इसकी अंतिम “बर्हिर्वा यत् [ ६ ] ऋचा परिधानीया है ।

तत्र प्रथमा ॥

अश्वावति प्रथमो गोषु गच्छति सुप्रावीरिन्द्र मर्त्य-  
स्तवोतिभिः ।

तमित् पृणक्षि वसुना भवीयसा सिन्धुमापो यथाभितो  
विचेतसः ॥ १ ॥

अश्वावति । प्रथमः । गोषु । गच्छति । सुप्रऽअवीः । इन्द्र ।

मर्त्यः । तव । ऊतिऽभिः ।

तम् । इत् । पृणक्षि । वसुना । भवीयसा । सिन्धुम् । आपः ।

यथा । अभितः । विऽचेतसः ॥ १ ॥

हे इन्द्र यो मर्त्यस्तवोतिभिः रक्षाभिः सुप्रावीः सुष्ठु रक्षितो भवति स मर्त्यः अश्वावति बहुभिरश्वैस्तद्वति युद्धे यद्वा बह्वश्वो-पेते जने । बह्वश्ववत्सु इत्यर्थः । तेषु प्रथमः मुख्यः सन् गच्छति



मुख्यो भवति । तथा गोपु गोमत्सु प्रथमो गच्छति । बहुपशुको भवतीत्यर्थः । त्वमपि भवीयसा बहुतरेण भवितृत्वेन वा । बहु-  
भावं प्राप्नुवता । ❀ भवितृशब्दात् “तुश्छन्दसि” इति ईयसुन् ।  
“तुरिष्ठेमेयःसु” इति तृलोपः ❀ । वसुना धनेन अभितः तमित्  
तमेव पुरुषं पृणत्ति संपृक्तं करोषि । ❀ पृची संपर्के । रौधा-  
दिकः ❀ । तत्र दृष्टान्तः । यथा विचेतसः विशिष्टज्ञानसाधन ।  
आपः यथा अभितः सिन्धुम् समुद्रं पूरयन्ति तद्वत् ॥

हे इंद्र ! जो पुरुष आपकी रक्षाओंसे भली प्रकार रक्षित  
होता है, वह पुरुष बहुतसे अश्वों वाले युद्धमें वा बहुतसे घोड़-  
सवारोंमें मुख्य होजाता है । तथा गौओं वालोंमें भी मुख्य होता  
है अर्थात् बहुतसे पशुओं वाला होता है, और विशिष्ट ज्ञानके  
साधन जल चारों ओरसे समुद्रको भरते हैं, इसी प्रकार आप भी  
बहुतसे रूपोंको प्राप्त होनेवाले धनसे उसी पुरुषको सम्पन्न बनाते हैं  
द्वितीया ॥

आपो न देवीरुपं यन्ति होत्रियमवः पश्यन्ति विततं  
यथा रजः ।

प्राचैर्देवासः प्र णयन्ति देवयुं ब्रह्मप्रियं जोषयन्ते वरा  
इव ॥ २ ॥

आपः । न । देवी । उप । यन्ति । होत्रियम् । अवः । पश्यन्ति ।

विस्तृतम् । यथा । रजः ।

प्राचैः । देवासः । प्रा नयन्ति । देवयुम् । ब्रह्मप्रियम् । जोषयन्ते ।

वराः इव ॥ २ ॥

हे इन्द्र हां त्रियम् होत्रार्हं त्वाम् आपो न देवीः द्योतमाना आपो यथा उपयन्ति उपगच्छन्ति निम्नं प्रदेशं समुद्रादिकं वा एवम् उपयन्ति त्वाम् उपगच्छन्ति । सागध्वार्त् स्तुतयः स्तोतारो वेति लभ्यते । तथा अवः पश्यन्ति अवः अवस्तात् पश्यन्ति । तत्र स्वरूपं द्रष्टुम् पशक्ता इत्यर्थः । तत्र दृष्टान्तः । यथा विततम् विस्तृतं रजः । ❀ ज्योती रज उच्यते इति निरुक्तम् [ ४. १६ ] ❀ । सर्वतो व्याप्तं सावित्रं तेजो यथा द्रष्टुम् अशक्ता अवस्तात् पश्यन्ति तद्वत् । किं च देवामः स्तोतार ऋत्विजः त्वां प्राचैः प्राचीनं प्रणयन्ति वेद्यभिमुखं गमयन्ति । यद्वा त्वदर्थं सोमम् अग्निं च प्राञ्चं प्रणयन्ति ब्रह्मप्रियम् । ब्रह्म परिवृढं स्तोत्रं कर्म वा । तत् प्रियं यस्य स तादृशं तां वरा इव यथा वराः कन्या जोषयन्ते एवम् ऋत्विजो जोषयन्ते सेवन्ते ॥

हे इन्द्रदेव ! दमकते हुए जल जैसे निम्नस्थलमेंको वा समुद्र मेंको जाते हैं, इसी प्रकार स्तुतियों, होत्रार्ह आपको ही प्राप्त होती हैं । जैसे विस्तृत सूर्यके प्रकाशको देखनेमें असमर्थ हुए, पुरुष नीचेको देखने लगते हैं, इसी प्रकार आपके स्वरूपसे चौंधाये हुए पुरुष भी नीचेको देखने लगते हैं । और स्तुति करने वाले ऋत्विज आप प्राचीनको वेदीके अभिमुख भेजते हैं, जैसे वर कन्याओंका सेवन करते हैं इसी प्रकार ऋत्विज आपका सेवन करते हैं ॥ २ ॥

तृतीया ॥

अधि द्रयो रदधा उक्थं । वचो यतस्तुचा मिथुना या संपर्यतः ।

असंयतो व्रते ते क्षेति पुष्यति भद्रा शक्तिर्यजमानाय सुन्वते ॥ ३ ॥

अधि । द्वयोः । अद्धाः । उक्थ्यम् । वचः । यतःसूचा । मिथुना ।

या । सपर्यतः ।

असंयत्तः । व्रते । ते । क्षेति । पुण्यति । भद्रा । शक्तिः । यज-  
मानाय । सुन्वते ॥ ३ ॥

हे ब्राह्मणाच्छंसिन् द्वयोर्हविर्धानयोश्चद्विष्मत्तोरधि उपरि उक्थ्यं  
उक्थं स्तोत्रं तत्राग्यं वचः “युजेनां ब्रह्म” [ १८. ३. ३६ ] इत्यादि-  
रूपम् उभयोर्मध्यवर्ति तृतीयच्छदिःस्थानीयं वचः वचनम् अध्य-  
दधाः निहितवान् असि । उभे हविर्धाने विशिष्यते । यतःसूचा यताः  
संवद्धाः स्रवः ग्रहचमसादिलक्षणा यज्ञसाधनानि पात्राणि ययोस्ते  
तादृश्रूपे मिथुना युगलरूपेण वर्तमाने या ये हविर्धाने । ❀ सर्वत्र  
“सुनां सुबुक्” इति विभक्तेराकारः ❀ । तादृशे हविर्धाने सपर्यतः  
इन्द्रं पूजयतः । सोमपानाच्चतपात्रधारणद्वारेणोत भावः । तयोर-  
धीनि पूर्त्रान्वयः ॥ किं च हे इन्द्र ते व्रते तव कर्मणि त्वदुद्देश्ये  
यागे यजमानः असंयत्तः व्यापान्तरेष्वसंबद्धः सन् क्षेति निवससि  
पुण्यति आत्मानं प्रजापत्यादिना । सुन्वते त्वदर्शम् अभिषवं कुर्वते  
यजमानाय । ❀ पष्ठार्धे चतुर्थी ❀ । तस्य भद्रा कन्याणी शक्तिः  
बलम् अस्तु । त्वदनुग्रहाः इति शेषः ॥ अयं मन्त्र ऐतरेयब्राह्मणे  
व्याख्यातः । “अधि द्वयोर्धा उक्थ्यं वच इति । द्वयोर्हवित्तु  
तृतीयं छदिरधिनिधीयते ॥ उक्थ्यं वच इति यदाह याज्ञिकं वै  
कर्पोक्थ्यं वचो यज्ञमेतैन समर्धयति ॥ यतःसूचा मिथुना या स-  
पर्यतः ॥ असंयत्तो व्रते ते क्षेति पुण्यतीति । यदेवादः पूर्वं यत्त-  
वत् पदम् आह तदेतैन शान्त्या शमयति ॥ भद्रा शक्तिर्यजमा-  
नाय सुन्वत इत्याशिषम् आशास्तं” इति [ ऐ० ब्रा० १. २६ ] ॥

हे ब्राह्मणाच्छंसिन् ! जिनमे ग्रह चमस आदि आदिक यज्ञके



साधन पात्र रखे हुए और जो युगलरूपसे वर्तमान दोनों हवि-  
र्धान सोमपानके योग्य पात्रधारणके द्वारा इन्द्रकी पूजा करते हैं  
उनके ऊपर स्तोत्रके योग्य आपने ( “युजे वां ब्रह्म” १८ । ३ । ३६  
आदिक ) तृतीयच्छदिःस्थानीय उक्थ्य वचन स्थापित किया  
है । और हे इन्द्रदेव ! आपके उद्देशसे किये जाने वाले यागमें  
अनन्यभावसे लगा हुआ यह यजमान अपनेको प्रजा पशु आदिसे  
पुष्ट करे और आपके अनुग्रहसे इसको कन्याणी शक्ति प्राप्त हो ३  
चतुर्थी ॥

आदङ्गिराः प्रथमं दधिरे वयं इद्धाग्नयः शम्या ये सु-  
कृत्यया ।

सर्वं पणेः समं विन्दन्त भोजनमश्वावन्तं गोमन्तमा  
पशुं नरः ॥ ४ ॥

आत् । अङ्गिराः । प्रथमम् । दधिरे । वयः । इद्धाग्नयः । शम्या ।  
ये । सुकृत्यया ।

सर्वम् । पणेः । समम् । विन्दन्तम् । भोजनम् । अश्ववन्तम् ।  
गोमन्तम् । आ । पशुम् । नरः ॥ ४ ॥

हे इन्द्र अङ्गिराः अङ्गिरसः । ❀ “सुपां सुलुक्०” इत्या-  
दिना जसः सुः ❀ । प्रथमम् अग्रतो वयः हविर्लक्षणम् अक्षम्  
आत् अनन्तरमेव यदा पणिभिर्गावोऽपहृतास्तदानीमेव दधिरे अधा-  
रयन् त्वदर्थं संपादितवन्तः । कीदृशा अङ्गिरसः । ये सुकृत्यया  
कृतिः करण व्यापारः शोभनव्यापारोपेतेन शम्या । कर्मनामैतत् ।  
कर्मणा अग्निष्टोमादिलक्षणेन निमित्तेन इद्धाग्नयः प्रज्वलिताहव-

नीयाद्यग्निमन्तस्ते नरः नेतारः अङ्गिरसः पणेः एतन्नामकस्या-  
सुरस्य सर्वम् यद्यद् अपहृतम् आसीत् तत् सर्वं भोजनम् धनं सम-  
विन्दन्त समलभन्त । भोजनं विशिनष्टि । अश्वावन्तम् बहुभिर-  
श्वैर्युक्तं गोमन्तम् बह्वीभिर्गोभिर्युक्तम् । आ इति चार्थे । पशुम् आ-  
वृक्ताश्वगोव्यतिरिक्तम् अजाव्यादि अन्यत् पशुजातं च समविन्दन्त

हे इन्द्र ! अंगिरा गोत्र वालोंने जब पणियोंने गौएँ छीनी थी  
उस समय पहिले ही आपके लिये हवीरूप अन्नको सम्पादन  
किया था । ये अंगिरावंशी अग्निष्टोम आदि शोभन कर्मोंसे  
आहवनीय अग्निको प्रज्वलित रखते हैं और इन नेता आग्नि-  
रसोंने पण्डि नामक असुरका छीना हुआ बहुतसे अश्वोंवाला और  
गौओं वाला तथा भेड़ बकरी आदिवाला धन पाया था ॥ ४ ॥

पञ्चमी ॥

यज्ञैरथर्वा प्रथमः पथस्तते ततः सूर्यो व्रतपावेन आजानि  
आ गा आजदुशनां काव्यः सचा यमस्य जातम-  
मृतं यजामहे ॥ ५ ॥

यज्ञैः । अथर्वा । प्रथमः । पथः । तते । ततः । सूर्यः । व्रतपाः ।  
वेनः । आ । अजनि ।

आ । गाः । आजत् । दुशना । काव्यः । सचा । यमस्य । जातम् ।  
अमृतम् । यजामहे ॥ ५ ॥

अथर्वा एतन्नामा महर्षिः यज्ञैः इन्द्रम् उद्दिश्य क्रियमाणैर्यागैः  
साधनैः प्रथमः सूर्यादिभ्यः पूर्वभूतः सन् पथः अपहृतानां मर्चा  
मार्गान् तते विस्तारितवान् । ज्ञातवान् इत्यर्थः । ततः अनन्तरं  
वेनः कान्तः सूर्यो व्रतपाः सवानयनकर्मणः पालयित्वा आजनि

प्रादुरभूत् । अन्धकाराविष्टानां गवां प्रकाशकोभूद् इत्यर्थः । अ-  
नन्तरं काव्यः कवेः पुत्र उशना मृगुः सुचा इन्द्रसहायभूतः सम्-  
गाः आजन्तु अभिमुख्येन प्राप्नोत् । यमस्य सर्वनियन्तुः सूर्यस्य  
मयोजनाय जातम् प्रादुर्मूतम् अथ वा यमस्य यमात् नियन्तुरीश्व-  
रात् जातम् अमृतम् अमरणधर्माणम् इन्द्रं यजामहे पूजयामः ॥

अथर्वा नामक महर्षिने इन्द्रके निमित्त किये हुए यामोंसे सूर्य  
आदिकसे पहिले होकर बुराई हुई गौओंके मार्गको जान लिया  
था । तदन्तर गवायन कर्मके पालयिता कमनीय सूर्यदेव प्रादु-  
र्भूत हुए थे अर्थात् उन्होंने अंधकारसे आवृत गौओंको प्रकाशित  
किया था । तदन्तर कविके पुत्र उशनाने इन्द्रकी सहायता पाकर  
गौओंको अभिमुख होकर पाया था, नियन्ता ईश्वरसे प्रकट हुए  
अमरणधर्मी इन्द्रदेवकी हम पूजा करते हैं ॥ ५ ॥

षष्ठी ॥

बर्हिर्वा यत् स्वपत्याय वृज्यते को वा श्लोकमाघोषते दिवि  
ग्रावा यत्र वदति कारुरुक्थ्य इतस्येदिन्द्रो अभिपि-  
त्वेषु रणयति ॥ ६ ॥

बर्हिः । वा । यत् । सुऽअपत्याय । वृज्यते । अर्कः । वा । श्लोकम् ।

आऽघोषते । दिवि ।

ग्रावा । यत्र । वदति । कारुः । उक्थ्यः । तस्य । इत् । इन्द्रः ।

अभिपित्वेषु । रणयति ॥ ६ ॥

यत् अस्व यज्ञस्य संबन्धि बर्हिः स्वपत्याय शोभनापत्याय  
फलदाय यज्ञपात्राणां शोभनायतन्त्रय वा वृज्यते विज्यते । आस्ती-  
र्यत इत्यर्थः । ॐ यच्चन्द्रमोमाद् अनिमित्तः ॐ । अर्को वा अर्च-



नसाधनमन्त्रोपेतो होता च श्लोकम् । वाङ्मनामैतत् । वागात्मकं  
शस्त्रादिकं यत् यत्र दिवि द्योतमाने यज्ञे आघोषते उच्चारयति ।  
ॐ अत्रापि यच्छब्दोऽनुवर्तते । यद्योगाद् अनिघातः ॐ । यत्र  
च यज्ञे ग्रावा अभिषवसाधनः पाषाणः कारुरुक्थ्यः । लुप्तोपमम्  
एतत् । उक्थाहः स्तोतेव वदति शब्दं करोति । तस्येत् तादृशस्यैव  
यज्ञस्य अभिषित्वेषु समीपदेशेषु इन्द्रो देवः रणयति रमते । उक्त-  
स्तक्षणो यागः अस्मदर्थं भविष्यतीति हर्षशब्दं करोति वा ॐ रमु  
क्रीडायाम् । व्यत्ययेन श्यन् परस्मैपदं च । अन्त्यविकारश्चा-  
म्दसः । यद्वा रण शब्दार्थः । व्यत्ययेन श्यन् ॐ ॥

जो यज्ञकी कुशा शोभन सन्तानरूप फलको पानेके लिये  
बिछाई जाती है, पूजाके साधनसे सम्पन्न होता भी जिस वागात्मक  
शस्त्र आदिका द्योतमान यज्ञमें उच्चारण करता है और जिस  
यज्ञमें अभिषवका साधन पाषाण उक्थाह स्तोताकी समान शब्द  
करता है, उस यज्ञके समीपके स्थानोंमें इन्द्र रमण करते हैं ६

सप्तमी ॥

प्रोग्रां पीति वृष्णं इयमि सत्यां प्रथै सुतस्य हर्यश्व  
तुभ्यम् ।

इन्द्र धेनाभिरिह मादयस्व धीभिर्विश्वाभिः शच्या  
गृणानः ॥ ७ ॥

प्र । उग्राम् । पीतिम् । वृष्णे । इयमि । सत्याम् । प्रथै । सुतरय ।

हरिऽअश्व । तुभ्यम् ।

इन्द्र । धेनाभिः । इह । मादयस्व । धीभिः । विश्वाभिः । शच्या ।

गृणानः ॥ ७ ॥

हे हर्यश्च हरिनामकाश्चोपेत इन्द्र वृष्णे अभिमतफलवर्षिणे प्रथे  
मकुष्ठगमनाय तुभ्यं सुतस्य अभिषुतस्य सोमरसस्य उग्राम् उद्ग-  
गूर्णवला सत्याम् अवितथसामर्थ्या पीतिम् पानं प्रेयमिं प्रेरयामि ।  
हे इन्द्र त्व च इह अस्मिन् यज्ञे धेनाभिः प्रीणयित्रीभिः विश्वाभिः  
सर्वाभिः धीभिः स्तुतिभिस्तदात्मकैः कर्मभिः । यद्वा धेनेति वाङ्-  
नाम । धीपूर्विकाभिः स्तुतिभिः शक्या । कर्मनामैतत् । कर्मणा  
वागेन निमित्तेन बलेन वा गृणानः स्तूयमानो मादयस्व हृष्टो भव ॥  
इति तृतीयेनुवाके अष्टमं सूक्तम् ॥

हे हरि नामक घोड़ों वाले इन्द्र ! अभिलषित फलकी वर्षा  
करने वाले और श्रेष्ठ गमन वाले आपके लिये मैं अभिषुत सोम-  
रसकी उद्गूर्ण वलशालिनी पीति ( पान ) को प्रेरित करता  
हूँ । और हे इन्द्रदेव ! आप भी इस यज्ञमें प्रसन्न करने वाली  
सकल स्तुतियोंसे और कर्मसे स्तुति पाते हुए प्रसन्न हूँजिये ७  
तृतीय अनुवाकमें अष्टम सूक्त समाप्त ( ६३१ )

“योगेयोगे तवस्तरम्” इति चत्वारि सूक्तानि अतिरात्रे क्रतौ  
तृतीये त्रिषर्षाये ब्राह्मणाच्छंसिशस्त्रे विनियुक्तानि । तत्र आधौ  
तृचौ स्तोत्रियानुरूपौ । “उत्तम आरोहोसि” इत्यारभ्य सूत्रितं  
वैताने । “योगेयोगे तवस्तरम् [ २०. २६. १ ] युञ्जन्ति ब्रध्नम-  
रुषम् [ २०. २६. ४. ] “इति स्तोत्रियानुरूपौ । अपाः पूर्वेषाम्  
[ २०. ३२. ३ ] इति परिधानीया । ऊती शचीवः [ २०. ३३. ३ ]  
इति याज्या” इति [ वै० ४. २ ] ॥

अत्रापि “ऊर्ध्वं सर्वत्र त्रीणि सूक्तानि । अमृतं पच्छः पर्यासः”  
इति [ वै० ४. २ ] सूत्रितत्वाद् “यदिन्द्राहम्” इत्युत्तरेषां त्रयाणां  
सूक्तानाम् अत्रैव तृतीयपर्याये ब्रह्मशस्त्रे विनियोग उपपन्नः । अत  
एव “म ते महे” इति सूक्तस्य अन्तिमा “अपाः पूर्वेषाम् [ २०,  
३२ ३ ] इत्येषा ऋक् परिधानीया” इति सूत्रितम् [ वै० ४. २ ] ॥

“योगे योगे तवस्तरम्” ये चार सूक्त अतिरात्र ऋतुके तृतीय सत्रिपर्यायमें ब्राह्मणाच्छंसिशस्त्रमें विनियुक्त होते हैं। इनमें पहिले दो तृच स्तोत्रियाजुरूप हैं। “उत्तम आरोहोऽसि” का आरम्भ करके वैतानसूत्रमें सूत्रित किया है, कि—“योगे योगे तवस्तरम् ( २० । २६ । १ ) युञ्जन्ति ब्रध्नमरुषम् ( २० । २६ । ४ ) इति स्तोत्रियाजुरूपौ । अपाः पूर्वेषां ( २० । ३२ । ३ ) इति परिधानीया । ऊती शचीवः ( २० । ३३ । ३ ) इति याज्या” ( वैतानसूत्र ४ । २ ) ॥

यहाँ भी “ऊर्ध्वं सर्वत्र त्रीणि सूक्तानि । अन्त्यं पच्छः पर्यासः” इस प्रकार वैतानसूत्र ४ । २ में सूत्रित होनेसे “यदिन्द्राहम्” आदि अगले तीन सूक्तोंका यहाँ ही तृतीयपर्यायके ब्रह्मशस्त्रमें विनियोग उपपन्न है। अत एव “प्र ते महे” सूक्तकी अन्तिम श्रुचा परिधानीया है “अपाः पूर्वेषां ( २० । ३२ । ३ ) इत्येषा श्रुक् परिधानीया” वैतानसूत्र ४ । २

तत्र प्रथमा ॥

योगेयोगे तवस्तरं वाजेवाजे हवामहे ।

सखाय इन्द्रमूतये ॥ १ ॥

योगेऽयोगे । तवऽस्तरम् । वाजेऽवाजे । हवामहे ।

सखायः । इन्द्रम् । ऊतये ॥ १ ॥

योगेयोगे शत्रुसेनादेः संगमेसंगमे सति तत्तथागकर्मणः संप्राप्ती सत्यां वा । ❀ युजिर् योगे । ‘हलश्च’ इति घञ् । “चजोः कुषिण्यतोः” इति कुत्वम् । आद्युदात्तत्वम् । “नित्यवीप्सयोः” इति वीप्सायां द्विर्भावे सति आश्रेडितानुदात्तत्वम् ❀ । तवस्तरम् अतिशयेन बलवन्तम् इन्द्रम् । ❀ तवस्शब्दाद् “अस्मायामेधा०”



इति मन्वर्थायो विनिः । तस्य छान्दसो लोपः ॐ । सखायः सखि-  
भूता वयम् ऊतये रक्षणेय इवामहे आह्वयामः । तथा वाजेवाजे  
अन्नेऽन्ने यदायदा अन्नं लब्धव्यं भवति तदातदा उक्तमहिमो-  
पेतम् इन्द्रं हवामहे ॥

शत्रुसेना आदिका योग होने पर वा प्रत्येक यागकर्मकी माप्ति  
होने पर मित्रभूत हम बली इन्द्रका आह्वान करते हैं तथा जब २  
अन्नमाप्तिका अवसर आता है तब हम २ इन्द्रदेवका आह्वान  
किया करते हैं ॥ १ ॥

द्वितीया ॥

आ घां गमत् यदि श्रवत्सहस्रिणीभिर्ऋतिभिः ।  
वाजेभिरुप नो हवम् ॥ २ ॥

आ । घ । गमत् । यदि । श्रवत् । सहस्रिणीभिः । ऋतिभिः ।  
वाजेभिः । उप । नः । हवम् ॥ २ ॥

स इन्द्रः यदि नो हवम् आह्वानं श्रवत् शृणुयात् । ॐ ऋणो-  
तेर्लेख्यडागमः ॐ । तर्हि सहस्रिणीभिः सहस्रसंख्यायुक्ताभिः  
ऋतिभिः वाजेभी रक्षाभिः वाजैरन्नैश्च सह घेति प्रसिद्धौ । उपा  
गमत् उपागच्छेदेव । ॐ गमेर्लेख्यडागमः । “इतश्च लोपः” इति  
इकारलोपः । यद्वा छान्दसे लुङि “पुषादिद्युताद्यलृदितः पर-  
स्मैपदेषु” इति च्लेः अङ् आदेशः । “बहुलं छन्दस्यमाङ्योगेपि”  
इति अङभावः ॐ ॥

वह इन्द्रदेव यदि आह्वानको सुनें तो सहस्रों रक्षाओं और  
अन्नोंके साथ सभीपमें अवश्य आवें ॥ २ ॥

तृतीया ॥

अनु प्रतनस्थौकसो हुवे तुविप्रति नरम् ।

यं ते पूर्वं पिता हुवे ॥ ३ ॥

अनु । प्रत्नस्य । ओकसः । हुवे । तुविप्रतिम् । नरम् ।

यम् । ते । पूर्वम् । पिता । हुवे ॥ ३ ॥

हे इन्द्र प्रत्नस्य पुरातनस्य ओकसः स्वर्गाख्यस्य स्थानस्य अधिपतिं तुविप्रतिम् बहूनां योद्धृणां प्रतिनिधिभूतं नरम् नेतारं त्वाम् अनु आनुलोम्येन हुवे आह्वयामि । यं ते त्वां पूर्वम् पूर्वकाले पिता मदीयस्तातः स्वाभिमतसिद्धये हुवे आहूतवान् । तम् इन्द्रं हुवे इति पूर्वत्र संबन्धः । ॐ हेनो त्तिटि “बहुलं छन्दसि” इति संप्रसारणपरपूर्वत्वे । द्विर्वचनप्रकरणे “छन्दसि वेति वक्तव्यम्” इति द्विर्वचनाभावः । यद्वृत्तयोगाद् अनिघातः । प्रत्ययस्वरः । पूर्वस्य तु पादादित्वाद् अनिघातः ॐ ॥

हे इन्द्रदेव ! पुरातन स्वर्ग नामक स्थानके अधिपति और बहुतसे योधाओंके प्रतिनिधिरूप आपका मैं आह्वान करता हूँ । पूर्वकालमें मेरे पिताने अभिमतसिद्धिके लिये आपका आह्वान किया था, ऐसे आपको ही मैं बुलाता हूँ ॥ ३ ॥

चतुर्थी ॥

युञ्जन्ति ब्रध्नमरुषं चरन्तं परि तस्थुषः ।

रोचन्ते रोचना दिवि ॥ ४ ॥

युञ्जन्ति । ब्रध्नम् । अरुषम् । चरन्तम् । परि । तस्थुषः ।

रोचन्ते । रोचना । दिवि ॥ ४ ॥

ब्रध्नम् महान्तम् । महन्नामेतत् । अरुषम् आरोचमानं तस्थुषः स्थावरान् परि । एतज्जङ्गमानाम् अपि उपलक्षणम् । स्वावरजङ्ग-

मानाम् उपरि चरन्तम् स्वर्गावस्थान् सूर्यात्मना वा परिचरन्तम्  
 एवं महानुभावम् इन्द्रं युञ्जन्ति रथे योजयन्ति । अत्र सामर्थ्यात्  
 हरिनामकान् अश्वान् इति गम्यते । रोचना रोचनानि रथयुक्ता-  
 नाम् अश्वानां रथस्य च रश्मयो दिवि रोचन्ते दीप्यन्ते ॥ अयं  
 मन्त्रः उत्तरमन्त्रे “युञ्जन्त्यस्य काम्या हरी” इति हर्यो रथयोज-  
 नाभिधानात् तदनुसारेण केबलेन्द्रपरतया व्याख्यातः । तदनन्तर-  
 मन्त्रे “केतुं कृण्वन्केतवे” इति केतूपाधिकस्य इन्द्रस्याभिधानात्  
 तदनुसारेणायं सूर्यात्मकेन्द्रपरतयापि व्याख्येयः । ब्रध्नशब्दः  
 सूर्यपर्यायः । वध्नाति नियमयति सर्वं जगद् इति ब्रध्नः सूर्यः ।  
 तं रथे युञ्जन्ति हरितोऽश्वाः । अरुषं चरन्तं परितस्थुष इत्येतत्  
 समानम् । तस्य रोचना रोचनानि रश्मिजालानि दिवि रोचन्त  
 इति ॥ अयं मन्त्रो ब्राह्मणे आदित्याग्निवायुलोकात्मना व्या-  
 ख्यातः । “युञ्जन्ति ब्रध्नम् इत्याह । असौ वा आदित्यो ब्रध्नः ।  
 आदित्यमेवास्मै युनक्ति । अरुषम् इत्याह । अग्निर्वा अरुषः ।  
 अग्निमेवास्मै युनक्ति । चरन्तम् इत्याह । वायुर्वा चरन् । वायु-  
 मेवास्मै युनक्ति । परितस्थुष इत्याह । इमे वै लोकाः परितस्थुषः ।  
 इमान् एवास्मै लोकान् युनक्ति । रोचन्ते रोचना दिवीत्याह ।  
 नक्षत्राणि वै रोचना दिवि । नक्षत्राण्येवास्मै रोचयति” इति  
 [ तै० ब्रा० ३. ६. ४, २ ] ॥

महान्, दमकते हुए और स्थावर तथा जंगमोंके ऊपर विच-  
 रण करते हुए इन्द्रके रथमें हरिनामक अश्व जुतते हैं और वह  
 दमकते हुए अश्व बल्लोकमें दमकते हैं । [ तैत्तिरीयब्राह्मण ३ ।  
 ६ । ४ । २ में इस मंत्रकी आदित्य अग्नि वायु और लोकपरक  
 व्याख्या भी की है ] ॥ ४ ॥

पञ्चमी ॥

युञ्जन्त्यस्य काम्या हरी विपक्षसा रथे ।



शोणा धृष्ण नृवाहसा ॥ ५ ॥

युञ्जन्ति । अस्य । काम्या । हरी इति । विस्पत्तसा । रथे ।

शोणा । धृष्ण इति । नृवाहसा ॥ ५ ॥

अस्य उक्तलक्षणोन्द्रस्य रथे हरी एतन्नामानावश्वौ युञ्जन्ति रथे योजयन्ति सारथयः । कीदृशौ । काम्या काम्यौ कामयितव्यौ विपत्तसा विविधे पत्तसी स्त्रीये रथसंबन्धिनी वा ययोस्तौ तादृशौ । रथोभयपार्श्वस्थितावित्यर्थः । शोणा रक्तवर्णौ धृष्ण धर्षकौ नृवाहसा नृणां सारथिप्रभृतीनां बोढारौ ॥

इन इंद्रदेवके रथमें सारथी हरी नाम वाले अश्वोंको जोतते हैं । ये अश्व कामना करने योग्य हैं, रथकी दोनों करबटोंमें रहते हैं, रक्त वर्ण वाले हैं, दबाने वाले हैं, सारथी आदि मनुष्योंको सवारी देने वाले हैं ॥ ५ ॥

षष्ठी ॥

केतुं कृएवन्नकेतवे पेशो मर्या अपेशसे ।

समुप्रद्भिरजायथाः ॥ ६ ॥

केतुम् । कृएवन् । अकेतवे । पेशः । मर्याः । अपेशसे ।

सम् । उपत्तभिः । अजायथाः ॥ ६ ॥

हे मर्याः मरणधर्माणो मनुष्याः । अमुं सूर्यात्मकम् इन्द्रं पश्य-  
तेति शेषः । अकेतवे प्रधानरहिताय जनाय केतुम् प्रधानं कृएवन्  
कुर्वन् तथा अपेशसे अन्धकारावृतत्वेन रूपरहिताय पदार्थाय पेशः  
रूपं कृएवन् उपद्भिः ओपकै रश्मिभिः उपोभिर्वा सह सम् अजा-

यथाः । ❀ इत्ययेन मध्यमः ❀ । समजायत संभूतः । एवं  
सूर्यात्मना संभूतम् हे मर्गाः पश्यतेत्यर्थः ॥

इति तृतीयेनुवाके नवमं सूक्तम् ॥

हे मरणघर्षी मनुष्यों ! प्रज्ञानरहित पुरुषको ज्ञान देने वाले  
और अंधकारसे आवृत होनेके कारण रूपरहित पदार्थको रूप  
प्रदान करने वाले इन सूर्यात्मक इन्द्रदेवको तुम देखो, यह अपनी  
किरणोंके साथ प्रकट हुए हैं ॥ ६ ॥

तृतीय अनुवाकमें नवम सूक्त समाप्त ( ६४२ )

“यदिन्द्राहम्” इति सूक्तस्य अतिरात्रे तृतीये पर्याये ब्राह्मण-  
च्छंसिनः शस्त्रे विनियोग उक्तः ॥

“यदिन्द्राहम्” सूक्तका अतिरात्रके तृतीयपर्यायमें ब्राह्मणा-  
च्छंसिके शस्त्रमें विनियोग कहा है ।

तत्र प्रथमा ॥

यदिन्द्राहं यथा त्वमीशीय वस्व एक इत् ।

स्तोता मे गोषखा स्यात् ॥ १ ॥

यत् । इन्द्र । अहम् । यथा । त्वम् । ईशीय । वस्वः । एकः । इत् ।

स्तोता । मे । गोऽसखा । स्यात् ॥ १ ॥

हे इन्द्र परमेश्वर्युक्त यथा त्वम् एक इत् देवानां मध्ये एक  
एव वस्वः वासकस्य धनस्य ईशिषे तथा यत् यदि अहमपि एक  
एव वस्वः वसुनो धनस्य ईशीय ईश्वरः स्याम् तर्हि यथा तव  
स्तोता गोषखा स्याद् एवं मे मम स्तोतापि गोषखा स्यात् ।  
बहीनां गवां स्वामी भवेत् । उपलक्षणम् एतत् । सर्वैश्वर्ययुक्तो  
भवतीत्यर्थः । तस्मात् तव स्तोतारं मां त्वत्सदृशं कुर्वित्यभिप्रायः ।

❀ गोषखेत्यत्र सुषामादित्वात् षत्वम् । वासीधारादित्वात् पूर्व-  
पदप्रकृतिस्वरेण आगुदात्तः ❀ ॥

हे परमेश्वर्यसम्पन्न इन्द्र ! जैसे आप देवताओंमें धनके अनु-  
पम स्वामी हैं, इसी प्रकार मैं भी धनका एक ही ईश्वर रहूँ ।  
जैसे आपका स्तोता गौओंका सखा होता है । इसी प्रकार मेरा  
स्तोता गौ आदि सब वस्तुओंका स्वामी होवे । तात्पर्य यह है,  
कि-मुझ स्तोताको भी आप अपनी समान कर लीजिये ॥१॥

द्वितीया ॥

शिक्षेयमस्मै दित्सेयं शचीपते मनीषिणे ।

यदहं गोपतिः स्याम् ॥ २ ॥

शिक्षेयम् । अस्मै । दित्सेयम् । शचीपते । मनीषिणे ।

यत् । अहम् । गोपतिः । स्याम् ॥ २ ॥

हे शचीपते इन्द्र अस्मै मनीषिणे मनस ईशिष्रे स्तोत्रे दित्से-  
यम् दानानि दातुम् इच्छेयम् । ॐ दा दाने । सन् । “सनि  
मीमा०” इत्यादिना इस्भावः । “अत्र लोपोभ्यासस्य” इति  
अभ्यासलोपः । वाक्यभेदाद् अनिघातः । “सस्यार्धधातुके” इति  
सकारस्य तत्त्वम् । “स्वरि च” इति चत्वर्यम् ॐ । तथा शिक्षेयमपि  
प्रार्थितं धनं दद्यां च । ॐ शिक्षतिर्दानकर्मा ॐ । कर्तव्यं स्याम्  
इति तत्राह । यत् यदा अहं तव स्तोता त्वदनुग्रहाद् गोपतिः स्यां  
तदा दित्सेयं शिक्षेयं च । तस्मान्मां नादृक्तामर्थ्यं कुर्विति भावः ॥

हे शचीपते इन्द्र ! मैं स्तोता जब आपके अनुग्रहसे गोपति हो  
जाऊँ तब इस विद्वान् स्तोताको धन देना चाहूँ और प्रार्थित  
धन दे भी सकूँ । तात्पर्य यह है, कि-इस लिये आप मुझमें ऐसी  
शक्ति दीजिये ॥ २ ॥

तृतीया ॥

धेनुष्ट इन्द्र सूनृता यजमानाय सुन्वते ।



गामश्वं पिप्युषी दुहे ॥ ३ ॥

धेनुः । ते । इन्द्र । सूनुता । यजमानाय । सुन्वते ।

गाम् । अश्वम् । पिप्युषी । दुहे ॥ ३ ॥

हे इन्द्र सूनुता । वाङ्नामैतत् । अस्मदीया प्रियसत्यात्मिका वाक्  
ते तव धेनुः दोग्ध्री गौर्भूत्वा गोवत् ग्रीणयित्री भूत्वा सुन्वते सोमा-  
भिषव कुर्वते यजमानाय पिप्युषी तमेव यजमानं वर्धायित्री सती गाम्  
अश्वं च । उपलक्षणम् एतत् । गनाशवादिकं सर्वम् अभिलषितं  
दुगे दुग्धे । ॐ छान्दसे लिटि द्विर्वचनप्रकरणे “छन्दसि वेति  
वक्तव्यम्” इति वचनाद् द्विर्वचनाभावः । पिप्युषी । स्फायी  
ओप्यायी वृद्धौ । अस्माल्लिट् । “प्यायः पी” । “लिङ्यङोश्च”  
इति परस्वेन द्विर्वचनात् पूर्वमेव पीभावः । पुनःप्रसङ्गविज्ञानाद्  
द्विर्वचनम् अभ्यासस्य ह्रस्वः । “क्वसुश्च” इति लिटः क्वसुरा-  
देशः । “उगितश्च” इति ङीपि कृते “वसोः संप्रसारणम्” इति  
संप्रसारणम् । “आदेशप्रत्यययोः” इति षत्वम् । प्रत्ययस्वरेण  
मध्योदात्तः ॐ ॥

हे इन्द्रदेव ! हमारी सत्य और प्रिय वाणी आपको गौंकी  
समान तृप्त करती हुई सोमाभिषव करने वाले यजमानके लिये  
बढ़ौतगी करती हुई सब गौ और घोड़े आदि अभिलषित पदार्थों  
को दुहती है ॥ ३ ॥

चतुर्थी ॥

न ते वर्तास्ति राधस इन्द्र देवो न मर्त्यः ।

यद् दित्समि स्तुतो मघम् ॥ ४ ॥

न । ते । वर्ता । अस्ति । राधसः । इन्द्रः । देवः । न । मर्त्यः ।

यत् । दित्सति । स्तुतः । मघम् ॥ ४ ॥

हे इन्द्र ते तव राधसः धनस्य वर्ता निवारको न । नास्त्येव ।  
निवारणनिषेधस्य उपयोगसिद्धये निषेध्यान् संभावितान् निर्दि-  
शति देवो न मर्त्य इति । वर्ता देवो नास्ति । वर्ता मर्त्यो मनु-  
ष्योपि नास्ति । यत् यदि स्तुतः अस्माभिः स्तुतिं प्राप्तः प्रख्या-  
पितगुणः सन् मघम् मंहनीयं धनं दित्ससि दातुम् इच्छसि । तर्हि  
वर्ता न कोप्यस्ति ॥

हे इंद्र ! आपके धनका निवारक कोई नहीं है । देवता आप  
के धनको नहीं हटा सकते, मनुष्य भी आपके धनको नष्ट नहीं  
कर सकते, यदि आप हमसे स्तुति पाकर प्रशंसनीय धनको देना  
चाहें तो उस धनको हटाने वाला कोई नहीं होसकेगा ॥ ४ ॥

प्रश्नमी ॥

यज्ञ इन्द्रमवर्धयद् यद् भूमिं व्यवर्तयत् ।

चक्राण ओपशं दिवि ॥ ५ ॥

यज्ञः । इन्द्रम् । अवर्धयत् । यत् । भूमिम् । वि । अवर्तयत् ।

चक्राणः । ओपशम् । दिवि ॥ ५ ॥

यज्ञः अस्माभिरनुग्रीयमानः इन्द्रं देवम् अवर्धयत् । इविषा  
स्तुत्या वा अभिवृद्धम् अकरोत् । कदेत्युच्यते । यत् यदा दिवि  
अन्तरिक्षे मेघम् ओपशम् सर्वत उपशयानं चक्राणः कुर्वन् भूमिं  
व्यवर्तयत् विवृत्तां वृष्ट्यदकेन उच्छूनाम् अकरोत् । वृष्टिद्वारा  
सस्यादिसमृद्ध्या भूमिं पुष्टाम् अकरोत् तदेति संबन्धः । ॐ ओ-  
पशम् इति । आङ्गपपूर्वात् शीङ्गः “अन्येष्वपि दृश्यते” इति ङः ॥

जब अन्तरिक्षमें इंद्र मेघको चारों ओर लेटने वाला और  
पृथ्वीको वृष्टिजलसे फूलने वाली करते हैं अर्थात् वृष्टिके द्वारा

धान्यसमुद्दिसे भूमिको पुष्ट करते हैं, उस समय हमारा अनुष्ठित यज्ञ हवि वा स्तुतिसे इंद्रको बढ़ाता है ॥ ५ ॥

षष्ठी ॥

वावृधानस्य ते वयं विश्वा धनानि जिग्युषः ।

ऊतिमिन्द्रा वृणीमहे ॥ ६ ॥

वावृधानस्य । ते । वयम् । विश्वा । धनानि । जिग्युषः ।

ऊतिम् । इन्द्र । आ । वृणीमहे ॥ ६ ॥

हे इंद्र! वावृधानस्य वर्धमानस्य स्तुत्या वर्धमानस्य विश्वा विश्वानि धनानि शत्रुसंबन्धीनि जिग्युषः जितवतः । ❀ जि जये । लिङ्द्विर्वचने । “सन्लिटोर्जेः” इति कृत्वम् । लिटः क्वसुरादेशः । भसंज्ञायां “वसोः संप्रसारणम्” इति संप्रसारणम् । “एकानुबन्धकग्रहणे न द्व्यनुबन्धकस्य” इति न्यायात् । क्वसोः संप्रसारणम् इति चैद् उकारोच्चारणसामर्थ्याद् यथा वसुग्रहणं सिद्धं तथैव क्वसोरपि ग्रहणम् इष्यते । प्रत्ययस्वरेण मध्योदात्तः ❀ । तादृशस्य ते तव ऊतिम् रक्षाम् आ वृणीमहे आभिमुख्येन संभोजामहे ॥

हे इंद्रदेव ! स्तुतिसे बढ़ते हुए, शत्रुसम्बंधी संकल धनोंको जीते हुए आपकी रक्षाका हम अभिमुख होकर वरण करते हैं ६

सप्तमी ॥

व्यं१न्तरिक्षमतिरन्मदे सोमस्य रोचना ।

इन्द्रो यदभिन्नद् वलम् ॥ १ ॥

वि । अन्तरिक्षम् । अतिरत् । मदे । सोमस्य । रोचना ।



इन्द्रः । यत् । अभिनत् । वलम् ॥ १ ॥

इन्द्रो देवः रोचना रोचमानं दीप्यमानम् अन्तरिक्षं व्यतिरत् व्यवर्धयत् । वृष्ट्युदकेन अभिवृद्धम् अकरोत् । कस्मिन् सहाये सतीति उच्यते । सोमस्य सोमरसस्य पानेन मदे संजाते सति । कदेत्युच्यते । यत् यदा इन्द्रो वलम् सर्वम् आवृत्य वर्तमानम् एत-  
नामकम् असुरम् उक्तलक्षणं मेघं वा अभिनत् सोमपानजनितेन मदेन व्यदारयत् । तदेत्यन्वयः ॥

सोमरसके पानसे मद होने पर जब वल नामक असुरको वा मेघको विदीर्ण किया तब इन्द्रदेवने दमकते हुए अन्तरिक्षको वृष्टिके जलसे बहा दिया था ॥ १ ॥

अष्टमी ॥

उद्गा आजदङ्गिरोभ्य आविष्कृण्वन् गुहां सतीः ।  
अर्वाञ्च नुनुदे वलम् ॥ २ ॥

उत् । गाः । आजत् । अङ्गिरः । ऽभ्यः । आविः । कृण्वन् । गुहां । सतीः ।  
अर्वाञ्चम् । नुनुदे । वलम् ॥ २ ॥

इन्द्रो देवः अङ्गिरोभ्यः तेषाम् अर्वाय गुहा गुहायां सतीः  
अप्रकाशं विद्यमानाः । ॐ “गुहेः कन्” इति कन् प्रत्ययः ।  
“सुपां सुलुक्” इत्यादिना डेराकारः । सतीरिति । अस्तेर्लटः  
शत्रादेशः । “अप्पोरल्लोपः” इत्यकारलोपः । “उगितश्च” इति  
ङीप् । “वा च्छन्दसि” इति प्रतिषेधाभावपक्षे रूपम् । “शत्रुनुमो  
नयजादी” इति ङीञ्ज्ञा उदात्तत्वम् । पूर्वसवर्णदीर्घे एकादेश-  
स्वरः ॐ । गाः आविष्कृण्वन् प्रकाशयुक्ताः कुर्वन् उदाजत् उद-  
गमयद् बहिर्देशं प्रापयत् । तदर्थं गत्राम् अपहर्तारं वलम् असुरम्  
अर्वाञ्चम् अवाङ्मुखं नुनुदे अपातयत् ॥

इन्द्रदेवने अंगिरा गोत्र वाले महर्षियोंके लिये, गुहामें पड़ी हुई अत एव अपकाशित गौओंको प्रकाशित किया था और फिर उनको बाहर ले आए थे और उन्होंने गौओंका अपहरण करने वाले असुरको भी औंधे मुख करके गिरा दिया था ॥ २ ॥

नवमी ॥

इन्द्रेण रोचना दिवो दृहानि दृंहितानि च ।

स्थिराणि न पराणुदे ॥ ३ ॥

इन्द्रेण । रोचना । दिवः । दृहानि । दृंहितानि । च ।

स्थिराणि । न । पराणुदे ॥ ३ ॥

इन्द्रेण देवेन दिवः संबन्धीनि रोचना रोचमानानि ग्रहनक्षत्रादीनि दृहानि दृढावयवानि बलवन्ति कृतानि तथा दृंहितानि च दृढीकृतानि । पूर्वतः स्थौल्यम् अपरत्र बलवस्त्वम् इति विवेकः । अत एव स्थिराणि तानि न पराणुदे परानोदनीयानि भवन्ति । न केनापि प्रच्यावयितुं शक्यानीत्यर्थः । ॐ परेत्युपसर्गपूर्वात् णुद प्रेरणे इत्यस्मात् कृत्यार्थे केन प्रत्ययः । “उपसर्गाद् असमासेपि णोपदेशस्य” इति णत्वम् । अस्य णोपदेशत्वं कथम् इति चेत् “सर्वे णादयो णोपदेशाः नृतिनन्दिनर्दिनविकनाटिनाथनाधृनवर्जम्” इति वचनात् णोपदेशत्वं सिद्धम् । प्रत्ययस्य नित्वात् कृदुत्तरपदप्रकृतिस्वरेण उत्तरपदाद्युदात्तत्वम् ॐ ॥

इन्द्रदेवने आकाशके दमकते हुए ग्रह नक्षत्र आदिको स्थूल क्रिया है और दृढ़ क्रिया है, अत एव स्थिर होनेके कारण उनको कोई च्युत नहीं कर सकता ॥ ३ ॥

दशमी ॥

अपामूर्मिर्मदन्निव स्तोम इन्द्राजिरायते

वि ते मदा अराजिषुः ॥ ४ ॥

अपाम् । ऊर्मिः । मदन् इव । स्तोमः । इन्द्र । अजिरायते ।

वि । ते । मदाः । अराजिषुः ॥ ४ ॥

हे इन्द्र ते स्तोमः त्वद्विषयं स्तोत्रम् अपाम् । अप्शब्देन तदा-  
श्रयभूताः समुद्रादयो लक्ष्यन्ते । तासां मदन्निव वृष्ट्युदकेन हृष्य-  
न्निव । ऊर्मि रसः । स इव अजिरायते । अजिरः क्षिप्रगामी ।  
स इवाचरति । त्वरया त्वां प्रति मुखान्निर्गच्छतीत्यर्थः । यद्वा  
अपामूर्मिरित्येतावदेव दृष्टान्वचनं लुप्तेवशब्दकम् मदन्निव स्तोमो-  
जिरायते इति दार्ष्टान्तिकाभिधानम् । ❀ अञ्जू व्यक्तिम्लक्षण-  
कान्तिगतिषु । अजिरशिशिरेत्यादिना [ ७० १, ५३ ] किर-  
न्प्रत्ययान्तो निपातितः । स इवाचरतीत्यर्थे “कर्तुः क्यङ् सलो-  
पश्च” इति क्यङ् । सनादित्वाद् धातुसंज्ञायां लडादि कार्यम् ।  
“अकृत्सार्वधातुकयोर्दीर्घः” इति अकारस्य दीर्घः ❀ । ते तव  
मदाः सोमपानजनिता व्यराजिषुः विशेषेण राजन्ते दीप्यन्ते ॥

इति एकादशं सूक्तम् ॥

हे इन्द्रदेव ! आपका स्तोत्र समुद्र आदिको वृष्टिजलसे हर्षसा-  
देता हुआ और रसकी समान क्षिप्रतासे आपके लिये मुखसे  
निकलता है । आपके सोमपानजनित मद विशेषरूपसे दमकते हैं

एकादश सूक्त समाप्त ( ६४४ )

“त्वं हि स्तोमवर्धनः” इति सूक्तस्य अतिरात्रे ब्राह्मणाच्छंसिन-  
स्तृतीयपर्याये विनियोगोभिहितः ॥

“त्वं हि स्तोमवर्धनः” सूक्तका अतिरात्रमें ब्राह्मणाच्छंसीके  
तृतीयपर्यायमें विनियोग कहा है ।



तत्र प्रथमा ॥

त्वं हि स्तोमवर्धन इन्द्रास्युक्थवर्धनः ॥ १ ॥

स्तोतृणामुत भद्रकृत् ॥ १ ॥

त्वम् । हि । स्तोमवर्धनः । इन्द्र । असि । उक्थवर्धनः ।

स्तोतृणाम् । उत । भद्रकृत् ॥ १ ॥

हे इन्द्र त्वं खलु स्तोमवर्धनः स्तोमैस्त्रिवृदादिभिर्वर्धनीयोसि तथा उक्थवर्धनः उक्थैर्वर्धनीयश्चासि । ❀ स्तोमशब्दोपपदाद् उक्थशब्दोपपदाच्च वर्धते: “कृत्यल्युटो बहुलम्” इति अहार्थे ल्युट् । कृदुत्तरपदप्रकृतिस्वरेण लिच्वाद् आद्युदात्तत्वम् ❀ । उत अपि च त्वं स्तोतृणां भद्रकृत् भद्रस्य कन्याणस्य कर्तासि ॥

हे इन्द्रदेव ! आप त्रिवृत् आदि स्तोत्रोंसे और उक्थ आदि स्तोत्रोंसे वर्धनीय हैं । और आप स्तोताओंका भी कन्याण करने वाले हैं ॥ १ ॥

द्वितीया ॥

इन्द्रमित् केशिना हरी सोमपेयाय वक्षतः ।

उप यज्ञं सुराधसम् ॥ २ ॥

इन्द्रम् । इत् । केशिना । हरी इति । सोमपेयाय । वक्षतः ।

उप । यज्ञम् । सुराधसम् ॥ २ ॥

केशिना स्कन्धप्रदेशस्थितकेशौ हरी एतन्नामानावश्वौ सुराधसम् शोभनधनफलोपेतम् अस्मद्यज्ञं प्रति सोमपेयाय सोमपानाय इन्द्रमित् इन्द्रमेव उप वक्षतः उपवहतः । यद्वा यज्ञं सुराधसम् इत्येतद् द्वयम् इन्द्रविशेषणतया योज्यम् । यज्ञम् यष्टव्यं सुराधसम्

शोभनेन धनेन दातव्येन तद्वन्तम् इति तयोरर्थः । तादृशम् इन्द्रं वक्षतः बहताम् । ॐ बह धारणे । लेट् । “सिब्बहुलं लेटि” इति सिप् । “हो ढः” इति ढत्वम् । “षढोः कः सि” इति कत्वम् । “आदेशप्रत्ययोः” इति षत्वम् । निघातः ॐ ॥

अयाल वाले हरी नामक अश्वशोभन धनरूपी फलसे सम्पन्न हमारे यज्ञके प्रति सोमपानके लिये इन्द्रको अवश्य लावें ॥ २ ॥

तृतीया ॥

अपां फेनेन नमुचेः शिरं इन्द्रोदवर्तयः ।

विश्वा यदजय स्पृधः ॥ ३ ॥

अपाम् । फेनेन । नमुचेः । शिरः । इन्द्र । उत् । अवर्तयः ।

विश्वाः । यत् । अजयः । स्पृधः ॥ ३ ॥

पुरा किलेन्द्रः असुरान् जित्वा नमुचिम् असुरं ग्रहीतुं न शशाक । स चेन्द्रो युद्धे तेनासुरेण गृहीतो भूत् । स चासुरः इन्द्रम् एवम् उवाच । त्वां विसृजामि । त्वं मां रात्रावहनि च कालेशुष्केण आर्द्रेण च साधनेन मा हिंसीरिति । एवं समयं कृत्वा इन्द्रं विसर्ज । स च विसृष्टः सन् अहोरात्रयोः संधौ शुष्कार्द्रविलक्षणेन अपां फेनेन नमुचेः शिरश्चिच्छेद । अयम् अर्थः अध्वर्युब्राह्मणे प्रपञ्चितः । “इन्द्रो वृत्रं हत्वा असुरान् पराभाज्य नमुचिम् आसुरम् नालभत” [ तै० ब्रा० १. ७. १. ६ ] इत्यादिना । सोर्थः अनेन मन्त्रेणाभिधीयते । हे इन्द्र त्वम् अपां फेनेन वज्रीभूतेन नमुचेः एतन्नामकस्यासुरस्य । ॐ न मुञ्चतीति नमुचिः । “नभ्राणनपात्” इत्यादिना नवः प्रकृतिभावः ॐ । शिरः उदवर्तयः शरीराद् उद्धतम् अकार्पीः । अच्छैत्सीरित्यर्थः । कदैवम् इत्युच्यते । यत् यदा विश्वाः सर्वाः स्पृधः स्पर्धमाना असुरसेना अजयः

जितवान् असि । ❀ स्पर्धन्त इति स्पृधः । “अन्येभ्योपि दृश्यते इति विवप्” । दृशिग्रहणात् संप्रसारणम् । पृषोदरादित्वाद् रेफ-  
स्य ऋकारः अकारलोपश्च । धातुस्वरेण आद्युदात्तः ❀ ॥

[ पहिले इन्द्रने असुरोंको जीत लिया, परन्तु नमुचि नामक असुरको न पकड़ सके, परन्तु उस असुरने ही युद्धमें इन्द्रको पकड़ लिया । वह असुर फिर इन्द्रसे इस प्रकार कहने लगा, कि-मैं आपको इस प्रतिज्ञा पर छोड़ता हूँ, कि-आप मुझको दिनमें, रातमें, सूखे वा गीले साधनसे भी न मारें । इस प्रकार प्रतिज्ञा कराके उसने इन्द्रको छोड़ दिया । तब इन्द्रदेवने छूट कर दिन और रात्रिकी संधिमें सूखे और गीलेसे विलक्षण जलके फेनसे नमुचिके शिरको काट डाला । इस बातको अध्वर्यु ब्राह्मण में कहा है, कि-“इन्द्रो वृत्रं हत्वा असुरान् पराभाज्य नमुचि आसुरम् नालभत” ( तैत्तिरीय ब्राह्मण १ । ७ । १ । ६ ) वही कथा इस मन्त्रमें है, कि-] हे इन्द्रदेव ! वज्र हुए जलके फेनसे नमुचि नामक असुरके शिरको आपने शरीरसे उतार लिया था ( कब ) जब सकल स्पर्धा करती हुई सेनाओंको आपने जीत लिया था ॥ ३ ॥

चतुर्थी ॥

मायाभिरुत्तिसृप्सत इन्द्र द्यामारुरुक्षतः ।

अव दस्यूरधूनुथाः ॥ ४ ॥

मायाभिः । उत्सृप्सतः । इन्द्र । द्याम् । आरुरुक्षतः ।

अव । दस्यून । अधूनुथाः ॥ ४ ॥

हे इन्द्र त्वं मायाभिः आत्मीयाभिर्वज्रनाभिः उत्तिसृप्सतः उत्सर्पणेच्छून् उद्रमनेच्छून् असुरान् । ❀ सृष्टु गे । १ । ४ । ४ ।



सन् । “सन्यङ्गोः” इति द्विर्वचनम् । उरदत्त्वम् । “सन्यतः” इति इत्त्वम् । सन्नन्ताल्लट् । तस्य शत्रादेशः । कृदुत्तरपदप्रकृतिस्वरेण “अभ्यस्तानाम् आदिः” इति आद्युदात्तत्वम् ❀ । तान् उत्ति-  
सृप्सून् घाम् आरुरुक्षतः आरुरुक्षंश्च दस्यून् हे इन्द्र त्वम् अवाधू-  
नुथाः अवाधूस्त्वम् अपातयः ॥

हे इन्द्रदेव ! आप अपनी मायाओंसे उद्गमन करना चाहने वाले और द्यलोक पर चढ़ना चाहने वाले असुरोंको औंधा मुख करके नीचेको गिरादेते हैं ॥ ४ ॥

पञ्चमी ॥

असुन्वामिन्द्र संसदं विषूचीं व्यनाशयः ।  
सोमपा उत्तरो भवन् ॥ ५ ॥

असुन्वाम् । इन्द्र । सम्सदम् । विषूचीम् । वि । अनाशयः ।  
सोमपाः । उत्तरः । भवन् ॥ ५ ॥

हे इन्द्र सोमपाः सोमस्य पाता त्वम् उत्तरो भवन् सोमपानज-  
नितबलेन उत्तरः उत्कृष्टतरो भवन् असुन्वाम् सोमाभिषवहीनां  
संसदम् अयष्टसभां विषूचीम् विष्वगञ्चनां कृत्वा व्यनाशयः विशो-  
षेण नष्टाम् अकरोः । ❀ असुन्वाम् इति । षुञ् अभिषवे । लट्  
शानच् । स्वादिभ्यः णुः । ततष्टाप् । अमि कृते नकारलोपश्चा-  
न्दसः । नञ्समासे बहुव्रीहौ “नञ्सुभ्याम्” इति उत्तरपदान्तो-  
दात्तत्वम् । अथ वा अस्मादेव धातोः सुवः कित् [ उ० ३. ३५ ]  
इति नुप्रत्ययः किद्वद्भावश्च । न विद्यते सुनुः अभिषवो यस्याः  
सेति असुनुः । “सुपां सुपो भवन्ति” इति अमो ङिरादेशः ।  
“ङिति ह्रस्वश्च” इति विकल्पेन नदीसंज्ञायां ङेरामादेशः ।  
आडागमादि । पूर्वोक्त एव स्वरः ❀ ॥

इति तृतीयेऽनुवाके एकादशं सूक्तम् ॥

हे इन्द्रदेव ! आप सोमपानसे बली होकर सोमाभिषवसे हीन  
अयष्ट्री सभाको चारों ओर बखेर कर विशेषरूपसे नष्ट कर डालते हैं  
तृतीय अनुवाकमें एकादश सूक्त समाप्त ( ६४५ )

“प्र ते महे विदथे” इति सूक्तस्य अतिरात्रे ब्राह्मणाच्छंसिन-  
स्तृतीयपर्यायशस्त्रे विनियोगोभिहितः । अस्यान्तिमा “अपाः  
पूर्वेषाम्” [ १३ ] इत्येषा ऋक् परिधानीया ॥

“प्र ते महे विदथे” सूक्तका अतिरात्रमें ब्राह्मणाच्छंसीके तृतीय-  
पर्यायशस्त्रमें विनियोग कहा है । इसकी अन्तकी “अपाः पूर्व-  
ेषाम्” यह तेरहवीं ऋचा परिधानीया है ॥

तत्र प्रथमा ॥

प्र ते महे विदथे शंसिषं हरी प्र ते वन्व वनुषो हर्यतं  
मदम् ।

घृतं न यो हरिभिश्चारुसेचत आ त्वा विशन्तु हरि-  
वर्पसं गिरः ॥ १ ॥

प्र । ते । महे । विदथे । शंसिषम् । हरी इति । प्र । ते । वन्वे ।  
वनुषः । हर्यतम् । मदम् ।

घृतम् । न । यः । हरिऽभिः । चारु । सेचते । आ । त्वा ।  
विशन्तु । हरिऽवर्पसम् । गिरः ॥ १ ॥

हे इन्द्र महे महति विदथे । विद्यते कर्तव्यतया ज्ञायत इति  
विदथो यज्ञः । तस्मिन् ते तव हरी एतन्नामानावश्वौ तव शीघ्रा-  
गमनाय प्र शंसिषम् प्रास्ताविषम् । ॐ शंसु स्तुतौ । लुङि “च्लेः  
सिच्” । अहभावश्चाम्दसः ॐ । तथा वनुषः शत्रुहिंसकस्य याच्य-

मानस्य वा ते तव हर्यतम् कमनीयं मदम् सोमपानजनितं प्र वन्वे  
प्रयाचे । अस्मदभिमतम् इति शेषः । ॐ वनु याचने । तनादि-  
त्वाद् उपत्ययः ॐ । य इन्द्रो घृतं न घृतं यथा अग्नौ होमार्थं  
सिञ्चन्ति एवं हरिभिः हरितवर्णैरश्वैः सहागत्य चारु रमणीयं धनं  
सेचते वर्षयति । तं तादृशं हरिवर्षसम् । वर्ष इति रूपनाम । हरित-  
रूपं त्वा त्वां गिरः अस्मदीयाः स्तुतिवाचः आ विशन्तु प्रविशन्तु  
तव बुद्धौ संगता भवन्तु ॥

हे इन्द्र ! विशाल यज्ञमें आपके हरि नामक अश्वोंकी मैं शीघ्र  
आगमनके लिये प्रशंसा करता हूँ । तथा शत्रुहिंसक आपके कम-  
नीय सोमपानमदजनित मदसे अपने अभिलषित फलकी याचना  
करता हूँ, जो इन्द्रदेव, जैसे घृतको अग्निमें होमके लिये सींचते हैं  
तिस प्रकार, हरित वर्ण वाले अश्वोंके साथ आकर रमणीय धन  
की वर्षा करते हैं उन हरितवर्ण वाले आपको हमारी स्तुति  
प्राप्त होवें ॥ १ ॥

द्वितीया ॥

हरिं हि योनिमभि ये समस्वरन् हिन्वन्तो हरी दिव्यं  
यथा सदः ।

आ यं पृणन्ति हरिभिर्न धेनव इन्द्राय शूपं हरिवन्त-  
मर्चत ॥ २ ॥

हरिम् । हि । योनिम् । अभि । ये । सम्ऽअस्वरन् । हिन्वन्तः ।

हरी इति । दिव्यम् । यथा । सदः ।

आ । यम् । पृणन्ति । हरिऽभिः । न । धेनवः । इन्द्राय । शूपम् ।

हरिऽदनम् । अर्चतः ॥ २ ॥



ये पूर्वमहर्षयो हरिम् हरणशीलं हरिवर्षसम् इत्युक्तत्वात् हरित-  
वर्णं वा योनिम् सर्वेषां मूलकारणम् इन्द्रं समस्वरन् हि समस्तु-  
वन् खलु । ❀ सृ शब्दोपतापयोः । “हि च” इति निघातेप्रति-  
षेधः ❀ । किं कुर्वन्तः । दिव्यम् देवसंबन्धि सदः सीदन्त्यत्र  
देवा इति सदो यागगृहम् । तद् यथा येन प्रकारेण इन्द्रो गच्छति  
तथा हरी एतन्नामानावश्वौ हिन्वन्तः प्रेरयन्तः रथे योजयन्तः । यं  
च इन्द्रं न धेनवः । अत्र पुरस्तादुपाचारोपि नशब्द उपसार्थीयः ।  
धेनवो नवप्रसूतिका गावो यथा स्वस्वामिनं क्षीरादिभिः पृणन्ति  
पूरयन्ति एवं हरिभिः हरितवर्णैः सोमरसै आ पृणन्ति पूरयन्ति  
यजमानास्तस्मै इन्द्राय । ❀ द्वितीयार्थे चतुर्थी ❀ । तम् इन्द्रं  
शूषम् शत्रुशोषसाधनबलोपेतं हरिवन्तम् हरिभिस्तद्वन्तम् अर्चत  
पूजयत । हे ऋत्विज इति शेषः । यद्वा इन्द्राय इन्द्रस्य हरिवन्तं  
शूषम् प्रीणनसाधनं बलम् अर्चतेति व्याख्येयम् । ❀ शुषिः प्रीण-  
नार्थ इति माधवः ❀ ॥

दिव्य यज्ञगृहमें बैठे हुए प्राचीन महर्षियोंने इन्द्र जिस प्रकार  
शीघ्रतासे यागागृहमें आएँ, इस लिये हरि नामक अश्वोंको रथ  
में जुतनेके लिये प्रेरित किया और हरितवर्ण वाले सबके मूल-  
कारण इन्द्रकी स्तुति की थी । जिस प्रकार नवीन व्याई हुई  
गौएँ क्षीर आदिसे अपने स्वामीको पूर्ण करती हैं इसी प्रकार  
हरितवर्णके सोमोंसे यजमान इन्द्रदेवको पूर्ण करते हैं ऐसे शत्रुओं  
को सुखाने वाले बलसे संपन्न हरि नामक घोड़ों वाले इन्द्रदेवकी  
हे ऋत्विजों ! तुम पूजा करो ॥ २ ॥

तृतीया ॥

सो अस्य वज्रो हरितो य आंसो हरिर्निकामो हरिः  
गमस्त्योः ।

धुम्नी सुशिप्रो हरिमन्युसायक इन्द्रे निरूपा हरिता  
मिमिक्षिरे ॥ ३ ॥

सः । अस्य । वज्रः । हरितः । यः । आयसः । हरिः । निऽकामः ।

हरिः । आ । गभस्त्योः ।

धुम्नी । सुऽशिप्रः । हरिमन्युऽसायकः । इन्द्रे । नि । रूपा ।

हरिता । मिमिक्षिरे ॥ ३ ॥

य आयसः अयोविकारो लोहमयो यो वज्रोस्ति अस्य इन्द्रस्य  
स वज्रः हरितः हरितवर्णः । लोहमयत्वादेव । स निकामः नितरां  
कमनीयः । इन्द्रोऽपि हरिः हरितवर्णः । स हरिः उक्तरूप इन्द्रः  
गभस्त्योः । गभस्तिर्हस्तः । हस्तयोस्तं हरितं वज्रम् । आ दत्त  
इति शेषः । धारयतीत्यर्थः । किं च इन्द्रः धुम्नी धुम्नवान् अन्न-  
वान् धनवान् वा । सुशिप्रः । ❀ शिप्रे हनू नासिके वेति निरु-  
क्तम् [ नि० ६. १७ ] ❀ । शोभनहनुः शोभननासिको वा ।  
स इन्द्रः हरिमन्युसायकः हरणशीलमन्युलक्षणसायकोपेतः हरित-  
वर्णमननीयवाणोपेतो वा । हरयो मन्यवः सायकाश्च यस्येति वा  
व्याख्येयम् । किं बहुना । यानियानि रूपा रूपाणि निरूपणी-  
यानि आभरणादीनि सन्ति तानि सर्वाण्यपि हरिता हरितानि  
हरितवर्णान्येव नि मिमिक्षिरे नियोजयितुम् इष्टानि बभूवुः । ❀  
मिहेः सन्नन्तात् कर्मणि लिटि रूपम् ❀ ॥

जो इन इन्द्रदेवका लोहेका वज्र है वह भी हरितवर्णका है  
और यह परम कमनीय इन्द्रदेव भी हरितवर्ण हैं । ऐसे हरि इन्द्र  
अपने हाथोंमें हरित वज्रको धारण करते हैं । और यह धनवान्  
इन्द्र सुन्दर ठोड़ी वाले हैं और इनके पास हरित वर्णका मान-

नीय वाण रहता है अधिक क्या इनके जो कुछ भी आभरण  
आदिक हैं वे सब ही हरित वर्णके ही दृष्ट हुए हैं ॥ ३ ॥

चतुर्थी ॥

दिवि न केतुरधि धायि हर्यतो विव्यचद् वज्रो हरितो  
न रंहा ।

तुददहिं हरिशिप्रो य आयसः सहस्रशोका अभवद्-  
रिभरः ॥ ४ ॥

दिवि । न । केतुः । अधि । धायि । हर्यतः । विव्यचत् । वज्रः ।  
हरितः । न । रंहा ।

तुदत् । अहिम् । हरिर्ऽशिप्रः । यः । आयसः । सहस्रऽशोकाः ।  
अभवत् । हरिस्ऽभरः ॥ ४ ॥

वज्रः इन्द्रसंबन्धी दिवि अन्तरिक्षे केतुर्न केतुरिव पञ्चापक  
आदित्य इव वा हर्यतः कान्तः सन अधि धायि अध्यधायि निहित  
आसीत् । ❀ दधातेः कर्मणि लुङ् । चिणि युगागमः । अडभा-  
वश्चान्दसः ❀ । किं च स वज्रः हरितो न हरितवर्णो आदि-  
त्याश्वा इव ते यथा रंहा रंहणीयानि प्रति । अथ वा रंहा वेगेन  
व्याप्नुवन्ति तद्गद् विव्यचत् विशेषेण व्यप्नोति सर्वम् । यद्वा नेति  
चार्थे । रंहाणि स्थानानि प्रति हरितः हरितवर्णो वज्रः विव्यचत्  
व्याप्नोति च । अपि च य आयसो हरितवर्णो वज्रोऽस्ति तेन वज्रेण  
हरिशिप्रः सोमयानेन हरितवर्णशिप्र इन्द्रः अहिम् वृत्रं तुदत् अनु-  
दद् व्याथितम् अकरोत् । किं च हरिभरः हर्षोऽश्वोर्भर्ता । ❀ हरि-  
शब्दापवादद् भृजः "संज्ञायां भृजृजि०" इत्यादिना स्वच् । इमं  
आगमः ❀ । इन्द्रः ते । वज्रेण साधनेन सहस्रशोकाः सहस्र-



शोकः सहस्रसंख्याकानां शत्रूणां शोचयिता अभवत् । यद्वा अप-  
रिमितदीप्तिरभवत् ॥

इन्द्रदेवका वज्र अन्तरक्षिपे प्रज्ञापक आदित्यकी समान स्थित  
है, और वज्र जैसे सूर्यके घोड़े वेगसे गन्तव्योंको प्राप्त होते हैं,  
तिस प्रकार व्याप्त होजाते हैं । और जो हरितवर्णका वज्र है उस  
वज्रके द्वारा सोमपानसे हरितवर्ण वाले हुए इन्द्रने वृत्रासुरको  
वधायित किया था । और हरि नामक अश्वोंका भरण करनेवाले  
इन्द्र उस वज्ररूपी साधनसे सहस्रों शत्रुओंको शोक पहुँचाने  
वाले हुए हैं ॥ ४ ॥

पञ्चमी ॥

त्वं त्वं महर्था उपस्तुतः पूर्वैभिरिन्द्र हरिकेश यज्वंभिः ।  
त्वं हर्षसि तव विश्वमुक्थ्यं मसामि राधो हरिजात  
हर्षतम् ॥ ५ ॥

त्वम् त्वम् । अहर्थाः । उपस्तुतः । पूर्वैभिः । इन्द्र । हरिकेश ।

यज्वंभिः ।

त्वम् । हर्षसि । तव । विश्वम् । उक्थ्यम् । असामि । राधः ।

हरिजात । हर्षतम् ॥ ५ ॥

हे हरिकेश हरिद्वर्णकेशोपेत उक्तवर्णकेशोपेतैरश्वरूपेण त्वं हे  
इन्द्र त्वं त्वम् त्वमेव यत्र यत्र सोमादि हनिरग्निं नञ् सर्वत्र त्वमेव ।  
❀ “नित्यवीष्मयाः” इति कृदन्तत्वाद् वीष्मायां द्विवचनम् ।  
आम्नेडितस्य अनुदात्तत्वाद् आद्यङान्तः ❀ । पूर्वैभिः पूर्वैभिः  
यज्वंभिः यजमानैः उपस्तुतः सन् अहर्थाः अकामगयाः । साम-

ध्यात् सोमादिकम् इति गम्यते । तथा इदानीमपि त्वम् त्वमेव हर्यसि कामयसे हवींषि । अतः हे हरिजात हरिभ्याम् अश्वाभ्यां सह यज्ञे प्रादुर्भूत हरितवर्णत्वेन प्रादुर्भूत वा विश्वम् सर्वं सोमादिकम् उक्थ्यम् प्रशस्यम् असामि अनल्पं हर्यतम् कमनीयं राधः अन्नम् सोमादिरूपं तव तत्रैव ॥

हे हरे वर्ण वाले केशोंसे सम्पन्न इन्द्र ! जहाँ २ सोम आदि हवि होती है तहाँ सर्वत्र आप ही हैं । आप प्राचीन यजमानोंसे स्तुति पाकर सोम आदि हविकी कामना किया करते हैं । तथा इस समय भी आप ही हवि आदिकी कामना कर रहे हैं । अत एव हे हरि नामक अश्वोंके साथ यज्ञस्थलमें प्रादुर्भूत होने वाले इन्द्र ! सब सोम आदि, प्रशंसनीय उक्थ्य और कमनीय अन्न आपका ही है ॥ ५ ॥

षष्ठी ॥

ता वज्रिणं मन्दिनं स्तोम्यं मदं इन्द्रं रथं वहतो हर्यता हरी ।

पुरुषयस्मै सवनानि हर्यते इन्द्राय सोमा हरयो दधन्विरे ॥ १ ॥

ता । वज्रिणम् । मन्दिनम् । स्तोम्यम् । मदं । इन्द्रम् । रथं । वहतः । हर्यता । हरी इति ।

पुरुषि । अस्मै । सवनानि । हर्यते । इन्द्राय । सोमा । हरयः । दधन्विरे ॥ १ ॥

हर्यता हर्यतौ गन्तारौ कमनीयौ वा ता तौ प्रसिद्धौ हरी एतन्नामकावश्वौ वज्रिणम् वज्रोपेतं मन्दिनम् मोदमानं हृष्यमाणं

स्तोम्यम् स्तोमार्हं स्तुत्यम् एवं महानुभावम् इन्द्रं मदे सोमपान-  
जनिताय मदाय रथे वहतः धारयतः अस्मदीयं यज्ञं प्रापयतः ।  
हर्यते कान्ताय अस्मै इन्द्राय पुरुणि बहूनि त्रीण्यपि सवनानि  
प्रातरादीनि हरयः हरितवर्णाः सोमा दधन्विरेअधारयन् धारयन्ति  
कमनीय हरी नामक घोड़े, प्रसन्न होते हुए स्तुतिके पात्र  
वज्रधारी इन्द्रको सोमपानसे होने वाले मदके लिये हमारे यज्ञमें  
लारहे हैं । इन कमनीय इन्द्रदेवके लिये प्रातःसवन आदि तीनों  
सवनोंको हरित वर्ण वाले सोम धारण करते हैं ॥ १ ॥

सप्तमी ॥

अरं कामाय हरयो दधन्विरे स्थिराय हिन्वन् हरयो  
हरी तुरा ।

अर्वञ्जियो हरिभिर्जोषभीयते सो अस्य कामं हरि-  
वन्तमानशे ॥ २ ॥

अरम् । कामाय । हरयः । दधन्विरे । स्थिराय । हिन्वन् । हरयः ।  
हरी इति । तुरा ।

अर्वञ्जिभिः । यः । हरिभिः । जोषम् । ईयते । सः । अस्य ।  
कामम् । हरिऽवन्तम् । आनशे ॥ २ ॥

कामाय कमनीयाय स्थिराय संग्रामे अविचलिताय इन्द्राय  
अरम् अलम् अत्यर्थं हरयः हरितवर्णाः सोमा दधन्विरे सवनानि  
धारयन्ति । त एव हरयः हरितवर्णाः सोमाः तुरा तुरौ त्वरमाणौ  
हरी अश्वौ हिन्वन् अहिन्वन् प्रेरयन्ति यज्ञं प्रति प्रेरयन्ति । यः  
य इन्द्रः अर्वञ्जिः अरणवज्जिर्वेगवज्जिः हरिभिः अश्वैः वाजम् यज्ञम्



ईयते गच्छति स इन्द्रः अस्य यज्ञस्य कामम् कः मयितव्यं हरिवन्तम्  
सोमवन्तं यजमानम् आनशे व्याप्नोति । यद्वा यो रथः अर्वाङ्ग-  
हरिभिः वाजम् ईयते स रथः अस्येन्द्रस्य स्वभूतं कामं हरिवन्तम्  
आनशे इन्द्रं धारयित्वा प्राप्नोति ॥

इन संग्राममें अविचल रहने वाले कमनीय इन्द्रदेवके लिये  
हरितवर्ण सोम सवनोंको धारण करते हैं । और वे ही हरित वर्ण  
वाले सोम त्वरा करने वाले हरि नामक अश्वोंको यज्ञकी ओर  
प्रेरण करते हैं । जो इन्द्रदेव वेगवान् घोड़ोंके द्वारा यज्ञमें आते  
हैं । वह इन्द्र इस यज्ञके कमनीय सोमवान् यजमानको प्राप्त होते हैं २

अष्टमी ॥

हरिश्मशारुहरिकेश आयसस्तुरस्पेये यो हरिपा अवर्धत  
अर्वाङ्गियो हरिभिर्वाजिनीवसुरति विश्वा दुरिता  
पारिषद्वरी ॥ ३ ॥

हरिऽश्मशारुः । हरिऽकेशः । आयसः । तुरऽस्पेये । यः । हरिऽपाः ।  
अवर्धत ।

अवर्तऽभिः । यः । हरिऽभिः । वाजिनीऽवसुः । अति । विश्वा ।

दुऽइना । पारिषत् । हरी इति ॥ ३ ॥

हरिश्मशारुः हरितवर्णश्मश्रुयुक्तः हरिकेशः हरितवर्णकेशोपेतः  
आयसः अयोविकारभूतः । अयःसारवत्कठिनेहृदय इत्यर्थः । क  
एवमात्मक इति तम् आह । यः यः प्रसिद्ध इन्द्रः तुरस्पेये तूर्ण  
पातव्ये सोमे निष्पन्नं सति हरिपाः हरिद्वर्णस्य सोमस्य पाता  
सन् अवर्धत वर्धते । यश्च वाजिनीवसुः वाजः अन्नं हविर्लक्षणं  
सोऽस्यां क्रियायां विद्यते सा वाजिनी । सैव वसु धनं यस्य

तथोक्तः । अथ वा वाजिनमेव वाजिनी सैव वसु धनं यस्य स  
तादृश इन्द्रः अर्बुजिः अरणकुशलैः शीघ्रगामिभिः हरिभिः अश्वैः  
सोमपानाय आगच्छति तैर्वाजिनीवसुर्भवतीति वा योज्यम् । स  
तादृश इन्द्रः हरी अश्वौ रथे योजगित्वा आगत्य अस्माकं विश्वा  
विश्वानि सर्वाणि दुरिता दुरितानि पारिषत् पारयतु । नाशय-  
त्वित्यर्थः । अस्मान् दुरितानि विश्वानि पारिषत् पारयतु तारय-  
त्विति वा योज्यम् । ॐ पृ पूरणे । चुरादिः । अत्र हिंसा-  
कर्मा । एयन्तात् पञ्चमलकारः । “सिञ्चहुलं लेटि” इति सिप् ।  
निघातः ॐ ।

हरित वर्णकी डाढ़ी मूँछ वाले, हरितवर्णके केशों वाले,  
लालेकी समान कड़े हृदय वाले जो इन्द्रदेव हैं वह शीघ्रतासे पीने  
योग्य सोमके निष्पन्न ( तयार ) होने पर सोमको पीने हुए बढ़ते  
हैं । हवि-रूपा क्रिया ही जिनका धन है वह इन्द्र शीघ्रगामी  
अश्वोंके द्वारा सोमपान करनेके लिये आते हैं । वह इन्द्र हरि  
नामक अश्वोंको रथमें जोत आकर हमारे सब पापोंको नष्ट कर  
ढालें ॥ ३ ॥

नवमी ॥

सुवेव यस्य हरिणी विपेततुः शिप्रे वाजाय हरिणी  
दविध्वतः ।

प्र यत् कृते चमसे मर्षजद्धरी पीत्वा मदस्य हर्षत-  
स्यान्धसः ॥ ४ ॥

सुवाऽइव । यस्य । हरिणी इति । विपेततुः । शिप्रे इति । वाजाय ।

हरिणी इति । दविध्वतः ।

प्र । यत् । कृते । चमसे । मर्मृजत् । हरी इति । पीत्वा । मदस्य ।

हर्यतस्य । अन्धसः ॥ ४ ॥

यस्य इन्द्रस्य हरिणी हरितवर्णे शिमे हन्तु स्रवेव स्रवाचिव ते यथा यज्ञे संचरतः एवं सोमपानाय विपेततुः विपेततः । चलत इत्यर्थः । यस्य च वाजाय अन्नाय सोमलक्षणाया तत्पानाय हरिणी हरितवर्णे शिमे दविध्वतः कम्पयतः पुरतः स्थितस्य पानाय चलतः । ❀ “दार्धर्ति०” इत्यादिना निपातितोयम् । यद्वृत्तयो-गाद् अनिघातः । “अभ्यस्तानाम् आदिः” इत्याद्युदात्तः ❀ । तथा यत् यदा चमसे पात्रे कृते संस्कृते सोमेन पूर्णे सति मदस्य मदकरस्य हर्यतस्य कमनीयस्य अन्धसः सोमलक्षणस्यान्नस्य अंशं पीत्वा हरी प्र मर्मृजत् हरितवर्णावश्वौ प्रमार्ष्टि । स इन्द्रस्तदानीं स्तुतः इत्यर्थः । अथ वा । ❀ कर्मणि षष्ठ्यन्ता एते ❀ । मदं हर्यतम् अन्धः पीत्वा शिमे दविध्वत इति योज्यम् ॥

जिन इन्द्रदेवकी हरितवर्णकी ठोड़ी, स्रवे जैसे यज्ञमें चलते हैं, तिस प्रकार सोमपानके लिये चलती है । तथा जब चमसपात्रके सोमसे पूर्ण होने पर, कमनीय मदकर सोमरूपी अन्नके अंशको पीकर इन्द्र हरित वर्ण वाले अश्वोंका प्रमार्जन करते हैं तब उन की ठोड़ी फड़कती है ॥ ४ ॥

दशमी ॥

उत स्म सन्नं हर्यतस्यं पस्त्योऽस्त्यो न वाजं हरिवां

अचिक्रदत् ।

मही चिद्धि धिषणा हर्यदोजसा बृहद् वयो दधिषे  
हर्यतश्चिदा ॥ ५ ॥



उत । स्म । सद्य । हर्यतस्य । पस्त्योः । अत्यः । न । वाजम् ।  
हरिऽवान् । अचिक्रदत् ।

मही । चित् । हि । धिषणा । अहर्यत् । ओजसा । बृहत् । वयः ।  
दधिषे । हर्यतः । चित् । आ ॥ ५ ॥

उत स्म । स्मेति पूरणः । अपि च हर्यतस्य गन्तव्यस्य कम-  
नीयस्य वा इन्द्रस्य सद्य सदनं पस्त्योः द्यावापृथिव्योः संबन्धि  
भवति । स इन्द्रः अत्योन वाजम् । अत्य इति अश्वनाम । अश्वः सं-  
ग्राममिव हरिवान् हरिभियुक्तः सन् अचिक्रदत् यज्ञगृहं प्रति गच्छति ।  
ॐ कदि क्रदि वैक्लव्ये । अत्र गत्यर्थः । छान्दसो लुङ् । च्लेश्चङि  
णिलोपः । सम्बद्धावाद् इच्चम् । निघातः ॐ । किं च मही चित्  
महती धिषणा अस्मदीया स्तुतिरपि ओजसा बलेन युक्तम् इन्द्रम्  
अहर्यत् कामयते । अतः हे इन्द्र हर्यतश्चित् कामयमानस्य यज-  
मानस्यापि तदर्थम् आ आगत्य बृहत् महत् प्रभूतं वयः अन्नं दधिषे  
धारयसि प्रयच्छसि ॥

इन कमनीय इन्द्रका भवन द्यावापृथिवीमें रहता है, जैसे घोड़ा  
संग्राममें जाता है, तैसे यह इन्द्र हरि नामक घोड़ोंसे सम्पन्न  
होकर यज्ञगृहकी ओर जाते हैं । और हमारी स्तुति भी बलसे  
सम्पन्न इन्द्रदेवकी कामना करती है । और हे इन्द्र ! आप भी  
कामना करते हुए यजमानके लिये आकर उसको विशाल परि-  
माणमें अन्न प्रदान करते हैं ॥ ५ ॥

एकादशी ॥

आ रोदसी हर्यमाणो महित्वा नव्यं नव्यं हर्यसि  
मन्म नु प्रियम् ।

प्र पस्त्यमसुर हर्यतं गोराविष्कृधि हरये सूर्याय १

आ । रोदसी इति । हर्यमाणः । महिऽत्वा । नव्यम्ऽनव्यम् ।

हर्यसि । मन्म । नु । प्रियम् ।

प्र । पस्त्यम् । असुर । हर्यतम् । गोः । आविः । कृधि ।

हरये । सूर्याय ॥ १ ॥

हे इन्द्र हर्यमाणः कामयमानस्त्वं महित्वा महत्त्वेन रोदसी ।  
 ❀ सकारान्तपक्षे द्विवचनान्तम् एतत् । ईकारान्तपक्षे रोदसी रोद-  
 स्यावित्यर्थः । “वा छन्दसि” इति पूर्वसवर्णदीर्घः ❀ । आवा-  
 पृथिव्यौ आ । ❀ उपसर्गश्रुतेर्योग्यक्रियाभ्याहारः ❀ । पूरयसि ।  
 तथा हे इन्द्र नव्यंनव्यम् नवतरंनवतरम् असकृच्छ्रतेपि सर्वदा  
 नूत्नम् अत एव प्रियम् हृदयंगमं मन्म मननीयं स्तोत्रं नु क्षिप्रं  
 हर्यसि कामयसे । हे असुर असवः प्राणास्तद्वन् प्रकृष्टबलवन्निन्द्र  
 हर्यतम् स्पृहणीयं गोः । ❀ जातावेकवचनम् ❀ । गवाम् आवा-  
 सभूतं पस्त्यम् । गृहनामैतत् । गृहं पण्यभिरपहतानां गवां निवा-  
 सस्थानं हरये हरणशीलाय हरिद्वर्णाय वा सूर्याय तदर्थं स  
 यथा गाः प्रत्यर्पयति स्तोत्रभ्यः तथा आविष्कृधि प्रकटीकुरु ।  
 अथ वा गोशब्दः उदकवाची । गवाम् उदकानां पस्त्यम् स्थानं  
 हरये सूर्याय आविष्कृधि स यथा वृष्टिं प्रयच्छति तथा कुरु । आदि-  
 त्याज्जायते वृष्टिरिति स्मृतेः [ म० स्मृ० ३. ७६ ] ॥

हे कामना करने योग्य इन्द्र ! आप अपने महत्वसे आवा-  
 पृथिवीको व्याप्त कर लेते हैं और हे इन्द्र ! बारम्बार सुनने पर  
 भी सदा नवीन ही प्रतीत होने वाले अत एव प्रिय हृदयंगम  
 स्तोत्रकी आप सदा कामना करते हैं । हे उत्कृष्ट प्राणबलसे  
 सम्पन्न इन्द्र ! पणियोंसे हरी हुई गौओंके स्पृहणीय, स्थानको

आप सूर्यदेवको प्रदान करते हैं, और वह जैसे स्तोताओंके लिये  
उनको प्रदान करें, तिस प्रकार करिये ॥ १ ॥

द्वादशी ॥

आ त्वा ह॒र्यन्तं प्र॒युजो ज॒नानां रथे वहन्तु हरि॑शि-  
प्रमि॒न्द्र ।

पि॒ब॒ यथा॑ प्र॒तिभू॑तस्य म॒ध्वो ह॒र्यन् य॒ज्ञं स॒धमा॑दे  
दशो॑णिम् ॥ २ ॥

आ । त्वा । ह॒र्यन्तम् । प्र॒युजः । ज॒नानाम् । रथे । वह॒न्तु । हरि॑-  
शि॒प्रम् । इन्द्र॒ ।

पि॒ब । यथा॑ । प्र॒तिभू॑तस्य । म॒ध्वः । ह॒र्यन् । य॒ज्ञम् । स॒धमा॑दे ।

दशो॑णिम् ॥ २ ॥

हे इन्द्र हरिशिप्रम् सोमपानेन हरितवर्णाभ्यां हनुभ्यां युक्तं  
त्वा त्वाम् । भाविगत्यैवमुक्तः । आगतस्य सोमपाने सति शिप्र-  
योर्हरिद्वर्णत्वसंभवात् । तादृशं ह॒र्यन्तम् सोमपानं कामयमानं त्वा  
त्वां जनानाम् यजमानानाम् अर्थाय प्रयुजः प्रकर्षेण परस्परं  
संयुक्ता अश्वाः रथे आ वहन्तु प्रापयन्तु । हे इन्द्र प्रतिभूतस्य  
संभूतस्य ग्रहचमसेषु धृतस्य मध्वः मधुवत्प्रियभूतस्य सोमस्य ।  
❀ कर्मणि षष्ठ्यौ ❀ । प्रतिभूतं मधु ह॒र्यन् कामयमानो यज्ञम्  
यज्ञसाधनभूतं दशोणिम् । ओणयः अङ्गुलयः । दशभिरङ्गुलि-  
भिर्निष्पीडितंसोमं सधमादे । सह माद्यन्त्यत्रेति सधमादो यज्ञः ।  
तस्मिन् यथा पिब यथा पिबसि । तथा त्वां रथे वहन्तु इत्यर्थः ॥

हे इन्द्र ! सोमपानसे हरितवर्णकी हनुओंसे सम्पन्न होने वाले,  
सोमपानकी कामना करने वाले आपको यजमानके लिये परस्पर



संयुक्त हुए अश्व लावें । हे इन्द्र ! ग्रह चमस आदिमें भरे हुए मधुकी समान मियभूत सोमके मधुकी कामना करते हुए यज्ञके साधन दश अंगुलियोंसे निचोड़े हुए सोमके घर यज्ञमें तुम जिस प्रकार पान कर सको तिस प्रकार घोड़े आपको लावें ॥ २ ॥

अथोदशी ॥

अपाः पूर्वेषां हरिवः सुतानामथो इदं सवनं केवलं ते ।  
ममद्धि सोमं मधुमन्तमिन्द्र सत्रा वृषं जठर आ  
वृषस्व ॥ ३ ॥

अपाः । पूर्वेषाम् । हरिऽवः । सुतानाम् । अथो इति । इदम् ।  
सवनम् । केवलम् । ते ।

ममद्धि । सोमम् । मधुऽमन्तम् । इन्द्र । सत्रा । वृषन् । जठरे ।  
आ । वृषस्व ॥ ३ ॥

हे हरिवः हरिवन् हरिभ्यां तद्वन् इन्द्र त्वं सुतानाम् अभिषु-  
तानां पूर्वेषाम् प्रातःसवनसंपादितानां सोमानाम् । माध्यंदिनसव-  
नापेक्षया पूर्वत्वम् एषाम् । ❀ कर्मणि षष्ठ्यावेते ❀ । अभिषु-  
तान् प्रातःसवनिकान् सोमान् अपाः पीतवान् असि । अथो अपि  
च इदं माध्यंदिनं सवनं केवलम् असाधारणं ते तवैव । “माध्यं-  
दिनं सवनं केवलं ते” इति हि [ऋ० ४. ३५. ७] मन्त्रान्तरम् ।  
अतो माध्यंदिने सवने मधुमन्तम् माधुर्योपेतं सोमं ममद्धि । मद-  
वाचिना मदिधातुना पानम् अन्तरेण मदाभावात् पानम् आक्षि-  
प्यते । अतः पिबेत्यर्थः । ❀ मदि स्तुत्यादौ । “बहुलं छन्दसि”  
इति शप । बहुः । पादादिस्वाद् अनिघातः । हेरपित्रात् प्रत्यय-

स्वरः ॐ । हे वृषन् वर्षक इन्द्र सत्रा साकम् एकधैव जठरे उदरे  
आ वृषस्व आसिञ्च । यथा कुक्षेः पूर्तिर्भवति तथा पिबेत्यर्थः ॥

हे हरि नामक घोड़ों वाले इन्द्र ! आप अभिषुत, मातःसवन  
में सम्पादित सोमोंका पान कर चुके हैं और यह माध्यन्दिनका  
सवन भी आपका ही है । अतः आप माध्यन्दिन सवनमें इस  
सोमका पान करके मदमें भरिये । हे वर्षक इन्द्र ! आप इसको  
एक साथ जठरमें भर लीजिये ॥ ३ ॥

चतुर्दशी ॥

अप्सु धूतस्य हरिवः पिबेह नृभिः सुतस्य जठरं पृणस्व ।  
मिमिक्षुर्यमद्रय इन्द्र तुभ्यं तेभिर्वर्धस्व मदमुक्थवाहः १

अप्सु । धूतस्य । हरिवः । पिब । इह । नृभिः । सुतस्य ।  
जठरम् । पृणस्व ।

मिमिक्षुः । यम् । अद्रयः । इन्द्र । तुभ्यम् । तेभिः । वर्धस्व ।  
मदम् । उक्थवाहः ॥ १ ॥

हे हरिवः हरिवन् इन्द्र अप्सु उदकेषु सोमाभिषवार्येषु धूतस्य  
कम्पितस्य मिश्रितस्य । ॐ कर्मणि पठौ ॐ । अप्सु धूतं नृभिः  
नेनृभिः अन्नयुग्मभृतिभिः सुतस्य सुतम् अभिषुतं सोमम् इह  
अस्मिन् यज्ञे पिब पानं कुरु पीत्वा जठरं पृणस्व च पूरय । जठ-  
रपूर्तिपर्यन्तं पिबेत्यर्थः । ॐ “चःदिलोपे विभाषा” इति प्रथमा  
तिङ्गिबभक्तिर्न निह्न्यते । पृणस्वेत्येषा द्वितीया तु निह्न्यत एव ॐ ।  
हे इन्द्र तुभ्यं त्वदर्थं यं सोमम् अद्रयः अभिषवसाधना ग्रावाणो  
मिमिक्षुः सेक्तम् अभिषवं कर्तुम् ऐच्छन् । तेभिरतैरभिषुतैः सोम-

रसैः हे उक्थवाहः उक्थैः शस्त्रैरुह्यमान इन्द्र तव मदं वर्धस्व अभि-  
वृद्धं कुरु । मत्तो भवेत्यर्थः ॥

हे हरि नामक घोड़ोंसे सम्पन्न इन्द्र ! सोमाभिषवके जलोंमें मिलाये हुए, अध्वर्यु आदिसे अभिषुत सोमका इस यज्ञमें आप पान करिये । और पेट भर कर पीजिये । हे इन्द्र ! आपके लिये जिस सोमको अभिषवके साधन पत्थर अभिषव कर चुके हैं उन अभिषुत सोमरसोंसे हे शस्त्रोंसे उह्यमान इन्द्र ! अपने मदको बढ़ा-इये-मत्त हूजिये ॥ १ ॥

पञ्चदशी ॥

प्रोग्रां पीतिं वृष्णं इयमि सत्यां प्रयै सुतस्य हर्यश्व  
तुभ्यम् ।

इन्द्र धेनाभिरिह मादयस्व धीभिर्विश्वाभिः शच्या  
गृणानः ॥ २ ॥

म । उग्राम् । पीतिम् । वृष्णे । इयमि । सत्याम् । प्रयै । सुतस्य ।

हरिऽअश्व । तुभ्यम् ।

इन्द्र । धेनाभिः । इह । मादयस्व । धीभिः । विश्वाभिः । शच्या ।

गृणानः ॥ २ ॥

हे हर्यश्व हरिनामकाश्वोपेत इन्द्र वृष्णे अभिमत्तफलवर्षकात्  
तुभ्यं प्रयै प्रकर्षेण गन्तुम् । ❀ प्रपूर्वाद् या प्रापणे इत्यस्मात्  
“प्रयै रोहिष्यै अन्यधिष्यै” इति छन्दसि तुमर्थे कैप्रत्ययान्तो  
निपातितः । मत्ययस्वरेण अन्तोदात्तः ❀ । तदर्थं सुतस्य अभि-  
षुतस्य सोमस्य उग्राम् उद्गृणान्बलां सत्याम् अत्रितथमदलक्षण-



फलोपेतां पीनिम् पानं प्रेरयिषि प्रेरयामि । किं च हे इन्द्र शच्या ।  
कर्मनामैतत् । यागेन निमित्तेन विश्वाभिः सर्वाभिः धीभिः स्तु-  
तिभिः गृणानः स्तूयमानः सन् धेनाभिः प्रीणयित्रीभिः स्तुति-  
भिर्वाग्भिः इह अस्मिन् यज्ञे मादयस्व तृप्तो भव । ॐ मद वृत्ति-  
योगे । चुरादिः । आत्मनेपदी ॐ ॥

हे हरि नामक अश्वों वाले इन्द्र ! अभीष्ट फलकी वर्षा करने  
वाले आपको प्राप्त होनेके लिये अभिषुत सोमके प्रचण्ड बलप्रद  
वास्तवमें मदरूपी फल वाले पानको प्रेरित करता हूँ । हे इन्द्र-  
देव ! यागरूपी कर्मसे और सकल स्तुतियोंसे प्रशंसा पाते हुए  
आप प्रशंसिका स्तुतियोंसे इस यज्ञमें तृप्त हूजिये ॥ २ ॥

षोडशी ॥

ऊ॒ती श॒चीव॒स्तव॒ वी॒र्ये॒ण वयो॒ दधा॑ना उ॒शिजं॑ ऋत॒ज्ञाः  
प्र॒जाव॑दिन्द्र॒ मनु॑षो दुरो॒णे त॒स्थुर्गृ॑णन्तः सध॒माद्या॑सः ३

ऊ॒ती । श॒ची॒ऽवः । तव । वी॒र्ये॒ण । वयः । दधा॑नाः । उ॒शिजः ।  
ऋत॒ऽज्ञाः ।

प्र॒जा॒ऽवत् । इन्द्र । मनु॑षः । दुरो॒णे । त॒स्थुः । गृ॒णन्तः । सध॒मा-  
द्या॑सः ॥ ३ ॥

हे शचीवः शक्तिमन् इन्द्र ऊती ऊत्या रक्षणेन तव वीर्येण  
सामर्थ्येन च प्रजावत् पुत्रादिरूपाभिः प्रजाभिरुपेतं वयः अन्नं  
दधानाः धारयन्त, उशिजः त्वां कामयमाना ऋतज्ञाः सत्यभूतफल-  
साधनं यज्ञं जानन्तः । षष्ठस्याहः प्रयोगस्य अतिगहनत्वाद् ऋतज्ञा  
इत्युक्तम् । सत्रे ये यजमानास्ते ऋत्विज इति शास्त्रेण सर्वेषां यज-  
मानभूतानाम् ऋत्विजां फलसाधारण्यात् प्रजावद् वयो दधाना

इति कलसंबन्धवचनं युक्तम् । एवंभूता ऋत्विजो मनुषः मनुष्यस्य यजमानस्य दुरोणे यागगृहे । ❀ दुरोण इति गृहनाम । दुरवा भवन्ति दुस्तर्पा इति यास्कः [ नि० ४. ५ ] ❀ । सत्रस्य बहु-कर्तृकत्वेपि केन चिद् यजमानेन अवश्यंभावाद् मनुषो दुरोण इत्युक्तम् । सधमाद्यासः सह मदनीयाः सन्तो गृणन्तः त्वां स्तु-वन्तः तस्थुः तिष्ठन्ति ॥

तृतीयेनुवाके त्रयोदशं सूक्तम् ॥

समाप्तश्च तृतीयोनुवाकः ॥

हे शक्तिसम्पन्न इन्द्र ! आपकी रक्षक शक्तिसे पुत्रादिरूप प्रजाओं वाले अन्नको धारण करते हुए और आपकी कामना करते हुए सत्यफलसाधन यज्ञको जानते हुए ऋत्विज, मनुष्य यजमानके यागगृहमें आपकी स्तुति करते हुए विद्यमान हैं ॥३॥

तृतीय अनुवाकमें त्रयोदश सूक्तसमाप्त ( ६४६ )

तृतीय अनुवाक समाप्त

चतुर्थेनुवाके चत्वारि सूक्तानि । तत्र “यो जात एव” इति प्रथमं सूक्तं सामसूक्तम् इति व्यवहियते । “अस्मा इदु प्र तवसे” इति द्वितीयं सूक्तम् अहीनसूक्तम् इति व्यवहियते । द्वादशाहादौ वैराजपृष्ठे विश्वजिति “यो जातः” इति सूक्तं ब्राह्मणाच्छंसिनः शस्त्र विनियुक्तम् । सूत्रितं हि वैताने । “नवरात्रेभिजिद्विषुवान् विश्वजिच्चतुर्विंशत्” इत्युपक्रम्य “विश्वजिति वैराजपृष्ठे ‘यद् याव इन्द्र ते शतम्’ [ २०. ८१. १ ] ‘यद् इन्द्र यावतस्त्वम्’ [ २०. ८२. १ ] इति पृष्ठस्तोत्रियानुरूपौ बार्हतौ उक्ते योनी । ‘इन्द्र क्रतुं न आ भर’ [ २०. ७६. १ ] इति तृतीयाम् । ‘इन्द्र त्रिधातु शरणम्’ [ २०. ८३. १ ] इति सामप्रगाथः । सुकीर्ति-वृषाकपी ‘यो जात एव प्रथमो मनस्वान्’ [ २०. ३४ ] इति सामसूक्तम् “अहीनसूक्तम् आचपते” इति [ वै० ६. ३ ] ॥

तथा अमोर्ग्यामिण क्रतावपि माध्यंदिनसवने अस्य सूक्तस्य  
ब्राह्मणाच्छंसिशस्त्रे त्रिनियोगः । “अमोर्ग्यामिण गर्भकारं शंसति”  
इति प्रक्रम्य सूत्रितम् । “सुकीर्तिं वृषाकपिं सामसूक्तम् अहीनसू-  
क्तम् आवपते” इति [ वै० ४. ३ ] ॥

एतत्सूक्तविषय इतिहासो बृहदेवतानुक्रमणाय उक्तः ॥

संयुज्यतपसात्मानम् ऐन्द्रं विश्वमहद् वपुः ।  
अदृश्यत मुहूर्तेन दिवि च व्योम्नि चेह च ॥  
तम् इन्द्र इति मत्वा तु दैत्यौ भीमपराक्रमौ ।  
धुनिश्च चुमुरिश्चोभौ सायुधावभिपेततुः ॥  
विदित्वा स तयोर्भावम् ऋषिः पापं चिकीर्षतोः ।  
यो जात इति सूक्तेन कर्माण्यैन्द्राण्यकीर्तयत् ॥

अपरे त्वन्यथा वर्णयन्ति ॥

पुरा किल महेन्द्राद्या वैन्ययज्ञं समागताः ।  
ऋषिगृत्समदस्तत्र वैन्यस्य सदसि स्थितः ॥  
असुराश्च समाजग्मुः शीघ्रम् इन्द्रजिघांसया ।  
तान्दृष्ट्वा निर्जगामेन्द्रो यज्ञाद् गृत्समदाकृतिः ॥  
निरगात् सोपि तद्यज्ञाद् ऋषिवैन्येन पूजितः ।  
तं दृष्ट्वा चेन्द्र एवायम् इति ते जगृहुः किल ॥  
नाहम् इन्द्रोस्मि किं त्वेवंगुणोपेतः स इत्यृषिः ।  
यो जात इति सूक्तेन निराचक्रे बधोद्यतान् ॥ इति ॥

केचित् तु अत्र सूक्ते “यं स्मा पृच्छन्ति कुह सेति घोरम् उते-  
माहुर्नैषो अस्तीत्येनम्” इति [ ५ ] इन्द्रस्य नास्तित्ववचनाद्  
अन्यत्रापि “नेन्द्रो अस्तीति नेम उ त्व आह क ई ददर्श” इति  
[ ऋ० ८. १००. ३ ] इन्द्रस्याभावश्रवणाच्च तत्सद्भावं निरा-  
कृवाणान् प्रति अस्मिन् सूक्ते इन्द्रस्य असाधारणमाहात्म्यकथनै-  
स्तदस्तित्वम् अवागमयद् इति क्वचिद् आहुः ॥



चौथे अनुवाकमें चार सूक्त हैं। इनमें “यो जात एव” यह प्रथम सूक्त सामसूक्त कहलाता है। “अस्मा इदु म तवसे” यह द्वितीय सूक्त अहीनसूक्त कहलाता है। द्वादशाह आदिमें वैराज-पृष्ठके विश्वजित्में “यो जातः” सूक्त ब्राह्मणाच्छंसीके शस्त्रमें विनियुक्त होता है। इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है, “नव-रात्रेऽभिजिह्व विषुवान् विश्वजिच्चतुर्विंशवत्” का आरंभ करके “विश्वजिति वैराजपृष्ठे ‘यद्वा याव इन्द्र तेशतम्’ ( २०। ८१। १ ) ‘यदिद्र यावतस्त्वम्’ ( २०। ८२। १ ) इति पृष्ठस्तोत्रियानुरूपौ बार्हतौ उक्ते योनी। ‘इन्द्रं क्रतु न आ भर’ ( २०। ७६। १ ) इति तृतीयाम्। ‘इन्द्र त्रिधातु शरणम्’ ( २०। ८३। १ ) इति सामप्रगाथः। सुकीर्तिवृषाकपी ‘यो जात एव प्रथमो मनस्वान्’ ( २०। ३४ ) इति सामसूक्तम् अहीनसूक्तम् आवपते” ( वैतान-सूत्र ६। ३ ) ॥

तथा असौर्यामके क्रतुमें भी माध्यन्दिनसवनमें इस सूक्तका ब्राह्मणाच्छंसिशस्त्रमें विनियोग है। “असौर्यामिण गर्भकारं शंसति” का प्रक्रम करके वैतानसूत्र ४। ३ में कहा है, कि-“सुकीर्तिवृषाकपि सामसूक्तं अहीनसूक्तं आवपते” ॥

इस सूक्तसे संबन्ध रखने वाला इतिहास बृहद्देवतानुक्रमणिका में कहा है। उसका अर्थ यह है, कि-“गृत्समद ऋषिने तप करके इन्द्रके प्रशंसनीय रूपको धारण कर लिया और वह सुहूर्त भरमें धूलोकमें भूलोकमें और अन्तरिक्षमें दीखने लगे। धुनि और चुपुुरि नामक दो भयङ्कर पराक्रमी दैत्य थे वे गृत्समद ऋषिको इन्द्र समझ उन पर आयुध लेकर टूट पड़े। उन पाप करना चाहने वालोंके भावको जान कर ऋषि ‘यो जात एव’ सूक्तसे इन्द्रके कर्मोंका कीर्तन करने लगे।” दूसरे इसका भिन्नरूपमें वर्णन करते हैं, कि-पहिले “महेन्द्र आदि वैज्यके यज्ञमें आए थे

तहाँ वेनपुत्रकी सभामें गृत्समद ऋषि भी बैठे हुए थे । इधर असुर भी इन्द्रको मारनेकी इच्छासे शीघ्रतापूर्वक आगए । उन को देख इन्द्र गृत्समद ऋषिका रूप धारण करके यज्ञसे बाहर निकलगए । और वैश्यसे सत्कार पाकर ऋषि भी उस यज्ञसे चलने लगे । उनको इन्द्र मान कर ऋषिको उन असुरोंने पकड़ लिया । तब ऋषिने कहा, 'कि-मैं इन्द्र नहीं हूँ किन्तु इन्द्र सा हूँ, और "यो जातः" सूक्तसे वध करनेके लिये उद्यत असुरोंको दूर कर दिया" ॥ कोई कहते हैं कि—“यं स्मा पृच्छन्ति कुह सेति घोरं उतेमाहुर्नैषो अस्तीत्येनम्” इस पाँचवीं ऋचामें इन्द्रके नास्तित्व वचनसे, अन्यत्र भी “नेन्द्रो अस्तीति नेम उ त्व आह क ईम् ददर्श” ऋग्वेदसंहिता ८ । १०० । ३ में इन्द्रके अभावके श्रवण होनेसे उनके सद्भावका निराकरण करने वालोंके प्रति इस सूक्तमें इन्द्रका असाधारण माहात्म्य कह कर इन्द्रका अस्तित्व प्रतिपादन किया है ।

तत्र प्रथमा ॥

यो जात एव प्रथमो मनस्वान् देवो देवान् ऋतुना  
पर्यभूषत् ।

यस्य शुष्माद् रोदसी अभ्यसेतां नृणस्य महा स  
जनास इन्द्रः ॥ १ ॥

यः । जातः । एव । प्रथमः । मनस्वान् । देवः । देवान् । ऋतुना ।  
परिऽअभूषत् ।

यस्य । शुष्मात् । रोदसी इति । अभ्यसेताम् । नृणस्य । महा ।  
सः । जनासः । इन्द्रः ॥ १ ॥

य इन्द्रो देवः जात एव प्रादुर्भूतमात्रः सन् प्रथमः प्रकृष्टतमो मुख्यः सन् । ❀ प्रथम इति मुख्यनाम प्रथमो भवतीति निरुक्तम् [ नि० २, २२ ] ❀ । मनस्वान् प्रकृष्टेन अनुग्राहकेण मनसा युक्तो देवान् इतरान् क्रतुना कर्मणा असाधारणेन व्यापारेण पर्यभूषत् परिभाषयाचकार । स्वाधीनान् अकरोत् । रक्ष्यत्वेन पर्यगृह्णाद् वा । यस्य इन्द्रस्य शुष्मात् शोषकाद् बलाद् रोदसी द्यावापृथिव्यौ अभ्यसेताम् भीते अभूयताम् । शुष्मात् इत्यनेन शारीरं बलम् अभिधाय सेनालक्षणं बलं भयसाधनतया अभिधत्ते नृम्णस्य महा इति । नन् शत्रुजनान् प्रति अभिभावकं मनो यस्य स तादृशः उक्तलक्षणान् नन् नमयतीति वा नृम्णं सेनादिलक्षणं बलम् । तस्य महा महत्त्वेन च अभ्यसेताम् इति पूर्वत्रान्वयः । हे जनासः असुरजनाः स इन्द्रो नाहम् इति ऋषिः आत्मन इन्द्रत्वं पर्यहरत् ॥ अस्य सूक्तस्य इन्द्रसद्भावप्रतिपादनपरत्वपक्षे हे जनासः इन्द्रो नास्तीति मन्यमाना जनाः उक्तगुणोपेतः स इन्द्रोऽस्त्येवेति व्याख्येयम् । ❀ अत्र निरुक्तम् । यो जात एव प्रथमो मनस्वान् देवो देवान् क्रतुना कर्मणा पर्यभूषत् पर्यगृह्णात् पर्यरक्षद् अत्यक्रामद् इति वा । यस्य बलाद् द्यावापृथिव्याव्यविभीतां नृम्णस्य महा बलस्य महत्त्वेन । जनास इन्द्र इत्येष्टार्थस्य प्रीतिर्भवत्याख्यानसंयुक्तेति [ नि० १०, १० ] । पर्यभूषत् इति । भवतेर्लुङि व्यत्ययेन च्लेः कसः । “अथ कः किति” इति इट्प्रतिषेधः । “यद्भृत्तान्नित्यम्” इति निघातप्रतिषेधः । अटः स्वरः । “तिङि चोदात्तवति” इति गतेर्निघातः ❀ ॥

जिन इन्द्रदेवने प्रकट होते ही मुख्य बन कर अपने अनुग्रह करने वाले मनसे अन्य देवताओंको अपने असाधारण व्यापार से रक्ष्य रूपमें ग्रहण कर लिया है । जिन इन्द्रके शोषक शारीरक बलसे द्यावा पृथिवी भयभीत होते हैं और जिनके सैनिक-



बलसे और महत्त्वसे आवापृथिवी भयभीतरहते हैं हे असुर जनों !  
[ मैं वह इन्द्र नहीं हूँ, इस प्रकार ऋषिने अपना इन्द्रत्व हटाया  
और इन्द्रके सद्भावके प्रतिपादन करनेके पक्षमें “पूर्वोक्त गुणों  
वाले इन्द्रदेव हैं” यह व्याख्या करनी चाहिये ] ॥ १ ॥

द्वितीया ॥

यः पृथिवीं व्यथमानामहं हत् यः पर्वतान् प्रकुपितान्  
अरम्णात् ।

यो अन्तरिक्षं विममे वरीयो यो द्यामस्तभ्नात् स  
जनास इन्द्रः ॥ २ ॥

यः । पृथिवीम् । व्यथमानाम् । अहं हत् । यः । पर्वतान् । प्रकु-  
पितान् । अरम्णात् ।

यः । अन्तरिक्षम् । विममे । वरीयः । यः । द्याम् । अस्तभ्नात् ।  
सः । जनासः । इन्द्रः ॥ २ ॥

हे जनासः जनाः य इन्द्रः व्यथमानाम् चलन्तीं पृथिवीम् अहं-  
हत् शर्करादिभिर्दृढाम् अकरोत् । यश्च प्रकुपितान् प्रकोपं प्राप्तान्  
परस्परं युद्धाय इतस्ततश्चलतः पर्वतान् गिरीन् पक्षयुक्तान् अर-  
म्णात् पक्षच्छेदेन नियमितवान् । यथा उत्प्लुत्योत्प्लुत्य प्राणि-  
पीडां न कुर्वन्ति तथा स्वस्थाने स्थापितवान् इत्यर्थः । ❀ रमु  
क्रीडायाम् । अस्य अन्तर्भावितार्थस्य । श्नाप्रत्ययः । अस्य अहं  
हत् इत्यस्य च यद्वृत्तयोगाद् अनिघातः । अडागमस्वरः ❀ ।  
यश्च इन्द्रः अन्तरिक्षम् । अन्तरा ज्ञान्तं भवति सर्वम् इत्यन्तरि-  
क्षम् । कीदृशम् । वरीयः उरुतरम् इयत्ताशुन्यं विममे विमानम्

अकरोत् । ❀ माङ् माने इत्यस्य ❀ । यश्च ग्राम् दिवम् अस्त-  
भ्नात् निरुद्धाम् अकरोत् स इन्द्रः इतीन्द्रस्य सद्भावं मुनिरुपादिक्षत्

हे असुरों ! जिन्होंने इस विचलित होती हुई पृथिवीको शर्करा  
आदिसे दृढ़ कर दिया है । और जिन्होंने क्रोधमें भर कर इधर  
उधर युद्धके लिये विचरण करने वाले पक्ष वाले पर्वतोंको पर  
काट कर नियमित कर दिया है और जिन्होंने विशाल अन्तरिक्ष  
को परिमाण शून्य कर दिया है और जिन्होंने द्युलोकको स्तंभित  
कर दिया है वह इन्द्रदेव हैं ॥ २ ॥

तृतीया ॥

यो हत्वा हिमरिणात् सप्त सिन्धून् यो गा उदाजं दपधा  
वत्स्य ।

यो अश्मनोरन्तरग्निं जजानं संवृक् समत्सु स जनास  
इन्द्रः ॥ ३ ॥

यः । हत्वा । अहिम् । अरिणात् । सप्त । सिन्धून् । नः । गाः ।

उत्स्राजत् । अपधा । वत्स्य ।

यः । अश्मनोः । अन्तः । अग्निम् । जजानः । सम्स्रृक् । समत्सु ।

सः । जनासः । इन्द्रः ॥ २ ॥

यः इन्द्रः अहिम् अन्तरिक्षे गन्तारं मेघं हत्वा विदार्य सप्त  
सर्पणशीलान् सिन्धून् । नदीरित्यर्थः । सप्तसंख्याका गङ्गायमु-  
नादिनदीर्वा अरिणात् प्रैरयत् । ❀ री गतिरेषणयोः । क्रयादिः ❀ ।  
यश्च वत्स्य एतन्नामकस्यासुरस्य गाः असुरेणापहृता बिले स्था-  
पिता गाः अपधा । अप कुत्सितं धीयत इत्यपधा पिधानम् ।

तस्माद् उदाजत् उदगमयत् । ❀ अपपूर्वाद् दधानेः “आतथोप-  
सर्गे” इति अङ् । “सुपां सुलुक्” इति पञ्चम्या आकारः ❀ ।  
यश्च अश्मनोः व्याप्तयोर्मेघयोरन्तः अग्निं जजान उदपादयत् ।  
मेघयोः संघर्षेण वैद्यनोभिर्जायत इति प्रसिद्धम् एतत् । अब्धार-  
कम्बेन अतिशीतत्वात् तत्र अग्न्युत्पादनम् इन्द्रस्य असाधारणं सा-  
मर्थ्यम् । यश्च समस्तु संग्रामेषु संवृक् शत्रुसंवर्जको भवति । स  
इन्द्र इत्यसाधारणैः कर्मभिः एवम् इन्द्रं ज्ञापयामास ॥

जिन इन्द्रदेवने अन्तरिक्षमें विचरण करने वाले मेघको विदीर्ण  
करके सरकनेके स्वभाव वाली गंगा यमुना आदि नदियोंको  
प्रेरित किया है और जिन्होंने बल नामक असुरकी हकी हुई  
गौओंको बिलसे प्रकट किया है । और जो दो मेघोंमें भरे हुए  
पथरोंसे वैद्युताग्निको प्रकट करते हैं [ जलधारक होनेसे अति-  
शीतत्वमें भी अग्निको उत्पन्न करना इन्द्रकी असाधारण शक्ति  
है ] जो संग्रामोंमें शत्रुओंको नष्ट कर डालते हैं यह इन्द्र हैं मैं  
तो भाई ऋषि हैं ॥ ३ ॥

चतुर्थी ॥

येनेमा विश्वा च्यवना कृतानि यो दासं वर्णमधरं  
गुहाकः ।

श्वघ्नीव यो जिगीवां लक्ष्माददर्यः पुष्टानि स जनास  
इन्द्रः ॥ ४ ॥

येन । इमा । विश्वा । च्यवना । कृतानि । यः । दासम् । वर्णम् ।

अधरम् । गुहा । अकरित्यकः ।



श्वघ्नीऽइव । यः । जिगीवान् । लक्ष्म । आदत् । अर्यः । पुष्टानि ।

सः । जनासः । इन्द्रः ॥ ४ ॥

येन इन्द्रेण इमा इमानि परिदृश्यमानानि विश्वा विश्वानि सर्वाणि च्यवना च्यवनानि स्वेन च्यावयितव्यानि कृतानि । यद्वा च्यवनानि कृतानि । दृढीकृतानीत्यर्थः । ❀ च्युङ् प्लुङ् गतौ । “कृत्यन्पुटो बहुलम्” इति न्युट् । “शेषछन्दसि बहुलम्” इति शेरुक् ❀ । यश्च इन्द्रः दासम् उपक्षपयितारम् असुरं वर्णम् नीच-वर्णम् अधरम् निकृष्टं कृत्वा गुहा गुहायाम् अकः अकार्षीत् । किं च लक्ष्म लक्ष्यं योयः प्रकाशभूतः शत्रुरस्ति तंतं जिगीवान् जितवान् । ❀ जि जये वरसौ “सन्निटोर्जेः” इत्यभ्यासाद् उत्तरस्य कुत्वम् । छान्दसो दीर्घः ❀ । तादृशो यः अर्यः अरेः पुष्टानि समृद्धानि धनानि आदत् स्वीकरोति । तत्र दृष्टान्तः । श्वघ्नीव श्वभिः साधनैः मृगान् हन्तीति श्वघ्नी व्याधः स यथा जिगीवान् सन् लक्ष्यमाणं मृगं स्वीकरोति तद्वत् । हे जनाः स इन्द्र इत्यभिर्ब्रूते ॥

हे असुरों ! जिन्होंने इन दीखते हुए सब भुवनोंको दृढ़ किया है, और जो हानि पहुँचाने वाले नीच वर्णके असुरको निकृष्ट करके गुहामें डाल चुके हैं और जिन्होंने प्रकट शत्रुओंको जीत लिया है और जो शिकारीकी समान शत्रुके धनको हर लेते हैं, वह इन्द्र हैं, मैं इन्द्र नहीं हूँ ॥ ४ ॥

पञ्चमी ॥

यं स्मां पृच्छन्ति कुहं सेति घोरमुतेमाहुर्नैषो अस्ती-  
त्येनम् ।

सो अर्यः पुष्टीर्विज इवा मिनाति श्रदस्मै धत्त स  
जनास इन्द्रः ॥ ५ ॥

यम् । स्म । पृच्छन्ति । कुह । सः । इति । घोरम् । उत । ईम् ।

आहुः । न । एषः । अस्ति । इति । एनम् ।

स । अर्यः । पुष्टीः । विजःऽइव । आ । मिनाति । अत् । अस्मै ।

धत्त । सः । जनासः । इन्द्रः ॥ ५ ॥

घोरम् शत्रूणां हन्तारं भयङ्करं यम् इन्द्रं जनाः पृच्छन्ति स्म  
प्रश्नं कुर्वन्ति । ❀ “निपातस्य च” इति स्मेत्यस्य संहितायां  
दीर्घः ❀ । किमिति । इन्द्र इन्द्र इति सर्वे जना ब्रुवते स कुह  
कुत्र वर्तत इति । उत अपि च ईम् एनम् इन्द्रम् आहुः । के च न  
ब्रुवते । किमिति । एष इन्द्रो नास्तीति अस्ति चेत् दृष्टिपथं प्राप्नु-  
यात् । न तथास्ति अत एव नास्तीति ब्रुवते । तथाच मन्त्रान्त-  
रम् । “नेन्द्रो अस्तीति नेम उ त्व आह क ई ददर्श” [‘ऋ०  
८, १००, ३ ] इति । एवं संशयो न कार्यः । स त्विन्द्रः अर्यः  
अरेः पुष्टीः पोषिकाः सेनाः विज इव । इवशब्दः एवार्थे । उद्वे-  
जक एव सन् । अथ वा विजो भयहेतुः व्याघ्रादिदुष्टमृगः । स  
इव आ सर्वतो मिनाति हिनस्ति । ❀ सेति इत्यत्र “सोचिलोपे  
चेत् पादपूरणम्” इति सोल्लोपे गुणः ❀ । अस्मा इन्द्राय इन्द्र  
विषये हे नराः श्रद्धत्त । अत् इति सत्यनाम । विश्वासं कुरुत ।  
इन्द्रोस्ति चेत् कुत्र तिष्ठतीति स नास्त्येवेति वा अविश्वासं मा  
कुरुत । स नास्ति चेत् वृत्रादिशत्रुसेनास्तदन्यः को जयेत् । अतो  
यः शत्रुसेनानां जेतास्ति हे जनासः जनाः स इन्द्र इति ॥

शत्रुओंका हनन करने वाले जिन इन्द्रदेवके विषयमें मनुष्य

प्रभ करते हैं,—इन्द्र कहाँ हैं, इन्द्र कहाँ हैं ? वह इन्द्र कहाँ हैं ? कोई कहते हैं, कि—यह इन्द्र हैं ही नहीं, यदि होते तो दीखते, वह नहीं दीखते, अत एव नहीं हैं । ( ऐसा संशय नहीं करना चाहिये, क्योंकि—) वह इन्द्र शत्रुओंको पुष्ट करने वाली सेनाओं को उद्देजक व्याघ्र आदिकी समान पूर्णरीतिसे नष्ट कर डालते हैं, ऐसे इन्द्रदेवके विषयमें हे नरों ! श्रद्धा करो, विश्वास करो, इन्द्र हैं तो वह कहाँ रहते हैं ? वह नहीं हैं इतना अविश्वास न करो, यदि वह नहीं होते तो वृत्र आदि शत्रुसेनाओंको उनके अतिरिक्त और कौन जीत लेता, अतः हे जनों ! जो शत्रु-सेनाओंके जेता हैं, वही इन्द्र हैं ॥ ५ ॥

षष्ठी ॥

यो रधस्य चोदिता यः कृशस्य यो ब्रह्मणो नाधमा-  
नस्य कीरेः ।

युक्तग्रावणो योविता सुशिप्रः सुतसोमस्य स जनास  
इन्द्रः ॥ ६ ॥

यः । रधस्य । चोदिता । यः । कृशस्य । यः । ब्रह्मणः । नाध-  
मानस्य । कीरेः ।

युक्तऽग्रावणः । यः । अविता । सुऽशिप्रः । सुतऽसोमस्य । सः ।  
जनासः । इन्द्रः ॥ ६ ॥

य इन्द्रो रधस्य संराद्धस्य समृद्धस्यापि । ॐ रधेरौणादिको रक्  
प्रत्ययः ॐ । चोदिता अभिमतफलप्रेरयिता समृद्धस्य राजादेर्यः  
शत्रुः तस्य चोदिता अपमययिता वा । यश्च कृशस्य धनादिराहि-



त्येन क्षीणस्यापि चोदिता तदभीष्टधनस्य प्रेरयिता । यश्च कीरेः ।  
स्तोतृनामैतत् । स्तोत्रकर्तुः नाधमानस्य अभिमतं फलं याचमानस्य  
ब्रह्मणः ब्राह्मणस्यापि चोदिता । यश्च सुशिमः शोभनइन्द्रिन्द्रः  
युक्तग्रावणः अभिषवाय प्रयुक्ताश्मनः सुतसोमस्य अभिषवादिना  
संस्कृतसोमस्य यजमानस्य अचिता रक्षिता एवमहानुभावो योस्ति  
हे जनासः जनाः स इन्द्र इति ॥

जो इन्द्र समृद्ध राजा आदिके शत्रुओंको भी दूर करने वाले  
हैं जो धनशून्य होनेसे क्षीण हुए पुरुष पर भी अभीष्ट धनको  
प्रेरित करने वाले हैं, जो स्तुति और प्रार्थना करते हुए ब्राह्मण  
को अभीष्ट फल देने वाले हैं । जिनकी ठोड़ी सुन्दर है जो अभि-  
षवके लिये पत्थरोंको उपयोगमें लाने वाले सोमको संस्कृत करने  
वाले यजमानकी रक्षा करने वाले हैं, हे जनों ! वह इन्द्र हैं ६

सप्तमी ॥

यस्याश्वासः प्रदिशि यस्य गावो यस्य ग्रामा यस्य  
विश्वे रथासः ।

यः सूर्यं य उषसं जजान यो अपां नेता स जनास इन्द्रः

यस्य । अश्वासः । प्रदिशि । यस्य । गावः । यस्य । ग्रामाः ।

यस्य । विश्वे । रथासः ।

यः । सूर्यम् । यः । उषसम् । जजान । यः । अपाम् । नेता ।

सः । जनासः । इन्द्रः ॥ ७ ॥

पूर्वमन्त्रे धनिनो निर्धनस्य स्तोतुर्यष्टुश्च अभिमतप्रदाने यः  
समर्थः स इन्द्र इत्युक्तम् । अत्र प्राणिनाम् अपेक्षिता अश्वगोरय-

प्रकाशवृष्टिलक्षणा ये अर्थाः सन्ति तेषां सर्वेषां प्रदाने यः समर्थः  
 स इन्द्र इत्यभिधीयते । यस्य इन्द्रस्य प्रदिशि प्रदेशने अनुशासने  
 संविधौ वा । ॐ प्रपूर्वाद् दिश अतिसर्जने इत्यस्मात् क्विप् ॐ ।  
 अर्थिभ्यो दातव्या अश्वासः अश्वाः । सन्तीति शेषः । यस्य च  
 गावः सदर्थिभ्यो दातव्या बह्व्यो गावः । यस्य च ग्रामलाभका-  
 मेभ्यो दित्सिता ग्रामाः । यस्य च विश्वे सर्वे रथासः रथाः ।  
 गजोष्ठ्यानादीनां पग्निग्रहाय विश्व इति विशोषतश्च । यश्च इन्द्रो  
 गमनादिसर्वव्यवहारोपयोगिप्रकाशाय सूर्यं जजान । तथा य उषसं  
 च जजान उत्पादितवान् । यश्च अपाम् वृष्ट्युदकानां नेताः प्राप-  
 यिता देवोस्ति हे जनाः स इन्द्र इति ॥

[ पूर्वमन्त्रमें “धनी निर्धन स्तोता और यष्टाको अभिमत फल  
 देनेमें जो समर्थ हैं वह इन्द्र हैं” यह बात कही थी । अब यह बात  
 कही है, कि—] “प्राणियोंके अपेक्षित, अश्व गौ रथ प्रकाश वृष्टि  
 आदि जो अर्थ हैं, उन सबका प्रदान करनेमें जो समर्थ हैं वह  
 इन्द्र हैं ।” जिन इन्द्रदेवके अनुशासन और प्रशासनमें याचकोंको  
 देनेके घोड़े हैं और याचकोंके लिये बहुतसी गौएँ हैं और जिन  
 की आज्ञामें ग्रामप्राप्तिकी अभिलाषा वालोंको लिये ग्राम हैं,  
 जिनके पास रथ गज उष्ट्रयान आदि सब हैं और जिन इन्द्रदेवने  
 गमन आदि सब व्यवहारोपयोगी प्रकाशके लिये सूर्यदेवको प्रकट  
 किया है और जिन्होंने उषाको उत्पन्न किया है और जो वृष्टिके  
 जलको लाने वाले देवता हैं हे जनों ! वह इन्द्र हैं ॥ ७ ॥

अष्टमी ॥

यं कन्दसी संयती विह्वयेते परेवर उभयां अमित्राः  
 समानं चिद्रथमातस्थिवांसा नानां ह्वेते स जनास  
 इन्द्रः ॥ ८ ॥

यम् । क्रन्दसी इति । संयती इति समुद्यती । विहयेते इति वि-  
हयेते । परे । अवरे । उभयाः । अमित्राः ।

समानम् । चित् । रथम् । आतस्थिर्वासा । नाना । ह्वेते इति ।  
सः । जनासः । इन्द्रः ॥ ८ ॥

संयती परस्परं संगच्छमाने क्रन्दसी शब्दं कुर्वणे । आवापृ-  
थिव्यावित्यर्थः । स्वाश्रितानां प्राणिनां वृष्ट्यर्थे पृथिवी औश्च हवि-  
रर्थम् इत्युभयोः क्रन्दनम् । अथ वा संयती परस्परं संगते क्रन्दसी  
प्रतिभटान् प्रतियुद्धाय आह्वयन्त्यौ उभे शत्रु सेने विहयेते इन्द्रं  
विविधम् आह्वयतः । स्वस्वसहायायेति शेषः । ❀ क्रदि आहाने  
रोदने च । असुन् । “उगितश्च” इति ङीप् ❀ । उक्तमेवार्थं प्रका-  
रान्तरेण स्पष्टम् आह । परे उत्कृष्टा अवरे निकृष्टाश्च । परस्परं  
जयपराजयापेक्षया परत्वम् अवरत्वं च द्रष्टव्यम् । एवम् उभया  
अमित्राः प्रतिद्वन्द्विसेनयोर्वर्तमानाः शत्रवः स्वस्वजयार्थं साहाय-  
काय विह्वयन्ते । इत्थं सेनाद्वयान्तःस्थितानाम् इन्द्राहानम् अधि-  
धाय अथ सेनास्वामिनोः परस्परप्रतिद्वन्द्विनोरिन्द्राहानम् अभि-  
धत्ते । समानं चित् अश्वसारथ्यादिभिः समानम् परस्परमदृशं  
रथम् आतस्थिर्वासा अधिष्ठितवन्तौ । ❀ तिष्ठतेर्लिट् क्वसुः ।  
“शर्पूर्वाः स्वयः” इति स्वयः शेषः । अभ्यासस्य हस्वत्वे “बभ्वे-  
काजाद्घसाम्” इति इडागमः । प्रत्ययस्वरः ❀ । तौ यं नाना  
पृथक्पृथक् ह्वेते आह्वयतः । गतम् अन्यत् ॥

परस्पर मिले हुए शब्द करते हुए य लोक और पृथिवीलोक  
इन्द्रका विविध प्रकारसे आह्वान करते हैं । अपने आश्रित प्राणियों  
के कारण वृष्टिके लिये पृथिवी और हविके लिये यलोक जिन  
इन्द्रका विविध प्रकारसे आह्वान करते हैं । अथवा-परस्पर दूही



हुई, सामनेके योधाओंको लड़नेके लिये बुलाती हुई दोनों सेनाएँ अनेक प्रकारसे इन्द्रदेवका आह्वान करती हैं [ इसी बात को दूसरी रीतिसे कहते हैं, कि—] उत्कृष्ट और निकृष्ट प्रतिद्वंद्वी सेनाओंमें वर्तमान दोनों शत्रु अपनी २ विजयके लिये इन्द्रका आह्वान करते हैं [ इस प्रकार दोनों ओरके सैनिकोंके इन्द्रा-ह्वानको कह कर अब परस्परके प्रतिद्वंद्वी सेनास्वामियोंके आह्वान का वर्णन करते हैं, कि—] अश्व सारथी आदिसे समान रथमें विराजमान सेनापति जिनको अलग २ बुलाते हैं हे जनों ! वह इन्द्र हैं ॥ ८ ॥

नवमी ॥

यस्मान्न ऋते विजयन्ते जनासो यं युध्यमाना अवसे  
हवन्ते ।

यो विश्वस्य प्रतिमानं बभूव यो अच्युतच्युत् स  
जनास इन्द्रः ॥ ९ ॥

यस्मात् । न । ऋते । विजयन्ते । जनासः । यम् । युध्यमानाः ।

अवसे । हवन्ते ।

यः । विश्वस्य । प्रतिमानम् । बभूव । यः । अच्युतच्युत् । सः ।

जनासः । इन्द्रः ॥ ९ ॥

यस्माद् इन्द्रात् बलप्रदातुर्ऋते इन्द्रसहायम् अनपेक्ष्य जनासः  
जनाः प्रबला दुर्बलाश्च सर्वे जयार्थिनो न विजयन्ते शत्रून् न परा-  
भावयन्ति । अतश्च यम् इन्द्रं युध्यमानाः युद्धं कुर्वाणा अवसे  
स्वस्वरक्षणाय हवन्ते आह्वयन्ति । किं च यश्च इन्द्रो विश्वस्य

सर्वस्यापि वृत्रादिशत्रुजातस्य प्रतिमानम् । प्रतिमीयत इति प्रति-  
मानं प्रतिनिधिर्बभूव । अथ वा “रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव तदस्य  
रूपं प्रतिचक्षणाय । इन्द्रो मायाभिः पुरुरूप ईयते” इति [ ऋ०  
६. ४७. १८ ] मन्त्रवर्णात् सर्वस्यापि प्राणिजातस्य तत्तत्पुण्य-  
पापप्रत्यवेक्षणाय प्रतिबिम्बं बभूव । यश्च अच्युतच्युत । अच्युतस्य  
केनापि अच्युतव्यतिरक्तस्य वृत्रादेः च्युतिरहितस्य स्थावरस्य पर्व-  
तादेर्वा च्युतव्यतिता स जनास इन्द्र इति ॥

जिन बलप्रदाता इन्द्रकी सहायताके बिना दुर्बल वा प्रबल  
सब विजयाभिलाषी प्राणी शत्रुओंका पराभव नहीं कर सकते  
अत एव युद्ध करते समय वे अपनी २ रक्षाके लिये इन्द्रका  
आह्वान करते हैं । जो इन्द्रदेव सब प्राणियोंके पुण्य पापका  
दर्शन करनेके लिये प्रतिबिम्ब + होजाते हैं और जो किसीसे भी  
न हटाये जासकने वाले पर्वत आदिको च्युत करने वाले हैं, हे  
जनों ! वह इन्द्र हैं ॥ ६ ॥

दशमी ॥

यः शश्वतो महेनो दधानानमन्यमानांश्चर्वाजघान  
यः शर्धते नानुददाति श्रुभ्यां यो दस्योर्हन्ता स जनास  
इन्द्रः ॥ १० ॥

यः । शश्वतः । महि । एनः । दधानान् । अमन्यमानान् । शर्वा  
जघान ।

+ ऋग्वेदसंहिता ६ । ४७ । १८ में कहा है, कि- “रूपं रूपं  
प्रतिरूपो बभूव तदस्य रूपं प्रतिचक्षणाय । इन्द्रो मायाभिः पुरु-  
रूप ईयते ।- इन्द्र प्रत्येक आकृतिके अनुसार प्रत्येक रूपको धारण  
करते हैं उनका वह रूप देखनेके लिये होता है, इन्द्र अपनी  
मायाओंसे बहुतसे रूपोंको प्राप्त होजाते हैं” ॥

यः । शर्धते । न । अनुद्ददाति । शृभ्याम् । यः । दस्योः ।

हन्ता । सः । जनासः । इन्द्रः ॥ १० ॥

य इन्द्रो महि महत् अत्यधिकम् एनः पापं ब्रह्महत्यादिरूपं दधानान् धारयतः शश्वतः । बहुनामैतत् । बहून् जनान् । जघानेति संबन्धः । के ते महापातकिन इति तान् आह । अमन्यमानान् इन्द्रम् उक्तमहिमोपेतं परदेवतेति मतिम् अकुर्वाणान् । स्तुत्या हविषा च इन्द्रम् अपूजयत इत्यर्थः । तादृशान् शर्वा हिंसक इन्द्रः । अथ वा शरुर्वज्रः । तेन वज्रेण जघान हिनस्ति । अथ वा अमन्यमानान् स्वान्मानं ब्रह्मतया अबुध्यमानान् । आत्मघातकान् इत्यर्थः । “असन्नेव स भवति असद् ब्रह्मेति वेद चेत् । अस्ति ब्रह्मेति चेद् वेद सन्तम् एनं ततो विदुः” इति [तै० आ० ८.६] श्रुतेः । अनात्मविदः पापिष्ठत्वं स्मर्यते ।

किं तेन न कृतं पापं चोरेणात्मापहरिणा ।

इति । तादृशानाम् इन्द्रकृतशिक्षा च श्रयते । “अरुर्मुखान् यतीन् सालावृकेभ्यः प्रायच्छम्” इति [कौ० उ० ३. १] । “इन्द्रो यतीन्सालावृकेभ्यः प्रायच्छत्” इति च [तै० सं० ६. २. ७. ४] । यश्च शर्धते इन्द्रनैरपेक्ष्येण शत्रुषु बलम् उत्साहं वा कुर्वते पुरुषाय शृभ्याम् बलसाधनं कर्म नासुददाति आनुकूल्येन न प्रयच्छति । ॐ हुदाष् दाने । जौष्ट्यादिकः । “अभ्यस्तानाम् आदिः” इत्याद्य दातः । “विडि चोदात्तवति” इति गतेर्निघातः ॐ । यश्च दस्योः वृत्रादेर्हन्ता घातकः स जनास इन्द्र इति ॥

जो इन्द्रदेव ब्रह्महत्या आदि महापापोंको धारण करने वाले, इन्द्रको परदेवता न मानने वालोंको हिंसक होकर मार डालते हैं [अथवा-अपनेको ब्रह्मस्वरूप समझने वाले आत्मघातियों को जो मार डालते हैं, तैत्तिरीय आरण्यक ८ । ६ में कहा भी



है, कि—“असन्नेव स भवति असद् ब्रह्मेति वेद चेत् । अस्ति ब्रह्मेति चेद् वेद सन्तं एनं ततो विदुः ।—जो ब्रह्मको असत् समझता है वह असत् ही होता है जो ब्रह्मको सत् समझता है उसको सत् कहते हैं” अनात्मवेत्ताका पापिष्ठत्व भी कहा है, कि—“किं तेन न कृतं पापं चौरैणात्मापहारिणा ।—जो आत्मस्वरूपको नहीं समझता उस आत्मापहारी चोरने क्या २ पाप नहीं किया” और ऐसे पुरुषोंको इन्द्रका दण्ड देना भी सुना जाता है, कि—“अक-  
मुखां यतीन् सालावृकेभ्यः प्रायच्छत्” ( कौषीतकि उपनिषत् ३ । १ ) “इन्द्रो यतीन् सालावृकेभ्यः प्रायच्छत्” ( तैत्तिरीयसंहिता ६ । २ । ७ । ५ ) ॥ ] और जो इन्द्रकी अपेक्षा न रख कर बल दिखानेका उत्साह करने वालोंको बलसाधन कर्ममें अनुकूलता प्रदान नहीं करते हैं । जो वृत्र आदि दस्युओंके घातक हैं हे जनों ! वह इन्द्र हैं ॥ १० ॥

एकादशी ॥

यः शम्बरं पर्वतेषु क्षियन्तं चत्वारिंश्यां शरद्वान्विन्दत् ।  
ओजायमानं यो अहिं जघान दानुं शयानं स जनास  
इन्द्रः ॥ ११ ॥

यः । शम्बरम् । पर्वतेषु । क्षियन्तम् । चत्वारिंश्याम् । शरदि ।  
अनुऽअविन्दत् ।

ओजायमानम् । यः । अहिम् । जघान । दानुम् । शयानम् । सः ।

जनासः । इन्द्रः ॥ ११ ॥

य इन्द्रः पर्वतेषु गिरिषु इन्द्रभीष्मा क्षियन्तम् निवसन्तम् ।

पर्वतेष्विति बहुवचनेन इन्द्राद् भीतस्य शम्बरस्य एकत्रानवस्थानं सूचितं भवति । एवं गिरिगह्वरेष्वाच्छन्नं शम्बरम् एतन्नामकम् असुरं चत्वारिंश्याम् । चत्वारिंशत्संख्यापूरणी चत्वारिंशी । तस्यां शरदि तस्मिन् संवत्सरे अन्वविन्दत् अन्विष्य लब्धवान् । लब्ध्वा इयनाशयद् इत्यर्थः । किं च य इन्द्रः ओजायमानम् ओजो बलम् । तद्गद्ग आचरन्तम् । अतिशयितबलम् इत्यर्थः । ❀ “कर्तुः क्यङ् सलोपश्च” । “ओजसोऽप्सरसो नित्यम्०” इति सकारलोपः ❀ । तादृशम् अहिम् । आगत्य हन्तीत्यहिर्द्वित्रः । पुनः कीदृशम् । दानुम् दानवं शयानम् शयनं कुर्वाणं जघान घातयामास । उक्तम् अन्यत् ॥

जिन इन्द्रदेवने पर्वतोंमें डर कर घूमते हुए शम्बरको चालीस वर्ष तक ढूँढ कर मार डाला था और जिन इन्द्रदेवने बल दिखाने वाले शयन करते हुए दानव दानासुरको मार डाला था, हे जनों ! वह इन्द्र हैं ॥ ११ ॥

द्वादशी ॥

यः शम्बरं पर्यतरत् कसीभिर्योचारुकास्नापिबत् सुतस्य अन्तर्गिरौ यजमानं बहुं जनं यस्मिन्नामूर्ध्वत् स जनास इन्द्रः ॥ १२ ॥

य इन्द्रः कशीभिः दीप्तैर्वजाद्यायुधैः स्वतेजोभिर्वा शम्बरम् असुरं पर्यतरत् पर्यतारयत् । गिरिनदीसमुद्रादिकान् सर्वानपि अत्यक्राम-यद् इत्यर्थः । स्वयं वा तम् असुरं पर्यतरत् । पर्यभवद् इत्यर्थः । यश्च अचारुकास्ता अरमणीयेन आस्येन सुतम् अभिषुतं सोमम् अपालामुखादिस्थितम् अपिबत् पानम् अकार्षीत् । “इमं जम्भसुतं पिब धानावन्तं करम्भिणम्” इति हि मन्त्रवर्णः [ ऋ० ८. ६१. २ ] । यस्मिन्नन्द्रे हन्तव्ये सति अन्तर्गिरौ पर्वतस्य मध्ये शुद्धे वैश्वजनप्रदेशे यजमानम् सोमयागं कुर्वाणं गृत्समदं बहुं जनम्

अध्वर्युप्रभृतिं सदःस्थितं जनसंघातं चामूर्च्छत् आवब्रे ! चुमुरिधु-  
निप्रभृतिकोऽसुरसंघात इति शेषः । स जनास इन्द्र इति पूर्ववत् ॥

जो प्रदीप्त वज्र आयुध आदिसे शम्बरासुरका तिरस्कार कर  
चुके हैं और जो पाले रहित पात्रमें निचोड़े हुए सोमका पान  
कर चुके हैं, जिन इन्द्रदेवके मारनेके लिये, सोमयाग करते हुए  
अध्वर्यु आदि जनसमूहको, चुमुरि धुनि आदि असुरोंने घेर  
लिया था, हे जनों ! वह इन्द्र हैं ॥ १२ ॥

प्रयोदशी ॥

यः सप्तशिमवृषभस्तुविष्मान्वासृजत्सर्तवे सप्त सिन्धून्  
यो रौहिणमस्फुरद् वज्रबाहुर्मारोहन्तं स जनास  
इन्द्रः ॥ १३ ॥

यः । सप्तश्रिमः । वृषभः । तुविष्मान् । असृजत् । सर्तवे ।  
सप्त । सिन्धून् ।

यः । रौहिणम् । अस्फुरत् । वज्रबाहुः । घाम् । आरोहन्तम् ।  
सः । जनासः । इन्द्रः ॥ १३ ॥

य इन्द्रः सप्तशिमः सप्तसंख्याकाः पर्जन्या एव रश्मयो यस्य  
स तादृशः । अथ वा सप्तशिमरादित्यः । तदात्मक इत्यर्थः । वृषभः  
वर्षिता कामानाम् अपां वा । तुविष्मान् बलवान् सर्तवे सरणाय  
प्रवहणाय सप्तसर्पणशीलान् सिन्धून् स्यन्दमानान्युदकानि अवा-  
सृजत् । अवाग् यथा भवति तथा निर्मितवान् । यद्वा सप्त सिन्धून्  
सप्तसंख्याका गङ्गाद्या नदीरवासृजत् । यश्च वज्रबाहुः वज्रहस्तः  
सन् घाम् दिवम् आरोहन्तं रौहिणम् एतन्नामकन असुरम् अस्फु-  
रत् जघान ❀ स्फुरस्फुल्लसंचलने । तौदादिकः ❀ । अन्यद् गतम्



जो इन्द्र सप्तऋषि सूर्यरूप हैं, कामनाओंकी और जलोंकी वर्षा करने वाले हैं और जिन बली इन्द्रदेवने बहनेके लिये गंगा आदि सात नदियोंको प्रकट किया है, जिन इन्द्रने हाथमें वज्र धारण कर जल्लोकमें चढ़ते हुए रौहिण नामक असुरको मार डाला था, वह इन्द्र हैं ॥ १३ ॥

चतुर्दशी ॥

द्यावां चिदस्मै पृथिवी नमते शुष्माच्चिदस्य पर्वता  
भयन्ते ।

यः सोमपा निचितो वज्रबाहुर्यो वज्रहस्तः स जनास  
इन्द्रः ॥ १४ ॥

द्यावा । चित् । अस्मै । पृथिवी इति । नमते इति । शुष्मात् ।

चित् । अस्य । पर्वताः । भयन्ते ।

यः । सोमपाः । निचितः । वज्रबाहुः । यः । वज्रहस्तः ।

सः । जनासः । इन्द्रः ॥ १४ ॥

अस्मै इन्द्राय द्यावा द्यावौ पृथिवी पृथिव्यौ । परस्परपेक्षया द्विवचनम् । चित् अप्यर्थे । नमते इन्द्रस्य महिम्ना स्वयमेव प्रही-  
भवतः । अस्य इन्द्रस्य शुष्मात् कलात् पर्वताश्चित् पर्वता अपि  
भयन्ते । पक्षच्छेदाद् विभ्यति । ❀ जिभी भये । “बहुलं छन्दसि”  
इति शप् ❀ । यश्च इन्द्रः सोमपाः सोमस्य पाता सन् निचितः  
पज्ञातः । यद्वा नितरां चितो-निचितः । दृढाङ्ग इत्यर्थः । वज्रबाहुः  
वज्रवत्-सारभूताभ्यां बाहुभ्याम् उपेतः यश्च वज्रहस्तः वज्रं हस्ते  
धारयन् भवति स जनास इन्द्र इति ॥

इन इन्द्रके लिये आवापृथिवी नमती है अर्थात् इन्द्रकी महिमा से स्वयं ही प्रहित होजानी है, जिन इन्द्रदेवके बलसे पर्वत भी डरते हैं, सोमपान कर जो इन्द्र दृढ़ अंगों वाले हो गए हैं, जिन की भुजाएँ वज्रकी समान दृढ़ हैं, और जो हाथमें वज्रको धारण किये रहते हैं वह इन्द्र हैं ॥ १४ ॥

पञ्चदशी ॥

यः सुन्वन्तमवति यः पचन्तं यः शंसन्तं यः शश-  
मानमूती

यस्य ब्रह्म वर्धनं यस्य सोमो यस्येदं राधः स जनास-  
इन्द्रः ॥ १५ ॥

यः । सुन्वन्तम् । अवति । यः । पचन्तम् । यः । शंसन्तम् । यः ।  
शशमानम् । ऊती ।

यस्य । ब्रह्म । वर्धनम् । यस्य । सोमः । यस्य । इदम् । राधः ।  
सः । जनासः । इन्द्रः ॥ १५ ॥

यः सुन्वन्तम् सोमाभिषवं कुर्वन्तं यजमानम् अवति रक्षति ।  
यश्च पुरोडाशादीनि हवींषि पचन्तं यश्च ऊती ऊत्या रक्षणेन  
निमित्तेन शंसन्तं स्तुवन्तं यश्च शशमानम् सामभिः स्तोत्रं कुर्वाणं  
रक्षति । ब्रह्म परिवृढं स्तोत्रं यस्य वर्धनम् वृद्धिकरं भवति । तथा  
यस्य सोमो वृद्धिहेतुर्भवति । यस्य च इदम् अस्मदीयं राधः पुरो-  
डाशादिलक्षणम् अन्नं वृद्धिकरं भवति । स इन्द्र इत्यादि गतम् ॥

जो सोमाभिषव करने वाले यजमानकी रक्षा करते हैं, जो  
पुरोडाश आदि हवियोंका पाक करने वालेकी रक्षा करते हैं जो

रक्षाके कारण स्तुति करते हुए और सामसे स्तोत्रपाठ करते हुए  
की रक्षा करते हैं, दृढ़ स्तोत्र जिनकी वृद्धि करने वाला है और  
सोम जिसकी वृद्धिका हेतु है और हमारा पुरोडाश आदिरूप  
अन्न जिसकी वृद्धि करने वाला है, हे जनों ! वह इन्द्र हैं १५  
षोडशी ॥

जातो व्युख्यत् पित्रोरुपस्थे भुवो न वेद जनितु परस्य  
स्तविष्यमाणो नो यो अस्मद् व्रता देवानां स जनास  
इन्द्रः ॥ १६ ॥

य इन्द्रो जातः प्रादुर्भूतमात्र एव सन् पित्रोः द्यावापृथिव्योः  
उपस्थे उत्सङ्गे तयोर्मध्ये व्युख्यत् विख्यातवान् प्रकाशितोभूत् ।  
यश्च इन्द्रः भुवः भुवं मातृभूतां न वेद न जानाति । तथा परस्य  
उत्कृष्टस्य जनितुः उत्पादयितुं परम् उत्पादकं पितृस्थानीयं धु-  
लोकमपि न वेद न जानाति । तयोर्वस्तुतः स्वजननं प्रति अका-  
रणत्वाद् इत्यभिप्रायः । यद्वा भुवो जनितुः भूम्या उत्पादकस्य  
परस्य अन्यस्य स्वरूपं भुवो जनितारं परम् अन्यम् इति वा व्या-  
ख्येयम् । न वेद जानाति । स्वातिरेकेणैति शेषः । स्वस्यैव सर्व-  
कारणत्वाद् इत्यभिप्रायः । किं च अस्मत् अस्मत्तः अस्माभिः  
कविष्यमाणः स्तविष्यमाणः स्तूयमानश्च सन् । नशब्दः चार्थः ।  
देवानां व्रता व्रतानि कर्माणि देवार्थान् आ । ❀ उपसर्गश्रुतेर्यो-  
ग्यक्रियाध्याहारः ❀ । आ पूरयति । स इन्द्र इति ॥

जो इन्द्रदेव प्रादुर्भूत होते ही द्यावापृथिवीके मध्यमें प्रकाशित  
होगए थे, जो इन्द्र मातृभूता पृथिवीको नहीं जानते हैं तथा उत्कृष्ट  
वस्तुके उत्पादक पितृस्थानीय धूलोकको भी नहीं जानते हैं  
[ क्योंकि-वे वास्तवमें अपने जननके प्रति अकारण हैं । अथवा  
वह भूमिके उत्पादक अन्यके स्वरूपको—भूमिका उत्पन्न करने



बाला कोई और है इस बातको नहीं जानते हैं, क्योंकि—वह अपने आप ही सबके कारण हैं । ] और हमसे स्तुति पाते हुए वह इन्द्र देवताओंको पूरित करते हैं । हे जनों ! वह इन्द्र हैं १६ सप्तदशी ॥

यः सोमकामो हर्यश्वः सूरिर्यस्माद् रेजन्ते भुवनानि विश्वा ।

यो जघान शम्बरं यश्च शुष्णं य एकवीरः स जनास इन्द्रः ॥ १७ ॥

य इन्द्रः सोमकामः सोमं कामयमानः सन् हर्यश्वसूरिः हर्याख्यानाम् अश्वानां सुष्ठु ईरयिता प्रेरयिता भवति । यागप्रदेशस्यागमनायेति शेषः । अथ वा यः सोमकामः यश्च हर्यश्वः सूरिर्विद्वांश्च । किं च यस्माद् इन्द्राद् विश्वा विश्वानि भुवना भुवनानि भूतजातानि रेजन्ते विभ्यति । य इन्द्रः शम्बरम् असुरं जघान यश्च शुष्णम् असुरं जघान घातयामास । यश्च एवं विधेषु असाधारणेषु व्यापारेषु एकवीरः असाधारणः शूरो भवति स जनास इन्द्र इति उक्तार्थः ॥

सोमको चाहते हुए जो, हरि नामक अश्वोंको भली प्रकार चलाते हैं । और जिनसे सब भूत डरते हैं, जिन्होंने शम्बरासुर का संहार किया है, जिन्होंने शुष्ण असुरको मार डाला है, जो ऐसे असाधारण व्यापारोंमें असाधारण शूर होते हैं, हे जनों ! वह इन्द्र हैं ॥ १७ ॥

अष्टादशी ॥

य सुन्वते पचते दुध आचिद् वाजं दर्दपि स किलांसि सत्यः ।

वयं तं इन्द्र विश्वहं प्रियासः सुवीरांसो विदथमां वदेम  
यः । सुन्वते । पचते । दुधः । आ । चित् । वाजम् । दर्दषि ।

सः । किल । असि । सत्यः ।

वयम् । ते । इन्द्र । विश्वह । प्रियासः । सुवीरांसः । विदथम् ।

आ । वदेम ॥ १८ ॥

अत्र ऋषिः इन्द्रस्य अविद्यमानतां शङ्कमानानाम् अज्ञानिन्नां  
विश्वासं जनयन् इन्द्रं प्रत्यक्षीकृत्य ब्रूते । हे इन्द्र यस्त्वं दुधश्चित्  
वस्तुतो दुर्धर्षोऽपि सुन्वते सोमाभिषवं कुर्वते यजमानाय तथा पचते  
पशुपुरोडाशादिहविःपाकं कुर्वते च यजमानाय वाजम् तदभिमतम्  
अन्नम् आ दर्दषि सर्वतो भृशं प्रयच्छसि । ॐ इ गतौ । अस्मात्  
क्रियासमभिहारे यद् । अभ्यासरस्य लोपः । अभ्यासस्य “रुग्रिकौ  
च लुकि” इति रुगागमः । यद्योगाद् अनिघातः । “अभ्यस्ता-  
नाम् आदिः” इत्याद्युदात्तः ॐ । स तादृशस्त्वं सत्यः किलासि ।  
मन्त्रद्रष्टुर्धर्षेः प्रत्यक्षत्वेऽपि इदानीं तनानां कथं प्रत्यक्षतेति शङ्कायां  
यष्टृणाम् अभिमतान्नलक्षणफलस्य सत्यदृष्टत्वाद् इन्द्रोऽपि सत्यं  
एवेत्यभिप्रायेण स किलासि सत्य इति ब्रूते । वयं विश्वह विश्वे-  
ष्वपि अहःसु सर्वदा । ॐ “सुपां सुलुक्” इत्यादिना सप्तमी-  
बहुवचनस्य लुक् । शकन्ध्वादित्वात् पररूपत्वम् । कृदुचरपद-  
प्रकृतिस्वरेण मध्योदात्तः ॐ । हे इन्द्र ते तव प्रियासः प्रियाः  
सन्तः सुवीरांसः शोभनपुत्रादियुक्ताश्च सन्तः विदथम् वेदसाधनं  
स्तोत्रम् आ वदेम ब्रूयाम ॥

इति चतुर्थेऽनुवाके प्रथमं सूक्तम् ॥

[ इस ऋचांमें ऋषि इन्द्रकी अविद्यमानताकी शङ्का करतेहुए  
अज्ञानियोंको, विश्वास कराते हुए इन्द्रको प्रत्यक्ष करके कहते

हैं, कि-] हे इन्द्र ! आप वास्तवमें दुधर्ष होते हुए भी सोमाभि-  
षव करने वाले यजमानके लिये और पुरोडाश आदिका पाक  
करते हुए यजमानके लिये अभिमत अन्नको सब ओरसे प्रदान  
करते हैं, ऐसे आप अवश्य सत्य हैं । [ मन्त्रद्रष्टा महर्षिका प्रत्यक्ष-  
त्व होने पर भी आधुनिक प्राणियोंके लिये उनका प्रत्यक्षत्व  
कैसे हैं, ऐसी शंका होने पर कहते हैं, कि-यष्टाओंको अभिमत  
अन्नफलके सत्य दीखनेसे इन्द्र भी सत्य हैं ] हम सब दिनोंमें  
आपके प्रिय रहते हुए और शोभन पुत्र आदिसे सम्पन्न रहते  
हुए आपके स्तोत्रका उच्चारण करते रहें ॥ १८ ॥

चतुर्थ अनुवाकमें प्रथम सूक्त समाप्त ( ६५० )

चतुर्विंशोऽभिजिति विषुवति विश्वजिति महाव्रते च ब्राह्मणा-  
च्छंसिशस्त्रे “अस्मा इदु म तवसे तुराय” इति अहीनसूक्तसंग्रहकं  
विनियुक्तम् । “चतुर्विंश ‘इन्द्रमिहाथिनो बृहद्’ [ २०. ३८. ४ ]  
इत्याज्यस्तोत्रियः” इति प्रक्रम्य सूत्रितम् । “अभि म वः सुराधसम्  
[ २०. ५१. १ ] म सु श्रुतं सुराधसम् [ २०. ५१. ३ ] इति षष्ठ-  
स्तोत्रियानुरूपौ बार्हतौ प्रगाथौ । मा चिदन्यद् वि शंसत [ २०.  
८५. १ ] यच्चिद्धि स्वा जना इमे [ २०. ८५. ३ ] इति वा ।  
अस्मा इदु म तवसे तुराय [ २०. ३५ ] इत्यहीनसूक्तम् आव-  
पते” इति [ वै० ६. १ ] ॥

तथा अस्योर्यामिण माध्यंदिनसवने तच्छस्त्र एव विनियुक्तम् ।  
सूत्रितं हि । “अस्योर्यामिण गर्भकारं शंसति” इति प्रक्रम्य सुकीर्ति  
वृषाकर्षि सामसूक्तम् अहीनसूक्तम् आवपते” इति [ वै० ४. ३ ] ॥

चतुर्विंश अभिजित्में, विषुवत्में, विश्वजित्में, महाव्रतमें और  
ब्राह्मणाच्छंसिशस्त्रमें “अस्मा इदु म तवसे तुराय” यह अहीन-  
नामक सूक्त विनियुक्त होता है । “चतुर्विंश ‘इन्द्रमिहाथिनो बृहद्’  
( २० । ३८ । ४ ) इत्याज्यस्तोत्रियः” का प्रक्रम करके सूक्तमें



कहा है, कि—“अभि प्र वः सुराधसम् ( २० । ५१ । १ ) प्र सु  
भुतं सुराधसम् ( २० । ५१ । ३ ) इति पृष्ठस्तोत्रियानुरूपौ षाहंतौ  
प्रगाथौ । मा चिदन्यद् वि शंसत ( २० । ८५ । १ ) यच्चिद्धि  
त्वा जना इमे ( २० । ८५ । ३ ) इति वा । अस्मा इदु प्र तवसे  
तुराय ( २० । ३५ इति अहीनसूक्तं आवपते” ( वैतानसूत्र ६।१ )

तथा असौर्यामके मध्यन्दिनसवनमें और उस शस्त्रमें भी विनि-  
युक्त होता है । इस विषयमें वैतानसूत्र ४ । ३ का प्रणाम है,  
कि—“असौर्यामिण गर्भकारं शंसति” इति प्रक्रम्य सुकीर्ति वृषा-  
कपि सामसूक्तं अहीनसूक्तं आवपते” ॥

तत्र प्रथमा ॥

अस्मा इदु प्र तवसे तुराय प्रयो न हर्मि स्तोमं माहिनाय  
ऋचीषमायाध्रिगव ओहमिन्द्राय ब्रह्माणि राततमा ?  
अस्मै । इत् । ऊं इति । प्र । तवसे । तुराय । प्रयः । न । हर्मि ।

स्तोमम् । माहिनाय ।

ऋचीषमाय । अध्रिगवे । ओहम् । इन्द्राय । ब्रह्माणि । राततमा

अस्मा इदु । इदु उ इति निपातद्वयं पादपूरणम् । ❀ अथापि  
पदपूरणाः कमीमिद्वितीति यास्कोक्ते [ नि० १. ६ ] ❀ । अव-  
धारणार्थं वा निपातद्वयम् । अस्मा एव इन्द्राय ओहम् वहनीयं  
प्रापणीयं स्तोमम् स्तोत्रं प्र हर्मि प्रकर्षेण हरामि । प्रकरोमीत्यर्थः ।  
कीदृशायेन्द्राय । तवसे प्रवृद्धाय बलवते वा तुराय सोमपानार्थं  
त्वरमाणाय शत्रु हिंसकाय वा माहिनाय । महन्नामैतत् । गुणैर्महते  
ऋचीषमाय ऋवा स्तुतिसाधनया समाय । ऋग्-यादग्रूपं प्रति-  
पादयति तादृग्रूप एव तत्र संमितो भवतीत्यृचीषम इत्यर्थः । अथवा

ऋक् स्तुतिः तथा समाय । वस्तुनः अपरिमेयगुणत्वेऽपि ऋचा परि-  
मीयते परिच्छिद्यते इत्यृचीषमत्वाभिधानम् । अध्रिगवे अधृतगमन-  
कर्मणे अप्रतिहतगमनाय इन्द्राय । स्तोत्रप्रेरणे दृष्टान्तम् आह ।  
प्रयो नेति । प्रय इत्यन्ननाम । यथा क्षुधिनस्य अन्नं प्रेरयति तद्वत्  
स्तुतिकामाय स्तोमं प्रहर्षीत्यर्थः । न केवलं स्तोत्रम् अपि तु रात-  
तमा राततमानि पूर्वैर्यजमानैरत्यर्थं दत्तानि ब्रह्माणि मृद्धानि  
सोमादिहवींष्यपि प्र हर्षीति । ॐ अध्रिगव इत्यत्र अधृतः अन्ये-  
नानिवारितः गौर्गमनम् अस्येति तस्यावयवार्थः । “गोस्त्रियोरुप-  
सर्जनस्य” इति ह्रस्वत्वम् । पृषोदरादित्वाद् अधृतशब्दस्य अध्रि-  
भावः । ओहम् इति । वहतेः कर्मणि घञि छान्दसं संप्रसारणम् ॥

मैं इन इन्द्रदेवके लिये ही प्रापणीय स्तोत्रको उत्कृष्टरूपसे  
उच्चारण करता हूँ । यह इन्द्रदेव बलवान् हैं, सोमपानके लिये  
त्वरा करते रहते हैं, गुणोंमें महान् हैं, ऋचा इनके जैसे रूपका  
प्रतिपादन करती है यह तैसे ही रूप पर सम्मन होजाते हैं तात्पर्य  
यह है, कि—वास्तवमें अपरिमेय गुणों वाले होने पर भी ऋचा  
से इनका परिच्छेद होता है अत एव यह ऋचीषम हैं । और  
इनका गमन अप्रतिहत है । ऐसे इन्द्रदेवके लिये, जिस प्रकार  
भूखेके पास अन्नको प्रेरित करते हैं, तिस प्रकार स्तुतिको प्रेरित  
करता हूँ । केवल स्तोत्रको ही प्रेरित नहीं करता हूँ, किन्तु पूर्व  
यजमानोंके द्वारा विशाल परिमाणमें दी हुई हवि आदिको भी  
प्रेरित करता हूँ ॥ १ ॥

द्वितीया ॥

अस्मा इदु प्रयं इव प्रयंसि भराभ्यङ्गूषं बाधे सुवृत्तिः ।  
इन्द्राय हृदा मनसा मनीषा प्रत्नाय पत्ये धियो मर्जयन्त

अस्मै । इत् । ऊं इति । प्रयःऽइव । प्र । यंसि । भरामि । आङ्ग-  
षम् । बाधे । सुवृत्ति ।

इन्द्राय । हृदा । मनसा । मनीषा । प्रज्ञाय । पत्ये । धिये । मर्जयन्त

अस्मा इदु अस्मा एव इन्द्राय प्रय इव अन्नमित्र प्र यंसि प्रय-  
च्छामि । ॐ यम उपरमे । अस्माल्लटि पुरुषव्यत्ययः । “बहुलं  
जन्दसि” इति शपो लुक् ॐ । सामान्येनोक्तं विशिनष्टि भरामी-  
त्यादिना । बाधे शत्रूणां बाधनाय सुवृत्ति सुष्ठु आवर्जकम् आङ्ग-  
षम् स्तोत्ररूपम् आघोषम् । ॐ आङ्ग ष स्तोम आघोष इति यास्कः  
[ नि० ५. ११ ] ॐ भरामि संपादयामि । किं च प्रत्नाय पुरा-  
णाय पत्ये सर्वस्य स्वामिने इन्द्राय अन्येषु ऋत्विजो हृदा हृदयेन  
मनसा हृदयान्तवर्तिना अन्तःकरणेन मनीषा मनीषया बुद्ध्या  
धियः स्तुतीः मर्जयन्त मार्जयन्ति संस्कुर्वन्ति ॥

इन इन्द्रदेवके लिये अन्नकी समान में स्तोत्रको भेजता हूँ ।  
शत्रुओंको बाधा देनेके लिये आवर्जक स्तोत्ररूप घोषका सम्पा-  
दन करता हूँ, और प्राचीन सर्वस्वामी इन्द्रके लिये अन्य ऋत्विज  
भी हृदयसे मनसे और बुद्धिसे स्तुतियोंको संस्कृत करते हैं २  
तृतीया ॥

अस्मा इदु त्यमुपमं स्वर्षां भराभ्याङ्गूषमास्येन ।  
मंहिष्ठमञ्छोक्तिभिर्मतीनां सुवृत्तिभिः सूरिं वावृधधै  
अस्मै । इत् । ऊं इति । त्यम् । उपमम् । स्वःसाम् । भरामि ।  
आङ्गषम् । आस्येन ।

मंहिष्ठम् । अञ्छोक्तिभिः । मनीषाम् । सुवृत्तिभिः । सूरिम् ।

वावृधधै ॥ ३ ॥



अस्मा इदु अस्मा एव इन्द्राय त्वं तं प्रसिद्धम् उपमम् । उप-  
मीयते अनेनेत्युपमः । उपमास्थानभूतम् । ॐ “ध्वर्थे कविधा-  
नम्” इति करणे कप्रत्ययः । “आतो लोप इटि च” इत्याकार  
लोपः ॐ । स्वर्णम् सुष्ठु अरणीयस्य धनस्य दातारं स्वर्गस्य  
मापकं वा एवंलक्षणम् आङ्गुषम् स्तोत्रलक्षणम् आघोषम् आस्त्रेन  
मुखेन भराणि संपादयामि । किमर्थम् मंदिष्ठम् अतिशयेन धन-  
वन्तम् अतिशयेन प्रवृद्धं वा सूरिम् सुष्ठु धनस्य ईरयितारं वि-  
पश्चितं वा उक्तलक्षणम् इन्द्रं वृष्टध्वयै वर्धयितुं मतीनाम् स्तुतीनां  
संबन्धिभिः । कैः साधनैः । सुवृत्तिभिः सुष्ठु आवर्णकैः अष्टो-  
क्तिभिः स्वच्छवचनैः । आङ्गुषं भरामीति संबन्धः ॥

मैं इन ही इन्द्रदेवके लिये, उपमाके योग्य, सुन्दरतापूर्वक धन  
प्रदान करने वाले स्तोत्ररूपी घोषका मुखसे सम्पादन करता हूँ ।  
परमधनी धनको भली प्रकार प्रेरित करने वाले इन्द्रको स्तुतियों  
से बढ़ानेके लिये स्वच्छ वचनोंसे मैं इन्द्रके स्तोत्रका सम्पादन  
करना हूँ ॥ ३ ॥

चतुर्थी ॥

अस्मा इदु स्तोमं सं हिंनोमि रथं न तष्टेव तत्सिनाय  
गिरश्च गिर्वाहसे सुवृत्तीन्द्राय विश्वमिन्वं मेधिराय ४

अस्मै । इत् । ऊं इति । स्तोमम् । सम् । हिंनोमि । रथम् । न ।

तष्टाऽइव । तत्सिनाय ।

गिरः । च । गिर्वाहसे । सुवृत्ति । इन्द्राय । विश्वम् । इन्वम् ।

मेधिराय ॥ ४ ॥

अस्मा इदु अस्मा एव इन्द्राय तत्सिनाय तदेव सिनं सोमादि-

लक्षणम् अन्नं यस्य तादृशाय इन्द्राय अथ वा तत्सिनाय रथसा-  
ध्यान्नवते स्वामिने तष्टा शिल्पी रथं न यथा रथं संहिनोति तद्वत्  
स्तोमं सं हिनोमीति । किं च गिर्वाहसे गीर्भिः प्रापणीयाय मेधि-  
राय । मेधो यज्ञः । यज्ञार्हाय मेधाविने वा इन्द्राय सुवृक्ति सुष्ठु  
आवर्जकं विश्वमिन्वम् विश्वैः सर्वैः प्राप्तव्यं विश्वैः सर्वैर्यजमानैः  
प्रापणीयं वा सोमादिलक्षणं हविः गिरश्च स्तुत्यर्थानि वचांसि च ।  
सं हिनोमीत्यनुषङ्गः । यद्वा सुवृक्ति विश्वमिन्वम् इति पदद्वयं फल-  
परतया व्याख्येयम् । सुष्ठु आवर्जनीयं विश्वैर्बन्धवादिभिः प्राप्त-  
व्यम् उपभोक्तव्यम् अन्नम् । लब्धुम् इत्यध्याहारः ॥

मैं इन ही सोमादिरूप अन्न वाले इन्द्रदेवके लिये शिल्पीके  
रथको बनानेकी समान अन्नको बनाता हूँ-प्रेरित करता हूँ ।  
यह इन्द्रदेव स्तुतियोंसे प्रापणीय है, यज्ञार्ह है, सब यजमानोंसे  
प्राप्तव्य है, ऐसे इन्द्रदेवके लिये मैं हवि और स्तुतिके वचनोंको प्रेरित  
करता हूँ ॥ ४ ॥

पञ्चमी ॥

अस्मा इदु सक्षिमिव श्रवस्येन्द्रायार्क जुह्वा३समञ्जे ।  
वीरं दानौकसं वन्दध्यै पुरां गूर्तश्रवसं दर्माणम् ॥ ५ ॥

अस्मै । इत् । ऊँ इति । सक्षिम् इव । श्रवस्या । इन्द्राय । अर्कम् ।

जुह्वा । सम । अञ्जे ।

वीरम् । दानौकसम् । वन्दध्यै । पुराम् । गूर्तश्रवसम् । दर्मा-  
णम् ॥ ५ ॥

अस्मा इदु अस्मा एव इन्द्राय श्रवस्या श्रवस्यया । श्रव इत्य-  
ननाम । अन्नेच्छया । अन्नलाभायेत्यर्थः । ❀ श्रवाशब्दात्

“सुप आत्मनः कयच्” । तदन्ताद्धातोर्भावे “अ प्रत्ययात्” इत्य-  
कारप्रत्ययः । ततष्ठाप् । सुपां सुलुक्” इति तृतीयाया ङादेशः ।  
उदात्तनिवृत्तिस्वरेण तस्योदात्तत्वम् ॐ । अर्कम् अर्चनीयम् अन्नं  
हविर्लक्षणम् अन्नं जुहा आज्यपूर्णया समञ्जे समक्तं करोमि ।  
ॐ व्यत्ययेनात्मनेपदम् ॐ । यद्वा अर्कं स्तुतिसाधनं मन्त्रम् । ॐ  
अर्को मन्त्रो भवति यदनेनार्चन्तीति यास्कः [नि० ५. ४] ॐ जुहा  
जुह्वद् अञ्जनसाधनया जिहया समग्रे संयोजयामि । तत्र दृष्टान्तः ।  
सप्तिमिव अश्वमिव । ॐ जातावेकवचनम् ॐ । अश्वान् यथा  
श्रवस्यया रथे समक्तान् संगतान् करोति तद्वत् । किं च वीरम्  
शत्रूणां विविधम् ईरयितारं दानौकसम् दानानाम् ओकः सञ्च-  
स्थानीयं पुराम् असुरनगराणां दर्माणम् दारकं गूर्तश्रवसम् । श्रव  
इत्यन्ननाम । प्रशस्यान्नं प्रशस्यकीर्तिं वा उत्कलक्षणम् इन्द्रं वन्दध्यै  
वन्दितुम् । आहयामीति शेषः ॥

मैं इन इंद्रदेवके लिये अन्नकी इच्छासे पूजनीय हविरूप अन्नको  
घृतपूर्ण स्र वेसे संयुक्त करता हूँ । अथवा जुहूकी समान अञ्जन-  
साधन मन्त्रसे संयुक्त करता हूँ । जैसे घोड़ोंको रथमें संयुक्त करते  
हैं तिस प्रकार संयुक्त करता हूँ । और शत्रुओंको अनेक प्रकार  
से खदेड़ने वाले, दानोंके भवनरूप, असुरोंके नगरोंको विदीर्ण  
करने वाले और उत्कृष्ट कीर्ति वाले इन्द्रदेवकी बन्दना करनेके  
किये मैं उनका आह्वान करता हूँ ॥ ५ ॥

षष्ठी ॥

अस्मा इदु त्वष्टां तक्षद् वज्रं स्वपेस्तमं स्वयं१ रणाय  
वृत्रस्य चिद् विदद येन मम तुजन्नीशानस्तुजता  
किंयेधाः ॥ ६ ॥



अस्मै । इत् । ऊँ इति । त्वष्टा । तक्षत् । वज्रम् । स्वपःस्तमम् ।

स्वर्यम् । रणाय ।

वृत्रस्य । चित् । विदत् । येन । मर्म । तुजन् । ईशानः । तुजता ।

कियेधाः ॥ ६ ॥

अस्मा इदु अस्मा एवेन्द्राय त्वष्टा सकलजगन्निर्माता विश्व-  
कर्मा वज्रम् एतन्नामकम् आयुधं तक्षत् अतक्षत् निर्मितवान् ।  
कीदृशम् । स्वपस्तमम् अतिशयेन शोभनकर्माणं स्वर्यम् स्वायत्त-  
वीर्यं स्तुत्यं वा । किमर्थम् । रणाय युद्धाय । तुजता हिंसता येन  
वज्रेण कियेधाः । किं परिमाणं यस्य शत्रुबलस्य तादृग् बलं धार-  
यतीति कियेधाः । यद्वा क्रममाणान् शत्रून् धारयतीति निगृह्णा-  
तीति कियेधाः । परैरपरिच्छेद्यबल इत्यर्थः । ❀ कियेधाः कियद्धा  
इति वा क्रममाणधा इति वेति यास्कः [ नि० ६. २० ] । पृषो-  
दरादित्वाद् पूर्वपदस्य कियेभावः । दधातेर्विच् प्रत्ययः ❀ ।  
ईशानः सर्वस्य स्वामी भवन् इन्द्रः वृत्रस्य चित् सर्वावरकस्य प्रब-  
लस्य वृत्रस्याप्यसुरस्य मर्म । यस्मिन् स्थाने विद्धः सद्यो भ्रियते  
तद् मर्म । तत् तुजन् हिंसन् व्यथयन् विदत् अविदत् लब्धवान् ।  
लब्ध्वा मोक्षार्थं इति इत्यर्थः । ❀ विदत् लाभे । लुङि लृदिश्वात्  
क्लः अङ् आदेशः । “बहुलं कन्दस्यमाङ्गयोगेपि” इत्यङ्भावः ।  
यद्वत्तयोगाद् अनिघातः ❀ ॥

इन इन्द्रदेवके लिये ही सकल जगत्का निर्माण करने वाले  
विश्वकर्माने त्वष्टा नामक आयुधको बनाया है । वह आयुध  
शोभन कर्म करने वाला है, स्तुत्य है, वह रणके लिये बनाया  
गया है और वह क्रममाण शत्रुओंका निग्रह करने वाला है ।  
सबके स्वामी इन्द्रदेवने सर्वावरक प्रबल वृत्रासुरके मर्मको भी  
खोज कर उस पर प्रहार किया था ॥ ६ ॥

सप्तमी ॥

अस्येदु मातुः सवनेषु सद्योः महः पितुं पपिवां चार्वन्ना  
मुषायद् विष्णुः पचतं सहीयान् विध्यद् वराहं तिरो  
अद्रिमस्ता ॥ ७ ॥

अस्य । इत् । ऊं इति । मातुः । सवनेषु । सद्यः । महः । पितुम् ।  
पपिऽवान् । चारु । अन्ना ।

मुषायत् । विष्णुः । पचतम् । सहीयान् । विध्यत् । वराहम् ।  
तिरः । अद्रिम् । अस्ता ॥ ७ ॥

अस्येदु अस्यैवेन्द्रस्य मातुः सर्वस्य निर्मातुः महः महतः मा-  
हात्म्यवतः एवंभूतस्य इन्द्रस्य । असाधारणं कर्म उच्यते इति  
शेषः । यद्वा उक्तलक्षणस्य यज्ञस्येति व्याख्येयम् । किं तत् कर्म इति  
उच्यते । अयम् इन्द्रः सवनेषु सोमयागसंबन्धिषु प्रातरादिषु त्रिषु  
सवनेषु सद्यः तदानीमेव होमसमय एव पितुम् । अन्ननामैतत् ।  
प्रातर्व्यं सोमं पपिवान् पीतवान् । किं च चारु चारुणि । ❀  
“मुषां मुलुक्” इति विभक्तेर्लुक् ❀ । अन्ना अन्नानि सव-  
नीयपुरोडाशधानाकरम्भादीनि । भक्षितवान् इति शेषः । किं च  
विष्णुः सवनत्रयव्यापी इन्द्रः सहीयान् अतिशयेन शत्रूणाम् अभि-  
भविता । सोमपानादिजनितेन बलेनेति भावः । पचतम् परिपक्वम्  
अपहारयोग्यभूतं शत्रूणां धनं मुषायत् अपाहरत् । ❀ वयजन्ता-  
ल्लङ्घि “बहुलं छन्दस्यमाहुयोगेपि” इत्यङ्भावः ❀ । तथा अद्रिम्  
अस्ता अद्रेर्वज्रस्य क्षेपकः प्रयोक्ता स इन्द्रः वराहम् । ❀ वराहो  
मेघो भवति वराहवार इति निरुक्तम् [ ५. ४ ] ❀ । वराहारम्

उत्कृष्टस्योदकस्य आहतरं धारकं मेघं तिरः प्राप्तः सन् । ❀ तिरः  
सत इति प्राप्तस्येति यास्कः [ नि० ३, २० ] ❀ । विध्यत् अवि-  
ध्यत् दृष्टिलाभार्थं व्यदारयत् ॥

इन सबका निर्माण करने वाले, माहात्म्यसम्पन्न इन्द्रका  
असाधारण कर्म कहा जाता है, कि-यह इन्द्रदेव सोमयागसंबंधी  
मातरादि तीनों सवनोंमें होमके समय ही सोमरूपी अन्नको  
पीगए और सवनीय पुरोडाश धाना करंभ आदि चार अन्नो  
को खागए, और यह सवनत्रयव्यापी इन्द्र सोमपानजनित बल  
के कारण शत्रुओंको बड़े दबानेवाले हैं और यह अपहारके योग्य  
शत्रुओंके धनको छीन लेते हैं और वज्रका प्रयोग करने वाले  
इन इन्द्रने, श्रेष्ठ जलका आहरण करने वाले मेघको दृष्टिके लिये  
विदीर्ण कर डाला था ॥ ७ ॥

अष्टमी ॥

अस्मा इदु आश्रिद् देवपत्नीरिन्द्रायार्कमहिहत्य ऊवुः ।  
परि द्यावापृथिवी जभ्र उर्वी नास्य ते महिमानं परिष्टः  
अस्मै । इत् । ऊं इति । द्याः । चित् । देवस्पत्नीः । इन्द्राय ।

अर्कम् । अहिहत्ये । ऊवुरित्युवुः ।

परि । द्यावापृथिवी इति । जभ्रे । उर्वी इति । न । अस्य । ते इति ।

महिमानम् । परि । स्त इति स्तः ॥ ८ ॥

अस्मा इदु अस्मा एव इन्द्राय अहिहत्ये । अहिर्व्रतः । तस्य  
इनने निमित्तभूते सति देवपत्नीः देवानां पालयित्र्यो गायत्र्याद्याः  
गनाश्चित् गमनस्वभावा अपि अर्कम् अर्चनसाधनं स्तोत्रम् ऊवुः  
अतन्वत । यदा अस्मा इन्द्राय गनाश्चित् । ❀ मेना ग्ना इति स्त्री-



शाम् इति निरुक्तम् [ ३. २१ ] । आ गच्छन्त्येना इति तप्त्यं  
निर्वचनम् ॐ । स्वस्वपतिभिरभिगन्तव्याः स्त्रियः । ता विशि-  
नष्टि । देवपत्नीरिति । देवा इन्द्राद्याः पतयो यासां ता देवपत्न्यः ।  
ताश्च “उत आ व्यन्तु देवपत्नीः” इति [ ऋ० ५. ४६. ८ ]  
मन्त्रोक्ता इन्द्राण्यग्रादयश्चिव्याद्याः । ता देवपत्न्यः अर्कम् अर्चन-  
साधनं हविः ऊषुः स्वात्मनि अतन्वत । ॐ धेष् सन्तुसन्ताने ।  
लिटि “वेञ्चो वयिः” । लिटः कित्वाद् यजादित्वेन संप्रसारणे  
यकारस्य “लिटि वयो यः” इति अतिषेधाद् वकारस्य संप्रसार-  
णम् । परपूर्वत्वे द्विर्वचनादि । “वश्वास्यान्यतरस्यां किति” इति  
यकारस्य वकारादेशः ॐ । स चन्द्रः ऊर्ध्वं विस्तृते द्यावापृथिवी  
द्यावापृथिव्या परि जन्ने स्वतेजसा परिजहार । अतिचक्रामेत्यर्थः ।  
अस्य इन्द्रस्य महिमानम् महत्त्वं ते द्यावापृथिव्यौ न परि ह्यः न  
पराधक्यः । महत्त्वं संकोचं कर्तुं शक्ते नाभूताम् इत्यर्थः ॥

इमं इन्द्रदेवके लिये ही वृत्रहर्ननका अक्सर आने पर देवताओं  
का पालन करने वाली ( देवपत्नियें ) गायत्री आदिमें गमन  
स्वभाव वाली होने पर भी अर्चनसाधन स्तोत्रको विस्तृत किया  
था । अथवा—देवताओंकी पत्नी इन्द्राणी आदिमें अर्चनसाधन  
हविको अपनेमें विस्तृत किया था । और इन इन्द्रदेवने विस्तृत  
द्यावापृथिवीको अपने तेजसे अतिक्रमण किया था । इन इन्द्रके  
महत्त्वका द्यावापृथिवी पराधन नहीं कर सकी थीं अर्थात् इनके  
महत्त्वका संकोच नहीं कर सकी थीं ॥ ८ ॥

नवमी ॥

अस्येदेव प्ररिरिचे महित्वं दिवस्पृथिव्याः पर्यन्तरिक्षात्  
स्वरालिन्दो दम आ विश्वगूर्तः स्वरिमन्त्रो ववक्षे  
रणांय ॥ ६ ॥

अस्य । इत् । एव । प्र । रिरिचे । महिऽत्वम् । दिवः । पृथिव्याः ।

परि । अन्तरिक्षात् ।

स्वऽराट् । इन्द्रः । दमे । आ । विश्वऽगूर्तः । सुऽअरिः । अमत्रः ।

ववक्षे । रणाय ॥ ६ ॥

अस्यैदेव अस्यैवेन्द्रस्य महित्वम् महत्त्वं माहात्म्यं दिवः द्युलो-  
कात् परि उपरि प्र रिरिचे । ❀ अत्र प्रेत्युपसर्गो धात्वर्थं बाधते ।  
प्रस्मरणं प्रस्थानम् इति वत् ❀ । अधिकं भवतीत्यर्थः । तथा  
पृथिव्याः परि भूलोकादप्युपरि प्र रिरिचे । एवम् अन्तरिक्षात्  
द्यावापृथिव्योरन्तरालवर्तिनो यक्षगन्धर्वाप्सरःप्रभृतीनाम् आश्रय-  
भूनाद् अन्तरिक्षलोकादपि प्र रिरिचे । ❀ रिचिर् विरेचने ।  
“छन्दसि लुङ्लङ्लिटः” इति वर्तमाने लिट् ❀ । किं च अयम्  
इन्द्रो दमे दमयितव्ये शत्रुजने स्वराट् स्वेनैव तेजसा राजमानः ।  
विश्वगूर्तः विश्वस्मिन् सर्वस्मिन्नपि कार्ये उद्गूर्णबलः । स्वरिः  
सुष्ठु अभिगन्ता । यद्वा स्वरिः शोभनः इन्द्रव्यतिरिक्तनान्येन  
पराभक्षितुम् अशक्यः शत्रुः सुशब्देन उच्यते । तादृशेन अरिणा  
उपेतः । अमत्रः युद्धार्थं गमनकुशलः । ❀ अम गत्यादिषु ।  
अमिनक्षियजिवधि० [ उ० ३.१०५ ] इत्यादिना अत्रन् प्रत्ययः ❀ ।  
एवं महानुभाव इन्द्रो रणाय रमणीयाय संग्रामाय आ ववक्षे आ-  
वहति वृष्ट्यर्थं मेघान् प्रापयति । ❀ वहेल्लेटि “सिब्वहुलं लेटि”  
इति सिप् । “बहुलं छन्दसि” इति शपः श्लुः । ढत्वकत्वषत्वानि ।  
“लोपस्त आत्मनेपदेषु” इति तलोपः ❀ ॥

इन ही इन्द्रदेवका माहात्म्य द्युलोकके भी ऊपर फैला हुआ है अर्थात् द्युलोकसे भी अधिक है । पृथ्वीलोकके ऊपर भी फैला हुआ है और द्यावापृथिवीके मध्यके लोक-गन्धर्व अप्सरा आदि

के आश्रय—अन्तरिक्षके ऊपर भी फैला हुआ है । और यह इन्द्रदेव दमन करने योग्य शत्रुओं पर अपने ही तेजसे दमकते रहते हैं । सब कार्योंमें इनका बल प्रचण्ड रहता है । यह भली प्रकार अभिगमन करने वाले हैं, युद्धके लिये गमन करनेमें कुशल हैं ऐसे महानुभाव इन्द्र रणके लिये वृष्ट्यर्थ मेघोंको लाते हैं ६

दशमी ॥

अस्येदेव शवसा शुषन्तं वि वृश्चद् वज्रेण वृत्रमिन्द्रः  
गा न ब्राणा अवनीरमुञ्चदभि श्रवो दावने सचेताः

अस्य । इत् । एव । शवसा । शुषन्तम् । वि । वृश्चत् । वज्रेण ।

वृत्रम् । इन्द्रः ।

गाः । न । ब्राणाः । अवनीः । अमुञ्चत् । अभि । श्रवः । दावने ।

सञ्चेताः ॥ १० ॥

अस्येदेव अस्यैव इन्द्रस्य शवसा बलेन तेजसा शुषन्तम् शुष्यन्तम् । ❀ शुष शोषणे । श्यनि प्राप्ते व्यत्ययेन शः । ऋदुपदेशाल्लसार्वधातुकानुदात्तत्वे विकरणस्वर एव शिष्यते ❀ । उक्तरूपं वृत्रम् इन्द्रो देवः वज्रेण आयुधेन वि वृश्चत् व्यच्छिनत् । तथा गा न पणिभिरपहता गा यथा अमुञ्चत् मोचितवान् एवं ब्राणाः वृत्रेण आवृता अपः । ❀ वृञ् वरणे । कर्मणि लिट् । शानचि “बहुलं छन्दसि” इति यको लुक् । शानचो छिन्नाद् गुणाभावे यण् आदेशः ❀ । कीदृशीरपः । अवनीः अवित्रीः सकलपाणि-रक्षणहेतुभूता अमुञ्चत् मेघं भित्त्वा अवर्षीत् । तथा कृत्वा दावने हविर्दात्रे यजमानाय श्रवः सर्वैः श्रयमाणं विख्यातम् अन्नं सञ्चेताः यजमानेन समानचित्तः सन् अभि । ❀ उपसर्गश्रुतेर्यो-



ग्यक्रियाध्याहारः ॐ । अभ्यगमयत् । अथ वा आभिमुख्येन ।  
प्रायच्छद् इति शेषः ॥

इन ही इन्द्रदेवके तेजमें शुष्क होने हुए वृत्रासुरको इन्द्रदेवमें  
अग्ने आयुधसे काट डाला था, और पाणियोंकी ढगा हुई गौओं  
को जिस प्रकार छुड़ाया था इसी प्रकार वृत्रासुरसे घेरे हुए,  
सकल पाणियोंको रक्षाके हेतु जलोंको मेघोंको विदीर्ण करके  
बरसा दिया । इस प्रकार करके हविर्दाता यजमानके लिये सबमें  
प्रसिद्ध अन्नको समान चित्त होकर दिया ॥ १० ॥

एकादशी ॥

अस्येदु त्वेषसा रन्त सिन्धवः परि यद् वज्रेण सीम-  
यच्छत् ।

ईशानकृद् दाशुषे दशस्यन्तुर्वीतये गार्धतुर्वणिः कः

अस्य । इत् । ऊं इति । त्वेषसा । रन्त । सिन्धवः । परि । यत् ।

वज्रेण । सीम् । अयच्छत् ।

ईशानकृत् । दाशुषे । दशस्यन् । तुर्वीतये । गार्धतुर्वणिः ।

करितिः कः ॥ ११ ॥

अस्येदु अस्यैवेन्द्रस्य त्वेषसा दीप्तेन यत्नेन सिन्धवः स्यन्दन-  
शीला नद्यो रन्त अरन्त स्वेप्ते स्थाने रमन्ते । यद् यस्मात् कार-  
णाद् अयम् इन्द्रो वज्रेण सीम् सर्वतः एनाम् सिन्धून् वज्रेण पर्य-  
यच्छत् परितो नियमितवान् । तस्माद् रमन्त इति पूर्वत्र संबन्धः ।  
किं च ईशानकृत् शत्रून् हत्वा आत्मानं स्वाग्निं कुर्वन् अथ वा  
दरिद्रस्य ईशानकर्ता दाशुषे हविर्दत्तस्ते यजमानाय दशस्यन् तद-

भिमतं मयच्छन् इन्द्रः तूर्णीतये एतत्संहकाय अगाधे जले निमग्नाय  
तुर्वणिः तूर्णवनिः शीघ्रं संभक्ता सन् गाधम् प्रतिष्ठां कः अकः  
अकार्षीत् । ॐ करोतेर्लुङि “मन्त्रे घस०” इत्यादिना च्लेर्लुक् ।  
गुणः । “हल्ङ्या०” इत्यादिना तत्तोपः ॐ ॥

इन ही इन्द्रके दीप्त बलसे सगन्दनशील नदियें अपने २  
स्थानमें रमण करती हैं, क्योंकि—इन इन्द्रदेवने वज्रके द्वारा इन  
नदियोंको चारों ओरसे नियमित कर दिया है, अत एव यह  
नदियें रमण करती हैं । और यह इन्द्रदेव यजमानको ईश बनासे  
वाले हैं और हविर्दाता यजमानको अभिलषित फल देने वाले  
हैं और अगाध जलमें निमग्न तूर्णीतिके लिये शीघ्र ही प्रतिष्ठाको  
देने वाले हैं ॥ ११ ॥

द्वादशी ॥

अस्मा इदु म भरा तूतुजानो वृत्राय वज्रमीशानः  
कियेधाः ।

गोर्न पर्व वि रदा तिरश्चेष्यन्नणास्यपां चरधै १२

अस्मै । इत् । ऊं इति । म । भर । तूतुजानः । वृत्राय । वज्रम् ।

ईशानः । कियेधाः ।

गोः । न । पर्व । वि । रदा । तिरश्चा । इष्यन् । अणांसि । अपासु ।

चरधै ॥ १२ ॥

अस्मा इदु अस्मा एव वृत्राय अस्य वृत्रस्य वधार्थं तूतुजानः  
अत्यर्थं स्वस्माणः अत्यर्थं चलायमानो वा ईशानः सर्वस्य स्वामी  
कियेधाः कियद् इदं शत्रुबलम् इति तुच्छीकृत्य तस्य बलस्य धारकः ।

अथ वा क्रममाणः सन् शत्रुधारकः वज्रं प्र भर प्रहर प्रयोजय ।  
 न केवलं प्रहरमात्रं किं तु शकलीकुर्वित्याह । गोर्न पर्व यथा मां-  
 सार्थिनो गोर्दृषभादेः पशोः पर्व पर्वाणि प्रतिपर्वं छिन्दन्ति तद्वत् ।  
 अर्णासि उदकानि इष्यन् इच्छन् अपां चरध्यै चरणाय भूमौ प्रवा-  
 हायः तिरश्चा तिर्यगञ्चनेन वज्रेण वि रद विशेषेण वृत्रं बिलेखय ।  
 त्रिविधं छिन्दीत्यर्थः । ❀ अत्र निरुक्तम् । अस्मै प्रहर तूर्णं त्वर-  
 माणो वृत्राय वज्रम् ईक्षानः । कियेधाः । कियद्धा इति वा क्रम-  
 माणधा इति वा । गोरिव पर्वाणि वि रद मेघस्येष्यन्नर्णास्यपां  
 चरणायेति [ नि० ६. २० ] ❀ ॥

हे इन्द्रदेव ! इस वृत्रके वधके लिये अत्यन्त त्वरा करते हुए  
 सबके स्वामी आप आगे बढ़ शत्रु को दावते हुए वज्रका प्रहार  
 करिये । (केवल प्रहार ही न करिये, किंतु खण्ड २ कर डालिये)  
 जैसे मांसार्थी पुरुष पशुके खण्ड २ करते हैं, इसी प्रकार आप  
 जल चाह कर जलको भूमि पर बहानेके लिये तिरछे वज्रसे वृत्र  
 ( मेघ ) को विदीर्ण करिये ॥ १२ ॥

त्रयोदशी ॥

अस्येदु प्र ब्रूहि पूर्याणि तुरस्य कर्माणि नव्य उक्थैः ।  
 युधे यदिष्णान आयुधान्यृधायमाणो निरिणाति  
 शत्रून् ॥ १३ ॥

अस्य । इत् । ऊं इति । प्र । ब्रूहि । पूर्याणि । तुरस्य । कर्माणि ।  
 नव्यः । उक्थैः ।

युधे । यत् । इष्णानः । आयुधानि । ऋधायमाणः । निरिणाति ।  
 शत्रून् ॥ १३ ॥



उक्थ्यैः । उक्थं स्तुतिम् अर्हन्तीति उक्थ्यानि शस्त्राणि । तैः  
नव्यः स्तुत्यो य इन्द्रः अस्येदु अस्यैव तुरस्य युद्धार्थं त्वरमाण-  
स्येन्द्रस्य पूर्व्याणि पुराणानि कर्माणि एतत्कृतानि बलकर्माणि  
हे स्तोतः म ब्रूहि प्रशंस । यत् यदा युधे योधनाय आयुधानि  
वज्रादीनि इष्णानः आभीक्ष्येन प्रेरयन् । ॐ इष आभीक्ष्ये ।  
क्रैयादिकः । व्यत्ययेन आत्मनेपदम् । शानचश्चिच्चाद् अन्तोदा-  
त्तत्वम् ॐ । शत्रून् ऋधायमाणः हिंसंश्च इन्द्रः निरिणाति अभि-  
मुखं गच्छति । तदानीं म ब्रूहीति पूर्वेण संबन्धः । ॐ निरि-  
णाति । री गतिरेषणयोः । “क्रयादिभ्यः आ” । स्वादीनां ह्रस्वः”  
इति ह्रस्वत्वम् । तिपः पिच्चाद् अनुदात्तत्वे विकरणस्वरः शिष्यते  
“तिङि चोदात्तवति” इति गतेर्निघातः । यद्वृत्तयोगात् “तिङ्ङ-  
तिङः” इति निघाताभावः ॐ ॥

शस्त्रोंके द्वारा स्तुति करने योग्य जो इन्द्र हैं उन ही युद्धके  
लिये त्वरा करने वाले इन्द्रके प्राचीन बलमय कर्मोंको हे स्तोतः !  
आप गाइये, जब युद्ध करनेके लिये वज्र आदिको बारंबार  
प्रेरित करते हुए और शत्रुओंका संहार करते हुए इन्द्र अभि-  
मुख होकर चढ़ाई करें, उस समय गाइये ॥ १३ ॥

चतुर्दशी ॥

अस्येदु भिया गिरयश्च दृहा द्यावां च भूमां जनुषस्तुजेते  
उपो वेनस्य जोगुवान ओणि सद्यो भुवद् वीर्याय  
नोधाः ॥ १४ ॥

अस्य । इत् । ऊं इति । भिया । गिरयः । च । दृहाः । द्यावा ।

भूमा । जनुषः । तुजेते इति ।

उपो इति । वेनस्य । जोगुवानः । ओणिम् । सद्यः । भुवत् ।  
वीर्याय । नोधाः ॥ १४ ॥

अस्यैव इन्द्रस्य जनुषः जन्मतः प्रादुर्भावत एव । यद्वा जनुषः  
उत्कृष्टजन्मवतोस्येति व्याख्येयम् । भिया पक्ष्मच्छेदनभयेन मिर-  
यश्च पर्वता अपि दृढा दृढानि अप्रचयावितानि अभूवन् । पर्वत-  
द्वन्द्वसामान्यापेक्षया नृपसकलिङ्गता । किं च अस्य भिया द्यावा  
च भूमा च द्यावापृथिव्यावपि तजेते । ❀ तुजिर्हिसार्थोपि अत्र  
कम्पने वर्तते ❀ । कम्पेते इत्यर्थः । ❀ अत्र मध्ये चशब्दस्य  
पाठश्चान्दसः । “दिवा द्यावा” इति दिव्शब्दस्य द्यावादेशः ।  
“सुषां सुलुक्” इति डादेशः । “देवताद्वन्द्वे च” इत्युभयपद-  
प्रकृतिस्वरत्वम् । पदद्वयप्रसिद्धिरपि सांप्रदायिकी ❀ । किं च  
वेनस्य कान्तस्य ओणिम् दुःखस्यापनोदकं रक्षणम् । ❀ ओणु  
अपनयने इत्यस्माद् औणादिक इप्रत्ययः ❀ । जोगुवानः अनेकैः  
सूक्तैः शब्दयन् नोधाः नवनस्य स्तवस्य धारयिता एतन्नामा  
महर्षिः वीर्याय सामर्थ्याय सद्यः तदानीमेव उपो उपैत्र समीप  
एव भुवत् भवेत् अभवत् । वीर्यवान् अभवद् इत्यर्थः ॥

इन इन्द्रके प्रादुर्भूत होते ही पंख काटे जानेके डरसे पर्वत दृढ़  
बन गए थे और इनके भयसे द्यावापृथिवी भी काँपते हैं । और  
इन कमनीय दुःख दूर करने वालेको अनेक सूक्तोंसे प्रशंसा  
करते हुए नोधा महर्षि शीघ्र ही वीर्यवान् होगए थे ॥ १४ ॥

पञ्चदशी ॥

अस्मा इदु त्यदनु दारयेषामेको यद् बन्ने भूरेरीशानः ।  
प्रैतशं सूर्ये पस्पृधानं सौवश्ये सुध्विमावदिन्द्रः १५

अस्मै । इत् । ऊं इति । त्यत् । अनु । दायि । एषाम् । एकः ।  
यत् । वन्ने । भूरेः । ईशानः ।

प्र । एतशम् । सूर्ये । पस्पृधानम् । सौवश्ये । सुष्टिम् । आवत् ।  
इन्द्रः ॥ १५ ॥

अस्मा इत् अस्मा एवेन्द्राय त्यत् तत् प्रसिद्धं स्तोत्रं सोम-  
लक्षणम् अन्नं वा अनु आनुलोम्येन दायि अदायि दीयते ।  
अस्मा एवेत्युक्तं तत्र कारणम् अह । यत् यस्मात् कारणाद्  
भूरेः प्रभूतस्य धनस्य हविषः स्तोत्रस्य वा ईशानः स्वामी इन्द्रः  
एकः स्तोत्रादिविषये केवलः असाधारणः सन् वन्ने । असाधा-  
रण्यं याचितवान् इत्यर्थः । किं च अयम् इन्द्रः सौवश्ये स्वश्व-  
स्यापत्ये एतन्नामके राजनि रक्षणीयत्वेन निमित्तभूते सति सूर्ये  
देवे पस्पृधानम् सौवश्यसहायत्वेन पुनःपुनः स्पर्धमानम् । ॐ स्पर्ध  
संगर्षे । अस्माल्लिटः कानच् । द्विर्वचने “शर्पूर्वाः स्वयः” इति  
प्रकारः शिष्यते । धात्वकारस्य लोपो रेफस्य संप्रसारणं च  
पृषोदरादित्वात् । चित्त्वाद् अन्तोदात्तत्वम् ॐ । एतशम् एतन्ना-  
मानं महर्षि सुष्टिम् सुष्टु इन्द्रार्थं सोमाभिष्वक् कुर्वाणं प्रावत् प्रक-  
र्षेण रक्षितवान् । यद्वा सौवश्ये स्वश्वस्यापत्ये सूर्ये इति व्या-  
ख्येयम् । सूर्यः स्वश्वस्य तपसा तुष्टः सन् तस्य पुत्रो भूद् इत्ययम्  
अर्थः आख्यायिकामुत्वेनावगन्तव्यः । शिष्टं पूर्ववत् ॥

इन इन्द्रदेवके लिये ही स्तोत्र वा सोमरूपी अन्न अनुलोप-  
रीतिसे दिया जाता है, क्योंकि—प्रभूत धन हवि वा स्तोत्रके  
स्वामी इन्द्रने स्तोत्र आदिके विषयमें असाधारणकी याचना की  
थी । और इन इन्द्रदेवने सौवश्य नामक राजाकी रक्षाके अव-  
सर पर सूर्यदेवसे बारम्बार स्पर्धा करते हुए एतश नामक  
महर्षिकी सोमाभिष्वक्के कारण रक्षा की थी ॥ १५ ॥



चोडशी ॥

ए॒वा ते॑ हा॒रियो॒जना सु॒वृत्तीन्द्र॒ ब्रह्मा॑णि गो॒त॑मा॒सो

अ॒क्रन् ।

एषु॑ वि॒श्वपे॑शसं धियं॑ धाः प्रा॒तर्भ॒क्षू धि॒याव॑सु॒र्ज-

ग॒म्यात् ॥ १६ ॥

ए॒व । ते॑ । हा॒रि॒ऽयो॒जन॒ । सु॒वृ॒त्ति॒ । इन्द्र॑ । ब्रह्मा॑णि । गो॒त॑-  
मा॒सः । अ॒क्रन् ।

आ । ए॒षु । वि॒श्व॒ऽपे॑शसम् । धि॒यम् । धाः॑ । प्रा॒तः । भ॒क्षू ।

धि॒या॒ऽव॑सुः । ज॒ग॒म्या॒त् ॥ १६ ॥

इयोरिद्वयोर्योजनम् अस्मिन् रथे स तथोक्तः । तस्य स्वाभि-  
त्वेन संबन्धी हारियोजनः । हे हारियोजन इन्द्र गोतमासः गोत-  
मगोत्रोत्पन्ना महर्षयः सुवृत्तिं सुवृत्तुं आवर्जकानि अभिमुखी-  
करणकुशलानि ब्रह्माणि स्तुतिरूपाणि मन्त्रजातानि ते तत्रैव एव  
एवंप्रकारेण अक्रन् अकृषत । ॐ करोतेर्लुङि “मन्त्रे घस०”  
इत्यादिना स्लेर्लुक् । अन्तादेशः । तस्य छिन्वाङ् गुणाभावे  
चणादेशः । “इतश्च” इति इकारलोपे संयोगान्तलोपे च अडा-  
गमः ॐ । एषु स्तोत्रेषु विश्वपेशसम् बहुविधरूपयुक्तं धियम् ।  
धियः लभ्यत्वाद् धीर्धनम् उच्यते । यद्वा धीशब्दः कर्मवचनः ।  
परमादिबहुविधरूपं धमं अग्निष्टोत्रादि बहुविधरूपं कर्म वा आ-  
धाः आधेहि स्थापय । प्रातः इदानीमिव परेद्युरपि प्रातःकाले  
धियावसुः बुद्ध्या कर्मणा वा प्राप्तधन इन्द्रो भक्षू शीघ्रं जगम्यात्  
अस्मद्वचनार्थम् आगच्छतु ॥

इति चतुर्गैत्रुवाके द्वितीयं सूक्तम् ॥

हे हरि नामक घोड़ोंको अपने रथमें जोतने वाले इन्द्र ! गौतम गौत्रमें उत्पन्न हुए महर्षि अभिमुख करनेमें कुशल मन्त्रात्मक स्तोत्रोंको आपक लिये ही करते हैं, इन स्तोत्राओंमें आप अनेक प्रकारके रूपोंसे युक्त पशु आदि धन वा अग्निष्टोम आदि अनेक प्रकारका कर्म स्थापित करिये । इस समयकी समान दूसरे दिन भी प्रातःकाल बुद्धिसे धनको प्राप्त करने वाले इन्द्रदेव हमारे रक्षाके लिये शीघ्र आवें ॥ १६ ॥

चतुर्थं अनुवाकम् द्वितीयं सूक्तं समाप्तं ( १५१ )

आभिसन्विके युग्माहनि माध्यंदिनसवनम् ब्राह्मणाच्छंसिशस्त्रे  
“य एक इद्धव्यः” इति सूक्तं संपातसंज्ञया विनियुक्तम् । सूत्रितं  
हि । “युग्मेष्विन्द्रः पूर्भिदातिरदासमकैः [ २०. ११ ] य एक  
इद्धव्यश्चर्षणीनाम् [ २०. ३६ ] यस्तिग्मशृङ्गो वृषभो न भीमः  
[ २०. ३७ ] इति संपातानाम् एकैकम् अहरहरावपते पृष्ठथे  
छन्दोमेषु दशमे च” इति [ वै० ६. १ ] ॥

आभिसन्विक युग्माहन् माध्यंदिनसवनम् ब्राह्मणाच्छंसिशस्त्रम्  
“य एक इद्धव्यः” सूक्तं संपातं नामसै विनियुक्तं हुआ है । इस  
विषयमें सूत्रका प्रमाण भी है, कि—“युग्मेष्विन्द्रः पूर्भिदातिरदं  
दासमकैः ( २० । ११ ) य एक इद्धव्यश्चर्षणीनाम् ( २० । ३६ )  
यस्तिग्मशृङ्गो वृषभो न भीमः ( २० । ३७ ) इति संपातानां  
एकैकं अहरहरावपते पृष्ठथे छन्दोमेषु दशमे च” (वैतानसूत्र ६ । १) ॥

तथ प्रथमा ॥

य एक इद्धव्यश्चर्षणीनामिन्द्रं तं गीर्भिरभ्यर्च्य आभिः ।  
यः पत्यते वृषभो वृषण्यावान्सत्यः सत्वा पुरुमायः  
सहस्वान् ॥ १ ॥

यः । एकः । इत् । हव्यः । चर्षणीनाम् । इन्द्रम् । तम् ।

गीभिः । अभि । अर्चे । आभिः ।

यः । पत्यते । वृषभः । वृष्यवान् । सत्यः । सत्वा । पुरुषमायः ।

सहस्वान् ॥ १ ॥

चर्षणीनाम् । मनुष्यनामैतत् । मनुष्याणां यजमानानां यः  
इन्द्रः एक इत् एक एव हव्यः प्राधान्येन यज्ञे हातव्यः । यद्वा  
जयकामानां राजादीनां स्वसहायत्वेन एक एव हव्यः । तं हात-  
व्यम् इन्द्रम् आभिः क्रियमाणप्रकाराभिगीभिः स्तुतिवाग्भिः  
अभि अर्चे । अर्चतिः स्तुतिकर्मा । अभिष्टौमि । किं च यो वक्ष्य-  
माणगुणविशिष्ट इन्द्रः पत्यते सर्वस्येश्वरो भवति । इन्द्रं विशि-  
नष्टि । वृषभः कामानां वर्षिता वृष्यवान् वृष्यं वर्षणयोग्यं  
बलम् तद् अस्यास्तीति वृष्यवान् । ❀ “मादुपधायाः” इति  
मत्तुपो वक्ष्यम् । “अन्येषामपि दृश्यते” इति दीर्घः । मत्तुपः  
पित्राद् अनुदात्तत्वे “यतोऽनावः” इत्याद्युदात्तत्वम् ❀ । सत्यः  
सत्यफलः सत्वा बलस्य सादयिता पुरुषमायः बहुकर्मा सहस्वान्  
बलवान् एवम् उक्तगुणोपेतो य इन्द्रः पत्यते । तं गीर्गिरभ्यर्चे  
इति संबन्धः ॥

जो इन्द्रदेव यजमान मनुष्योंके एक ही आह्वान करने योग्य  
हैं उन आह्वान करने योग्य इन्द्रका मैं इन स्तुतिवाणियोंसे पूजन  
करता हूँ । यह इन्द्रदेव सबके ईश्वर होते हैं, कामनाओंकी वर्षा  
करने वाले हैं, वर्षण योग्य बलसे सम्पन्न हैं, सत्यफल हैं, बल  
को प्राप्त कराने वाले हैं, बहुतसे कर्मोंको करने वाले हैं, ऐसे  
इन्द्रकी मैं स्तुतियोंसे पूजा करता हूँ ॥ १ ॥



द्वितीया ॥

तमु नः पूर्वे पितरो नवग्वाः सप्त विप्रांसो अभि  
वाजयन्तः ।

नक्ष्त्राभं ततुरि पर्वतेष्ठा मद्रोघवाचं मतिभिः शविष्ठम् ॥

तम् । ऊं इति । नः । पूर्वे । पितरः । नवग्वाः । सप्त । विप्रांसः ।

अभि । वाजयन्तः ।

नक्ष्त्राभम् । ततुरिम् । पर्वतेऽस्थाम् । अद्रोघवाचम् । मति-  
भिः । शविष्ठम् ॥ २ ॥

तमु तमेवेन्द्रं नः अस्माकं संबन्धिनः पूर्वे पुरातनाः पितरः  
कर्मणा पितृलोकं प्राप्ताः पालयितारो नवग्वाः नवभिर्मासैर्लब्ध-  
फलाः सन्तः सत्त्वाद् ये उत्थितास्ते नवग्वाः नवभिर्मासैराप्तगो-  
फला वा । सप्त सप्तसंख्याका विप्रांसः मेधाविनः वाजयन्तः  
वाजम् अन्नं हविर्लक्षणम् इन्द्राय इच्छन्तः वाजिनं बलिनं कुर्वन्तो  
वा मतिभिः स्तुतिभिः इन्द्रम् अभि । ॐ उपसर्गश्रुतेर्योग्यक्रिया-  
ध्याहारः ॐ । अभितुष्टुबुरित्यर्थः । कीदृशम् इन्द्रम् । नक्ष्त्राभम् ।  
नक्षत्राभं ततुरि पर्वतेष्ठा मद्रोघवाचं मतिभिः शविष्ठम् ॥  
दुर्गमात् तारकं पर्वतेष्ठां पर्वते मेघे अवस्थितम् अद्रोघवाचम्  
अद्रोघव्या अनतिक्रमणीया वाचो यस्य सः अद्रोघवाक् तम्  
अद्रोघवाचं शविष्ठम् अतिशयेन बलवन्तम् ॥

नव मासमें सिद्धि पाने वाले, हविरूप अन्नको इन्द्रके लिये  
चाहते हुए, विद्वान् कर्मसे पितृलोकको प्राप्त हुए हमारे सात  
पूर्व पुरुषोंने इन्द्रकी स्तुति की थी । यह इन्द्रदेव सात मासोंकी

हिंसा करने वाले हैं, दुर्गमसे तारने वाले हैं, पर्वतमें स्थित रहते हैं, इनकी बाणियोंका अतिक्रम नहीं होता है और परमबली हैं २

तृतीया ॥

तमीमह इन्द्रमस्य रायः पुरुवीरस्य नृवतः पुरुक्षोः ।  
यो अस्कृधोयुरजरः स्वर्वान् तमा भर हरिवो माद-  
यध्यैः ॥ ३ ॥

तम् । ईमहे । इन्द्रम् । अस्य । रायः । पुरुवीरस्य । नृवतः ।  
पुरुक्षोः ।

यः । अस्कृधोयुः । अजरः । स्वः । स्वान् । तम् । आ । भर ।

हरिः । वः । मादयध्यैः ॥ ३ ॥

तं प्रसिद्धम् इन्द्रम् ईमहे याचामहे । याच्नाविषयं दर्शयति ।  
अस्य रायः । रयिरिति धननाम । एतद् धनम् । वीदृशं तत् ।  
पुरुवीरस्य वीराः पुत्रादयः बहुभिर्वीरैरुपभोक्तव्यम् । नृवतः नरो  
मर्त्याः सेवकाः तैः सहितम् । पुरुक्षोः क्षुरित्यन्ननाम । बहन्नम् ।  
उक्तविशेषणविशिष्टं धनम् ईमहे इति संबन्धः । किं च यो रयिः  
अस्कृधोयुः अक्षिन्नः अजरः जरारहितः स्वर्वान् स्वः स्वर्गः  
सुखं वा तद्वा तम् उक्तगुणविशिष्टं रयिम् हे हरिवः हर्याख्या-  
स्ववन्निद्र मादयध्यै अस्मान् मादयितुम् आ भर आहर ।  
❀ मदि स्तुत्यादौ । “हेतुमति च” इति णिच् । तुमर्थे अध्यैप्र-  
त्ययः । मत्ययस्वरेण तृतीयस्य उदात्तत्वम् ❀ ॥

हम इन इन्द्रसे पुत्र आदि बहुतसे वीरोंसे युक्त, सेवकोंसे  
सङ्गपन्न विशाल अन्नपरिमाण वाले धनकी याचना करते हैं ।

जो धन अच्छिन्न है, जरारहित है, सुखप्रद है, हे हरि नामक  
घोड़ोंसे सम्पन्न इन्द्र ! ऐसे धनको आप हमें प्रदान करिये ३  
चतुर्थी ॥

तन्नो वि वोचो यदि ते पुरा चिञ्जरितारं आनशु  
सुम्नमिन्द्र ।

कस्ते भागः किं वयो दुध्र खिद्वः पुरुहूत पुरुवसोः  
सुरघ्नः ॥ ४ ॥

तत् । नः । वि । वोचः । यदि । ते । पुरा । चित् । अरितारः ।  
आनशुः । सुम्नम् । इन्द्र ।

कः । ते । भागः । किम् । वयः । दुध्र । खिद्वः । पुरुहूत ।  
पुरुवसो इति पुरुवसो । असुरघ्नः ॥ ४ ॥

हे इन्द्र पुरा चित् पूर्वमपि ते तव जरितारः स्तोतारः सुम्नम्  
सुखं यदि आनशुः त्वत्तः सकाशात् प्राप्ताः तर्हि तत् सुम्नम्  
सुखं नः स्तोतृणाम् अस्माकमपि वि वोचः प्रब्रूहि । प्रयच्छेति  
भावः । तस्य सुम्नस्य उत्कोचभूतः असुरघ्नः शत्रूणां हन्तुस्ते तव  
भागो यज्ञे निर्दिष्टः कः । किं वयः किं हविर्लक्षणम् अन्नं तव  
दातव्यम् । तं स्तोत्रादिरूपं भागं सोमादिहविर्लक्षणम् अन्नं च हे  
दुध्र दुर्धर हे खिद्वः शत्रूणां खेदयितः हे पुरुहूत बहुभिराहूत हे  
पुरुवसो बहुधन एवमुक्तैर्गुरोरुपेत इन्द्र नः अस्माकं ब्रूहि प्रब्रूहि ।  
❀ खिद्व इति । खिद्व दैन्ये इत्यस्मात् एयन्तात् लिटः क्वसुरा-  
देशः । “वस्वेकाजाद्वधसाम्” इति नियमाद् इडभावः । द्विर्वचन-  
प्रकरणे “छन्दसि वा” इति विकल्पाद् अनभ्यासः । मनुवसो  
रुः संबुद्धौ छन्दसि” इति रुत्वम् । आपन्त्रितनिघातः ❀ ॥



हे इन्द्र ! आपके प्राचीन स्तोता यदि आपसे सुखको पाचुके हैं, तो उस सुखको हम स्तोताओंको भी प्रदान करिये । उस सुखकी रिश्वतरूप असुरोंको संहार करने वाला आपका जो भाग यज्ञमें निर्दिष्ट है वह कौनसा है और आपको हविरूप कौनसा अन्न देना चाहिये । उस स्तोत्र आदि रूप भागको और सोम आदि हविरूप अन्नको भी हे दुर्धर ! हे शत्रुओंको खेदमें डालनेवाले ! हे पुरुहूत ! हे बहुधन ! आप हमसे कहिये ४

पञ्चमी ॥

तं पृच्छन्ती वज्रहस्तं रथेष्ठामिन्द्रं वेपी वक्वरी यस्य  
नू गीः ।

तुविग्राभं तुविकूर्मिं रभोदां गातुमिषे नक्षते तुम्रमच्छ  
तम् । पृच्छन्ती । वज्रहस्तम् । रथेस्थाम् । इन्द्रम् । वेपी ।

वक्वरी । यस्य । नु । गीः ।

तुविग्राभम् । तुविकूर्मिम् । रभोदाम् । गातुम् । इषे ।

नक्षते । तुम्रम् । अच्छ ॥ ५ ॥

यस्य स्तोतुर्यजमानस्य वेपी । वेप इति कर्मनाम । यागादिलक्षणकर्मवती वक्वरी गुणानां प्रवचनशीला गीः वाग् वज्रहस्तम् वज्रं हस्ते धारयन्तं रथेष्ठाम् रथे अवस्थितं तं प्रसिद्धम् इन्द्रं पृच्छन्ती प्रश्नं कुर्वती । अभिगच्छति स्तौति वेति शेषः । तुविग्राभम् बहूनां ग्राहकं तुविकूर्मिम् बहुकर्माणं रभोदाम् रभसो बलस्य दातारम् उक्तलक्षणम् इन्द्रं स यजमानो गातुम् सुखम् इषे इच्छति । नु इति पूरणः । किं चतुम्रम् अभिगन्तारं त्वरयितारं वा शत्रुम् अच्छ आभिमुख्येन नक्षते गच्छति ॥

जिस स्तोता यजमानकी याग आदि रूप कर्म वाली, गुणों का प्रवचन करने वाली वाणी वज्रधारी रथमें स्थित इन्द्रसे मश्व करती हुई इन्द्रको प्राप्त होती है। बहुतोंका ग्रहण करने वाले, बहुतसे कर्मों वाले, बलंप्रद इन्द्रसे यजमान सुखकी इच्छा करता है। और त्वरा करने वाले शत्रुको अभिमुख होकर प्राप्त होता है ॥ ५ ॥

षष्ठी ॥

अ॒या ह॒ त्वं मा॒यया॑ वावृ॒धानं॑ म॒नोजु॑वा॒ स्वतवः॑  
पर्व॑तेन ।

अ॒च्यु॒ता चिद् वी॒लि॒ता स्वो॑जो रु॒जो वि दृ॒ह्वा धृ॑ष॒ता  
वि॒र॒प्शिन् ॥ ६ ॥

अ॒या । ह॒ । त्वम् । मा॒यया॑ । वावृ॒धानम् । म॒नः॑जु॒वा । स्व॒तवः॑ ।  
पर्व॑तेन ।

अ॒च्यु॒ता । चि॒त् । वी॒लि॒ता । सु॒जो॒जः । रु॒जः । वि । दृ॒ह्वा ।  
धृ॑ष॒ता । वि॒र॒प्शिन् ॥ ६ ॥

हे स्वतवः स्वायत्तबल इन्द्र त्वं मनोजुवा मनोवत् शीघ्रं गच्छता पर्वतेन पर्ववता वज्रेण अया अनया प्रसिद्धया मायया शक्त्या ववृधानम् भृशं वर्धमानं त्वम् तं प्रसिद्धं वृत्रं वि रुजः व्यरुजः विशेषेण अभाङ्क्षीः । तथा हे स्वोजः शोभनबल हे विरप्शिन् । विरप्शीति महन्नाम । हे महन् इन्द्र त्वम् अच्युता चित् अच्युतानि अन्यैरच्यावयितव्यान्यपि वीलिता वीलितानि दृढानि अशिथिलीकृतानि दृढा दृढानि शत्रुनगराणि धृषता धर्षकेण वज्रेण वि रुजः विदारितवान् असि ॥

हे स्वायत्तबल इन्द्र ! आप मनकी समान शीघ्र चलने वाले पर्व वाले वज्रसे मायाके द्वारा बढ़ते हुए प्रसिद्ध वृत्रासुरको विशेषरूपसे नष्ट कर चुके हैं । तथा हे शोभन बलसे सम्पन्न महत्त्वमय इन्द्र ! आपने दूसरोंसे च्युत करनेके अयोग्य दृढ़ शत्रु-नगरोंको भी धर्षक वज्रसे विदारण कर डाला था ॥ ६ ॥

सप्तमी ॥

तं वो धिया नव्यस्या शविष्ठं प्रत्नं प्रत्नवत् परितंसयध्यै  
स नो वक्षदनिमानः सुवह्नेन्द्रो विश्वान्यति दुर्गहाणि

तम् । वः । धिया । नव्यस्या । शविष्ठम् । प्रत्नम् । प्रत्नवत् ।

परितंसयध्यै ।

सः । नः । वक्षत् । अनिमानः । सुवह्मा । इन्द्रः । विश्वानि ।

अति । दुःशहानि ॥ ७ ॥

हे यजमानाः वः युष्मदर्थं शविष्ठम् । शव इति बलनाम । अति शयितबलं प्रत्नम् पुरातनं तं प्रसिद्धम् इन्द्रं नव्यस्या नवतरया धिया स्तुत्या प्रत्नवत् पुराणा महर्षयो यथा एवं परितंसयध्यै अलं-कर्तुम् । प्रवृत्तोस्मीति शेषः । ॐ तसि अलंकारे । इदित्त्वान्नुम् । तुमर्थे अध्येप्रत्ययः । प्रत्ययस्वरेण उपान्त्योदात्तः ॐ । अनिमानः निमानरहितः इयत्ताशून्यः । महान् इत्यर्थः । सुवह्मा शोभनं बल्य वहनं यस्य स सुवह्मा शोभनवहनः स उक्तलक्षण इन्द्रः नः अस्मान् विश्वानि सर्वाणि दुर्गहाणि दुर्गमनानि यानियानि दुस्तराणि सर्वाण्यपि अति वक्षत् अतिवहतु ॥

हे यजमानों ! आपके लिये परमबली प्राचीन इन्द्रको नवीन स्तुतिसे प्राचीन महर्षियोंकी समान मैं अलंकृत करनेके लिये



प्रवृत्त होगया हूँ । परिमाणशून्य और शोभन वाहनों वाले इंद्र  
हमें सब दुस्तर विषयोंके पार पहुँचावें ॥ ७ ॥

अष्टमी ॥

आ जनाय दुहणे पार्थिवानि दिव्यानि दीपयन्तरिक्षा  
तप बृषन् विश्वतः शोचिषा तान् ब्रह्मद्विषे शोचय  
क्षामपश्च ॥ ८ ॥

आ । जनाय । दुहणे । पार्थिवानि । दिव्यानि । दीपयः । अन्तरिक्षा ।  
तप । बृषन् । विश्वतः । शोचिषा । तान् । ब्रह्मद्विषे । शोचय ।  
क्षाम् । अपः । च ॥ ८ ॥

हे इंद्र त्वं दुहणे साधुजनानां द्वेष्टुः जनाय जनस्य राक्षसादेः  
पार्थिवानि पृथिव्या भवानि दिव्यानि दिवि भवानि अन्तरिक्षा  
अन्तरिक्षाणि अन्तरिक्षे भवानि च स्थानानि आ दीपयः आ सम-  
न्तात् तापय । हे वृषन् कामानां वर्षितः इंद्र त्वं विश्वतः सर्वतो  
विद्यमानान् तान् राक्षसादीन् शोचिषा त्वदीयया दीप्त्या तप दह ।  
किं च ब्रह्मद्विषे ब्राह्मणद्वेष्ट्रे राक्षसादये । ब्रह्मद्विषं दुग्धम् इत्यर्थः ।  
क्षाम् पृथिवीम् अपश्च अन्तरिक्षं शोचय दीपय । ❀ क्षाम् इति ।  
क्षि निवासगत्योः । तौदादिकः । “अन्येष्वपि दृश्यते” इति  
सोपसर्जनो विधीयमानो हप्रत्ययः “अपिशब्दः सर्वोपाधि-  
व्यभिचारार्थः” इत्युक्तेर्निरूपपदेभ्योपि भवति । क्षियन्ति निव-  
सन्त्यस्यां प्राणिन इति क्षा वसुंधरा । प्रत्ययस्वरः ❀ ॥

हे इंद्रदेव ! आप सज्जनोंसे द्वेष करने वाले राक्षस आदिके  
पृथिवीलोकके अलोकके और अन्तरिक्ष लोकके स्थानोंको चारों  
ओरसे सन्तप्त करिये । हे कामनाओंकी वर्षा करने वाले इंद्र !

आप चारों ओर विद्यमान राक्षस आदिको अपनी दीप्तिसे भस्म कर डालिये । और ब्राह्मणोंसे द्वेष करने वाले राक्षस आदिको भस्म करनेके लिये पृथिवीको और द्युलोकको भी दीप्त करिये—  
नवमी ॥

भुवो जनस्य दिव्यस्य राजा पार्थिवस्य जगतस्त्वेषसंहक्  
धिष्व वज्रं दक्षिण इन्द्र हस्ते विश्वा अजुर्थ दयसे  
वि मायाः ॥ ६ ॥

भुवः । जनस्य । दिव्यस्य । राजा । पार्थिवस्य । जगतः । त्वेष-  
संहक् ।

धिष्व । वज्रम् । दक्षिणे । इन्द्र । हस्ते । विश्वाः । अजुर्थ ।  
दयसे । वि । मायाः ॥ ६ ॥

हे त्वेषसंहक् दीप्तसंदर्शन इन्द्र दिव्यस्य दिवि भवस्य जनस्य राजा ईश्वरः भुवः भवसि । जगतः जङ्गमस्य पार्थिवस्य च राजा भवसि । दक्षिणे हस्ते वज्रं धिष्व निधेहि । तेन निहितेन वज्रेण विश्वाः सर्वा माया आसुरीः वि दयसे विबाधसे । ❀ दय दान-रक्षणगतिहिंसादानेष्विति धातुः ❀ । हे अजुर्थ जरयितुम् अशक्य इन्द्र त्वम् इति ॥

हे दीप्तसंदर्शन इन्द्र ! आप द्युलोकमें रहने वाले जनोंके राजा हैं, दक्षिण हाथमें वज्रको धारण करिये और उस वज्रसे सब आसुरी मायाओंको बाधित करिये । हे जीर्ण करनेके अयोग्य इन्द्र ! आप आसुरी मायाओंको बाधित करिये ॥ ६ ॥

दशमी ॥

आ संयतमिन्द्र एः स्वस्ति शत्रुतूर्याय बृहतीममृधाम् ।

यया दासान्यार्याणि वृत्रा करो वज्रिन्सुतुका नाहु-  
षाणि ॥ १० ॥

आ । स॒म॒स्य॑तम् । इ॒न्द्र । नः । स्व॒स्ति॒म् । श॒त्रु॒ऽतू॒र्या॑य । बृ॒ह-  
ती॑म् । अ॒मृ॒ध्राम् ।

यया । दा॒सा॒नि । आ॒र्या॑णि । वृ॒त्रा । क॒रः । व॒ज्रि॒न् । सु॒ऽतु॒का ।  
नाहु॑षाणि ॥ १० ॥

शत्रुतूर्याय शत्रूणां तारणाय बृहतीम् महतीम् अमृध्राम् अहि-  
सितां संयतम् संयतीं संगच्छमानां स्वस्तिम् क्षेमलक्षणां संपदम्  
हे इन्द्र त्वं नः अस्मभ्यम् आ हर । हे इन्द्र वज्रिन् वज्रवन् यया  
स्वस्त्या दासानि कर्मणा आत्मानम् उपक्षपयितृणि हीनानि वृत्रा  
वृत्राणि शत्रुभूतानि नाहुषाणि नहुषा मनुष्याः तत्संबन्धीनि  
मनुष्यजातानि आर्याणि अरणीयानि श्रेष्ठानि तथा सुतुका सुतु-  
कानि शोभनापत्यभूतानि पुत्रस्थानीयानि करः अकरोः ॥

हे वज्रधारिन् इन्द्र ! जिस क्षेम करने वाली सम्पत्तिसे आप  
दासोंको और शत्रुभूत मनुष्योंको श्रेष्ठ और पुत्रस्थानीय बना  
देते हैं, शत्रुओंको तरनेके लिये उस महती अहिसिता, प्राप्त  
होती हुई सम्पत्तिको आप हमारे लिये लाइये ॥ १० ॥

एकादशी ॥

स नो॑ नि॒यु॒ज्भिः॑ पु॒रु॒हू॒त वे॒धो वि॒श्ववा॑राभि॒रा ग॑हि  
प्रय॒ज्यो ।

न॒ या अ॒दे॒वो व॑र॒ते न॒ दे॒व आ॒भि॒र्या॑हि॒ तू॒य॒मा म॒द्र॒य-  
द्रिक् ॥ ११ ॥



सः । नः । नियुत्सभिः । पुरुऽहूत । वेधः । विश्वऽवाराभिः । आ ।

गहि । प्रयज्यो इति प्रयज्यो ।

न । याः । अदेवः । वरते । न । देवः । आ । आभिः । याहि ।

तूयम् । आ । मद्रथद्रिक् ॥ ११ ॥

हे पुरुहूत बहुभिर्यजमानैराहूत हे वेधः सर्वस्य विधातः हे प्रयज्यो प्रकर्षेण ईड्य प्रकृष्टगमन वा स तादृशस्त्वं विश्ववाराभिः व्याप्तवालाभिर्विश्वेषां वारयित्रीभिर्वरणीयाभिर्वा नियुद्भिः अश्वैः नः अस्मान् आ गहि आगच्छ । या नियुतस्तवागमनसाधनाः अदेवः देवविलक्षणः असुरो न वरते न वारयति तथा देवोपि न वरते । आभिः कैरपि अनिवार्याभिर्नियुद्भिः मद्रथद्रिक् मदभिमुखदृष्टिः अस्मदभिमुखः सन् तूयम् तूर्णम् आ याहि आगच्छ ॥

इति तृतीयं सूक्तम् ॥

हे बहुतसे यजमानोंसे आहूत ! हे सबके विधातः ! हे अधिकता से पूज्य आप अयालों वाले अश्वोंके द्वारा हमारे पास आइये । आपके आगमनके साधन जिन अश्वोंको असुर नहीं रोकते और न देवता रोक सकते हैं, उन अश्वोंके द्वारा आप शीघ्रतापूर्वक मेरे अभिमुख होते हुए आइये ॥ ११ ॥

तृतीय सूक्त समाप्त ( ६५२ )

आभिसविके तृतीयेहनि षष्ठे च “यस्तिग्मशृङ्गः” इति संपातसंज्ञकं सूक्तं माध्यन्दिनसवने ब्राह्मणाच्छंसिशस्त्रे विनियुक्तम् । सूत्रं तु पूर्वसूक्तेन सह उदाहृतम् ॥

आभिसविक तीसरे दिनमें और छठे दिनमें भी “यस्तिग्मशृङ्गः” यह संपातसंज्ञक सूक्त माध्यन्दिन सवनके ब्राह्मणाच्छंसिशस्त्रमें विनियुक्त होता है ॥ इसका सूत्र पहिले सूक्तके साथ कह दिया है ।

तत्र मथमा ॥

यस्तिग्मशृङ्गो वृषभो न भीम एकः कृष्टीश्च्यावयति  
प्र विश्वाः ।

यः शश्वतो अदाशुषो गयस्य प्रयन्तासि सुष्वितरायं  
वेदः ॥ १ ॥

यः । तिग्मऽशृङ्गः । वृषभः । न । भीमः । एकः । कृष्टीः । च्या-  
वयति । प्र । विश्वाः ।

यः । शश्वतः । अदाशुषः । गयस्य । प्रयन्ता । असि । सुष्विऽ-  
तराय । वेदः ॥ १ ॥

हे इन्द्र यस्त्वं तिग्मशृङ्गः तीक्ष्णाभ्यां शृङ्गाभ्याम् उपेतो वृषभो  
न भीमः वृषभ इव भयजनकः । तथा त्वम् एकः असहायस्त्वं विश्वाः  
सर्वाः कृष्टीः । मनुष्यनामैतत् । सर्वान् अस्माकं शत्रुजनान् प्र  
च्यावयसि प्रकर्षेण अपगमयसि । यश्च त्वं शश्वतः । बहुनामै-  
तत् । बहोः अदाशुषः हविरदत्तवतः अयजमानस्य गयस्य ।  
गयम् इति गृहनाम । गृहसदृशस्य यथा कोशगृहं धनपूर्णं वर्तते  
एवम् अप्रदानेन धनपूर्णगृहसदृशस्य लुब्धकस्य वेदः धनं सुष्वि-  
तराय । सुष्ठु सोमाभिषववान् सुष्वी । अतिशयेन सुष्वी सुष्वि-  
तरः । तादृशाय यजमानाय प्रयन्तासि प्रकर्षेण नियमयिता प्रदाता  
भवसि ॥

हे इन्द्र ! जो आप तीखे सींगों वाले वृषभकी समान भयजनक  
हैं, तथा वह आप एक ही हमारे सब शत्रुओंको दूर भगा देते  
हैं और आप अपनेको प्रायः हवि न देने वाले अयजमानके धन-

पूर्ण घरके धनको, सोमका अधिकतासे अभिषव करने वाले यजमानको अधिकतासे देते हैं ॥ १ ॥

द्वितीया ॥

त्वं ह त्यदिन्द्र कुत्समावः शुश्रूषमाणस्तन्वा समर्ये ।  
दासं यच्छुण्णं कुर्यवं न्यस्मा अरन्धय आर्जुनेयाय  
शिक्तन् ॥ २ ॥

त्वम् । ह । त्यत् । इन्द्र । कुत्सम् । आवः । शुश्रूषमाणः । तन्वा ।  
समर्ये ।

दासम् । यत् । शुण्णम् । कुर्यवम् । नि । अस्मै । अरन्धयः ।

आर्जुनेयाय । शिक्तन् ॥ २ ॥

हे इन्द्र त्वं ह त्वं खलु त्यत् तत् तदा कुत्सम् एतन्नामानं  
समर्ये मर्यैर्मत्यैर्योद्विष्टभिः सहितः संग्रामः समर्यं तस्मिन् । अथ  
वा मर्यैर्ऋत्विग्भिः सहिते यज्ञ तन्वा शरीरेण शुश्रूषमाणः उप-  
चरन् आवः अरक्तः । यत् यदा अस्मै आर्जुनेयाय अर्जुन्याः पुत्राय  
कुत्साय दासम् एतत्संज्ञकम् असुरं शुण्णम् असुरं कुर्यवं च असुरं  
शिक्तन् तेषां धनं कुत्साय प्रयच्छन् नि अरन्धयः नितरां वशम्  
अनैषीः ॥

हे इन्द्रदेव ! जब आपने अर्जुनीके पुत्र कुत्सके लिये शुण्ण  
नामक असुरको और कुर्यव नामक असुरको दण्ड देकर उनका  
धन देकर उनको बड़े वशमें कर लिया था, उस समय यज्ञमें  
कुत्सकी शरीरसे उपचार करके रक्षा की थी ॥ २ ॥



तृतीया ॥

त्वं धृ॒ष्णो धृ॒षता वी॒तह॑व्यं प्रा॒वो वि॒श्वाभि॑रु॒तिभिः  
सु॒दास॑म् ।

प्र पौरु॑कु॒त्सि त्र॒सद॑स्यु॒मावः॑ क्षेत्र॑साता वृ॒त्रह॑त्येषु पू॒रुम्  
त्वम् । धृ॒ष्णो इति॑ । धृ॒षता । वी॒तह॑व्यम् । प्र । आवः । वि॒श्वाभिः ।  
ऊ॒तिभिः । सु॒दास॑म् ।

प्र । पौरु॑कु॒त्सि त्र॒सद॑स्युम् । आवः । क्षेत्र॑साता । वृ॒त्रह॑त्येषु ।  
पू॒रुम् ॥ ३ ॥

हे धृष्णो शत्रूणां धर्षक इन्द्र त्वं धृषता शत्रुधर्षकेण वज्रेण  
वीतहव्यम् दत्तहविष्कं सुदासम् शोभनदानम् एतन्नामकं राजा-  
नम् अथ वा वीतहव्यं सुदासं च विश्वाभिः सर्वाभिः ऊतिभिः  
रक्षणाभिः प्रावः पारक्षः । किं च वृत्रहत्येषु संग्रामेषु क्षेत्रसाता  
क्षेत्रसातौ भूमिदाने निमित्तभूते सति पौरुकुत्सिम् पुरुकुत्सपुत्रं  
त्रसदस्युं राजानं पूरुं च आवः ॥

हे शत्रुओंको दवाने वाले इन्द्र ! आपने शत्रुओंको दवाने वाले  
वज्रके द्वारा, वीतहव्य और सुदास नामक राजाकी सकल रक्षक  
शक्तियोंके द्वारा बड़ी रक्षा की थी । और आप संग्रामोंके अव-  
सर पर और भूमिदानके अवसर पर पुरुकुत्सके पुत्र राजा त्रस-  
दस्युकी और पूरुकी रक्षा कर चुके हैं ॥ ३ ॥

चतुर्थी ॥

त्वं नृभिर्नृम॑णो दे॒ववी॑तौ भू॒रीणि॑ वृ॒त्रा हर्य॑श्व हंसि  
त्वं नि द॑स्युं चु॒मु॒रि॒ धु॒निं चास्वा॑पयो दु॒भीत॑ये सु॒हन्तु॑

त्वम् । नृऽभिः । नृऽमनः । देवऽवीतौ । भूरीणि । वृत्रा । हरिऽअश्व ।  
हंसि ।

त्वम् । नि । दस्युम् । चुमुरिम् । धुनिम् । च । अस्वापयः ।  
दभीतये । सुहन्तु ॥ ४ ॥

हे नृमणः नृभिर्नेतृभिः स्तोतृभिर्मननीय नृषु यजमानेषु अनु-  
ग्रहमनोयुक्त वा हे हर्यश्व हरिनामकाश्वोपेत इन्द्र त्वं देववीतौ ।  
देवा वियन्ति आगच्छन्ति भक्षयन्त्यत्रेति वा देववीतिर्यज्ञः । अथ  
वा देवा युद्धार्थं गच्छन्त्यत्रेति देववीतिर्देवसंग्रामः । तस्मिन्नि-  
मित्तभूते सति नृभिः नेतृभिर्योद्धृभिर्मरुद्भिः सहितः सन् भूरीणि  
बहूनि वृत्रा वृत्राणि आवरकाणि रक्षांसि पापानि च हंसि हन्तनं  
करोषि । किं च हे इन्द्र त्वं दभीतये दभीतिनामकाय राजर्षये  
तदर्थं सुहन्तु । अविभक्तिकोयं निर्देशः । सुहन्तुः शोभनहनन-  
साधनवज्रोपेतः सन् दस्युं चुमुरिं धुनिं च नि अस्वापयः व्यनाशयः ॥

हे मनुष्य यजमानों पर मनमें अनुग्रह करने वाले नृमणः !  
और हे हरि नामक घोड़ों वाले इन्द्र ! आप यज्ञ वा संग्रामके  
अवसर पर योधा मरुतोंके साथ बहुतसे आवरक राक्षस और  
पापोंका संहार कर डालते हैं । और हे इन्द्र ! आपने दभीति  
नामक राजर्षिके लिये, हननके शोभन साधन वज्रको लेकर  
दस्यु चुमुरि और धुनिको भी नष्ट कर डाला था ॥ ४ ॥

पञ्चमी ॥

तव व्यौतानि वज्रहस्त तानि नव यत् पुरा नवतिं  
च सद्यः ।

निवेशने शततमाविवेपीरहं च वृत्रं नमुचिमुताहन् ५

तव । व्यौत्तानि । वज्रहस्त । तानि । नव । यत् । पुरः । नव-  
तिम् । च । सद्यः ।

निऽवेशने । शतऽतमा । अविवेपीः । अहन् । च । वृत्रम् । नमु-  
चिम् । उत । अहन् ॥ ५ ॥

हे वज्रहस्त इन्द्र तव तानि प्रसिद्धानि बलानि व्यौत्तानि  
अतिदृढानि परैरनभिभाष्यानि यत् यस्मात् कारणात् व्यौत्तै-  
स्तैर्बलैः सहितः सन् नव नवति च पुरः एकोनशतसंख्याकानि  
पुराणि असुरसंबन्धीनि सद्यस्तदानीमेव धाटीमुखेनैव । व्यना-  
शय इति शेषः । निवेशने निवेशनाय शततमा शततमीं पुरीं च  
अविवेपीः व्याप्तोः । ॐ विष्टु व्याप्तौ । यद्गुगन्ताद् अस्मात्  
लुङ् । अभ्यासगुणाभावश्छान्दसः ॐ । वृत्रे च अहन् नमुचि  
नामासुरं च अहन् हतवान् असि ॥

हे वज्रधारिन् इन्द्र ! आपके प्रसिद्ध बल अतिदृढ़ हैं, क्योंकि-  
उन बलोंसे सम्पन्न रह कर आपने असुरोंके निन्यानवे पुरोंको  
नष्ट कर डाला था और निवेशनके लिये सौवीं पुरीमें व्याप्त  
होगए थे और आपने वृत्र तथा नमुचि नामक असुरको भी मार  
डाला था ॥ ५ ॥

षष्ठी ॥

सना ता त इन्द्र भोजनानि रातहव्याय दाशुषे सुदासे  
वृष्णे ते हरी वृषणा युनज्मि व्यन्तु ब्रह्माणि पुरुशाक  
वाजम् ॥ ६ ॥

सना । ता । ते । इन्द्र । भोजनानि । रातहव्याय । दाशुषे ।  
सुदासे ।



वृष्णे । ते । हरी इति । वृषणा । युनज्मि । व्यन्तु । ब्रह्माणि ।

पुरुऽशाक । वाजम् ॥ ६ ॥

हे इन्द्र ते तव रातहव्याय दत्तहव्याय दाशुषे यजमानाय सुदासे ता तानि त्वया दत्तानि भोजनानि भोग्यानि धनानि सना सनानि सनातनानि । बभूवुरिति शेषः । हे पुरुशाक बहु-कर्मन् इन्द्र वृष्णे कामानां वर्षित्रे ते तुभ्यम् । त्वाम् आनेतुम् इत्यर्थः । वृषणा वृषणौ हरी अश्वौ युनज्मि रथे योजयामि । ब्रह्माणि अस्मदीयानि स्तोत्राणि वाजम् बलिनं त्वां व्यन्तु गच्छन्तु ॥

हे इन्द्र ! आपको हवि देने वाले यजमान सुदासके लिये आप के दिये हुए भोग्य धन सनातन होगए थे । हे बहुकर्मन् इन्द्र ! कामनाओंकी वर्षा करने वाले आपको लानेके लिये वृषण हरि नामक अश्वोंको मैं रथमें नियुक्त करता हूँ । हमारे स्तोत्र बली बने हुए आपको प्राप्त होवें ॥ ६ ॥

सप्तमी ॥

मा ते अस्यां सहसावन् परिष्ठावघायं भूम हरिवः परादै  
त्रायस्व नोवृकेभिर्वरूथैस्तव प्रियासः सूरिषु स्याम ७

मा । ते । अस्याम् । सहसावन् । परिष्ठौ । अघायं । भूम ।  
हरिऽवः । पराऽदै ।

त्रायस्व । नः । अवृकेभिः । वरूथैः । तव । प्रियासः । सूरिषु ।  
स्याम ॥ ७ ॥

हे सहसावन् बलवन् इन्द्र । ❀ मध्ये तृतीयाविभक्तिश्चा-  
न्दसी ❀ । अथ वा सह एव सहसं तद्वन् । ❀ मतुपि “अन्ये-

षामपि दृश्यते" इति दीर्घः ॐ । हे हरिवः हरितवर्णोपेताश्व इन्द्र  
ते तव अस्यां क्रियमाणायां परिष्टौ पर्येषणायां परादै परादानाय  
परित्यागाय एवंलक्षणाय अघाय पापाय वयं मा भूम । किं च  
हे इन्द्र नः अस्मान् अष्टकेभिः अष्टकैरहिंसितव्यै वरूथैः । वार-  
यन्त्युपद्रवान् इति वरूथानि रक्षणानि । तैर्नः अस्मान् प्रायस्क  
पाहि । वयं च सूरिषु स्तोत्रेषु विद्वत्सु मध्ये तव प्रियासः प्रियाः  
स्याम भवेम ॥

हे बलवान् इन्द्र ! हे हरित वर्ण वाले अश्वोंसे सम्पन्न इन्द्र !  
इस आपकी की जाती हुई परिष्टिमें हम त्यागने योग्य पापके  
लिये न होवें । और हे इन्द्रदेव ! हमको आप अहिंसितव्य रक्षा-  
साधनोंसे पालिये और हम भी स्तोता तथा विद्वानोंमें आपके  
प्रिय होवें ॥ ७ ॥

अष्टमी ॥

प्रियास इत् ते मघवन्नभिष्टौ नरो मदेम शरणे सखायः  
नि तुर्वशं नि याद्वं शिशीह्यतिथिग्वाय शंस्यं करि-  
ष्यन् ॥ ८ ॥

प्रियासः । इत् । ते । मघवन् । अभिष्टौ । नरः । मदेम । शरणे ।  
सखायः ।

नि । तुर्वशम् । नि । याद्वम् । शिशीहि । अतिथिग्वाय । शंस्यम् ।  
करिष्यन् ॥ ८ ॥

हे मघवन् धनवन्निन्द्र ते तव अभिष्टौ अभ्येषणायाम् अभि-  
गमनेच्छायां नरः हविषां नेतारो यजमाना वयं सखायस्तव सखि-

भूताः समानख्यानाः अत एव प्रियास इत् प्रिया एव सन्तः  
शरणे । गृहनामैतत् । मदीय एव गृहे मदेम हृष्टा भवेम । किं च  
अतिथिगवाय अतिथ्यर्था गावो यस्य सः । अतिथिग्वः । अथ वा  
सत्कारार्थम् अतिथीन् गच्छतीत्यतिथिग्वः । तस्मै राज्ञे शंस्यम्  
शंसनीयं प्रख्यापनीयं सुखं करिष्यन् कुर्वस्त्वं तुर्वशम् एतन्नामकं  
राजानं नि शिशीहि निशितं कुरु । तथा याद्वम् यदुकुलोत्पन्नं  
राजानं च नि शिशीहि ॥

हे धनवान् इन्द्र ! आपकी अभिगमनकी इच्छामें हविके नेता  
मित्ररूप हुए हम यजमान प्रिय होते हुए ही अपने घरमें प्रसन्न  
रहें । आप अतिथिगु राजाके लिये प्रशंसनीय सुख देते हुए तुर्वश  
नामक राजाको भी तीक्ष्ण करिये । और यदुकुलोत्पन्न राजाको  
भी तीक्ष्ण करिये ॥ ८ ॥

नवमी ॥

सद्यश्चिन्नु ते मघवन्नभिष्टौ नरः शंसन्त्युक्थशासं  
उक्था ।

ये ते हवेभिर्वि पणीरदाशन्नस्मान् वृणीष्व युज्याय  
तस्मै ॥ ६ ॥

सद्यः । चित् । नु । ते । मघवन् । अभिष्टौ । नरः । शंसन्ति ।

उक्थः । शासः । उक्था ।

ये । ते । हवेभिः । वि । पणीन् । अदाशन् । अस्मान् । वृणीष्व ।

युज्याय । तस्मै ॥ ६ ॥

हे मघवन्निन्द्र ते तव अभिष्टौ अभ्येषणायाम् अभिगत्यां सत्यां



तव अभिगमने सति नरः स्तुतिनेतार ऋत्विजः उक्थशासः उक्थानां  
शस्त्राणां शंसितारः सद्यश्चिन्नु तवाभिगमनसमय एव उक्था  
उक्थानि शस्त्राणि शंसन्ति कुर्वन्ति । ते इत्युक्तं के त इति तान्  
विशिनष्टि । ये नरः नेतार ऋत्विजः ते तव हवेभिः हवैः आह्वानैः  
पणीन वणिग्भूतान् लुब्धकान् अयजतो नरान् व्यदाशन् । दाश-  
तिर्वधकर्मा । विशेषेण हिंसितवन्तः । ते शंसन्तीति पूर्वत्र संबन्धः ।  
यस्माद् एवं तस्माद् उक्थानां शंसितान् अस्मान् तस्मै प्रसिद्धाय  
युज्याय योजयितव्याय फलाय यागाय वा वृणीष्व वरणं कुरु  
स्वीकुरु ॥

हे मघवन् इन्द्र ! आपका अभिगमन होने पर स्तुति करने वाले  
और शस्त्रोंको कहने वाले ऋत्विज आपके अभिगमनके समय  
ही शस्त्रोंका उच्चारण करते हैं । जो नेता ऋत्विज आपके आह्वानों  
से वणिग्भूत लोभी यजन न करने वाले मनुष्योंको मारते हैं वे  
ऋत्विज आपके अभिगमनके समय शस्त्रोंका उच्चारण करते हैं ।  
इस कारण हम उक्थोंका शंसन करने वालोंको योजयितव्य फल  
यागके लिये वरण कीजिये ॥ ६ ॥

दशमी ॥

ए॒ते स्तो॒मा न॒रां नृ॒तम् तु॒भ्यम् अ॒स्मद्र॒यञ्चो॒ दद॑तो म॒घानि॑  
तेषा॑मिन्द्र वृ॒त्रह॒स्ये शि॒वो भूः॑ सखा॑ च शू॒रो॒वि॒ता च॑  
नृ॒णाम् ॥ १० ॥

ए॒ते । स्तो॒माः । न॒राम् । नृ॒तम् । तु॒भ्यम् । अ॒स्मद्र॒यञ्चः । दद॑तः ।  
म॒घानि॑ ।

तेषाम् । इन्द्र । वृत्रहृत्ये । शिवः । भूः । सखा । च । शूरः ।

अविता । च । नृणाम् ॥ १० ॥

नराम् नेतॄणां मध्ये हे नृत्तम अतिशयेन नेतः इन्द्र अस्मद्व्यञ्चः  
अस्मान् अञ्चन्तः अस्मदभिमुखः मघानि मंहनीयानि धनानि  
हविल्लक्षणाणि ददतः प्रयच्छन्तः सन्तः एते इदानीं कृतप्रकारा  
स्तोमाः स्तवाः तुभ्यं त्वदर्थम् । कृता इति शेषः । यद्वा मघानि ददतः  
प्रयच्छतः । ❀ चतुर्थ्यर्थे षष्ठी ❀ । प्रयच्छते तुभ्यम् इति व्याख्ये-  
यम् । हे इन्द्र तेषाम् एतेषाम् अस्माभिः कृतानां स्तोमानाम् ।  
यद्वा तेषां स्तोमसंपादकानाम् अस्माकम् इति व्याख्येयम् । वृत्र-  
हृत्ये वृत्रस्य आवरकस्य पापस्य वा हृत्ये हनने निमित्तभूते सति  
शिवः सुखयिता भूः भव । किं च नृणाम् हविषां स्तुतीनां वा  
नेतॄणाम् अस्माकं शूरस्त्वं सखा च भूः सखिवन्मित्रभूतो भव ।  
अविता च रक्षिता च भूः भव ॥

हे नेताओंमें भी परम नेता इन्द्र ! हमारे अभिमुख होकर श्रेष्ठ  
धनोंको प्रदान करने वाले आपके लिये ये स्तोत्र हैं । हे इन्द्र !  
इन हम स्तोत्र करने वालोंके पापनिवारणके अवसर पर आप  
सुख देने वाले हों और हवि पहुँचाने वाले हमारे लिये आप  
मित्रकी समान होजावें और हमारे रक्षक भी बनें ॥ १० ॥

एकादशी ॥

नू इन्द्र शूर स्तवमान ऊती ब्रह्मजूतस्तन्वा वावृधस्व  
उप नो वाजान् मिमीह्युप स्तीन् यूयं पात स्वस्तिभिः  
सदा नः ॥ ११ ॥

नू । इन्द्र । शूर । स्तवमानः । ऊती । ब्रह्मजूतः । तन्वा । वावृधस्व ।

उप । नः । वाजान् । मिमीहि । उप । स्तीन् । यूयम् । पात ।  
स्वस्तिऽभिः । सदा । नः ॥ ११ ॥

हे शूर शौर्योपेत इन्द्र ऊती ऊत्या रक्षणया निमित्तभृतया स्तव-  
मानः । ❀ कर्मणि कर्तृप्रत्ययः ❀ । अस्माभिः स्तूयमानः तथा  
ब्रह्मजूनः ब्रह्मणा द्विषा जूनः प्रापितश्च सन् तन्वा स्वकीयेन शरी-  
रेण वृद्धस्व अत्यर्थं प्रवृद्धो भव । ततो नः अस्मभ्यं वाजान्  
अन्नानि उप मिमीहि । उप प्रयच्छेत्यर्थः । तथा स्तीन् स्त्यायन्ति  
समर्थयन्ति कुलम् इति स्तयः पुत्राद्याः । तानपि उप मिमीहि ।  
हे अन्ये अग्न्यादयो देवाः यूयमपि स्वस्तिभिः । सु अस्तीति स्वस्ति  
क्षेमः । तैः सदा नः अस्मान् पात रक्षत ॥

इति चतुर्थोऽनुवाकः ॥

हे शूरतासम्पन्न इन्द्र ! रक्षाके कारण हमसे स्तुति पाते हुए  
तथा मन्त्रके द्वारा हवि पाते हुए आप अपने शरीरसे बढ़िये ।  
फिर हमारे लिये धन प्रदान करिये और पुत्र आदिको प्रदान  
करिये । और हे अन्य अग्नि आदि देवताओं ! आप भी क्षेम  
करके हमारी रक्षा करते रहिये ॥ ११ ॥

बीसवें काण्डके चतुर्थ अनुवाकमें चतुर्थ सूक्त समाप्त ( ६५३ )

चतुर्थ अनुवाक समाप्त

अभिस्रवे षडहे “आ याहि सुषुमा हि ते” इत्यादयो यथाक्रमं  
षड् आज्यस्तोत्रिया भवन्ति । तद् उक्तं वैताने । “अभिस्रव आ  
याहि सुषुमा हि त इति षड् आज्यस्तोत्रिया आरम्भणीयापर्या-  
सवर्जम्” इति [ वै० ६. १ ] ॥ पाठक्रमात् “इन्द्रं वो विश्वत-  
स्परि [ २०. ३६. १ ] “व्यन्तरिक्षमतिरत्” [ २०. ३६. २ ]  
इत्येतयोः प्रयोगे प्राप्ते प्रतिषेधार्थम् आरम्भणीयापर्यासवर्जमित्यु-  
क्तम् । तेन “आ याहि सुषुमा हि ते” [ २०. ३८. १-३ ]



“इन्द्रमिद् गाथिनो बृहत्” [ २०. ३८. ४-६ ] “इन्द्रेण सं हि दत्तसे” [ २०. ४०. १-३ ] “इन्द्रो दधीचो अस्थभिः” [ २०. ४१. १-३ ] “वाचमष्टापदीमहम्” [ २०. ४२. १-३ ] “भिन्धि विश्वा अप द्विषः” [ २०. ४३. १-३ ] इति षट् स्तोत्रियाः ॥

तथा गवामयनस्य चतुर्विंशे “इन्द्रमिद् गाथिनो बृहत्” [ २०. ३८. ४-६ ] इत्याज्यस्तोत्रियो भवति । “चतुर्विंश इन्द्रमिद् गाथिनो बृहद् इत्याज्यस्तोत्रियः” [ वै० ६. १ ] इति सूत्रितत्वात् ॥

तथा स्वरसामाख्येषु त्रिष्वहःसु यथाक्रमम् “आ याहि” इत्यादय आज्यस्तोत्रिया भवन्ति । तद् उक्तं वैताने । “स्वरसामस्वा याहि सुषुमा हि त इन्द्रमिद् गाथिनो बृहद् इन्द्रेण सं हि दत्तस इति” इति [ वै० ६. ३ ] ॥

अभिप्लव षडहर्मे “आ याहि सुषुमा हि ते” आदिक यथाक्रम छः आज्यस्तोत्रिय होते हैं । इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि—“अभिप्लव आ याहि सुषुमा हि त इति षट् आज्यस्तोत्रिया आरंभणीयापर्यासवर्जम्” ( वैतानसूत्र ६. १ ) । पाठक्रम के अनुसार “इन्द्रं वो विश्वतस्पति” ( २० । ३६ । १ ) “व्यन्तरिक्षमतिरत्” ( २० । ३६ । २ ) इनके प्रयोगकी प्राप्ति होने पर इनके प्रतिषेधके लिये आरंभणीयापर्यासवर्जम् कहा है ॥ इस कारण “आ याहि सुषुमा हि ते” ( २० । ३८ । १-३ ) “इन्द्रमिद् गाथिने बृहद्” ( २० । ३८ । ४-६ ) “इन्द्रेण सं हि दत्तसे” ( २० । ४० । १-३ ) “इन्द्रो दधीचो अस्थभिः” ( २० । ४१ । १-३ ) “वाचमष्टापदीमहम्” ( २० । ४२ । १-३ ) “भिन्धि विश्वा अप द्विषः” ( २० । ४३ । १-३ ) ये छः स्तोत्रिय हैं ।

तथा गवामयनके चतुर्विंशमें “इन्द्रमिद् गाथिनो बृहद्” ( २० । ३८ । ४-६ ) यह आज्यस्तोत्रिय होता है । इसी बात

को वैतानसूत्र ६ । १ में कहा है, कि—“चतुर्विंश इन्द्रमिद् गाथिनो बृहद् इत्याज्यस्तोत्रियः” ॥

तथा स्वरसाम नामक तीन दिनोंमें यथाक्रम “आ याहि” इत्यादिक आज्यस्तोत्रिय होते हैं। इसी बातको वैतानसूत्र ६ । ३ में कहा है, कि—“स्वरसामस्वा-याहि सुषुमा हि त इन्द्रमिद् गाथिनो बृहद् इन्द्रेण सं हि वृक्षसे” ॥

आ याहि सुषुमा हि त इन्द्र सोमं पिबा इमम् ।  
एदं बर्हिः सदो मम ॥ १ ॥

आ । याहि । सुषुमा । हि । ते । इन्द्र । सोमम् । पिब । इमम् ॥

आ । इदम् । बर्हिः । सदः । मम ॥ १ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप यहाँ आइये, हमने सोमका अभिषेक कर लिया है। इस अभिषुत सोमका आप पान करिये। इन बिछी हुई कुशाओं पर आप बैठिये ॥ १ ॥

आ त्वा ब्रह्मयुजा हरी वहतामिन्द्र केशिना । उप  
ब्रह्माणि नः शृणु ॥ २ ॥

आ । त्वा । ब्रह्मयुजा । हरी इति । वहताम् । इन्द्र । केशिना ॥

उप । ब्रह्माणि । नः । शृणु ॥ २ ॥

हे इन्द्र ! मन्त्रोंके द्वारा रथमें संयुक्त होने वाले, अभीष्ट स्थान को ले जाने वाले, बड़े बड़े अयालों वाले हरी नामक घोड़े आप को ( हमारे यज्ञमें ) लावें, आप आकर हमारे आह्वान सुनिये २ ब्रह्माणस्त्वा वयं युजा सोमपामिन्द्र सोमिनः । सुता-

वन्तो हवामहे ॥ ३ ॥

ब्रह्माणः । त्वा । वयम् । युजा । सोमऽपाम् । इन्द्र । सोमिनः ॥  
सुतऽवन्तः । हवामहे ॥ ३ ॥

हे इन्द्र ! हम पूजा करने वाले सोमयाग कर चुके हैं और अभिषेक किया हुआ सोम हमारे पास है, ऐसे हम सोमपान करने वाले आपको हृदयस्पर्शी स्तोत्रोंसे बुलाते हैं ॥ ३ ॥

इन्द्रभिद् गाथिनो बृहदिन्द्रमर्केभिरर्किणः । इन्द्रं वाणी-  
रनूषत ॥ ४ ॥

इन्द्रम् । इत् । गाथिनः । बृहत् । इन्द्रम् । अर्केभिः । अर्किणः ॥  
इन्द्रम् । वाणीः । अनूषत ॥ ४ ॥

गाथागान करने वाले पुरुष इन्द्रकी ही प्रशंसा करते हैं, पूजा करने वाले मन्त्रोंके द्वारा इन्द्रका ही विशाल पूजन करते हैं, और वाणी भी इन्द्रकी ही स्तुति करती है ॥ ४ ॥

इन्द्र इद्धर्योः सचा समिंश्ल आ वचोयुजा । इन्द्रो  
वज्री हिरण्ययः ॥ ५ ॥

इन्द्रः । इत् । हर्योः । सचा । समऽमिंश्लः । आ । वचऽयुजा ॥  
इन्द्रः । वज्री । हिरण्ययः ॥ ५ ॥

इन्द्रदेव ही हरि नामक घोड़ोंके साथ रहते हैं, यह मन्त्रसे रथमें संयुक्त होने वाले घोड़ोंसे भली प्रकार प्राप्त होते हैं, इन्द्र-देव ही हित रमणीय हैं और वज्रधारी हैं ॥ ५ ॥

इन्द्रो दीर्घाय चक्षस आ सूर्य रोहयद् दिवि । वि  
गोभिरद्रिमैरयत् ॥ ६ ॥



इन्द्रः । दीर्घाय । चक्षसे । आ । सूर्यम् । रोहयत् । दिवि ॥ वि ।

गोभिः । अद्रिम् । ऐरयत् ॥ ६ ॥

इति पञ्चमेनुवाके प्रथमं सूक्तम् ॥

इन्द्रने दीर्घ दर्शनके लिये सूर्यको आकाशमें चढ़ाया है और और सूर्यात्मक इन्द्रने किरणोंसे मेघोंको विदीर्ण किया है ॥६॥

पञ्चम अनुवाकमें प्रथम सूक्त समाप्त ( ६५४ )

गवामयनादौ संवत्सरे प्रातःसवने अनुरूपाद् अनन्तरम् “इन्द्रं वो विश्वतस्परी” [ २०. ३६. १ ] इति ऋग् आरम्भणीया । तत्रैव “व्यन्तरिक्षम् अतिरत्” [ २०. ३६. २ ] इति पर्यासो भवति । तद् उक्तं वैताने । “इन्द्रं वो विश्वतस्परीत्यारम्भणीया । व्यन्तरिक्षमतिरदिति पर्यासः” इति [ वै० ६. ५ ] ॥ आरभ्यते उक्तमुखम् इत्यारम्भणीया । पर्यस्यते परिसमाप्यते अनेन शस्त्रमिति पर्यासः ॥

तथा गोसवविवधवैश्यस्तोमेषु त्रिषु एकादेषु “इन्द्रं वो विश्वतस्परी” [ २०. ३६ ] “आ नो विश्वासु हव्यः” [ २०. १०४. ३ ] एतौ आज्यपृष्ठस्तोत्रियौ भवतः । तद् उक्तं वैताने । “गोसवविवधवैश्यस्तोमेष्विन्द्रं वो विश्वतस्परीणो विश्वासु हव्य इति” इति [ वै० ८. १ ] ॥

गवामयन आदिमें सम्बत्सरेके प्रातःसवनमें अनुरूपके अनन्तर “इन्द्रं वो विश्वतस्परी” ( २० । ३६ । १ ) की ऋचा आरम्भणीया है, तहाँ ही “व्यन्तरिक्षम् अतिरद्” ( २० । ३६ । २ ) यह पर्यास होता है । इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि— “इन्द्रं वो विश्वतस्परीत्यारम्भणीया । व्यन्तरिक्षमतिरदिति पर्यासः” ॥

तथा गोसव विवध वैश्यस्तोमोंके तीन एकादोंमें “इन्द्रं वो

विश्वतस्परि” ( २० । ३६ ) “आ नो विश्वासु इव्यः” ( २० । १०४ । ३ ) यह आज्यपृष्ठस्तोत्रिय होते हैं। इसी बातको वैतान-सूत्रमें कहा है, कि—“गोसवविवधवैश्यस्तोमेष्विन्द्रं वो विश्व-तस्पर्याणो विश्वासु इव्य इति” ( वैतानसूत्र ८ । १ ) ॥

इन्द्रं वो विश्वतस्परि हवामहे जनेभ्यः । अस्माकमस्तु  
केवलः ॥ १ ॥

इन्द्रम् । वः । विश्वतः । परि । हवामहे । जनेभ्यः ॥ अस्माकम् ।

अस्तु । केवलः ॥ १ ॥

हम चारों ओरके प्राणियोंकी ओरसे ( हटा कर ) इन्द्रका  
आवाहन करते हैं, वह केवल हमारे ही हों ॥ १ ॥

व्यंश्नन्तरिक्षमतिरन्मदे सोमस्य रोचना । इन्द्रो यद-  
भिनद् वलम् ॥ २ ॥

वि । अन्तरिक्षम् । अतिरत् । मदे । सोमस्य । रोचना ॥ इन्द्रः ।

यत् । अभिनत् । वलम् ॥ २ ॥

इन्द्रदेवने दमकते हुए अन्तरिक्षको वृष्टिके जलसे बढ़ाया था  
( किसकी सहायतासे बढ़ाया था इसके उत्तरमें कहते हैं, कि—)  
सोमरसके पानसे मद होजाने पर बढ़ाया था ( कब ) जब इन्द्र  
ने बलामुर वा मेघको विदीर्ण किया था ॥ २ ॥

उद् गा आजदङ्गिरोभ्य आविष्कृण्वन् गुहां सतीः ।  
अर्वाञ्च नुनुदे वलम् ॥ ३ ॥

उत् । गाः । आजत् । अङ्गिरऽभ्यः । आविः । कृण्वन् । गुहा ।  
सतीः ॥ अर्वाञ्चम् । नुनुदे । बलम् ॥ ३ ॥

इन्द्रदेवने अंगिरा गोत्र वालोंके लिये, गुहामें पड़ी हुई अत  
एव अमकाशित गौओंको प्रकाशित कर दिया था और फिर उन  
को बाहर ले आए थे और उन्होंने गौओंका अपहरण करनेवाले  
बल नामक असुरको भी औंधे मुख करके गिरा दिया था ॥३॥  
इन्द्रेण रोचना दिवो दृहानि दंहितानि च । स्थि-  
राणि न पराणुदे ॥ ४ ॥

इन्द्रेण । रोचना । दिवः । दृहानि । दंहितानि । च ॥ स्थि-  
राणि । न । पराणुदे ॥ ४ ॥

इन्द्रदेवने आकाशमें दमकने हुए ग्रह नक्षत्र आदिको स्थूल  
किया है और दृढ़ किया है अत एव स्थिर होनेके कारण उनको  
कोई च्युत नहीं कर सकता ॥ ४ ॥

अपामूर्मिमदन्निव स्तोमं इन्द्राजिरायते । विते मदा  
अराजिषुः ॥ ५ ॥

अपाम् । ऊर्मिः । मदन्इव । स्तोमः । इन्द्र । अजिरज्यते ॥ वि ।  
ते । मदाः । अराजिषुः ॥ ५ ॥

इति पञ्चमेनुवाके द्वितीयं सूक्तम् ॥

हे इन्द्रदेव ! आपका स्तोत्र समुद्र आदिको वृष्टिजलसे हर्षसा  
देता हुआ रसकी समान शीघ्रतासे आपके मुखसे निकलता है  
आपके सोमपानजनित मद विशेषरूपसे दमकते हैं ॥ ४ ॥

पञ्चम अनुवाकमें द्वितीय सूक्त समाप्त ( ६५५ )



“इन्द्रेण सं हि दक्षसे” इत्यस्य “आ याहि सुषुमा हि ते” [२०. ३८] इत्यत्र विनियोग उक्तः ॥

तथा पृष्ठयस्य तृतीयेहनि “इन्द्रेण सं हि दक्षसे” [२०. ४०] “वयं घ त्वा सुतावन्तः” [२०. ५२] “त्वं न इन्द्रा भर” [२०. १०८] इत्येते आज्यपृष्ठोक्तस्तोत्रिया भवन्ति । तद् उक्तं वैताने । “तृतीय इन्द्रेण सं हि दक्षसे वयं घ त्वा सुतावन्तस्त्वं न इन्द्रा भरेति” इति [ वै० ८. ४ ] ॥

“इन्द्रेण सं हि दक्षसे” इसका “आ याहि सुषुमा हि ते” ( २० । ३८ ) के साथ विनियोग कह दिया है ।

तथा पृष्ठयके तृतीय दिनमें “इन्द्रेण सं हि दक्षसे” ( २० । ४० ) “वयं घ त्वा सुतावन्तः” ( २० । ५२ ) “त्वं न इन्द्रा भर” ( २० । १०८ ) ये आज्यपृष्ठके उक्तस्तोत्रिय होते हैं । इसी बात को वैतानसूत्र ८ । ४ में कहा है, कि—“तृतीय इन्द्रेण सं हि दक्षसे वयं घ त्वा सुतावन्तस्त्वं न इन्द्रा भरेति” ॥

इन्द्रेण सं हि दक्षसे संजग्मानो अबिभ्युषा । मन्दू  
समानवर्चसा ॥ १ ॥

इन्द्रेण । सम् । हि । दक्षसे । सम्जग्मानः । अबिभ्युषा ॥ मन्दू

इति । समानवर्चसा ॥ १ ॥

हे भगवन् इन्द्र ! आप अभयवान् मरुद्गणसे मिलते हुए नित्य ही देखे जाते हैं मरुद्गण और आप दोनों एकत्र मिल कर नित्य प्रसुद्धित रहते हैं और आप दोनोंकी दीप्ति समान है । अनवद्यैरभिभुभिर्मखः सहस्वदर्चति । गणैरिन्द्रस्य काम्यैः ॥ २ ॥

अनवद्यैः । अभिद्युऽभिः । मखः । सहस्वत् । अर्चति ॥ गणैः ।

इन्द्रस्य । काम्यैः ॥ २ ॥

निष्पाप और दमकते हुए इन्द्रके काम्यगणोंसे यज्ञ बलपूर्वक शोभा पाता है ॥ २ ॥

आदह स्वधामनु पुनर्गर्भत्वमेरिरे । दधाना नाम यज्ञियम् ॥ ३ ॥

आत् । अह । स्वधाम् । अनु । पुनः । गर्भस्त्वम् । आर्ईरिरे ॥

दधानाः । नाम । यज्ञियम् ॥ ३ ॥

इति पञ्चमेनुवाके तृतीयं सूक्तम् ॥

इसके अनन्तर यह स्वधा देने पर गर्भत्वको प्राप्त होजाते हैं और यज्ञिय नामको धारण करते हैं ॥ ३ ॥

पञ्चम अनुवाकमें तृतीय सूक्त समाप्त ( ६५६ )

“इन्द्रो दधीचो अस्थभिः” इत्यस्य “आ याहि सुषुमा हि ते” [ २०. ३८ ] इत्यत्र विनियोग उक्तः ॥

तथा पृष्ठ्यषडहस्य एकविंशस्तोमके चतुर्थेहनि एकाहैकीभूते “इन्द्रो दधीचो अस्थभिः” इत्यादयः आज्यपृष्ठोक्थस्तोत्रिया भवन्ति । तद् उक्तं वैताने । “पृष्ठ्यस्यैकविंश इन्द्रो दधीचो अस्थभिः [ २०. ४१ ] विश्वाः पृतना अभिभूतरं नरम् [ २०. ५४ ] एवा हसि वीरयुः [ २०. ६० ] इति” इति [ वै०८. २ ] ॥

“इन्द्रो दधीचो अस्थभिः” सूक्तका “आ याहि सुषुमा हि ते” ( २० । ३८ ) में विनियोग कह दिया है ।

तथा पृष्ठ्यषडहके एकविंश स्तोमक चतुर्थ दिनके एकाहैकीभूतमें “इन्द्रो दधीचो अस्थभिः” इत्यादिक आज्यपृष्ठोक्थस्तो-

त्रिय होते हैं । इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि—“पृष्ठयस्यै-  
कविंश इन्द्रो दधीचो अस्थभिः ( २० । ४१ ) विश्वाः पृतना  
अभिभूतरं नरम् ( २० । ५४ ) एवा ह्यसि वीरयुः ( २० । ६० )”  
( वैतानसूत्र ८ । २ ) ॥

इन्द्रो दधीचो अस्थभिर्वृत्रायप्रतिष्कृतः । जघान  
नवतीर्नव ॥ १ ॥

इन्द्रः । दधीचः । अस्थभिः । वृत्राणि । अप्रतिष्कृतः ॥

जघान । नवतीः । नव ॥ १ ॥

संग्रामोंमें मुख न मोड़ने वाले इन्द्रदेवने वृत्रासुरके निन्यानवे  
पुरोंको नष्ट कर दिया है ॥ १ ॥

इच्छन्नश्वस्य यच्छिरः पर्वतेष्वपश्रितम् । तद् विद-  
च्छर्यणावति ॥ २ ॥

इच्छन् । अश्वस्य । यत् । शिरः । पर्वतेषु । अपश्रितम् ॥ तत् ।

विदत् । शर्यणावति ॥ २ ॥

पर्वतोंमें अपश्रित अश्वके शिरकी इच्छा करते २ इन्होंने  
उसको शर्यणावत्में पाया था ॥ २ ॥

अत्राह गोरमन्वत नाम त्वष्टुरपीच्यम् । इत्था चन्द्र-  
मसो गृहे ॥ ३ ॥

अत्र । अह । गोः । अमन्वत । नाम । त्वष्टुः । अपीच्यम् ॥

इत्था । चन्द्रमसः । गृहे ॥ ३ ॥

इति पञ्चमेनुवाके चतुर्थं सूक्तम् ॥



इस चन्द्रमण्डलरूपी घरमें सूर्यात्मक इन्द्रदेवकी ही एक किरण गई हुई है, इस बातको दूसरी सूर्य किरणें जानती हैं ॥३॥

पञ्चम अनुवाकम चतुर्थ सूक्त समाप्त ( ६५७ )

“वाचमष्टापदीमहम्” इत्यस्य विनियोगः “आ याहि सुषुमा हि ते” [ २०. ३८ ] इत्यनेन सह उक्तः ॥

तथा अश्वमेधस्य त्र्यहस्य द्वितीयेऽहनि “वाचमष्टापदीमहम्” [ २०. ४२ ] “स्वादोरित्था विषूवतः” [ २०. १०६ ] इत्येतौ आज्यपृष्ठस्तोत्रियौ भवतः। तद् उक्तं वैताने। “अश्वमेधस्य वाचमष्टापदीमहं स्वादोरित्था विषूवत इति” इति [ वै० ८. ३ ] ॥

“वाचमष्टापदीमहम्” का विनियोग “आ याहि सुषुमा हि ते” ( २०। ३८ ) के साथ कह दिया है।

तथा अश्वमेध त्र्यहके दूसरे दिन “वाचमष्टापदीमहम्” (२०। ४२) “स्वादोरित्था विषूवतः” ( २०। १०६ ) ये दोनों आज्यपृष्ठस्तोत्रिय होते हैं। इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि— “अश्वमेधस्य वाचमष्टापदीमहम् स्वादोरित्था विषूवतः” ( वैतानसूत्र ८। ३ ) ॥

वाचमष्टापदीमहं नवसक्तिमृतस्पृशम् । इन्द्रात् परि  
तन्वं ममे ॥ १ ॥

वाचम् । अष्टापदीम् । अहम् । नवसक्तिम् । मृतस्पृशम् ॥  
इन्द्रात् । परि । तन्वम् । ममे ॥ १ ॥

मैं इन्द्रदेवसे अष्टापदी, नवसक्ति, सत्यका स्पर्श करने वाली वाणीको अपने शरीरमें स्थापित कर चुका हूँ ॥ १ ॥

अनु त्वा रोदसी उभे कक्षमाणमकृपेताम् । इन्द्र यद्  
दस्युहाभवः ॥ २ ॥

अनु । त्वा । रोदसी इति । उभे इति । क्रक्षमाणम् । अकुपेताम् ॥

इन्द्र । यत् । दस्युऽहा । अभवः ॥ २ ॥

हे इन्द्रदेव ! जब आप दस्युओंका संहार कर रहे थे, तब दुर्बल पड़ते हुए आप पर द्यावापृथिवीने कृपा की थी-शक्ति प्रदान की थी २ उत्तिष्ठन्नोजसा सह पीत्वी शिप्रे अवेपयः । सोम-

मिन्द्र चमू सुतम् ॥ ३ ॥

उत्सतिष्ठन् । ओजसा । सह । पीत्वी । शिप्रे इति । अवेपयः ॥

सोमम् । इन्द्र । चमू इति । सुतम् ॥ ३ ॥

इति पञ्चमेऽनुवाके पञ्चमं सूक्तम् ॥

हे इन्द्र ! आप उठ कर अभिषेचनके फलकोंसे निचोड़े हुए सोमका पान करके बलपूर्वक उठ कर अपनी ठोड़ियोंको संचालित करिये ॥ ३ ॥

पञ्चम अनुवाकमें पञ्चम सूक्त समाप्त ( ६५८ )

“भिन्धि विश्वा अप द्विषः” इत्यस्य विनियोगः “आ याहि” [ २० ३८ ] इत्यत्र उक्तः ॥

तथा अमोर्ग्यामिण क्रतौ उपरिष्ठान्माध्यंदिनवचनात् प्रातःसवनं “भिन्धि विश्वा अप द्विषः” [ २०. ४३ ] इत्यनुरूपम् अभितः “आ नो याहि” [ २०. ४ ] इत्यनुरूपो भवति । तद् उक्तं वैताने । “भिन्धि विश्वा अप द्विष इत्यनुरूपमभित आ नो याहीति” इति [ वै० ४. ३ ] ॥

“भिन्धि विश्वा अप द्विषः” इसका विनियोग ( २० । ३८ ) में कह दिया है ।

तथा अमोर्ग्यामके क्रतुमें मध्यन्दिनके अनन्तर प्रातःसवनमें

“भिन्धि विश्वा अप द्विषः” ( २० । ४३ ) इस अनुरूपके अनन्तर चारों ओर “आ नो याहि” ( २० । ४ ) यह अनुरूप होता है । इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि—“भिन्धि विश्वा अप द्विष इत्यनुरूपमभित आ नो याहीति” ( वैतानसूत्र ४ । ३ )

भिन्धि विश्वा अप द्विषः परि बाधो जही मृधः ।

वसुं स्पार्हं तदा भर ॥ १ ॥

भिन्धि । विश्वाः । अप । द्विषः । परि । बाधः । जहि । मृधः ॥

वसु । स्पार्हम् । तत् । आ । भर ॥ १ ॥

हे इन्द्र ! हमारे शत्रुओंको आप भेदिये, युद्धकी सब बाधाओंको नष्ट कर दीजिये, तदनन्तर स्पृहणीय धनको हममें पुष्ट करिये यद् वीलाविन्द्र यत् स्थिरे यत् पर्शानि पराभृतम् ।

वसुं स्पार्हं तदा भर ॥ २ ॥

यत् । वीलौ । इन्द्र । यत् । स्थिरे । यत् । पर्शानि । पराभृतम् । ०

जो धन दृढ़ पुरुषमें रहता है, जो स्थिर पुरुषमें रहता है और जो धन पार्श्वोंमें भरा जाता है, उस स्पृहणीय धनको हे इन्द्र ! हमें प्रदान करिये ॥ २ ॥

यस्य ते विश्वमानुषो भूरेदत्तस्य वेदति । वसुं स्पार्हं तदा भर ॥ ३ ॥

यस्य । ते । विश्वमानुषः । भूरेः । दत्तस्य । वेदति ॥ वसु ।

स्पार्हम् । तत् । आ । भर ॥ ३ ॥

इति पञ्चमेनुवाके षष्ठं सूक्तम् ॥



जिस आपके दिये हुए विशाल धनको सब मनुष्य पाते हैं,  
उस स्पृहणीय धनको हमें प्रदान करिये ॥ ३ ॥

पञ्चम अनुवाकमें छठा सूक्त समाप्त ( ६५६ )

प्र सम्राजं चर्षणीनामिन्द्रं स्तोता नव्यं गीर्भिः । नरं  
नृषाहं मंहिष्ठम् ॥ १ ॥

प्र । सम्ऽराजम् । चर्षणीनाम् । इन्द्रम् । स्तोता । नव्यम् । गीऽभिः ॥  
नरम् । नृऽसहम् । मंहिष्ठम् ॥ १ ॥

मैं पूजनीय, सदा नवीन ही रहने वाले, नेता, नृसाह और  
मनुष्योंके राजा इन्द्रकी स्तुतियोंसे स्तुति करूँगा ॥ १ ॥

यस्मिन्नुक्तानि रणयन्ति विश्वानि च श्रवस्या ।

अपामवो नः समुद्रे ॥ २ ॥

यस्मिन् । उक्तानि । रणयन्ति । विश्वानि । च । श्रवस्या ॥

अपाम् । अवः । नः । समुद्रे ॥ २ ॥

जैसे निम्नस्थलमेंको जाने वाला जलोंका समूह समुद्रमेंको  
जाता है, इसी प्रकार जिसमें समस्त उक्त ( स्तोत्र ) और अन्न  
की इच्छासे किये जाने वाले यज्ञ रमण करते हैं ॥ २ ॥

तं सुष्टुत्यां विवासे ज्येष्ठराजं भरे कृत्नुम् । महो वाजिनं  
सनिभ्यः ॥ ३ ॥

तम् । सु । स्तुत्या । आ । विवासे । ज्येष्ठराजम् । भरे । कृत्नुम् ॥

महः । वाजिनम् । सनिभ्यः ॥ ३ ॥

इति पञ्चमेनुवाके सप्तमं सूक्तम् ॥

उनको मैं सुन्दर स्तुतिके द्वारा प्रकाशित करता हूँ, उन शत्रुओं का कर्तन करनेके स्वभाव वाले, बड़े दमकने वाले और स्तोताओंको यश तथा अन्न प्रदान करने वालेको मैं ( हविसे ) पृष्ठ करता हूँ ॥ ३ ॥

पञ्चम अनुवाकमें सप्तम सूक्तसमाप्त ( ६६० )

तीव्रसुदुपशदोपहव्याख्येषु त्रिषु एकाहेषु “अयमु ते समतसि” [ २०.४५ ] “इमा उ त्वा पुरुवसो” [ २०.१०४ ] एतौ आज्यपृष्ठस्तोत्रियौ यथाक्रम भवतः ॥

तथा व्युष्टिग्रहे एतौ आज्यपृष्ठस्तोत्रियौ भवतः ॥

तद् उक्तं वैताने । “तीव्रसुदुशोपहव्यैष्वयमु ते समतसीमा उ त्वा पुरुवसो इति । व्युष्टिग्रहे च” इति [ वै० ८. १ ] ॥

तथा संसर्पचतुर्वीरयोश्चतुरहयोः सर्वेष्वहःसु एतौ आज्यपृष्ठस्तोत्रियौ भवतः । तद् उक्तं वैताने । “संसर्पचतुर्वीरयोरयमु ते समतसीमा उ त्वा पुरुवसो इति” इति [ वै० ८. ३ ] ॥

तीव्र सुदुप शदोपहव्य नामक तीन एकाहोंमें “अयमु ते समतसि” ( २० । ४५ ) “इमा उ त्वा पुरुवसो” ( २० । १०४ ) ये क्रमशः आज्यपृष्ठ स्तोत्रिय होते हैं ।

इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि—“तीव्रसुदुपशदोपहव्यैष्वयमु ते समतसीमा उ त्वा पुरुवसो इति । व्युष्टिग्रहे च” ( वैतानसूत्र ८ । १ ) ॥

तथा चार दिनमें होने वाले संसर्प और चतुर्वीरके सब दिनों मे ये आज्यपृष्ठ स्तोत्रिय होते हैं ।

इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि—“संसर्पचतुर्वीरयोरयमु ते समतसीमा उ त्वा पुरुवसो इति” ( वैतानसूत्र ८ । ३ ) ॥

अयमु ते समतसि कपोत इव गर्भधिसु । वचस्तच्चिन्न ओहसे ॥ १ ॥

अयम् । ऊं इति । ते । सम् । अतसि । कपोतः ऽइव । गर्भऽधिम् ॥

वचः । तत् । चित् । नः । ओहसे ॥ १ ॥

जिस हमारे वचनकी आप तर्कना करते हैं, उस हमारे वचन को कपोत जसे गर्भधारण करने वाली गर्भधि ( कपोती ) को प्राप्त होता है तिस प्रकार आप प्राप्त होवें अर्थात् हमारे वचनका सेवन करें ॥ १ ॥

स्तोत्रं राधानां पते गिर्वाहो वीर यस्य ते । विभूति-  
रस्तु सूनृता ॥ २ ॥

स्तोत्रम् । राधानाम् । पते । गिर्वाहः । वीर । यस्य । ते ॥ वि-  
भूतिः । अस्तु । सूनृता ॥ २ ॥

हे धनोंके स्वामी ! स्तुतियें आपको प्राप्तकराने वाली हैं,  
हे वीर ! ऐसे आपकी विभूति सूनृता हो ॥ २ ॥

ऊर्ध्वस्तिष्ठा न ऊतयेस्मिन् वाजे शतक्रतो । समन्येषु  
ब्रवावहै ॥ ३ ॥

ऊर्ध्वः । तिष्ठ । नः । ऊतये । अस्मिन् । वाजे । शतक्रतो इति  
शतऽक्रतो ॥ सम् । अन्येषु । ब्रवावहै ॥ ३ ॥

इति पञ्चमेनुवाके अष्टमं सूक्तम् ॥

हे शतक्रतो इन्द्र ! इस युद्धमें वा यज्ञमें आप हमारी रक्षाके  
लिये ऊँचे खड़े हूजिये । हम अन्य पुरुषोंकी स्पर्धा करते हुए  
अपने लिये भली प्रकार प्रार्थना कर रहे हैं ॥ ३ ॥

पञ्चम अनुवाकमें अष्टम सूक्तसमाप्त ( ६६१ )



स्वरसामाख्येषु त्रिष्वहःसु अभिस्रवे च “सं चोदय चित्रम-  
र्वाक्” [ २०. ७१. ११ ] “प्रणेतारं वस्यो अच्छा” [ २०. ४६ ]  
एतौ आज्यपृष्ठस्तोत्रियौ पर्यायेण भवतः । तद् उक्तं वैताने ।  
“स्वरसामसु संचोदय चित्रमर्वाक् प्रणेतारं वस्यो अच्छेति पर्या  
येण । अभिस्रवे च” इति [ वै० ८. ४ ] ॥

स्वरसाम नामक तीन दिनोंमें और अभिस्रवमें भी “सं चोदय  
चित्रमर्वाक्” ( २० । ७१ । ११ ) “प्रणेतारं वस्यो अच्छा”  
( २० । ४६ ) ये पर्यायसे आज्यपृष्ठ स्तोत्रिय होते हैं । इसी  
बातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि—“स्वरसामसु संचोदय चित्र-  
मर्वाक् प्रणेतारं वस्यो अच्छेति पर्यायेण । अभिस्रवे च” ( वैतान-  
सूत्र ८ । ४ ) ॥

प्र॒णे॒तारं॑ व॒स्यो॑ अ॒च्छा क॒र्तारं॑ ज्योतिः॑ स॒मत्सु॑ ।

सा॒स॒ह्रांसं॑ यु॒धामि॒त्रान् ॥ १ ॥

प्र॒णे॒तारम् । व॒स्यः । अ॒च्छ । क॒र्तारम् । ज्योतिः॑ । स॒मत्सु॑ ॥

सा॒स॒ह्रांसम् । यु॒धा । अ॒मि॒त्रान् ॥ १ ॥

भली प्रकार प्रसन्न करने वाले यागोंमें उत्कृष्ट ज्योतिको  
करने वाले, नेता, और युद्ध करके शत्रुओंको दवाने वाले ( इन्द्र  
का मैं आह्वान करता हूँ ) ॥ १ ॥

स नः॑ प॒प्रिः पार॑याति॑ स्व॒स्ति ना॒वा पु॒रु॒हूतः॑ । इन्द्रो॑

वि॒श्वा अ॒ति द्विषः॑ ॥ २ ॥

सः । नः॑ । प॒प्रिः । पार॑याति॑ । स्व॒स्ति । ना॒वा । पु॒रु॒हूतः॑ ॥

इन्द्रः॑ । वि॒श्वाः । अ॒ति । द्विषः॑ ॥ २ ॥

वह पुरुहुत पालक इन्द्रदेव हमको स्वस्तिमयी नौकासे पार लगावें, वह इन्द्रदेव सब शत्रुओंसे हमें अधिक रक्खें ॥ २ ॥

स त्वं न इन्द्र वाजेभिर्दशस्या च गातुया च । अच्छा  
च नः सुम्नं नेषि ॥ ३ ॥

सः । त्वम् । नः । इन्द्र । वाजेभिः । दशस्य । च । गातुऽया ।

च ॥ अच्छ । च । नः । सुम्नम् । नेषि ॥ ३ ॥

इति पञ्चमेनुवाके नवमं सूक्तम् ॥

हे इन्द्रदेव ! वह आप हमको अन्नसे, और गमन करने वाली दश अंगुलियोंसे हमारे अभिमुख सुखको लाते हैं ॥ ३ ॥

पञ्चम अनुवाकमें नवम सूक्त समाप्त ( ६६२ )

अतिरात्रे अतिरिक्तोक्थेषु “तमिन्द्रं वाजयामसि” [ २. ४७ ] “महाँ इन्द्रो य ओजसा” [ २०. १३८ ] इत्येतौ स्तोत्रियानुरूपौ भवतः । तद् उक्तं वैताने । “तमिन्द्रं वाजयामसि महाँ इन्द्रो य ओजसेति स्तोत्रियानुरूपौ” इति [ वै० ४. ३ ] ॥

तथा छन्दोमाख्येषु त्रिष्वहःसु प्रातःसवने “इन्द्रा याहि चित्रभानो” [ २०. ८४ ] “तमिन्द्रं वाजयामसि” [ २०. ४७ ] “महाँ इन्द्रो य ओजसा” [ २०. १३८ ] इत्येते यथाक्रमम् आज्य-स्तोत्रिया भवन्ति । तद् उक्तं वैताने । “छन्दोमेष्विन्द्रा याहि चित्रभानो तमिन्द्रं वाजयामसि महाँ इन्द्रो य ओजसेत्याज्यस्तो-त्रियाः” इति [ वै० ६. ३ ] ॥

तथा वैश्वदेवादीनां त्र्यहाणां द्वितीयेष्वहःसु यथासंभवम् “तमिन्द्रं वाजयामसि” [ २०. ४७ ] “अस्तावि मन्म पूर्व्यम्” [ २०. ११६ ] “तं ते मदं गृणीमसि” [ २०. ६१ ] एते आज्य-पृष्ठोक्थस्तोत्रिया भवन्ति । तद् उक्तं वैताने । “द्वितीयेषु तमिन्द्रं

वाजयामस्यस्तावि मन्म पूर्ण्य तं ते मदं गृणीमसीति” इति [ वै० ८. ३ ] ॥

तथा साकमेधज्यहस्य तृतीयेऽहनि “तमिन्द्रं वाजयामसि” [ २०. ४७ ] “आयन्त इव सूर्यम्” [ २०. ५८ ] इत्येतौ आज्यपृष्ठस्तोत्रियौ भवतः । तद् उक्तं वैताने । “साकमेधस्य तमिन्द्रं वाजयामसि आयन्त इव सूर्यमिति” इति [ वै० ८. ३ ] ॥

अतिरात्रके अतिरिक्तोक्त्योर्मे “तमिन्द्रं वाजयामसि महौ इन्द्रो य ओजसेति स्तोत्रियानुरूपौ” ( वैतानसूत्र ४ । ३ ) ॥

तथा छन्दोम नामक तीन दिनोंके प्रातः सवनमें “इन्द्रा याहि चित्रभानो” ( २० । ८४ ) “तमिन्द्रं वाजयामसि” ( २० । ४७ ) “महौ इन्द्रो य ओजसा” ( २० । १३८ ) ये यथाक्रम आज्य-स्तोत्रिय होते हैं । इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि— “छन्दोमेष्विन्द्रा याहि चित्रभानो तमिन्द्रं वाजयामसि महौ इन्द्रो य ओजसेत्याज्यस्तोत्रियाः” ( वैतानसूत्र ६ । ३ )

तथा वैश्वदेव आदि ज्यहोंके द्वितीय दिनोंमें यथासंभव “तमिन्द्रं वाजयामसि” ( २० । ४७ ) “अस्तावि मन्म पूर्ण्यम्” ( २० । ११६ ) “तं ते मदं गृणीमसि” ( २० । ६१ ) ये आज्य-पृष्ठ उक्थस्तोत्रिय होते हैं । “द्वितीयेषु तमिन्द्रं वाजयामस्यस्तावि मन्म पूर्ण्य तं ते मदं गृणीमसि” ( वैतानसूत्र ८ । ३ ) ॥

तथा साकमेध ज्यहके तृतीय दिनमें “तमिन्द्रं वाजयामसि” ( २० । ४७ ) “आयन्त इव सूर्यम्” ( २० । ५८ ) ये दोनों आज्य पृष्ठ स्तोत्रिय होते हैं । इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि— “साकमेधस्य तमिन्द्रं वाजयामसि आयन्त इव सूर्यम्” ( वैतानसूत्र ८ । ३ ) ॥

तमिन्द्रं वाजयामसि महे वृत्राय हन्तवे । स वृषां वृषभो भुवत् ॥ १ ॥



तम् । इन्द्रम् । वाजयामसि । मेहे । वृत्राय । हन्तवे ॥ सः । वृषा ।

वृषभः । भुषत् ॥ १ ॥

हम विशाल वृत्रासुर ( वा मेघ ) का संहार करनेके लिये उन इन्द्रको पुष्ट करते हैं, कामनाओंकी वर्षा करने वाले वह इन्द्र सबमें श्रेष्ठ हों ॥ १ ॥

इन्द्रः स दामने कृत ओजिष्ठः स मदे हितः । द्युम्नी श्लोकी स सोम्यः ॥ २ ॥

इन्द्रः । सः । दामने । कृतः । ओजिष्ठः । सः । मदे । हितः ।

द्युम्नी । श्लोकी । सः । सोम्यः ॥ २ ॥

वह बली इन्द्र ( पापियोंका निग्रह करनेके लिये ) रज्जुके रूपमें किये गए हैं, वह प्रसन्नता करने वाले यज्ञमें आहित होते हैं । वह इन्द्रदेव दमकने वाले हैं, प्रशंसनीय हैं और सौम्य हैं ॥ २ ॥

गिरा वज्रो न संभृतः सबलो अनपच्युतः । ववक्ष ऋष्वो अस्तृतः ॥ ३ ॥

गिरा । वज्रः । न । सम्भृतः । सबलः । अनपच्युतः ॥

ववक्षे । ऋष्वः । अस्तृतः ॥ ३ ॥

अच्युत बलवान् इन्द्र पर्वतसे मिलने वाले वज्रकी समान बलसे भरे हुए हैं । यह अहिंसित श्रेष्ठ पुरुष ( शत्रुओंके धनोंको यजमानों पर ) पहुँचाते हैं ॥ ३ ॥

इन्द्रमिद् गाथिनो बृहदिन्द्रमर्केभिरर्किणः । इन्द्रं वाणीरनूषत ॥ ४ ॥

इन्द्रम् । इत् । गा॒थिनः । बृ॒हत् । इन्द्रम् । अ॒र्केभिः । अ॒र्किणः ॥

इन्द्रम् । वा॒णीः । अ॒नू॒ष॒त ॥ ४ ॥

गाथागान करने वाले पुरुष इन्द्रकी ही प्रशंसा करते हैं, पूजा करने वाले मन्त्रोंके द्वारा इन्द्रका ही विशाल पूजन करते हैं और वाणी भी इन्द्रकी ही स्तुति करती है ॥ ४ ॥

इन्द्र इ॒द्ध॒र्योः स॒चा स॒मि॒श्र आ व॒चो॒युजा । इन्द्रो  
व॒ज्री हि॒र॒ण्य॒यः ॥ ५ ॥

इन्द्रः । इत् । ह॒र्योः । स॒चा । स॒मि॒श्रः । आ । व॒चः॒ऽयुजा ॥

इन्द्रः । व॒ज्री । हि॒र॒ण्य॒यः ॥ ५ ॥

इन्द्रदेव ही हरि नामक घोड़ोंके साथ रहते हैं, यह मन्त्रसे रथमें संयुक्त होने वाले घोड़ासे भली प्रकार प्राप्त होते हैं, इन्द्रदेव ही हित रमणीय हैं और वज्रधारी हैं ॥ ५ ॥

इन्द्रो दी॒र्घाय॒ चक्ष॑स॒ आ सूर्य॑ रो॒हय॑द् दि॒वि । वि  
गो॒भिरि॒द्रि॒मैर॑यत् ॥ ६ ॥

इन्द्रः । दी॒र्घाय॑ । चक्ष॑से । आ । सूर्य॑म् । रो॒हय॑त् । दि॒वि ॥ वि ।

गो॒भिः । अ॒द्रि॒म् । ऐ॒र॒यत् ॥ ६ ॥

इन्द्रने दीर्घदर्शनके लिये सूर्यको आकाशमें चढ़ा दिया है और सूर्यात्मक इन्द्र किरणोंसे मेघोंको विदीर्ण करते हैं ॥ ६ ॥

आ या॒हि सु॒षु॒मा हि त॒ इन्द्र॒ सोमं॒ पिवां॒ इ॒मम् । ए॒दं  
ब॒र्हिः स॒दो म॒म ॥ ७ ॥

आ । या॒हि । सु॒सु॒म् । हि । ते । इन्द्र । सोम॑म् । पिब । इ॒मम् ॥

आ । इ॒दम् । ब॒र्हिः । स॒दः । म॒म ॥ ७ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप यहाँ आइये, हमने सोमका अभिषव कर लिया है । इस अभिषुत सोमका आप पान करिये । इन बिछी हुई कुशाओं पर आप बैठिये ॥ ७ ॥

आ त्वा॑ ब्रह्म॒युजा॑ हरी॒ वह॑तामिन्द्र के॒शिना॑ । उप॒  
ब्रह्मा॑णि नः शृणु ॥ ८ ॥

आ । त्वा । ब्रह्म॒युजा॑ । हरी॒ इति॑ । वह॑ताम् । इन्द्र । के॒शिना॑ ॥

उप । ब्रह्मा॑णि । नः । शृणु ॥ ८ ॥

हे इन्द्र ! मन्त्रोंके द्वारा रथमें संयुक्त होने वाले अभीष्ट स्थान को लेजाने वाले, बड़े २ अयालों वाले हरी नामक घोड़े आपको ( हमारे यज्ञमें ) लावे, आप आकर हमारे आह्वानको सुनिये ८ ब्रह्माणस्त्वा वयं युजा सोमपामिन्द्र सोमिनः । सुता-  
वन्तो हवामहे ॥ ९ ॥

ब्रह्माणः । त्वा । व॒यम् । यु॒जा । सोम॑पाम् । इन्द्र । सोमि॑नः ॥

सुत॑वन्तः । ह॒वाम॑हे । ॥ ९ ॥

हे इन्द्र ! हम पूजा करने वाले सोमयाग कर चुके हैं और अभिषव किया हुआ सोम हमारे पास है, ऐसे हम सोमपान करने वाले आपको हृदयस्पर्शी स्तोत्रोंसे बुलाते हैं ॥ ९ ॥

यु॒जन्ति॑ ब्र॒ध्नम॑रु॒पं च॒रन्तं॑ परि॒ तस्थु॑षः । रोच॑न्ते

रोच॑ना दि॒वि ॥ १० ॥



यु॒ञ्जन्ति॑ । अ॒ध्नम् । अ॒रुष॑म् । च॒रन्त॑म् । परि॑ । त॒स्थुषः॑ ॥ रोच॑न्ते ।  
रोच॑ना । दि॒वि ॥ १० ॥

महान् दमकते हुए और स्थावर तथा जंगमोंके ऊपर विचरण करते हुए, इन्द्रके रथमें हरिनामक अश्व जुतते हैं और वह दमकते हुए अश्व द्युलोकमें दमकते हैं ॥ १० ॥

यु॒ञ्जन्त्य॑स्य॒ काम्या॑ हरी॒ विप॑क्षसा रथे॑ । शो॒णां धृ॒ष्णू  
नृवा॑हसा ॥ ११ ॥

यु॒ञ्जन्ति॑ । अ॒स्य॒ । काम्या॑ । हरी॒ इति॑ । वि॒पक्ष॑सा । रथे॑ ॥  
शो॒णा । धृ॒ष्णू इति॑ । नृ॒वाह॑सा ॥ ११ ॥

इन इन्द्रदेवके रथमें सारथी हरिनामक अश्वोंको जोतते हैं । ये अश्व कामना करने योग्य हैं, रथकी दोनों करबटोंमें रहते हैं रक्त वर्ण वाले हैं, दबाने वाले हैं, सारथी आदि मनुष्योंको सवारी देने वाले हैं ॥ ११ ॥

केतुं॑ कृ॒णव॑न्न॒केत॑वे पेशो॑ मर्या॑ अपे॒शसे॑ । समु॒षद्भि॑-  
रजा॑यथाः ॥ १२ ॥

केतुम् । कृ॒णव॑न् । अ॒केत॑वे । पेशः॑ । मर्याः॑ । अपे॒शसे॑ ॥ सम् ।  
उ॒षत्॑भिः । अ॒जा॒य॒थाः ॥ १२ ॥

हे मरणधूर्मी मनुष्यों ! प्रज्ञानरहित पुरुषको ज्ञान देने वाले और अंधकारसे आवृत होनेके कारण रूपरहित पदार्थको रूप प्रदान करने वाले इन सूर्यात्मक इन्द्रदेवको तुम देखो, यह अपनी किरणोंके साथ प्रकट हुए हैं ॥ १२ ॥

उदुत्यं जातेवेदसं देवं वहन्ति केतवः । दृशे विश्वाय  
सूर्यम् ॥ १३ ॥

उत् । ऊं इति । त्यम् । जातऽवेदसम् । देवम् । वहन्ति । केतवः ॥  
दृशे । विश्वाय । सूर्यम् ॥ १३ ॥

किरणों वा अश्व, सब उत्पन्न होने वालोंको जानने वाले  
सूर्यात्मक इन्द्रदेवको सबको दिखानेके लिये ऊपरको लाती हैं १३  
अप त्ये तायवो यथा नक्षत्रा यन्त्यक्तुभिः । सूराय  
विश्वचक्षसे ॥ १४ ॥

अप । त्ये । तायवः । यथा । नक्षत्रा । यन्ति । अक्तुभिः ।  
सूराय । विश्वऽचक्षसे ॥ १४ ॥

जैसे चोर रातके साथ ही साथ भाग जाते हैं ऐसे ही सबके  
द्रष्टा सूर्यके कारण नक्षत्र रातके साथ भाग जाते हैं ॥ १४ ॥  
अदृशन्नस्य केतवो वि रश्मयो जनां अनु । आजन्तो  
अग्नयो यथा ॥ १५ ॥

अदृशन् । अस्य । केतवः । वि । रश्मयः । जनान् । अनु ॥  
आजन्तः । अग्नयः । यथा ॥ १५ ॥

अग्निकी समान दमकती हुई इन सूर्यात्मक इन्द्रदेवकी ज्ञानदाता  
किरणों मत्स्येक पुरुषोंके पीछे दीखती हैं ॥ १५ ॥

तरणिर्विश्वदर्शतो ज्योतिष्कृदसि सूर्य । विश्वमा  
भांसि रोचन ॥ १६ ॥

तरणिः । विश्वऽदर्शतः । ज्योतिःऽकृत् । असि । सूर्यः ॥ विश्वम् ।  
आ । भासि । रोचन ॥ १५ ॥

हे सूर्यात्मक कमनीय इन्द्रदेव ! आप ( संसारसागरकी )  
नौकारूप है आप सबको देखने वाले और ज्योति देने वाले हैं  
आप सबको प्रकाशित करते हैं ॥ १६ ॥

प्रत्यङ् देवानां विशः प्रत्यङ् दुदेषि मानुषीः । प्रत्यङ्  
विश्वं स्वर्दृशे ॥ १७ ॥

प्रत्यङ् । देवानाम् । विशः । प्रत्यङ् । उत् । एषि । मानुषीः ।  
प्रत्यङ् । विश्वम् । स्वः । दृशे ॥ १७ ॥

हे सूर्यात्मक इन्द्र ! आप प्रत्येक मानुषी और दैवी प्रजाको  
सामने रख कर उनके सामने उदित हाते हैं, प्रत्येक पुरुषको  
देखनेके लिये उसको सामने लाकर उदित होते हैं ॥ १७ ॥

येना पावक चक्षसा भुरग्यन्तं जनां अनु । त्वं  
वरुण पश्यसि ॥ १८ ॥

येन । पावक । चक्षसा । भुरग्यन्तम् । जनान् । अनु ॥ त्वम् ।  
वरुण । पश्यसि ॥ १८ ॥

हे पवित्र करने वाले पापनिवारक इन्द्र ! पूर्वके पुण्यात्मा  
पुरुषोंसे आचरित मार्गमें शीघ्रतासे जाते हुए पुण्यात्मा पुरुषको  
आप जिस अनुग्रहदृष्टिसे देखते हैं ( उस दृष्टिकी हम स्तुति करते हैं )

वि द्यामेषि रजस्पृथ्वर्हिर्मानो अक्तुभिः । पश्यं  
जन्मानि सूर्य ॥ १९ ॥



वि । ग्राम् । एषि । रजः । पृथु । अहः । मिमानः । अक्तुऽभिः ॥

पश्यन् । जन्मानि । सूर्य ॥ १६ ॥

हे सूर्यात्मक इन्द्रदेव ! आप उत्पन्न हुए सब प्राणियों पर अनुग्रह करनेके लिये उनको देखते हुए, तथा रात्रियों सहित दिनका निर्माण करते हुए धुल्लोक भूलोक और विशाल अन्तरिक्षलोकमें अनेक प्रकारसे विचरण करते हैं ॥ १६ ॥

सप्त त्वा ह॒रितो रथे वह॑न्ति देव सूर्य । शोचि॑ष्के॒शं

विच॑क्ष॒णम् ॥ २० ॥

सप्त । त्वा । ह॒रितः । रथे । वह॑न्ति । देव । सूर्य । शोचिः॑ऽके॒शम् ।

वि॒च॒क्ष॒णम् ॥ २० ॥

हे देव ! दमकती हुई किरणों वाले सूक्ष्मद्रष्टा आपको रथमें सात घोड़े सवारी देते हैं ॥ २० ॥

अयु॑क्त सप्त शु॒न्ध्युवः॑ सू॒रो रथ॑स्य न॒प्त्यः । ताभि॑र्याति

स्वयु॑क्तिभिः ॥ २१ ॥

अयु॑क्त । सप्त । शु॒न्ध्युवः॑ । सू॒रः । रथ॑स्य । न॒प्त्यः॑ ॥ ताभिः॑ ।

याति । स्वयु॑क्तिऽभिः ॥ २१ ॥

इति पञ्चमेनुवाके दशमं सूक्तम् ॥

सूर्यात्मक इन्द्रदेवने सात पवित्र रत्नक घोड़ोंको अपने रथमें जोड़ लिया है और वह उनसे अपनी युक्तियोंके द्वारा चल रहे हैं २१

पञ्चम अनुवाकमें दशम सूक्त समाप्त ( ६६३ )

विषुवति सौर्यपृष्ठे “अभि त्वा वर्चसा गिरः” इति चतुर्थः स्तोत्रियः ॥

विषुवत् सौर्यषष्ठमे “अभि त्वा वर्चसा गिरः” यह चतुर्थ स्तोत्रिय है ॥

अभि त्वा वर्चसा गिरः सिञ्चन्तीराचरणयवः । अभि  
वत्सं न धेनवः ॥ १ ॥

ता अर्षन्ति शुभ्रियः पृञ्चन्तीर्वर्चसा प्रियः । जातं  
जात्रीर्यथा हृदा ॥ २ ॥

वज्रापवसाध्यः कीर्तिर्म्रियमाणमावहन् । मह्यमायुर्घृतं  
पयः ॥ ३ ॥

आयं गौः पृश्निरक्रमीदसदन्मातरं पुरः । पितरं च  
प्रयन्तस्वः ॥ ४ ॥

आ । अयम् । गौः । पृश्निः । अक्रमीत् । असदत् । मातरम् ।  
पुरः ॥ पितरम् । च । प्रयन् । स्वः ॥ ४ ॥

जैसे विचरण करने वाली गौएँ बछड़ेके अभिमुख जाती हैं,  
इसी प्रकार वाणियों वर्चसे आपका सिञ्चन करती हुई आपके  
अभिमुख जाती हैं ॥ १ ॥

जैसे उत्पन्न हुएकी रक्षा करने वाली उत्पन्न हुए शिशुको  
हृदयसे लगाती हैं, इसी प्रकार शुभ्र स्तुतियें वर्चसे इन्द्रको संयुक्त  
करती हैं ॥ २ ॥

यह वज्रापवसाधी हैं, यह मुझ म्रियमाणको कीर्ति आयु  
घृत और पयः प्राप्त करावें ॥ ३ ॥

यह तेजसे व्याप्त गमनशील सूर्यात्मक इन्द्र उदयाचल पर आगए हैं और इन्होंने उदयाचल पर चढ़ पूर्वदिशामें दीखकर सब प्राणियोंकी जननी भूमिको अपनी किरणोंसे ढक दिया है, तदनन्तर इन्होंने चल कर वृषिरूप धीर्यको सींचनेसे सब जगत्के उत्पादक पिता स्वर्लोक और अन्तरिक्षलोकको व्याप्त कर लिया है। यही वृष्टिजलरूप अमृतका दोहन करनेसे गौ कहलाते हैं ॥ ४ ॥

अन्तश्चरति रोचना अस्य प्राणादपानतः । व्यख्यन्म-  
हिषः स्वः ॥ ५ ॥

अन्तः । चरति । रोचना । अस्य । प्राणात् । अपानतः ॥ वि ।

अख्यत् । महिषः । स्वः ॥ ५ ॥

प्राणन व्यापारके अनन्तर अपानन व्यापारको करने वाले इन प्राणियोंके शरीरके मध्यमें मुख्य प्राणरूपसे दमकती हुई सूर्यकी मभा विचरती रहती है । अधिभूतरूपसे वर्तमान महान्-सूर्यदेव स्वर्ग आदि ऊपरके समस्त लोकोंको प्रकाशित करते हैं ५

त्रिंशद् धामा वि राजति वाक् पतङ्गो अशिश्रियत् ।  
प्रति वस्तोरहर्गुभिः ॥ ६ ॥

त्रिंशत् । धाम । वि । राजति । वाक् । पतङ्गः । अशिश्रियत् ॥

प्रति । वस्तोः । अहः । अर्गुभिः ॥ ६ ॥

इति पञ्चमेऽनुवाके एकादशं सूक्तम् ॥

दिन और रात्रिके अवयवभूत तीस मुहूर्तरूप अंश इन सूर्य-देवकी किरणोंसे ही प्रतिक्षण विशेषरूपसे दमकते रहते हैं तथा



वेदत्रयीरूप वाणी पत्नीकी समान शीघ्रगामी सूर्यका आश्रय लेकर रहती है ॥ ६ ॥

पञ्चम अनुवाकमें पकादश सूक्त समाप्त ( ६३५ )

विषुवति सौर्यपृष्ठे “यच्छक्रा वाचमारुहन्” इति षष्ठः स्तोत्रियः ॥

विषुवत् सौर्यपृष्ठमें “यच्छक्रा वाचमारुहन्” यह छठा स्तोत्रिय है ।

यच्छक्रा वाचमारुन्न्तरिक्षं सिषासथः । सं देवा

अमदन् वृषा ॥ १ ॥

शक्रो वाचमधृष्टायोरुवाचो अधृष्टाणि हि । मंहिष्ठ आ

मददिवि ॥ २ ॥

शक्रो वाचमधृष्टाणि धामधर्मन् विराजति । विमदन्

बर्हिशासरन् ॥ ३ ॥

तं वो दस्ममृतीषहं वसोर्मन्दानमन्धसः ।

अभि वत्सं न स्वसरेषु धेनव इन्द्रं गीर्भिर्नवामहे ४

तम् । वः । दस्मम् । अतिऽसहम् । वसोः । मन्दानम् । अन्धसः ।

अभि । वत्सम् । न । स्वसरेषु । धेनवः । इन्द्रम् । गीऽभिः ।

नवामहे ॥ ४ ॥

हे इन्द्र ! जब अन्तरिक्षको देना चाहते हुए स्तोता वाणी पर आरुढ़ होते हैं, तब देवना हर्षको प्राप्त होते हैं ॥ १ ॥

शक्र अधृष्ट पुरुष पर अपनी वाणी की और विशाल वाणी की धर्षणा न करें,—उससे कठोर वचन न कहें अनुग्रह भरे वचन कहें । हे मंहिष्ठ ! आप धुलोकमें मदमें भरिये ॥ २ ॥

हे शक्र ! आप वाणीका कठोरभावसे उच्चारण न करें, विशेष-  
रूपसे मदमें भरते हुए और कुशाओं पर आते हुए धामधर्मन्  
विराज रहे हैं ॥ ३ ॥

हे यजमानों ! हम तुम्हारे यागकी पूर्णताके लिये वा तुम्हारे  
अभिमत फलके लिये इन्द्रदेवकी स्तुतिप्रकाशिका वाणियोंसे स्तुति  
करते हैं । यह इन्द्रदेव दर्शनीय हैं अर्थात् फलाभिलाषियोंको इन  
का दर्शन अवश्य करना चाहिये । यह आर्तिका नाश करने वाले  
हैं और यह वासक सोमरूपी अन्नके पानसे आनन्दमें भरे रहते  
हैं । जैसे सूर्य जिन दिनोंको करता है, उन दिनोंके आने जाने  
के समय धेनुएँ हंभा २ करती हुई बछड़ोंकी ओरको दूध पिलाने  
लिये दौड़ती हैं, इसी प्रकार हम भी ( सोम पिलानेके लिये )  
इन्द्रकी ओर स्तुतिवाणियोंसे दौड़ते हैं ॥ ४ ॥

क्षु॒क्षं सु॒दानुं॑ तवि॒षीभि॒रावृ॑तं गि॒रिं न पु॒रुभो॑जसम् ।  
क्षु॒मन्तं॑ वा॒जं श॒तिनं॑ सह॒स्रिणं॑ म॒क्षू गो॑मन्तमीमहे ५

क्षु॒क्षम् । सु॒दानुम् । तवि॒षीभिः । आ॒वृ॒तम् । गि॒रिम् । न ।

पु॒रुभो॑जसम् ।

क्षु॒मन्तम् । वा॒जम् । श॒तिनम् । सह॒स्रिणम् । म॒क्षू । गो॑मन्तम् ।

ईमहे ॥ ५ ॥

दीप्तिमय, सुन्दरतासे दान करने योग्य वलपद, स्तुतिके पात्र,  
सैकड़ों और सहस्रों प्रजाओंका पोषण करने वाले और बहुतसी  
गौओंसे युक्त धनकी हम इस प्रकार प्रार्थना करते हैं, जिस प्रकार  
दुर्भिक्षमें प्रजाएँ जीवनके लिये बहुतसे कन्द मूल आदि अन्नों  
से सन्तुष्ट पर्वतकी प्रार्थना करते हैं ॥ ५ ॥

तत् त्वां यामि सुवीर्यं तद् ब्रह्म पूर्वचित्तये ।

येना यतिभ्यो भृगवे धने हिते येन प्रस्कण्वमाविथ

तत् । त्वा । यामि । सुवीर्यम् । तत् । ब्रह्म । पूर्वचित्तये ।

येन । यतिभ्यः । भृगवे । धने । हिते । येन । प्रस्कण्वम् ।

आविथ ॥ ६ ॥

हे इन्द्रदेव ! मैं आपसे सुन्दर वीर्य सम्पन्न दृढ़ अन्नकी याचना करता हूँ, उस अन्नकी पूर्वप्रज्ञानके लिये याचना करता हूँ । जिस धनके देने पर नियम वालोंको और भृगु ऋषिको शांति प्राप्त हुई थी और जिस धनसे आपने कण्व नामक ऋषिके पुत्र प्रस्कण्व ऋषिकी रक्षा की थी। उस धनकी हम याचना करते हैं ६

येनां समुद्रमसृजो महीरपस्तदिन्द्र वृष्णि ते शवः ।

सद्यः सो अस्य महिमा न संनशे यं क्षोणीरनुचक्रदे

येन । समुद्रम् । असृजः । महीः । अपः । तत् । इन्द्र । वृष्णि ।

ते । शवः ।

सद्यः । सः । अस्य । महिमा । न । समुद्रमशे । यम् । क्षोणीः ।

अनुचक्रदे ॥ ७ ॥

इति पञ्चमेनुवाके द्वादशं सूक्तम् ॥

हे इन्द्रदेव ! जिस बलसे आपने समुद्रके निमित्त सृष्टिकी आदि में समुद्रको पूर्णरूपसे भरने वाले जलोंकी सृष्टि की है । वह बल सबको अभिलषित फल प्रदान करता है । जलोंसे समुद्रपूर्ति आदि



इनकी महिमाको बहुतसे शत्रु नहीं पा सकते । इनकी महिमाका पृथ्वीवासी वर्णन करते हैं ॥ ७ ॥

पञ्चम अनुवाकमें द्वादश सूक्त समाप्त ( ६६५ )

वाजपेये क्रतौ “कन्नव्यो अतसीनाम्” इति सामप्रगाथो भवति । तद् उक्तं वैताने । “कन्नव्यो अतसीनामिति सामप्रगाथः” इति [ वै० ४. ३ ] ॥

तथा गवामयनादौ संवत्सरे माध्यंदिने सवने “कन्नव्यो अतसीनाम्” इति कद्गान् सामप्रगाथो भवति । तद् उक्तं वैताने । माध्यंदिने कन्नव्यो अतसीनामिति कद्गान् सामप्रगाथः” इति [ वै० ६. ५ ] ॥

वाजपेय क्रतुमें “कन्नव्यो अतसीनाम्” यह सामप्रगाथ होता है । इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि—कन्नव्यो अतसीनामिति सामप्रगाथः” ( वैतानसूत्र ४ । ३ ) ॥

तथा गवामयनादि संवत्सरमें और माध्यन्दिन सवनमें “कन्नव्यो अतसीनाम्” यह कद्गान् सामप्रगाथ होता है । इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि—“माध्यन्दिने कन्नव्यो अतसीनामिति कद्गान् सामप्रगाथः” ( वैतानसूत्र ६ । ५ ) ॥

कन्नव्यो अतसीनां तुरो गृणीत मर्त्यः ।

नही न्वस्य महिमानमिन्द्रियं स्वर्गुणन्त आनशुः १

कत् । नव्यः । अतसीनाम् । तुरः । गृणीत । मर्त्यः ।

नहि । नु । अस्य । महिमानम् । इन्द्रियम् । स्वर्गः । गृणन्तः । आनशुः

जो क्षीण न होने वाले दिन रातोंमें नवीन ही रहते हैं, बलवान् है किसी कारणसे मर्त्यके आकारको धारण कर लेते हैं, उन की हे स्तोताओं ! तुम स्तुति करो, इनकी ऐश्वर्यसम्पन्न महिमा

का पूर्णरूपसे गान न कर सकने पर भी थोड़ासा भी गान करते हुए पुरुष स्वर्गको प्राप्त होजाते हैं ॥ १ ॥

कदु स्तुवन्तं ऋतयन्त देवता ऋषिः को विप्रं ओहते ।

कदा हवं मघवन्निन्द्र सुन्वतः कदु स्तुवत आ गमः

कत् । ऊं इति । स्तुवन्तः । ऋतयन्त । देवता । ऋषि । कः ।

विपः । ओहते ।

कदा । हवम् । मघवन् । इन्द्र । सुन्वतः । कत् । ऊं इति । स्तु-  
वतः । आ । गमः ॥ २ ॥

इति पञ्चमेनुवाके त्रयोदशं सूक्तम् ॥

हे धनवान् इन्द्र ! किस कारणसे सत्यकी इच्छा करते हुए देवता आपकी स्तुति करते हैं, कौनसा विप्र ऋषि आपके विषय में तर्कना करता है । और किस कारणसे कब आप अभिषव करने वाले स्तोताके आवाहन पर आते हैं ॥ २ ॥

पञ्चम अनुवाकमें त्रयोदश सूक्त समाप्त ( ६६३ )

चतुर्विंशो माध्यदिने सवने “अभि प्र वः सुराधसम्” [ २०. ५१ ]  
“प्र सु श्रुतं सुराधसम्” [ २०. ५१, ३ ] इति पृष्ठस्तोत्रियानु-  
रूपौ बार्हतौ प्रगाथौ भवतः । तद् उक्तं वैताने । “अभि प्र वः सुरा-  
धसं प्र सु श्रुतं सुराधसमिति पृष्ठस्तोत्रियानुरूपौ बार्हतौ प्रगाथौ”  
इति [ वै० ६. १ ] ॥

तथा अभिसवे युग्मेष्वहःसु द्वितीयाचतुर्थषष्ठेषु “अभि प्र वः  
सुराधसम्” “प्र सु श्रुतं सुराधसम्” इति बार्हतौ प्रगाथौ पृष्ठस्तो-  
त्रियानुरूपौ भवतः । तद् उक्तं वैताने । “अभि प्र वः सुराधस-  
मिति युग्मेषु” इति [ वै० ६. १ ] ॥

तथा विधुवति अनुरूपादनन्तरम् “तं वो दस्ममृतीषहम्” [ २०. ४६. ४ ] “अभि प्र वः सुराधसम्” [ २०. ५१ ] इति नौधसश्यैतयोनी इच्छया शंसति । तद् उक्तं वैताने । “अनुरूपात् तं वो दस्ममृतीषहम् अभि प्र वः सुराधसम् इति नौधसश्यैतयोनी कामम्” इति [ वै० ६. ३ ] ॥

तथा उपहाणां तृतीयेष्वहःसु यथासंभवम् “महाँ इन्द्रो य ओजसा” [ २०. १३८ ] “अभि प्र वः सुराधसम्” [ २०. ५१ ] “एवा ह्यसि वीरयुः” [ २०. ६० ] इति आज्यपृष्ठोक्त्यस्तोत्रिया भवन्ति । तद् उक्तं वैताने । तृतीयेषु महाँ इन्द्रो य ओजसाभि प्र वः सुराधसम् एवा ह्यसि वीरयुरिति” इति [ वै० ८. ३ ]

चतुर्विंशके माध्यन्दिन सवनमें “अभि प्र वः सुराधसम्” ( २० । ५१ ) “प्र सु श्रुतं सुराधसम्” ( २० । ५१ । ३ ) ये पृष्ठस्तोत्रियानुरूप बर्हत् प्रगाथ होते हैं । इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि—“अभि प्र वः सुराधसमिति युग्मेषु” ( वैतानसूत्र ६ । १ ) ॥

तथा विधुवत्में अनुरूपके अनन्तर “तं वो दस्ममृतीषहम्” २० । ४६ । ४ ) अभि प्र वः सुराधसम् ( २० । ५१ ) इनको नौधसश्यैतयोनी इच्छासे कहता है । इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि—“अनुरूपात् तं वो दस्ममृतीषहम् अभि प्र वः सुराधसम् इति नौधसश्यैतयोनीकामम्” ( वैतानसूत्र ६ । ३ ) ॥

तथा उपहोंके तृतीय दिनोंमें यथासंभव ‘महाँ इन्द्रो य ओजसा’ ( २० । १३८ ) “अभि प्र वः सुराधसम्” ( २० । ५१ ) “एवा ह्यसि वीरयुः” ( २० । ६० ) ये आज्यपृष्ठोक्त्यस्तोत्रिय होते हैं । इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि—“तृतीयेषु महाँ इन्द्रो य ओजसाभि प्र वः सुराधसम् एवा ह्यसि वीरयुरिति” ( वैतानसूत्र ८ । ३ ) ॥



अभि प्र वः सुराधंसमिन्द्रमर्च यथा विदे ।

यो जरितृभ्यो मघवां पुरुवसुः सहस्रेणैव शिञ्जति ।

अभि । प्र । वः । सुराधंसम् । इन्द्रम् । अर्च । यथा । विदे ।

वः । जरितृभ्यः । मघवा । पुरुवसु । सहस्रेणैव । शिञ्जति

हे स्तोताओं ! जो विशाल धन वाले मघवा इन्द्र स्तुति करने वालोंको सहस्र संख्यासे दान देते हैं, उन सुन्दरतासे अन्न प्रदान करने वाले इन्द्रको मैं जिस प्रकार प्राप्त कर सकूँ, तिस प्रकार तुम उसका पूजन करो ॥ १ ॥

शतानीकेव प्रजिगाति धृष्णुया हन्ति वृत्राणि दाशुषे

गिरेरिव प्र रसा अस्य पिन्विरे दत्राणि पुरुभोजसः

शतानीकाऽइव । प्र । जिगाति । धृष्णुया । हन्ति । वृत्राणि । दाशुषे

गिरेऽइव । प्र । रसाः । अस्य । पिन्विरे । दत्राणि । पुरुभोजसः

जो इन्द्रदेव हवि देने वाले यजमानके लिये सैकड़ों सेनाओं की समान अपने धर्षक बलसे आवरक शत्रुओंको जीत लेते हैं और मार डालते हैं, इन बहुत उपभोग्यके योग्य इन्द्रदेवके सुवर्ण पर्वतसे जलोंके निकलनेकी समान हविर्दान करने वाले यजमानके लिये सिञ्चित होते हैं ॥ २ ॥

प्र सु श्रुतं सुराधंसमर्चां शक्रमभिष्टये ।

यः सुन्वते स्तुवते काम्यं वसुं सहस्रेणैव मंहते ॥ ३ ॥

प्र । सु । श्रुतम् । सुराधंसम् । अर्च । शक्रम् । अभिष्टये ।

यः । सुन्वते । स्तुवते । काम्यम् । वसु । सहस्रेणऽङ्गव । गंहते ३

जो इन्द्रदेव सोमाभिषव करने वाले और स्तुति करने वाले यजमानको अभिलाषित धन सहस्रों करके देते हैं, उन सुन्दर हविरूप अन्नके पात्र, याचकोंकी प्रार्थनाको भली प्रकार सुनने वाले इन्द्रदेवकी तुम पूजा करो ॥ ३ ॥

शतानीका हेतयो अस्य दुष्टरा इन्द्रस्य समिषो महीः  
गिरिर्न भुज्मा मघवत्सु पिन्वते यदी सुता अमन्दिषुः

शतऽअनीकाः । हेतयः । अस्य । दुस्तराः । इन्द्रस्य । सम्ऽइषः ।  
महीः ।

गिरिः । न । भुज्मा । मघवत्सु । पिन्वते । यत् । ईम् । सुताः ।

अमन्दिषुः ॥ ४ ॥

इति पञ्चमेऽनुवाके चतुर्दशं सूक्तम् ॥

इन इन्द्रदेवके आयुध सैकड़ों सेनाओंकी समान बल रखते हैं, असत् पुरुष उनको तर नहीं सकते, यदि अभिषव किये हुए सोम इनको हर्षमें भर देते हैं तो भोगप्रद पर्वत जैसे धनवानोंको अपने पदार्थोंसे सींचता है, तिस प्रकार, इन इन्द्रके विशाल अन्न यजमानका सेचन करते हैं ॥ ४ ॥

पञ्चम अनुवाकमें चतुर्दश सूक्त समाप्त ( ६६७ )

“वयं घ त्वा सुतावन्तः” इत्यस्य विनियोगः “इन्द्रेण सं हि दक्षसे” [ २०. ४० ] इत्यत्रोक्तः ॥

तथा पृष्ठ्यस्य तृतीयचतुर्थपञ्चमपष्ठानां चतुर्णामहाम् “वयं घ त्वा सुतावन्तः” इत्यादीनामपष्ठानां वृत्तानां द्वौ द्वौ यथाक्रमं स्तोत्रियाञ्जूरूपौ भवतः । तत्र “वयं घ त्वा” [ २०. ५२ ] “क ई

वेद" [ २०. ५३ ] इति तृतीयेऽह्नि स्तोत्रियानुरूपौ भवतः ।  
 "विश्वाः पृतनाः" [ २०. ५४ ] "तमिन्द्रम्" [ २०. ५५ ] इति  
 चतुर्थे । "इन्द्रो मदाय" [ २०. ५६ ] "मदेमदे हि" [ २०. ५६.  
 ४ ] इति पञ्चमे । "सुरुपकृत्तुम्" [ २०. ५७ ] "शुष्मिन्तमं  
 नः" [ २०. ५७. ४ ] इति षष्ठे । तद् उक्तं वैताने । "तृतीया-  
 दीनां वयं घ त्वा सुतावन्त इति पृष्ठस्तोत्रियानुरूपाः" इति [ वै० ६. २ ]

तथा छन्दोमाख्येषु त्रिष्वहःसु "वयं घ त्वा सुतावन्तः" "क  
 ई वेद सुते सचा" इमि प्रथमेऽहनि माध्यंदिने स्तोत्रियानुरूपौ  
 भवतः । "क ई येद सुते सचा" "वयं घ त्वा सुतावन्तः" इति  
 द्वितीये । "आयन्त इव सूर्यम्" [ २०. ५८ ] "वणमहाँ असि सूर्य"  
 [ २०. ५८. ३ ] इति तृतीये । तद् उक्तं वैताने । "वयं घ त्वा  
 सुतावन्तः इत्यादि वणमहाँ असि सूर्येत्यन्ताः पृष्ठस्तोत्रियानुरूपाः"  
 इति [ वै० ६. ३ ] ॥

"वयं घ त्वा सुतावन्तः" इसका विनियोग "इन्द्रेण सं हि  
 दत्तसे" ( २० । ४० ) में कइ दिया है ।

तथा पृष्ठयके तृतीय चतुर्थ पञ्चम और षष्ठ इन चार दिनोंमें  
 "वयं घ त्वा सुतावन्तः" इन आठ तृचोसे दो दो यथाक्रम स्तो-  
 त्रियानुरूप होते हैं । इनमेंसे "वयं घ त्वा" ( २० । ५२ ) "क  
 ई वेद" ( २० । ५३ ) ये तृतीय दिनमें स्तोत्रियानुरूप होते हैं ।  
 "विश्वाः पृतनाः" ( २० । ५४ ) "तमिन्द्रम्" ( २० । ५५ )  
 ये चतुर्थदिनमें स्तोत्रियानुरूप होते हैं । "इन्द्रो मदाय" ( २० । ५६ )  
 "मदे मदे हि" ( २० । ५६ । ४ ) ये पञ्चम दिनमें स्तोत्रियानु-  
 रूप होते हैं । "सुरुपकृत्तुम्" ( २० । ५७ ) "शुष्मिन्तमं नः"  
 ( २० । ५७ । ४ ) ये छठे दिनमें स्तोत्रियानुरूप होते हैं । इसी  
 बातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि— "तृतीयादीनां वयं घ त्वा सुता  
 वन्त इति पृष्ठस्तोत्रियानुरूपाः" ( वैतानसूत्र ६ । २ )



तथा छन्दोम नामक तीन दिनोंमें “वयं घ त्वा सुतावन्तः”  
 “क ई वेद सुते सचा” ये प्रथम दिनके माध्यन्दिनमें स्तोत्रिया-  
 नुरूप होते हैं। “क ई वेद सुते सचा” “वयं घ त्वा सुतावन्तः”  
 ये द्वितीय दिनमें, “आयन्त इव सूर्यम्” ( २० । ५८ ) “वयमहौ  
 असि सूर्य” ( २० । ५८ । ३ ) यह तृतीय दिनमें स्तोत्रियानु-  
 रूप होते हैं। इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि—“वयं घ त्वा  
 सुतावन्त इत्यादि वयमहौ असि सूर्येऽन्मन्ताः पृष्ठस्तोत्रियानुरूपाः”  
 ( वैतानसूत्र ६ । ३ ) ॥

वयं घ त्वा सुतावन्त आपो न वृक्तवर्हिषः ।

पवित्रस्य प्रस्रवणेषु वृत्रहन् परि स्तोतार आसते १

वयम् । घ । त्वा । सुतऽवन्तः । आपः । न । वृक्तऽवर्हिषः ।

पवित्रस्य । प्रऽस्रवणेषु । वृत्रऽहन् । परि । स्तोतारः । आसते १

हे इन्द्र ! जलकी समान अभिषव करके पतले किये हुए  
 अभिषुत सोमसे सम्पन्न हम ऋत्विज, पवित्रसे प्रस्रवणके समय  
 आपकी स्तुति करते हुए बैठे हैं ॥ १ ॥

स्वरन्ति त्वा सुते नरो वसो निरेक उक्थिनः ।

कदा सुतं तृषाण ओक आ गम इन्द्र स्वब्दीव वंसगः २

स्वरन्ति । त्वा । सुते । नरः । वसो इति । निरेके । उक्थिनः ।

कदा । सुतम् । तृषाणः । ओकः । आ । गमः । इन्द्र । स्वब्दी-

ऽव्य । वंसगः ॥ २ ॥

हे वासयिनः इन्द्र ! सोमका अभिषव होजाने पर बहुत उक्थ-

गान करने वाले मनुष्य ऋत्विज आपका स्वरोसे आवाहन कर रहे हैं, कि—कब आप वननीयगति स्वन्दी वृषभकी समान तृषामें भर कर यागगृहमें अभिषुत सोमका पान करनेके लिये आवेंगे २ कण्वेभिर्धृष्णवा धृषद् वाजं दर्षि सहस्रिणम् ।

पिशङ्गरूपं मघवन् विचर्षणे मञ्जू गोमन्तमीमहे ३

कण्वेभिः । धृष्णो इति । आ । धृषत् । वाजम् । दर्षि । सहस्रिणम् ।

पिशङ्गरूपम् । मघवन् । विचर्षणे । मञ्जू । गोमन्तम् । ईमहे ३ इति पञ्चमेनुवाके पंचदशं सूक्तम् ॥

हे धर्षक इन्द्रदेव ! आप धनको दबा लेते हैं, सहस्रों शक्तियों से सम्पन्न व्यक्तिको भी विदीर्ण कर डालते हैं । हे विद्वान् इन्द्र ! हम गौओंसे सम्पन्न पिशंग रूप वाले धनकी आपसे शीघ्रतापूर्वक याचना करते हैं ॥ ३ ॥

पञ्चम अनुवाकमें पञ्चदश सूक्त समाप्त ( ६६८ )

त्रिककुद्दशाहस्याहीनस्य नवस्वहःसु “शग्ध्यु षु शचीपते” [ २०. ११८ ] “अभि प्र गोपतिं गिरा” [ २०. ६२ ] “तं वो दस्ममृतीषहम्” [ २०. ४६. ४ ] “वयमेनमिदा ह्यः” [ २०. ६७ ] “इन्द्रमिद् गाथिनो बृहत्” [ २०. ३८. ४ ] “आयन्त इव सूर्यम्” [ २०. ५८ ] “क ई वेद सुते सचा” [ २०. ५३ ] “विश्वाः पृतना अभिभूतरं नरम्” [ २०. ५४ ] “यदिन्द्र प्रागपागुदक्” [ २०. १२० ] इत्येते नव पृष्ठस्तोत्रिया यथाक्रमं भवन्ति । तद् उक्तं वैताने । “त्रिककुद्दशाहस्य नवसु शग्ध्यु षु शचीपतेऽभि प्रगोपतिं गिरा तं वो दस्ममृतीषहं वयमेनमिदा ह्य

इन्द्रमिद्गाथिनो बृहच्छ्रायन्त इव सूर्य क ई वेद सुते सचा विश्वाः  
पृतना अभिभूतरं नरं यदिन्द्र प्रागपागुदगिति” इति [वै० ८.४]

त्रिककुद्दशाह अहीनके नौ दिनोंमें “शग्ध्यु प्यु शचीपते”  
( २० । ११८ ) “अभि प्र गोपतिं गिरा” ( २०।६२ ) “तं वो  
दस्ममृतीषहम्” ( २० । ४६ । ४ ) “वयमेनमिदा ह्यः” ( २० ।  
६७ ) “इन्द्रमिद् गाथिनो बृहद्” ( २० । ३८ । ४ ) “श्रायन्त  
इव सूर्यम्” ( २० । ५८ ) “क ई वेद सुते सचा” ( २०।५३ )  
“विश्वाः पृतना अभिभूतरं नरम्” ( २० । ५४ ) “यदिन्द्र प्राग-  
पागुदक्” ( २० । १२० ) ये नौ यथाक्रम पृष्ठस्तोत्रिय होते हैं ।  
इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि—“त्रिककुद्दशाहस्य नवसु  
शग्ध्यु षु शचीपतेऽभि प्रगोपतिं गिरा तं वो दस्ममृतीषहं वयमे-  
नमिदा ह्य इन्द्रमिद्गाथिनो बृहद् श्रायन्त इव सूर्यम् क ई वेद  
सुते सचा विश्वाः पृतना अभिभूतरं नरम् यदिन्द्र प्रागपागुद-  
गिति” ( वैतानसूत्र ८ । ४ ) ॥

क ई वेद सुते सचा पिबन्तं कद् वयो दधे ।

अयं यः पुरो विभिनत्पोजसा मन्दानः शिप्रयन्धसः १

कः । ईम् । वेद । सुते । सचा । पिबन्तम् । कद् । वयः । दधे ।

अयम् । यः । पुरः । विऽभिनत्ति । ओजसा । मन्दा॒नः । शि॒प्री॒।

अन्ध॒सः ॥ १ ॥

इस बातको कौन जानता है, कि—सोमका अभिषव होने  
पर साथ २ कौनसे अन्नको ये धारण करते हैं । यह सुन्दर  
ठोड़ी वाले इविरूप अन्नसे हर्षमें भरे हुए इन्द्र अपने सामनेके  
शत्रुपुरोंको बलपूर्वक नष्ट कर डालते हैं ॥ १ ॥



दाना मृगो न वारणः पुरुत्रा चरथं दधे ।

नकिंश्वा नि यमदा सुते गमो महान्श्चरस्योजसा २

दाना । मृगः । न । वारणः । पुरुत्रा । चरथम् । दधे ।

नकिः । त्वा । नि । यमत् । आ । सुते । गमः । महान् । चरसि ।

ओजसा ॥ २ ॥

मदमत्त मृगकी समान वारण करने वाले आप रथमें बैठ कर अनेक स्थानोंमें गमन करते हैं, सोमका अभिषव होने पर ऐसा कोई नहीं है जो आपको रोक सके । आप बलसे महान् बनते हुए विचरण करते हैं, अतः सोमका अभिषव होने पर आइये २

य उग्रः सन्ननिष्ठृतः स्थिरो रणाय संस्कृतः ।

यदि स्तोतुर्मघवा शृणवद्धवं नेन्द्रो योषत्या गमत् ३

यः । उग्रः । सन् । अनिःस्तृतः । स्थिरः । रणाय । संस्कृतः ।

यदि । स्तोतुः । मघवा । शृणवत् । हवम् । न । इन्द्रः ।

योषति । आ । गमत् ॥ ३ ॥

इति पञ्चमेनुवाके षोडशं सूक्तम् ॥

जो उग्र पड़ने पर शत्रुओंसे अहिंसित रहते हैं, जो रणके लिये तयार होने पर स्थिर रहते हैं यदि वह मघवा इन्द्र स्तुति करने वालेके आह्वानको सुने तो स्त्रीके पास जानेकी समान आवेंगे ॥ ३ ॥

पञ्चम अनुवाकमें षोडश सूक्त समाप्त ( ६६९ )

पृष्ठथषडहस्य एकविंशस्तोमके चतुर्थेऽहनि एकाहैकीभूते

“इन्द्रो दधीचो अस्थभिः” [ २०. ४१ ] “विश्वाः पृतना अभिभूतरं नरम्” [ २०. ५४ ] “एवा ह्यसि वीरयुः” [ २०. ६० ] इति आज्यपृष्ठोक्तस्तोत्रिया भवन्ति । तद् उक्तं वैताने । “पृष्ठस्यैकविंश इन्द्रो दधीचो अस्थभिर्विश्वाः पृतना अभिभूतरं नरम् एवा ह्यसि वीरयुरिति” इति [ वै० ८. २ ] ॥

तथा व्युष्ट्याङ्गिरसकापिवनचैत्ररथद्वयद्वानां द्वितीयेष्वहःसु “विश्वाः पृतना अभिभूतरं नरम्” इति स्तोत्रियो भवति । तद् उक्तं वैताने । “द्वितीयेषु विश्वाः पृतना अभिभूतरं नरमिति” इति [ वै० ८. ३ ] ॥

तथा त्रिककुद्दशाहस्याहीनस्य अष्टमेऽहनि एष पृष्ठस्तोत्रियो भवति । सूत्रं पूर्वसूक्ते उक्तम् ॥

पृष्ठचषडहके एकविंशस्तोमक चतुर्थदिनके एकाहैकीभूतमें “इन्द्रो दधीचो अस्थभिः” ( २०।४१ ) “विश्वाः पृतना अभिभूतरं नरम्” ( २०।५४ ) “एवाह्यसि वीरयुः” ( २० । ६० ) ये आज्यपृष्ठोक्तस्तोत्रिय होते हैं । इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि—“पृष्ठस्यैकविंश इन्द्रो दधीचो अस्थभिः विश्वाः पृतना अभिभूतरं नरम् एवा ह्यसि वीरयुरिति” ( वैतानसूत्र ८ । २ ) ॥

तथा व्युष्ट्य आंगिरस कापिवन चैत्ररथ द्वयहोंके द्वितीय दिनोंमें “विश्वाः पृतना अभिभूतरं नरम्” यह स्तोत्रिय होता है । इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि—“द्वितीयेषु विश्वाः पृतना अभिभूतरं नरम्” ( वैतानसूत्र ८ । ३ ) ॥

तथा त्रिककुद्द दशाह अहीनके अष्टम दिनमें यह पृष्ठस्तोत्रिय होता है । सूत्र पहिले सूक्तमें कह दिया है ॥

विश्वाः पृतना अभिभूतरं नरं सजूस्ततत्तुरिन्द्रं जज-  
नुश्च राजसे ।

क्रत्वा वरिष्ठं वरं आमुरिमुतोग्रमोजिष्ठं तवसं तरस्वि-  
नम् ॥ १ ॥

वि॒रवाः । पृ॒तनाः । अ॒भिऽभू॒तरम् । न॒रम् । सऽजूः । त॒त॒क्षुः ।  
इ॒न्द्रम् । ज॒ज॒जुः । च । रा॒जसे ।

क्रत्वा । वरिष्ठम् । वरे । आऽमुरिम् । उ॒त । उ॒ग्रम् । ओ॒जिष्ठम् ।  
त॒व॒सम् । त॒र॒स्वि॒नम् ॥ १ ॥

सकल सेनाओंने अभिभव करने वाले नेता शत्रुओंको पूर्ण-  
रूपसे मूर्छित करने वाले, उग्र बलवान् तरस्वी इन्द्रको वरणीय  
संग्राममें प्रेमपूर्वक वरण किया और प्रकट किया है ॥ १ ॥

समीं रेभासो अस्वरन्निन्द्रं सोमस्य पीतये ।

स्वर्पतिं यदा वृधे धृतव्रतो ह्योजसा समूतिभिः २

सम् । ईम् । रे॒भासः । अ॒स्वर॒न् । इ॒न्द्रम् । सो॒म॒स्य । पी॒तये ।

स्वःऽपतिम् । यत् । ईम् । वृ॒धे । धृ॒तऽव्र॒तः । हि । ओ॒ज॒सा । स॒म् ।

ऊ॒तिऽभिः ॥ २ ॥

ये स्तोता सोमपान करनेके लिये इन इन्द्रकी भली प्रकार  
स्तुति कर रहे हैं, और धृतव्रत सोम भी इन स्वर्गपतिकी ओर  
अपनी रक्तक शक्तियों सहित बढ़ता है ॥ २ ॥

नेमिं नमन्ति चक्षसां मेघं विप्रां अभिस्वरा ।

सुदीतयो वो अद्रुहोपि कर्णे तरस्विनः समृक्भिः ३



नेमिम् । नमन्ति । चक्षसा । मेषम् । विमाः । अभिऽस्वरा ।

सुऽदीतयः । वः । अद्रुहः । अपि । करो । तरस्विनः । सम् ।

ऋक्वऽभिः ॥ ३ ॥

इति पञ्चमेनुवाके सप्तदशं सूक्तम् ॥

स्तुति करते हुए विम इनके मेषकी समान भक्षक वज्रको दृष्टि पड़ने पर प्रणाम करते हैं । हे स्तोताओं ! ऋक्व नामक पितरों के साथ इस वज्रकी सुन्दर दमकें भी तुम्हारे कानमें द्रोह न पहुँचावें अर्थात् तुम्हारे कानोंको कष्ट न दें ॥ ३ ॥

पञ्चम अनुवाकमें सप्तदश सूक्त समाप्त ( ६७० )

“तमिन्द्रं जोहवीमि” इत्यस्य विनियोगः “वयं घ त्वा सुतावन्तः” [ २०. ५२ ] इति सूक्ते उक्तः ॥

“तमिन्द्रं जोहवीमि” सूक्तका सूत्र “वयं घ त्वा सुतावन्तः” इस ( २० । ५२ ) सूक्तके साथ कह दिया है ॥

तमिन्द्रं जोहवीमि मघवानमुग्रं सत्रा दधानमप्रतिष्कुतं  
शवांसि ।

मंहिष्ठो गीर्भिरा च यज्ञियो वर्तद् राये नो विश्वा  
सुपथा कृणोतु वज्री ॥ १ ॥

तम् । इन्द्रम् । जोहवीमि । मघऽवानम् । उग्रम् । सत्रा । दधा-  
नम् । अप्रतिऽस्कुतम् । शवांसि ।

मंहिष्ठः । गीऽभिः । आ । च । यज्ञियः । वर्तत् । राये । नः ।  
विश्वा । सुऽपथा कृणोतु । वज्री ॥ १ ॥

मैं उन इन्द्रका आह्वान करता हूँ, कि—जो धनवान् हैं उग्र हैं, संग्राममें मुख नहीं मोड़ते हैं और बलोंको धारण करने वाले हैं, स्तुतियोंसे पूजनीय स्तोत्र चल रहा है, वज्रधारी इन्द्र धनके लिये हमारे समस्त मार्गोंको सुन्दर करें ॥ १ ॥

या इन्द्र भुज आभरः स्वर्वा असुरेभ्यः ।

स्तोतारमिन्मघवन्नस्य वर्धय ये च त्वे वृक्तबर्हिषः २

याः । इन्द्र । भुजः । आ । अभरः । स्वर्वाऽवान् । असुरेभ्यः ।

स्तोतारम् । इत् । मघवन् । अस्य । वर्धय । ये । च । त्वे इति ।

वृक्तबर्हिषः ॥ २ ॥

हे स्वर्गके स्वामी इन्द्र ! आप असुरोंके लिये जिन भुजाओं को धारण करते हैं, उन भुजाओंसे इस यजमानके स्तुति करने वालेको बढ़ाइये और जो ऋत्विज आपमें परायण रहते हैं, उनको भी बढ़ाइये ॥ २ ॥

यमिन्द्र दधिषे त्वमश्वं गां भागमव्ययम् ।

यजमाने सुन्वति दक्षिणावति तस्मिन् तं धेहि मा

पणौ ॥ ३ ॥

यम् । इन्द्र । दधिषे । त्वम् । अश्वम् । गाम् । भागम् । अव्ययम् ।

यजमाने । सुन्वति । दक्षिणावति । तस्मिन् । तम् । धेहि । मा ।

पणौ ॥ ३ ॥

इति पञ्चमेनुवाके अष्टादशं सूक्तम् ॥

हे इन्द्र ! आप जिस घोड़े गौ और अव्यय रहने वाले भाग को पुष्ट करते हैं, उसको अभिषव करने वाले और दक्षिणा देने वाले यजमानमें स्थापित करिये, पणि नामक असुरमें स्थापित न करिये ॥ ३ ॥

पञ्चम अनुवाकमें अष्टादश सूक्त समाप्त ( ६७१ )

पृष्ठयपञ्चाहस्य पञ्चमेऽहनि “उत्तिष्ठन्नोजसा सह” [ २०. ४२. ३ ] “इन्द्रो मदाय वावृधे” [ २०. ५६ ] “इन्द्राय साम गायत” [ २०. ६२. ५-७ ] इत्येते आज्यपृष्ठोक्थस्तोत्रिया भवन्ति तद् उक्तं वैताने । “पञ्चम उत्तिष्ठन्नोजसा सहेन्द्रो मदाय वावृध इन्द्राय साम गायतेति” इति [ बै० ८. ३ ] ॥

पृष्ठयपञ्चाहके पञ्चम दिनमें “उत्तिष्ठन्नोजसा सह” ( २० । ४२ । ३ ) “इन्द्रो मदाय वावृधे” ( २० । ५६ ) “इन्द्राय साम गायत” ( २० । ६२ । ५-७ ) ये आज्यपृष्ठोक्थस्तोत्रिय होते हैं । इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि—“पञ्चम उत्तिष्ठन्नो जसा सहेन्द्रो मदाय वावृध इन्द्राय साम गायतेति” ( वैतानसूत्र ८ । ३ ) ॥

इन्द्रो मदाय वावृधे शवसे वृत्रहा नृभिः ।

तमिन्महत्स्वाजिषूतेमर्भे हवामहे स वाजेषु प्र नो विषत्

इन्द्रः । मदाय । वृधे । शवसे । वृत्रहा । नृभिः ।

तम् । इत् । महत्स्व । आजिषु । उत्त । ईम् । अर्भे । हवामहे ।

सः । वाजेषु । प्र । नः । अविषत् ॥ १ ॥

वृत्रासुरका संहार करने वाले इन्द्रदेवको मनुष्य मद और बलके लिये बढ़ाते हैं । हम उनको विशाल संग्रामोंमें और इस छोटेसे यज्ञमें आह्वान करते हैं, वह युद्धोंमें हममें व्याप्त होजावें ?



असि हि वीर सेन्योसि भूरि पराददिः ।

असि दभ्रस्य चिद् वृधो यजमानाय शिञ्जसि सुन्वते  
भूरि ते वसु ॥ २ ॥

असि । हि । वीर । सेन्यः । असि । भूरि । पराऽददिः ।

असि । दभ्रस्य । चिद् । वृधः । यजमानाय । शिञ्जसि । सुन्वते ।  
भूरि । ते । वसु ॥ २ ॥

हे वीर ! आप सेनाके योग्य हैं, शत्रुओंका भयंकर खण्डन करते हैं, बढ़ते हुए तुच्छ पुरुषको आप यजमानके कारण दण्ड देते हैं और जो आपके लिये अभिषव करता है, आपका बहुतसा धन उसके लिये ही है ॥ २ ॥

यदुदीरत आजयो धृष्णवे धीयते धना ।

युद्धा मन्दच्युता हरी कं हनः कं वसौ दधोस्माँ इन्द्र  
वसौ दधः ॥ ३ ॥

यत् । उत्ऽईरते । आजयः । धृष्णवे । धीयते । धना ।

युद्ध । मन्दऽच्युता । हरी इति । कम् । हनः । कम् । वसौ । दधः ।

अस्मान् । इन्द्रः । वसौ । दधः ॥ ३ ॥

जब युद्ध चलने लगता है और धर्षक पुरुषमें धन स्थापित होते हैं उस समय आप मन्दमत्त हरी नामक घोड़ोंको जोड़ कर किसको मारेंगे और किसमें धन स्थापित करेंगे ? हे इन्द्र ! उस समय आप हममें धन स्थापित करिये ॥ ३ ॥

मदेमदे हि नो ददिर्यूथा गवांसृजुक्तुः ।

सं गृभाय पुरु शतोभयाहस्त्या वसु शिशीहि राय

आ भर ॥ ४ ॥

मदेमदे । हि । नः । ददिः । यूथा । गवाम् । अजुक्तुः ।

सम् । गृभाय । पुरु । शता । उभयाहस्त्या । वसु । शिशीहि ।

रायः । आ । भर ॥ ४ ॥

हे इन्द्र ! आपका यज्ञ सरल है, आप मत्त्येक बार वर्षमें भरने पर हमें गौओंके भुण्ड देते हैं । आप सैंकड़ों बार दोनों हाथोंसे बहुतसे धनको ग्रहण करके तीक्ष्ण करिये और हमें मदान करिये ४

मादयस्व सुते सचा शवसे शूर राधसे ।

विद्वा हि त्वा पुरुवसुमुप कामान्ससृज्महेथा नोविता

भव ॥ ५ ॥

मादयस्व । सुते । सचा । शवसे । शूर । राधसे ।

विद्वा । हि । त्वा । पुरुवसुम् । उप । कामान् । ससृज्महे । अथ ।

नः । अविता । भव ॥ ५ ॥

हे शूर इन्द्र ! आप सहायक बन कर सोमका अभिषव होने पर मदमें भरिये और बलको साधिये, हम आपको विशाल धन वाला जानते हैं, हम आपसे अपनी कामनाओंसे संयुक्त रहें आप हमारे रक्षक हजिये ॥ ५ ॥

ए॒ते तं इन्द्र॑ ज॒न्तवो॑ वि॒श्वं पु॒ष्यन्ति॑ वा॒र्यम् ।

अ॒न्तर्हि॑ रू॒यो ज॒नाना॑म॒र्यो वेदो॑ अ॒दाशु॑षां तेषां नो  
वेद॑ आ भ॒र ॥ ६ ॥

ए॒ते । ते । इन्द्र॑ । ज॒न्तवः॑ । वि॒श्वम् । पु॒ष्यन्ति॑ । वा॒र्यम् ।

अ॒न्तः । हि । रू॒यः । ज॒नानाम् । अ॒र्यः । वेदः॑ । अ॒दाशु॑षाम् ।

तेषा॑म् । नः । वेदः॑ । आ । भ॒र ॥ ६ ॥

इति पञ्चमेनुवाके एकोनविंशं सूक्तम् ॥

हे इन्द्र ! ये जन्तु आपके समग्र वीर्यको पुष्ट करते हैं, आप स्वामी हैं आपकी निन्दा करने वालोंके भीतर जो धन स्थित है उन हवि प्रदान न करने वालोंके धनको आप हमें प्रदान करिये ६

पञ्चम अनुवाकमें उन्नीसवाँ सूक्त समाप्त ( ६७२ )

अप्सोर्षामिण क्रतौ तृतीयसवने “सुरूपकृत्नुमृतये” [ २०. ५७ ]  
“शुष्मिन्तमं न ऊतये” [ २०. ५७. ४ ] इति स्तोत्रियानुरूपौ  
भवतः । तत्र “सुरूपकृत्नुमृतये” इति स्तोत्रियमभितः प्राकृतः  
स्तोत्रियो भवति । “शुष्मिन्तमं न ऊतये” इत्यनुरूपमभितः प्रा-  
कृतोऽनुरूपो भवति । तद् उक्तं वैताने । “तृतीयसवने सुरूपकृत्नु-  
मृतये शुष्मिन्तमं न ऊतय इति स्तोत्रियानुरूपावभितः स्तोत्रि-  
यानुरूपौ” इति [ वै० ४. ३ ] ॥

तथा महाव्रते प्रातःसवने “सुरूपकृत्नुमृतये” इत्याज्यस्तोत्रियो  
भवति । तद् उक्तं वैताने । “महाव्रते सुरूपकृत्नुमृतय इत्याज्य-  
स्तोत्रियः” इति [ वै० ६. ४ ] ॥

तथा श्येनसंदंशाजिरवज्रेषु एकाहेषु “सुरूपकृत्नुमृतये” [ २०.  
५७ ] “उत्तरा मन्दन्तु स्तोमाः” [ २०. ६३ ] एतौ आज्यस्तो-



त्रियौ विकल्पितौ भवतः । त्वामिद्धि हवामहे" इति [ २०. ६८ ]  
पृष्ठस्तोत्रियो भवति । तद् उक्तं वैताने । "श्येनसंदंशाजिरवज्रेषु  
सुरूपकृत्नुमूतय उच्चा मन्दन्तु स्तोमास्त्वामिद्धि हवामहे इति"  
इति [ वै० ८. १ ] ॥

अप्नोर्याप क्रतुके तृतीयसवनमें "सुरूपकृत्नुमूतये" (२०।५७)  
"शुष्मिन्तमं न ऊतये" ( २० । ५७ । ४ ) ये स्तोत्रियानुरूप  
होते हैं । यहाँ "सुरूपकृत्नुमूतये" यह स्तोत्रियके अभितः प्राकृत  
स्तोत्रिय होता है । "शुष्मिन्तमं न ऊतये" यह अनुरूपके अभितः  
प्राकृत अनुरूप होता है । इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है,  
कि-"तृतीयसवने सुरूपकृत्नुमूतये शुष्मिन्तमं न ऊतय इति स्तो-  
त्रियानुरूपावभितः स्तोत्रियानुरूपौ" ( वैतानसूत्र ४ । ३ ) ॥

तथा महाव्रतके प्रातः सवनमें "सुरूपकृत्नुमूतये" ( २० ।  
५७ ) ये आज्यस्तोत्रिय होता है । इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा  
है, कि-"महाव्रते सुरूपकृत्नुमूतये इत्याज्यस्तोत्रियः" ( वैतान-  
सूत्र ६ । ४ ) ॥

तथा श्येनसंदंशाजिरवज्रोंके एकाहोंमें "सुरूपकृत्नुमूतये"  
( २० । ५७ ) "उच्चा मन्दन्तु स्तोमाः" ( २० । ६३ ) ये  
विकल्पसे आज्यस्तोत्रिय होते हैं । "त्वामिद्धि हवामहे" ( २० ।  
६८ ) ये पृष्ठस्तोत्रिय होता है । इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा  
है, कि-"श्येनसंदंशाजिरवज्रेषु सुरूपकृत्नुमूतय उच्चा मन्दन्तु  
स्तोमास्त्वामिद्धि हवामहे इति" ( वैतानसूत्र ८ । ४ ) ।

सुरूपकृत्नुमूतये सुदुधामिव गोदुहे । जुहूमसि द्यवि-  
द्यवि ॥ १ ॥

सुरूपकृत्नुम् । ऊतये । सुदुधाम् इव । गोऽदुहे ॥ जुहूमसि ।

द्यविऽद्यवि ॥ १ ॥

जैसे दूध दुहने वालेके लिये सरलतासे दुहाने वाली गौको बुलाया जाता है, इसी प्रकार हम रक्षाके लिये प्रत्येक अवसर पर इन्द्रदेवका आवाहन करते हैं ॥ १ ॥

उप॑ नः स॒वना ग॑हि सोम॑स्य सोम॒पाः पिब॑ । गो॒दा  
इ॒त् रेव॑तो म॒दः ॥ २ ॥

उप॑ । नः । स॒वना । आ । ग॒हि । सोम॑स्य । सोम॒पाः । पिब॑ ॥

गो॒दाः । इ॒त् । रेव॑तः । म॒दः ॥ २ ॥

इन्द्रदेव गौएँ देने वाले हैं, हर्षमें भरे रहते हैं, धनसम्पन्न हैं, ऐसे इन्द्रदेव हम रे सोमसवनोंके समीप आइये और सोमका पान करिये ॥ २ ॥

अथा॑ ते अ॒न्त॒मानां वि॒द्याम॑ सु॒मती॒नाम् । मा नो  
अ॒ति॑ ख्य आ ग॑हि ॥ ३ ॥

अथ॑ । ते । अ॒न्त॒माना॑म् । वि॒द्याम॑ । सु॒मती॒नाम् ॥ मा । नः ।

अ॒ति॑ । ख्यः । आ । ग॒हि ॥ ३ ॥

हे इन्द्र ! हम आपके समीप रहने वाली सुन्दर बुद्धियोंको जानते हैं आप हमारी अधिक निन्दा न कराइये और हमारे पास आइये ॥ ३ ॥

शु॒ष्मिन्त॑मं न ऊ॒तये॑ द्यु॒म्निनं॑ पा॒हि जागृ॑विम् । इन्द्र  
सोमं॑ श॒तक्र॑तो ॥ ४ ॥

शु॒ष्मिन्त॑म् । नः । ऊ॒तये॑ । द्यु॒म्निन॑म् । पा॒हि । जागृ॑विम् ॥

इन्द्र । सोमम् । श॒त॒क्र॒तो इति॑ शतऽक्रतो ॥ ४ ॥

हे शतक्रतो इन्द्र ! आप हमारी रक्षा करनेके लिये इस बल-  
प्रद उग्रोतिःसम्पन्न-जागरुक रखनेवाले सोमका पान करिये ४  
इन्द्रियाणि शतक्रतो या ते जनैषु पञ्चसु । इन्द्र तानि त

आ वृणे ॥ ५ ॥

इन्द्रियाणि । शतक्रतो इति शतःक्रतो । या । ते । जनैषु । पञ्चऽसु ॥

इन्द्र । तानि । ते । आ । वृणे ॥ ५ ॥

हे बहुकर्मन् इन्द्र ! आपकी जो इन्द्रियें देवता पितर आदि पञ्च  
जनोंमें हैं । हे इन्द्र ! मैं उन इन्द्रियोंका वरण करता हूँ ॥ ५ ॥

अगन्निन्द्र श्रवो बृहद् द्युम्नं दधिष्व दुष्टरम् । उत ते

शुष्मं तिरामसि ॥ ६ ॥

अगन् । इन्द्र । श्रवः । बृहत् । द्युम्नम् । दधिष्व । दुष्टरम् ॥

उत । ते । शुष्मम् । तिरामसि ॥ ६ ॥

हे इन्द्रदेव ! आपका विशाल अन्न हमको प्राप्त होवे, और  
आप शत्रुओंसे तरनेके अयोग्य दमकते हुए धनोंको हममें स्था-  
पित करिये और हम आपके बलको सोम और स्तोत्रसे बढ़ाते हैं ६

अर्वावतो न आ गह्यथो शक्र परावतः ।

उं लोको यस्तं अद्रिव इन्द्रेह तत् आ महि ॥ ७ ॥

अर्वाऽवतः । नः । आ । गहि । अथो इति । शक्र । पराऽवतः ।

उं इति । लोकः । यः । ते । अद्रिऽवः । इन्द्र । इह । ततः ।

आ । गहि ॥ ७ ॥



हे बलवान् इन्द्र ! आप समीपके स्थलमें हों तो समीपके स्थलसे और दूरके स्थलमें हों तो दूरके स्थानसे हमारे पास आइये, हे वज्रधारिन् इन्द्र ! आपका जो उत्तम लोक है, उस स्थानसे भी आप सोमपान करनेके लिये इस पूजाके स्थानमें आइये ॥ ७ ॥

इन्द्रो अङ्ग महद् भयम्भी षट्पञ्चवत् । स हि स्थिरो  
विचर्षणिः ॥ ८ ॥

इन्द्रः । अङ्ग । महत् । भयम् । अभि । सत् । अप । चुच्यवत् ॥

सः । हि । स्थिरः । विचर्षणिः ॥ ८ ॥

हे आत्मा वा ऋत्विज ! इन्द्रदेव हमारे ऊपर पड़े हुए, दूसरों से न हटाने योग्य बड़े भारी भयका तिरस्कार कर डालते हैं, और भयको हमसे अलग करके दूर भगा देते हैं, वह इन्द्रदेव स्थिर रहने वाले हैं अर्थात् कोई उनको च्युत नहीं कर सकता । और वह सबको देखने वाले हैं अर्थात् छिपे हुए भय देने वालों को और प्रकाशित हम रक्षणीयोंको भी जानते हैं ॥ ८ ॥

इन्द्रश्च मृलयाति नो न नः पश्चादघं नशत् । भद्रं  
भवाति नः पुरः ॥ ९ ॥

इन्द्रः । च । मृलयाति । नः । न । नः । पश्चात् । अघम् ।

नशत् । भद्रम् । भवाति । नः । पुरः ॥ ९ ॥

यदि इन्द्रदेव हमारे रक्षक हों तो वह हमको सुख दें, यदि इन्द्रदेव हमारे रक्षक हों तो पीछे हमारा दुःख नष्ट होजावे और सामने हमारा प्रकल होवे ॥ ९ ॥

इन्द्र आशाभ्यस्परि सर्वाभ्यो अभयं कर्त्तु । जेता  
शत्रून् विचर्षणिः ॥ १० ॥

इन्द्रः । आशाभ्यः । परि । सर्वाभ्यः । अभयम् । कर्त्तु ॥ जेता ।

शत्रून् । विचर्षणिः ॥ १० ॥

इन्द्रदेव सब दिशा विदिशाओंसे हम पर पड़ सकने वाले  
भयोंको दूर करें । यह इन्द्रदेव सब दिशाओंमें जो हमारे शत्रु हैं  
उनको देखने वाले हैं ॥ १० ॥

क ई वेद सुते सचा पिबन्तं कद् वयो दधे ।

अयं यः पुरो विभिनत्त्योजसा मन्दानः शिप्रयन्धसः

कः । ईम् । वेद । सुते । सचा । पिबन्तम् । कद् । वयः । दधे ।

अयम् । यः । पुरः । विभिनत्ति । ओजसा । मन्दानः । शिप्री ।

अन्धसः ॥ ११ ॥

इस बातको कौन जानता है, कि-सोमका अभिषव होने पर  
साथ २ यह कौनसे अन्नको धारण करते हैं, यह सुन्दर ठोड़ी  
वाले हवीरूप अन्नसे हर्षमें भरे हुए इन्द्र अपने सामनेके शत्रु-  
पुरोंको बलपूर्वक नष्ट कर डालते हैं ॥ ११ ॥

दाना मृगो न वारणः पुरुत्रा चरथं दधे ।

नकिष्ठा नि यमदा सुते गमो महांश्चरस्योजसा १२

दाना । मृगः । न । वारणः । पुरुत्रा । चरथम् । दधे ।

नकिः । त्वा । नि । यमत् । आ । सुते । गमः । महान् । चरसि ।

ओजसा ॥ १२ ॥

मदमत्त मृगकी समान बारण करने वाले आप रथमें बैठ कर  
अनेक स्थानोंमें गमन करते हैं, सोमका अभिषव होने पर ऐसा  
कोई नहीं है जो आपको रोक सके, आप बलसे महान् बनते हुए  
विचरण करते हैं, अतः सोमका अभिषव होने पर आइये १२  
य उग्रः सन्ननिष्ठः स्थिरो रणाय संस्कृतः ।

यदि स्तोतुर्मघवां शृण्वद्धवं नेन्द्रो योषत्या गमत्  
यः । उग्रः । सन् । अन्निस्तुतः । स्थिरः । रणाय । संस्कृतः ।

यदि । स्तोतुः । मघवा । शृण्वत् । इन्द्रम् । न । इन्द्रः ।  
योषति । आ । गमत् ॥ १३ ॥

जो उग्र पड़ने पर शत्रुओंसे अहिंसित रहते हैं, जो रणके  
लिये तयार होने पर अहिंसित रहते हैं, यदि यह मघवा इन्द्र  
स्तुति करने वालेके आह्वानको सुनें तो स्त्रीके पास जानेकी समान  
आवेंगे ॥ १३ ॥

वयं घ त्वा सुतावन्त आपो न वृक्तबर्हिषः ।  
पवित्रस्य प्रस्रवणेषु वृत्रहन् परिस्तोतार आसते १४  
वयम् । घ । त्वा । सुतश्चान्तः । आपः । न । वृक्तबर्हिषः ।  
पवित्रस्य । प्रस्रवणेषु । वृत्रहन् । परि । स्तोतारः । आसते १४

हे इन्द्र ! अभिषव करके जलकी समान पतले क्रिये गए  
अभिषुत सोमसे सम्पन्न हम ऋत्विज, पवित्रसे प्रस्रवणके समय  
आपकी स्तुति करते हुए बैठे हैं ॥ १४ ॥

स्वरन्ति त्वा सुते नरो वसो निरेक उक्थिनः ।



कदा सुतं तृषाण ओक आ गम इन्द्र स्वब्दीवः वंसगः

स्वरन्ति । त्वा । सुते । नरः । वसो इति । निरेके । उक्थिनः ।

कदा । सुतम् । तृषाणः । ओकः । आ । गमः । इन्द्र । स्वब्दी-

इव । वंसगः ॥ १५ ॥

हे वासयितः इन्द्र ! सोमका अभिषव होजाने पर अधिकतासे उक्थगान करने वाले पुरुष ऋत्विज आपका स्वरोसे आह्वान कर रहे हैं, कि-कब आप वननीय गति स्वब्दी वृषभकी समान तृषामें भर कर यागगृहमें अभिषुत सोमका पान करनेके लिये आवेंगे ॥ १५ ॥

कण्वेभिर्धृष्णवा धृषद् वाजं दर्षि सहस्रिणम् ।

पिशङ्गरूपं मघवन् विचर्षणे मज्जू गोमन्तमीमहे १६

कण्वेभिः । धृष्णो इति । आ । धृषद् । वाजम् । दर्षि । सहस्रिणम् ।

पिशङ्गरूपम् । मघऽवन् । विऽचर्षणे । मज्जू । गोऽमन्तम् । ईमहे ।

इति पञ्चमेनुवाके विंशं सूक्तम् ॥

हे वर्षक इन्द्रदेव ! आप धनको दबा लेते हैं, सहस्रों शक्तियों से भी सम्पन्न व्यक्तिको विदीर्ण कर डालते हैं, हे विद्वन् इन्द्र ! हम गौओंसे सम्पन्न पिशंग रूप वाले धनकी आपसे याचना करते हैं ॥ १६ ॥

पञ्चम अनुवाकमें बीसवाँ सूक्त समाप्त ( ६७३ )

विषुवति सौर्यपृष्ठे “वयमहौ असि सूर्य” [ २०. ५८, ३ ]

“आयन्त इव सूर्यम्” [ २०. ५८, १ ] इति विकल्पितौ पृष्ठस्तौ-

प्रियानुरूपौ भवतः । तद् उक्तं वैताने । “ब्रह्महोँ असि सूर्य आ-  
यन्त इव सूर्यमिति वा” इति [ वै० ६. ३ ] ॥

वथा तीव्रसुचतुःपर्याययोः सादृशान्त्योर्दशपेये विभ्रंशयज्ञे  
“आयन्त इव सूर्यम्” इत्येष पृष्ठस्तोत्रियो भवति ॥

तथा साद्यःक्राभिधानेषु एकाहेषु श्येनयागवर्जितेषु “अहमिद्धि  
पितुष्परि” [ २०. ११५ ] इत्याज्यस्तोत्रियो भवति । चकारात्  
“आयन्त इव सूर्यम्” इत्याज्यस्तोत्रियो भवति ॥

तद् उक्तं वैताने । “तीव्रसुचतुःपर्याययोः सहस्रान्त्ययोर्दश-  
पेये विभ्रंशयज्ञे आयन्त इव सूर्यमिति । साद्यःक्रेषु श्येनवर्जम्  
अहमिद्धि पितुष्परीति च” इति [ वै० ८. २ ] ॥

तथा साकंमेधस्य तृतीयेऽहनि अस्य सूक्तस्य विनियोग उक्तः ।  
स च “तमिन्द्रं वाजयामसि” इति सूक्ते [ २०. ४७ ] द्रष्टव्यः ॥

तथा चतुरहाणां तृतीयेष्वहःसु “आयन्त इव सूर्यम्” [ २०.  
५८ ] “त्वं न इन्द्रा भर” [ २०. १०८ ] एतौ पृष्ठोक्त्यस्तोत्रियो  
भवतः । तद् उक्तं वैताने । “चतुरहाणां आयन्त इव सूर्यं त्वं न  
इन्द्रा भरेति” इति [ वै० ८. ३ ] ॥

तथा त्रिककुदशाहे अस्य विनियोगः “क ई वेद सुते सचा”  
इति सूक्ते [ २०. ५३ ] उक्तः ॥

विषुवत् सौर्यपृष्ठमें “ब्रह्महोँ असि सूर्य” ( २० । ५८ । ३ )  
“आयन्त इव सूर्यम्” ( २० । ५८ । १ ) ये विकल्पसे पृष्ठस्तो-  
त्रिय अनुरूप होते हैं । इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है,  
कि—“ब्रह्महोँ असि सूर्य आयन्त इव सूर्यमिति वा” ( वैतान-  
सूत्र ६ । ३ ) ॥

तथा सहस्रान्त्य तीव्र सुचतुः पर्यायोक्ते दशपेय विभ्रंश-यज्ञमें  
“आयन्त इव सूर्यम्” यह पृष्ठस्तोत्रिय होता है ।

तथा श्येनयागवर्जित साद्यःक्र नामक एकाहोंमें “अहमिद्धि

पितृष्परि” २०।११५ ये आज्यस्तोत्रिय होता है। चकार से “आयन्त इव सूर्यम्” यह आज्यस्तोत्रिय होता है।

इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि—“तीव्रसुचतुः पर्या ययोः सहस्रान्त्ययोर्दशपेये विभ्रंशयज्ञे आयन्त इव सूर्यमिति । साद्यःक्रेषु श्येनवर्जम् अहमिद्धि पितृष्परीति च” ( वैतान-सूत्र ८।२ )

तथा साकमेधके तृतीय दिनमें इस सूक्तका विनियोग कहा है। उसको “तमिन्द्रं वाजयामसि” २०।४७ सूक्तमें देखना चाहिये।

तथा चतुरहोंके तीसरे दिनोंमें “आयन्त इव सूर्यम्” २०।५८ “त्वं न इन्द्राभर” २०।१०८ ये पृष्ठोक्त्यस्तोत्रिय होते हैं। इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि—“चतुरहाणां आयन्त इव सूर्यम् त्वं न इन्द्रा भरेति” ( वैतानसूत्र ८।३ ) ॥

तथा त्रिककुब्जदशाहमें इसका विनियोग “कई वेद सुते सचा” २०।५३ सूक्तमें देखना चाहिये।

आयन्त इव सूर्यं विश्वेदिन्द्रस्य भक्षत ।

वसूनि जाते जनमान ओजसा प्रति भागं न दीधिमः ।

आयन्तः इव । सूर्यम् । विश्वा । इत् । इन्द्रस्य । भक्षत ।

वसूनि । जाते । जनमाने । ओजसा । प्रति । भागम् । न ।

दीधिमः ॥ १ ॥

जिस प्रकार किरणें प्रतिदिन सूर्यका उपस्थान करती हैं—सूर्यके समीप रहती हैं, इसी प्रकार मध्यस्थानक उदकेश्वर इन्द्र के समीप रहती हैं, उन इन्द्रके जलरूप सब धनोंको अपने लिये वा सब जनोंके लिये हम बाँटना चाहते हैं। और जैसे इन्द्र भूत



भविष्यत् वर्तमानके धनोंको अपने ऐश्वर्यबलसे बाँटना चाहते हैं और उस भागसे प्राणी उपजीवन करते हैं। इसी प्रकार हम भी उस भागका ध्यान करते हैं ॥ १ ॥

अनर्शरातिं वसुदामुपं स्तुहि भद्रा इन्द्रस्य रातयः ।  
सो अस्य कामं विधतो न रोषति मनो दानाय  
चोदयन् ॥ २ ॥

अनर्शरातिम् । वसुदाम् । उपं । स्तुहि । भद्राः । इन्द्रस्य । रातयः ।  
सः । अस्य । कामम् । विधतः । न । रोषति । मनः । दानाय ।  
चोदयन् ॥ २ ॥

हे स्तोतः ! अश्लीलता रहित दान वाले धनदाता इन्द्रकी मन से शरण लेकर तुम स्तुति करो। इन इन्द्रके दान कन्याणमय हैं। वह इन्द्रदेव इस अपने भक्तके धारण किये हुए मनोरथोंको नष्ट नहीं करते हैं और जो इस प्रकार स्तुति करके याचना करता है वह इन्द्रके मनको दानके लिये प्रेरित करता है ॥ २ ॥

ब्रह्महौ असि सूर्य बडादित्य महाँ असि ।

महस्ते सतो महिमा पनस्यतेद्धा देव महाँ असि ३  
बट् । महान् । असि । सूर्य । बट् । आदित्य । महान् । असि ।  
महः । ते । सतः । महिमा । पनस्यते । अद्धा । देव । महान् ।  
असि ॥ ३ ॥

हे सूर्यात्मक इन्द्रदेव ! आप महान् हैं, यह सत्य है, हे अदिति पुत्र ! आप महान् हैं यह सत्य है। आप सत्स्वरूपपूज्यकी महिमा भी प्रशंसा पाती है, हे देव ! आप महान् हैं, यह सत्य है ॥ ३ ॥

बद् सूर्यं श्रवसा महौ असि सत्रा देव महौ असि ।  
महा देवानामसुर्यः पुरोहितो विमु ज्योतिरदाभ्यम् ४

बद् । सूर्य । श्रवसा । महान् । असि । सत्रा । देव । महान् । असि ।

महा । देवानाम् । असुर्यः । पुरोहितः । विमु । ज्योतिः ।

अदाभ्यम् ॥ ४ ॥

इति पञ्चमेनुवाके एकविंशं सूक्तम् ॥

हे सूर्य ! आप हविरूप अन्नसे महान् हैं, यह सत्य है और  
हे देव ! साथ ही आप स्वयं भी महान् हैं । आप अपनी महिमा  
से अधुरोंसे भिड़ने वाले देवश्रेष्ठ हैं, आगे २ हित करते हैं और  
अप अहिंस्य व्यवषक ज्योति हैं ॥ ४ ॥

पञ्चम अनुवाकमें इक्कीसवाँ सूक्त समाप्त ( ६७४ )

दशरात्रस्य दशमेहनि माध्यन्दिने सवने “उदु त्ये मधुमत्तमाः”  
[ २०. ५६. १ ] “उद्दिन्वस्य रिच्यते” [ २०. ५६. ३ ] इति  
पृष्ठस्तोत्रियानुरूपौ भक्तः । तद् उक्तं वैताने । “उदु त्ये मधुम-  
त्तमा उद्दिन्वस्य रिच्यत इति पृष्ठस्तोत्रियानुरूपौ” इति [ वै० ६. ३ ] ॥

दशरात्रके दशम दिनमें माध्यन्दिन सवनके अवसर पर “उदु  
त्ये मधुमत्तमाः” ( २० । ५६ । ३ ) के पृष्ठस्तोत्रिय अनुरूप होते  
हैं । इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि—“उदु त्ये मधुमत्तमा  
उद्दिन्वस्य रिच्यत इति पृष्ठस्तोत्रियानुरूपौ” (वैतानसूत्र ६।३) ॥

उदु त्ये मधुमत्तमा गिर स्तोमांस ईरते ।

सत्राजितो धनसा अक्षितो तयो वाजयन्तो रथा इव ?

उत् । ऊँ इति । त्ये । मधुमत्तमाः । गिरः । स्तोमांसः । ईरते ।

सत्राऽजितः । धनऽसाः । अक्षितऽऊतयः । वाजऽयन्तः ।

रथाऽइव ॥ १ ॥

ये आगे कहे जाने जाने वाले प्रगीतमन्त्रसाध्य त्रिवृत् आदि स्तोत्र और अप्रगीत मन्त्रसाध्य शस्त्र आदिकी मधुर वाणियों प्रादुर्भूत हो रहीं हैं ये धन प्रदान करनेवाली हैं और एक बार ही शत्रुओंको जीत लेती हैं, ये सदा रक्षक हैं और यह अन्न प्रदान करने वाली हैं और रथ जैसे रथमें बैठने वालेके प्रयोजनके लिये दौड़ता है, तैसे ही यह इन्द्रके सन्तोषके लिये प्रकट होती है । १।

कण्वा इव भृगवः सूर्या इव विश्वमिद्धीतमानशुः ।

इन्द्रं स्तोमेभिर्मह्यन्त आयवः प्रियमेधासो अस्वरन् २

कणाऽइव । भृगवः । सूर्याऽइव । विश्वम् । इत् । धीतम् ।

आनशुः ।

इन्द्रम् । स्तोमेभिः । मह्यन्तः । आयवः । प्रियमेधासः ।

अस्वरन् ॥ २ ॥

कण्वगोत्रमें उत्पन्न हुए महर्षि जिस प्रकार, तीनों लोकोंके स्वामी, फलाभिलाषियोंके द्वारा ध्याये हुए इन्द्रको ही स्तोत्र शस्त्र आदि स्तुतियोंसे प्राप्त होते हैं, जैसे धाता अर्यमा आदि सूर्य अपने नियन्ता इन्द्रको प्राप्त होते हैं, अर्थात् इन्द्रकी स्तुति करते हैं और भृगुवंशी महर्षि जिस प्रकार इन्द्रकी शरणमें जाते हैं, इसी प्रकार प्रियमेधा नामक मनुष्य पूजा करते समय स्तोत्रों से इन्द्रकी स्तुति करते हैं ॥ २ ॥

उदिन्वस्य रिच्येतेशो धनं न जिग्युषः ।



य इन्द्रो हरि॒वान्न द॑भन्ति तं रिपो दत्तं दधाति  
सोमिनि ॥ ३ ॥

उ॒त् । इ॒त् । नु । अ॒स्य । रि॒च्य॒ते । अं॒शः । ध॒नम् । न । जि॒ग्युषः ।  
यः । इन्द्रः । हरि॑ऽवान् । न । द॒भ॒न्ति । तम् । रि॒पः । दत्त॑म् ।  
दधा॑ति । सोमि॑नि ॥ ३ ॥

विजेताके धनकी समान इन इन्द्रदेवका यज्ञभाग होता है, जो इन्द्रदेव हरि नामक घोड़ोंसे सम्पन्न हैं, उनको पाप बाँध नहीं सकते और यह इन्द्रदेव सोमप्रदाता यजमानमें बलको स्थापित करते हैं ॥ ३ ॥

मन्त्रमखर्वं सुधितं सुपेशसं दधात यज्ञियेष्व ।  
पूर्वीश्चन प्रसितयस्तरन्ति तं य इन्द्रे कर्मणा भुवत् ४  
मन्त्रम् । अखर्वम् । सु॒धित॑म् । सु॒पेश॑सम् । दधा॑त । य॒ज्ञिये॑षु । आ ।  
पूर्वीः । च॒न । प्र॒सित॑यः । त॒र॒न्ति । तम् । यः । इ॒न्द्रे । कर्म॑णा ।  
भुवत् ॥ ४ ॥

इति पञ्चमेऽनुवाके द्वाविंशं सूक्तम् ॥

हे स्तोताओं ! यज्ञिय स्तोत्रोंमें महाप्रभावसम्पन्न सुन्दर दीप्ति और रूप देने वाले मन्त्रोंका प्रयोग करो, जो कर्मसे इन्द्रकी सेवामें परायण रहता है वह पूर्व बन्धनों पापों ) से छूट जाता है ४

पञ्चम अनुवाकमें बाईसवाँ सूक्त समाप्त ६७५

अभिसवमध्यमेष्वहःसु द्वितीयतृतीयचतुर्थपञ्चमेषु । “एवा  
हसि वीरयुः” इत्यादयोऽष्टौ तृचास्त्वृतीयसवने उक्थस्तोत्रियांनु-

रूपः यथाक्रमं भवति । एवं च “एवा हसि वीरयुः” [२०. ६०]  
 “एवा हस्य स्रुता” [ २०. ६०. ४-६ ] इति स्तोत्रियानुरूपौ  
 द्वितीये । “तं ते मदं गृणीमसि” [ २०. ६१ ] “तम्बभि प्र  
 गायत” [ २०. ६१. ४-६ ] इति तृतीये । “वयमु त्वामपूर्य”  
 [ २०. ६२, १ ] “यो न इदमिदं पुरा” [ २०. ६२, ३ ]  
 इति चतुर्थे । “इन्द्राय साम गायत” [ २०. ६२. ५-७ ] “तम्बभि  
 प्र गायत” [ २०. ६१. ४-६ ] इति पञ्चमे । तद् उक्तं वैताने ।  
 “मध्यमेष्वेवा हसि वीरयुरित्युक्थस्तोत्रियानुरूपा” इति [ वै० ६. १ ] ॥

तथा वैकुण्ठस्य पृष्ठयज्ञहस्य द्वितीयेऽहनि “एवा हसि वीरयुः”  
 इति उक्थस्तोत्रियो भवति । तद् उक्तं वैताने । “पृष्ठयज्ञहस्य  
 एवा हसि वीरयुरित्युक्थे” इति [ वै० ८. ३ ] ॥

तथा तस्यैव तृतीयेऽहनि अस्य विनियोगः “अभि प्र वः सुरा-  
 धसम्” इति सूक्ते [ २०. ५१. ] उक्तः ॥

तथा पृष्ठयपञ्चाहस्य द्वितीयेऽहनि “एवा हसि वीरयुः” इति  
 पृष्ठोक्थस्तोत्रियो भवति । तद् उक्तं वैताने । “पृष्ठयपञ्चाहस्यैवा  
 हसि वीरयुरिति” इति [ वै० ८. ३ ] ॥

तथा पृष्ठयषडहस्य द्वितीयेऽहनि एष उक्थस्तोत्रियो भवति ।  
 तद् उक्तं वैताने । “पृष्ठयस्य द्वितीय एवा हसि वीरयुरिति”  
 इति [ वै० ८. ४ ] ॥

अभिसवके मध्यमदिनमें दूसरे तीसरे चौथे पाँचवेंमें “एवा  
 हसि वीरयुः” इत्यादि आठ तृच तृतीयसवनमें यथाक्रम स्तोत्रिय  
 और अनुरूप होती हैं । इसी प्रकार “एवा हसि वीरयुः” ( २० ।  
 ६० ) “एवा हस्य स्रुता ( २० । ६० । ४-६ ) ये स्तोत्रिय और  
 अनुरूप दूसरे दिनमें होते हैं । “तं ते मदं गृणीमसि” ( २० । ६१ )  
 “तम्बभि प्र गायत” ( २० । ६१ । ४-६ ) ये तृतीय दिनमें  
 होते हैं । “वयमु त्वामपूर्य” ( २० । ६२, १ ) “यो न इदमिदं

पुरा” ( २० । ६२, ३ ) ये चौथे दिनमें होने हैं । “इन्द्राय साम गायत” ( २० । ६२ । ५-७ ) “तम्बभि प्रगायत” ( २० । ६१ । ४-६ ) ये पञ्चम दिनमें होते हैं ॥ इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि—“मध्यमेष्वेवा ह्यसि वीरयुरित्युक्थस्तोत्रियानुरूपाः” इति ( वैतानसूत्र ६ । १ ) ॥

तथा वैकृत पृष्ठयत्र्यहके द्वितीय दिनमें “एवा ह्यसि वीरयुः” यह उक्थस्तोत्रिय होता है । इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि—“पृष्ठयत्रहस्य एवा ह्यसि वीरयुरित्युक्थे” ( वैतानसूत्र ८ । ३ )

तथा इसीके तृतीयदिनमें इसका जो विनियोग “अभि प्र वः सुराधसम्” ( २० । ५१ ) सूक्तमें कहा है, उसको देखना चाहिये ।

तथा पृष्ठयपञ्चाहके द्वितीय दिनमें “एवा ह्यसि वीरयुः” यह पृष्ठोक्थस्तोत्रिय होता है । इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि—“पृष्ठयपञ्चाहस्यैवा ह्यसि वीरयुरिति” ( वैतानसूत्र ८ । ४ ) ॥

ए॒वा ह्य॒सि वी॒रयु॒रे॒वा शू॒र उ॒त स्थि॒रः । ए॒वा ते रा॒ध्यं  
मनः ॥ १ ॥

ए॒व । हि॒ । अ॒सि । वी॒र॒युः । ए॒व । शू॒रः । उ॒त । स्थि॒रः ॥

ए॒व । ते॒ । रा॒ध्यम् । मनः ॥ १ ॥

आप वीरोंको हटाने वाले हैं, शूर हैं और स्थिर हैं, आपका मन राध्य ॥ १ ॥

ए॒वा रा॒तिस्तु॒वीमघ॒ विश्वे॑भि॒र्धायि॑ धा॒तृभिः॑ । अ॒धा  
चि॒दिन्द्र॑ मे स॒चा ॥ २ ॥

ए॒व । रा॒तिः । तु॒वि॒ष्म॒घ । विश्वे॑भिः । धा॒यि । धा॒तृभिः । अ॒ध ।

चि॒त् । इन्द्र॑ । मे । स॒चा ॥ २ ॥



हे बहुतसे धनसे सम्पन्न इन्द्रदेव ! अपनी पुष्ट करने वाली समस्त शक्तियोंके साथ हममें दानशक्तिको स्थापित करिये, हे इन्द्र ! फिर आप मेरे सहायक बनिये ॥ २ ॥

मो पु ब्रह्मेव तन्द्रयुर्भुवो वाजानां पते । मत्स्वा  
सुतस्य गोमतः ॥ ३ ॥

मो इति । सु । ब्रह्माऽइव । तन्द्रयुः । भुवः । वाजानाम् । पते ॥  
मत्स्व । सुतस्य । गोऽमतः ॥ ३ ॥

हे अन्नोके स्वामी आप ब्रह्माजीकी समान तन्द्रयु न बनिये और बुद्धि प्रदान करने वाले अभिषुत सोमसे आनन्दमें भरिये  
एवा ह्यस्य सूनृतां विरप्शी गोमती मही । पक्वा  
शाखा न दाशुषे ॥ ४ ॥

एव । हि । अस्य । सूनृता । विरप्शी । गोऽमती । मही ॥  
पक्वा । शाखा । न । दाशुषे ॥ ४ ॥

इनकी मधुर, गोप्रदात्री विशाल भूमि हवि प्रदान करनेवाली यजमानको पक्व शाखाकी समान ( फल प्रदान करने वाली है )  
एवा हि ते विभूतय ऊतय इन्द्र मावते । सद्यश्चित्  
सन्ति दाशुषे ॥ ५ ॥

एव । हि । ते । विऽभूतयः । ऊतयः । इन्द्र ! माऽवते ॥ सद्यः ।  
चित् । सन्ति । दाशुषे ॥ ५ ॥

हे पृथ्वीपति इन्द्र ! आपकी रक्षक विभूतियों, हवि देने वाले यज्ञमानके लिये शीघ्र ही उपस्थित होजाती हैं ॥ ५ ॥

ए॒वा ह्य॑स्य॒ काम्या॒ स्तोमं॑ उ॒क्तं च॒ शंस्या॑ । इन्द्रा॑य॒  
सोम॑पीतये ॥ ६ ॥

ए॒व । हि । अ॒स्य । का॒म्या । स्तो॑मः । उ॒क्तम् । च । शं॒स्या ॥

इन्द्राय । सोमऽपीतये ॥ ६ ॥

इति पञ्चमेनुवाके त्रयोविंशं सूक्तम् ॥

इन्द्रको सोम पिलाते समय स्तोम उक्त और शंस्या (नामक स्तुतियों) इन्द्रदेवकी कमनीय हैं ॥ ६ ॥

पञ्चम अनुवाकमें तेईससंघाँ सूक्त समाप्त ( ६७६ )

अभिसवे “तं ते मदं गृणीमसि” इत्यस्य विनियोगः पूर्वेण [ २०. ६० ] सह उक्तः ॥

तथा व्युष्ट्याङ्गिरसकापिवनचैत्ररथद्वयहानां प्रथमेऽहनि “तं ते मदं गृणीमसि” इति उक्तस्तोत्रियो भवति । तद् उक्तं चैताने । “व्युष्ट्याङ्गिरसकापिवनचैत्ररथद्वयहानां तं ते मदं गृणीमसीति” इति [ वै० ८. ३ ] ॥

तथा वैश्वदेवादीनां त्र्यहाणां द्वितीयेऽवहःसु अस्य विनियोगः “तमिन्द्रं वाजयामसि” इति सूक्ते [ २०. ४७ ] उक्तः ॥

अभिसवमें “तं ते मदं गृणीमसि” इसका विनियोग पूर्वसूक्त ( २०. ६० ) के साथ कह दिया है ।

तथा व्युष्ट्य आंगिरस कापिवन चैत्ररथ द्वयहानोंके प्रथम दिनमें “तं ते मदं गृणीमसि” यह उक्तस्तोत्रिय होता है । इसी बातको चैतानसूत्रमें कहा है, कि—“व्युष्ट्यांगिरसकापिवनचैत्ररथद्वयहानां तं ते मदं गृणीमसीति” ( चैतानसूत्र ८. ३ ) ॥

तथा वैश्वदेव आदि ऋषींके द्वितीयं दिनोमे इसका विनि-  
योग "तमिन्द्रं वाजयामसि" २० । ४७ सूक्तमें कहा है ॥

तं ते मदं गृणीमसि वृषणं पृत्सु सांसहिम् । उलोक-  
कृत्नुमद्रिवो हरिश्रियम् ॥ १ ॥

तम् । ते । मदम् । गृणीमसि । वृषणम् । पृत्सु । सांसहिम् ।

ऊं इति । लोकःकृत्नुम् । अद्रिःवः । हरिःश्रियम् ॥ १ ॥

हे वज्रधारिन् इन्द्र ! हम फलोंकी वर्षा करने वाले, सेनाओं  
में शत्रुओंका अभिभव करने वाले और हरी नामक घोड़ोंकी  
श्रीसे सम्पन्न आपके लोककृत्नु मदकी स्तुति करते हैं ॥ १ ॥

येन ज्योतीष्यायवे मनवे च विवेदिथ ।

मन्दानो अस्य बर्हिषो वि राजसि ॥ २ ॥

येन । ज्योतीषि । आयवे । मनवे । च । विवेदिथ ।

मन्दानः । अस्य । बर्हिषः । वि । राजसि ॥ २ ॥

आपने जिस सोमके प्रभावसे आयु और मनुके लिये ज्यो-  
तिर्मय उपायोंको प्राप्त कराया था, उस सोमसे हर्षमें भरे हुए  
आप इस यजमानके कुशासन पर विराज रहे हैं ॥ २ ॥

तद्वा चित्त उक्थिनोनु ध्रुवन्ति पूर्वथा ।

वृषपत्नीरपो जया दिवेदिवे ॥ ३ ॥

तत् । अद्य । चित् । ते । उक्थिनः । अनु । ध्रुवन्ति । पूर्वथा ।

वृषपत्नीः । अपः । जय । दिवेऽदिवे ॥ ३ ॥



ये उक्थगान करनेवाले आपके पूर्व कर्मोंकी स्तुति कर रहे हैं,  
आप प्रत्येक विजिगीषाके अवसर पर धर्मकृत्य करके विजय पाइये  
तम्बभि प्र गायत पुरुहूतं पुरुष्टुतम् ।

इन्द्रं गीर्भिस्तविषमा विवासत ॥ ४ ॥

तम् । ऊं इति । अभि । प्र । गायत । पुरुऽहूतम् । पुरुऽस्तुतम् ।

इन्द्रम् । गीःऽभिः । तविषम् । आ । विवासत ॥ ४ ॥

बहुतोंसे आहूत और बहुतोंसे स्तुत उन इन्द्रदेवका ही तुम  
यशोगान करो, महान् इन्द्रदेवको ही तुम स्तुतिरूपा वाणियोंसे  
आवासित करो ॥ ४ ॥

यस्य द्विर्बर्हसो बृहत् सहो दाधार रोदसी ।

गिरीर्ज्रा अपः स्वर्षत्वना ॥ ५ ॥

यस्य । द्विऽबर्हसः । बृहत् । सहः । दाधार । रोदसी इति ।

गिरीन् । अज्रान् । अपः । स्वर्षः । तृषऽत्वना ॥ ५ ॥

जिस द्विर्बर्हस् इन्द्रके धर्मभावके कारण धावा पृथिवी उनके  
महान् बल पर्वत वज्र अल और स्वर्गको धारण करते हैं ( हे स्तो-  
ताओं ! तुम उन इन्द्रदेवकी स्तुति करो ॥ ५ ॥

स राजसि पुरुष्टुतं एको वृत्राणि जिघ्रसे ।

इन्द्र जैत्रा श्रवस्या च यन्तवे ॥ ६ ॥

सः । राजसि । पुरुऽस्तुतः । एकः । वृत्राणि । जिघ्रसे ।

इन्द्र । जैत्रा । श्रवस्या । च । यन्तवे ॥ ६ ॥

इति पञ्चमेनुवाके चतुर्विंशं सूक्तम् ॥

हे पुरुषदुत इन्द्र ! आप विजयशील यशको पानेके लिये दमकते हैं और अकेले ही आवरक शत्रुओंको मार डालते हैं ॥ ६ ॥

पञ्चम अनुवाकमें चौबीसवाँ सूक्त समाप्त ( ६३५ )

“वयमु त्वामपूर्य” इत्याद्यतृचस्य विनियोगः [ २०. १४ ] इत्यत्र उक्तः ॥

तथा “इन्द्राय साम गायत” [ २०. ६२. ५ ] इत्यस्य विनियोगः “इन्द्रो मदाय वावृधे” [ २०. ५६ ] इत्यनेन सह उक्तः ॥

“वयमुः त्वामपूर्य” सूक्तका विनियोग ( २०।१४ ) में कह दिया है ।

तथा “इन्द्राय साम गायत” ( २० । ६५ । ५ ) इसका विनियोग “इन्द्रो मदाय वावृधे” ( २० । ५६ ) के साथ कह दिया है ।

वयमु त्वामपूर्य स्थूरं न कच्चिद् भरन्तोवस्यवः ।

वाजे चित्रं हवामहे ॥ १ ॥

वयम् । ऊं इति । त्वाम् । अपूर्य । स्थूरम् । न । कत् । चित् ।

भरन्तः । अवस्यवः । वाजे । चित्रम् । हवामहे ॥ १ ॥

हे वारम्बार गमन करने पर भी नवीन ही रहनेवाले अपूर्य ! ( अर्थात् आपका अनादर कभी नहीं होता ) इन्द्र ! आप पूजनीयका अन्नप्राप्ति वा संग्राममें हवि आदिसे पोषण करने वाले हम रक्षाकाम ही, आवाहन करते हैं, आप हमारी ओर ही विजय दिलानेके लिये आइये हमारे प्रतिपक्षियोंकी ओर न जाइये, क्योंकि—हम ही आपका आवाहन कर रहे हैं । जैसे मनुष्य किसी परमगुणी राजाको अभिमत फल देकर पुष्ट करते हैं, उसको ही अपनी विजयके लिये बुलाते हैं, इसी प्रकार हम आपका आवाहन करते हैं ॥ १ ॥

उप त्वा कर्मन्नुतये स नो युवोग्रश्चक्राम यो धृषत् ।  
त्वामिच्छयवितारं ववृमहे सखाय इन्द्र सानसिम् ॥ २ ॥

उप । त्वा । कर्मन् । ऊतये । सः । नः । युवा । उग्रः । चक्राम ।  
यः । धृषत् ।

त्वाम् । इत् । हि । अ-वि-तारम् । व-वृ-महे । सखायः । इन्द्र ।  
सानसिम् ॥ २ ॥

हे इन्द्रदेव ! युद्ध आदि कर्मके आने पर रक्षाके लिये हम आप की शरणमें जाते हैं । जो इन्द्रदेव शत्रुओंको दबा देते हैं, नित्य तरुण रहते हैं, प्रचण्ड बली हैं, वह इन्द्रदेव हमको सहायकरूप से प्राप्त होवें । हे इन्द्रदेव ! मित्ररूप हम प्रीति करने वाले और रक्षा करने वाले आपका ही वरण करते हैं ॥ २ ॥

यो न इदमिदं पुरा प्र वस्य आनिनाय तम् व स्तुषे ।  
सखाय इन्द्रमूतये ॥ ३ ॥

यः । नः । इदम् । इदम् । पुरा । प्र । वस्यः । आ-नि-नाय । तम् ।  
ऊँ इति । वः । स्तुषे । सखायः । इन्द्रम् । ऊतये ॥ ३ ॥

हे समान रूपाति वाले मित्र हुए यजमानों ! मैं तुम्हारी रक्षा के लिये उन इन्द्रदेवकी स्तुति करता हूँ, कि—जो इन्द्रदेव पहिले हमारे लिये यह गौ है आदिक रीतिसे घन देखुके हैं । उन ही अभिमत फल देने वाले इन्द्रदेवकी मैं स्तुति करता हूँ ॥ ३ ॥

हर्यश्वं सत्पतिं चर्षणीसहं स हि ष्मा यो अमन्दत ।



आ तु नः स वयति गव्यमश्व्यं स्तोतृभ्यो मघवा  
शतम् ॥ ४ ॥

हरिऽअश्वम् । सत्स्पतिम् । चर्षणिऽसहम् । सः । हि । स्म । यः ।  
अमन्दत ।

प्रा । तु । नः । सः । वयति । गव्यम् । अश्व्यम् । स्तोतृऽभ्यः ।  
मघऽवा । शतम् ॥ ४ ॥

जिन इन्द्रदेवके हरिनामक घोड़े हैं, जो श्रेष्ठ कर्म करने वाले मनुष्योंके पालक हैं, और मनुष्योंको नियममें रखने वाले हैं, उन इन्द्रदेवकी मैं स्तुति करता हूँ । जो इन्द्रदेव स्तुतिसे प्रसन्न होते हैं, उनकी मैं स्तुति करता हूँ । वह धनवान् इन्द्र हम स्तुति करने वालोंको सौ गौओंका और सौ घोड़ोंका झुण्ड प्रदान करें ४  
इन्द्राय साम गायत विप्राय बृहते बृहत् । धर्मकृते  
विपश्चिते पनस्यवे ॥ ५ ॥

इन्द्राय । साम । गायत । विप्राय । बृहते । बृहत् ॥ धर्मऽकृते ।  
विपऽचिते । पनस्यवे ॥ ५ ॥

हे स्तोताओं ! तुम धर्मकर्ता विद्वान्, स्तुत्य विशाल इन्द्रदेवके लिये बृहत्सामका गायन करो ॥ ५ ॥

त्वमिन्द्राभिभूरसि त्वं सूर्यमरोचयः । विश्वकर्मा विश्व-  
देवो महौ आसि ॥ ६ ॥

त्वम् । इन्द्र । अभिऽभूः । असि । त्वम् । सूर्यम् । अरोचयः ॥

विश्वऽकर्मा । विश्वऽदेवः । महान् । असि ॥ ६ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप शत्रुओंका तिरस्कार करने वाले हैं, आपने सूर्यको आकाशमें दीप्त किया है, आप विश्वकर्मा विश्वदेव और महान् हैं ॥ ६ ॥

विभ्राजं ज्योतिषा स्वऽरगच्छो रोचनं दिवः ।

देवास्तं इन्द्र सख्याय येमिरे ॥ ७ ॥

विऽभ्राजन् । ज्योतिषा । स्वऽ । अगच्छः । रोचनम् । दिवः ।

देवाः । ते । इन्द्र । सख्याय । येमिरे ॥ ७ ॥

आप अपनी ज्योतिसे स्वर्गको दमकाने वाले सूर्यको दमकाते हुए, स्वर्गमें प्राप्त हुए हैं, हे इन्द्र ! देवता आपके सखित्वको प्राप्त हुए हैं ॥ ७ ॥

तम्बभि प्र गांयत पुरुहूतं पुरुष्टुतम् । इन्द्रं गीर्भिस्त-

विषमा विवासत ॥ ८ ॥

तम् । ऊं इति । अभि । प्र । गांयत । पुरुऽहूतम् । पुरुऽस्तुतम् ॥

इन्द्रम् । गीऽभिः । तविषम् । आ । विवासत ॥ ८ ॥

हे स्तोताओं ! तुम अनेक यजमानोंसे बुलाये हुए और अनेक स्तोताओंसे स्तुत इन इन्द्रकी ही स्तुति करो, उन बलवान् इन्द्र को ही स्तुतिवाणियोंसे आच्छादित करो ॥ ८ ॥

यस्य द्विर्हंसो बृहत् सहे दाधाररोदसी । गिरीरञ्जं

अपः स्ववृषत्वना ॥ ९ ॥

यस्य । द्विर्बर्हसः । बृहत् । सहः । दाधार । रोदसी इति ॥

गिरीन् । अजान् । अपः । स्वः । वृषस्त्वना ॥ ६ ॥

जिस द्विर्बर्हस् इन्द्रके धर्मभावके कारण आवापृथिवी उनके महान् बल पर्वत वज्र जल और स्वर्गको धारण करते हैं । हे स्तोताओं ! तुम इन्द्रदेवकी स्तुति करो ॥ ६ ॥

स राजसि पुरुष्टुतं एकां वृत्राणि जिघ्रसे । इन्द्रजैत्रा  
श्रवस्या च यन्तवे ॥ १० ॥

सः । राजसि । पुरुस्तुत । एकः । वृत्राणि । जिघ्रसे ॥ इन्द्र ।

जैत्रा । श्रवस्या । च । यन्तवे ॥ १० ॥

इति पञ्चमेनुवाके पञ्चविंशं सूक्तम् ॥

हे पुरुष्टुत इन्द्र ! आप विजयशील यशको पानेके लिये दमकते हैं और अकेले ही आवरक शत्रुओंको मार डालते हैं ॥ १० ॥

पञ्चम अनुवाकमें पञ्चोत्तरवाँ सूक्त समाप्त ( ६७८ )

पृष्ठ्यस्य षष्ठेदनि “इमा नु कं भुवना सीषधाम” [ २०. ६३. १ ]  
“हत्वाय देवा असुरान् यदायन्” [ २०. ६३. २ ] इति द्वैपदौ  
पच्छः शंसति । तद् उक्तं वैताने । “पष्ठ इमा नु कं भुवना सीष-  
धाम हत्वाय देवा असुरान् यदायन्निति द्वैपदौ पच्छः” इति [ वै०  
६. २ ] ॥

वाजपेये तृतीयसवने प्राकृतयोः स्तोत्रियानुरूपयोः प्रत्याम्नाय-  
कौ “य एक इह विदयते” [ २०. ६३. ४ ] “य इन्द्र सोम-  
पातमः” [ २०. ६३. ७ ] एतौ उक्थस्तोत्रियानुरूपौ भवतः ।  
तद् उक्तं वैताने । “तृतीयसवने य एक इह विदयते य इन्द्र सोम-  
पातम इत्युक्थस्तोत्रियानुरूपौ” इति [ वै० ४. ३ ] ॥



तथा अभिजिति विषुवति विश्वजिति महाव्रते च तृतीयसवने एकौ उक्थस्तोत्रियानुरूपौ भवतः । तद् उक्तं वैताने । “अभिजिति विषुवति विश्वजिति महाव्रते च य एक इद् विदयते य इन्द्रसोमपातम इत्युक्थस्तोत्रियानुरूपौ” इति [ वै० ६. १ ] ॥

तथा विश्वजिति एकाहीभूते “य एक इद् विदयते” इत्येष उक्थस्तोत्रियो भवति । तद् उक्तं वैताने । “विश्वजिति य एक इद् विदयत इति” इति [ वै० ८. २ ] ॥

तथा चतुरहाणां चतुर्थेण्वहःसु “महाँ इन्द्रो य ओजसा” [ २०.१३८ ] “य एक इद् विदयते” [ २०.६३.४ ] एतौ आख्यो-क्थस्तोत्रियौ भवतः । तद् उक्तं वैताने । “चतुर्थेषु महाँ इन्द्रो य ओजसा य एक इद् विदयत इति” इति [ वै० ८. ३ ] ॥

तथा अभिसवपञ्चाहस्य “य एक इद् विदयते” इति उक्थस्तोत्रियो भवति । तद् उक्तं वैताने । “अभिसवपञ्चाहस्य य एक इद् विदयत इति” इति [ वै० ८. ३ ] ॥

तथा अभिप्लवस्य षष्ठमहः उक्थ्यसंस्थं भवति तदा “य एक इद् विदयते” [ २०. ६३.४ ] “यत् सोममिन्द्र विष्णुवि” [ २०. १११ ] एतौ उक्थस्तत्रियौ विकल्पितौ भवतः । तद् उक्तं वैताने । “षष्ठमुक्थ्यं चेद् य एक इद् विदयते यत् सोममिन्द्र विष्णुवीति” इति [ वै० ८. ३ ] ॥

तथा द्वादशाहस्य छन्दोमन्त्रयहस्य प्रथमान्त्ययोरहोः “स्वं न इन्द्रा भर” [ २०. १०८ ] “य एक इद् विदयते” एतौ उक्थस्तोत्रियौ यथाक्रमं भवतः । तद् उक्तं वैताने । “द्वादशाहस्य छन्दोमन्त्रयहस्योस्त्वं न इन्द्रा भर य एक इद् विदयत इति” इति [ वै० ८. ४ ] ॥

पृष्ठयके छठे दिन “इमा नु कम् भुवना सीषधाम” ( २०।६३।१ ) “हत्वाय देवा असुरा यदायन्” ( २०।६३।२ ) इन द्वैपदों

को षट् २ करके कहे । इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि—  
“इमा तु कं भुवना सीषधाम हत्वाय देवा असुरान् यदायजिति  
द्वैपदौ पञ्चः” ( वैतानसूत्र ६ । २ ) ॥

वाजपेयके तृतीय सवनमें प्राकृत स्तोत्रियानुरूपोंके प्रत्याम्ना-  
यक “य एक इह विदयते” ( २० । ६३ । ४ ) “य इन्द्र सोम-  
पातमः” ( २० । ६३ । ७ ) ये उक्त्य स्तोत्रियानुरूप होते हैं ।  
इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि—“तृतीयसवने य एक इह  
विदयते य इन्द्र सोमपातम इत्युक्त्यस्तोत्रियानुरूपौ” ( वैतानसूत्र ४।३ )

तथा अभिजित् त्रिषुवत् विश्वजित् महाव्रतके भी तृतीयसवन  
में ये उक्त्यस्तोत्रिय अनुरूप होते हैं । इसी बातको वैतानसूत्रमें  
कहा है, कि—“अभिजिति त्रिषुवति विश्वजिति महाव्रते च य एक  
इह विदयते य इन्द्र सोमपातम इत्युक्त्यस्तोत्रियानुरूपौ” ( वैतान-  
सूत्र ६ । १ ) ॥

तथा एकहीभूत विश्वजित्में “य एक इह विदयते” यह उक्त्य-  
स्तोत्रिय होता है । इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि—“विश्व-  
जिति य एक इह विदयते” ( वैतानसूत्र ८ । २ ) ॥

तथा चतुरहोंके चौथे दिनोंमें “महाँ इन्द्रो य ओजसा य एक  
इह विदयते” इति ये आज्योक्त्यस्तोत्रिय होते हैं । इसी बातको  
वैतानसूत्रमें कहा है, कि—“चतुर्थेषु महाँ इन्द्रो व ओजसा य एक  
इह विदयते” ( वैतानसूत्र ८ । ३ ) ॥

तथा अभिसवपञ्चाहका “य एक इह विदयते” यह उक्त्य-  
स्तोत्रिय होता है । इसी बातको वैतानमें कहा है, कि—“अभि-  
सवपञ्चाहस्य य एक इह विदयते” ( वैतानसूत्र ८ । ३ ) ॥

तथा अभिसवका छठा दिन उक्त्यसंस्थ होता है तब “य एक  
इह विदयते” ( २० । ६३ । ४ ) “यत् सोममिन्द्र विष्णवि”  
( २० । १११ ) ये विकल्पित उक्त्य स्तोत्रिय होते हैं । इसी बात

को वैतानसूत्रमें कहा है, कि—“षष्ठमुक्थ्यं चेद् य एक इद् विद-  
यते यत् सोममिन्द्रविष्णवीति” ( वैतानसूत्र ८ । ३ ) ॥

तथा द्वादशाह छन्दोमन्त्र्यहके पहिले तीसरे दिनोंमें “त्वं न  
इन्द्रा भर” ( २० । १०८ ) “य एक इद् विदयते” ये यथाक्रम  
उक्थ और स्तोत्रिय होते हैं । इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है,  
कि—“द्वादशाहस्य छन्दोमप्रथमान्ययोस्त्वं न इन्द्राभर य एक  
विदयते” ( वैतानसूत्र ८ । ४ ) ॥

इमा नु कं भुवना सीषधामेन्द्रश्च विश्वं च देवाः ।  
यज्ञं च नस्तन्वं च प्रजां चादित्यैरिन्द्रः सह चीकृत्-  
पाति ॥ १ ॥

इमा । नु । कम् । भुवना । सीषधाम । इन्द्रः । च । विश्वे । च । देवाः ।  
यज्ञम् । च । नः । तन्वम् । च । प्रजाम् । च । आदित्यैः ।  
इन्द्रः । सह । चीकृत्पाति ॥ १ ॥

ये सम्पूर्ण विश्वेदेवता, इन्द्र तथा भुवन सुखको पानेकी चेष्टा  
करते हैं, आदित्यों सहित इन्द्रदेव हमारे यज्ञको शरीरको और  
प्रजाको समर्थ करें ॥ १ ॥

आदित्यैरिन्द्रः सगणो मरुद्भिरस्माकं भूत्वविता तनू-  
नाम् ।

हत्वाय देवा असुरान् यदायन् देवा देवत्वमभिरक्ष-  
माणाः ॥ २ ॥

आदित्यैः । इन्द्रः । सगणः । मरुद्भिः । अस्माकम् । भूतु ।

अविता । तनूनाम् ।



हत्वाय । देवाः । असुरान् । यत् । आयन् । देवाः । देवत्वम् ।

अभिऽरक्षमाणाः ॥ २ ॥

जो देवता देवत्वकी रक्षा करनेके लिये असुरोंको मार कर देवत्वको अक्षुण्ण रख सके थे, उन आदित्य और मरुद्गणोंसे सम्पन्न इन्द्र हमारे शरीरके रक्षक बनें ॥ २ ॥

प्रत्यञ्चमर्कमनयं छचीभिरादित्स्वधामिषिरां पर्यपश्यन्

अया वाजं देवहितं सनेम मदेम शतहिमाः सुवीराः ३

प्रत्यञ्चम् । अर्कम् । अनयन् । शचीभिः । आत् । इत् । स्वधाम् ।

इषिराम् । परि । अपश्यन् ।

अया । वाजम् । देवहितम् । सनेम । मदेम । शतहिमाः । सुवीराः ३

देवता शक्तियोंके द्वारा सूर्यको प्रत्येकके सन्मुख लाये हैं और फिर उन्होंने पृथ्वीको हविरूप अन्नसे सम्पन्न देखा है । इसी मायाके द्वारा हम देवताओंका हित करने वाले अन्नको पावें और सुन्दर वीरोंसे सम्पन्न रह कर सौ वर्ष तक जीवित रहें ३ य एक इद् विदयते वसु मर्ताय दाशुषे । ईशानो

अप्रतिष्कृत इन्द्रो अङ्ग ॥ ४ ॥

यः । एकः । इत् । विदयते । वसु । मर्ताय । दाशुषे ॥ ईशानः ।

अप्रतिऽस्कृतः । इन्द्रः । अङ्ग ॥ ४ ॥

जो अप्रतिभट स्वामी इन्द्र हवि देने वाले यजमानको धन देनेमें अद्वितीय हैं ॥ ४ ॥

कदा मर्तमराधसं पदा क्षुम्पमिव स्फुरत् । कदा नः

शुश्रवद् गिर इन्द्रो अङ्ग ॥ ५ ॥

कदा । मर्तम् । अराधसम् । पदा । क्षुम्पम् इव स्फुरत् ॥ कदा ।

नः । शुश्रवत् । गिरः । इन्द्रः । अङ्ग ॥ ५ ॥

हवि वा स्तुतिसे अपनी आराधना न करने वाले मनुष्यको  
इन्द्रदेव कब पैरसे ताड़ित करेंगे और कब हम स्तोताओंकी  
वाणियोंको सुनेंगे ॥ ५ ॥

यश्चिद्धि त्वा बहुभ्य आ सुतावाँ आन्निवासति ।

उग्रं तत् पत्यते शव इन्द्रो अङ्ग ॥ ६ ॥

यः । चित् । हि । त्वा । बहुभ्यः । आ । सुतवान् । आन्नि-  
वासति ॥ उग्रम् । तत् । पत्यते । शवः । इन्द्रः । अङ्गः ॥ ६ ॥

हे इन्द्र ! जो अभिषुत सोम बाला पुरुष आपकी बहुतसी  
स्तुतियोंसे प्रार्थना करता है, वह प्रचण्ड बलसे ऐश्वर्यमें भर  
जाता है ॥ ६ ॥

य इन्द्र सोमपातमो मदः शविष्ठचेतति । येना हंसि ।

न्यः त्रिणं तमीमहे ॥ ७ ॥

यः । इन्द्र । सोमपातमः । मदः । शविष्ठ । चेतति ॥ येन । हंसि ।

नि । अत्रिणम् । तम् । ईमहे ॥ ७ ॥

जो इन्द्रदेव सोमके बड़े पियकड़ हैं और बलमय मद जिनमें  
उदित होता है, और हे इन्द्र ! जिसके द्वारा भक्षणशील राजासों

को आप मारते हैं, उस बलकी हम याचना करते हैं ॥ ७ ॥  
येना दशग्वमध्रिगुं वेपयन्तं स्वर्णरम् । येना समुद्र-  
माविंथा तमीमहे ॥ ८ ॥

येन । दशऽग्वम् । अध्रिऽगुम् । वेपयन्तम् । स्वर्णऽनरम् ॥ येन ।

समुद्रम् । आविथ । तम् । ईमहे ॥ ८ ॥

जिस प्रभावके द्वारा आपने दशगु अध्रिगु काँपते हुए स्वर्नर  
की रक्षा की थी और समुद्रकी रक्षा की थी उस प्रभावकी हम  
याचना करते हैं ॥ ८ ॥

येन सिन्धुं महीरपो रथौ इव प्रचोदयः । पन्थामृतस्य  
यातवे तमीमहे ॥ ९ ॥

येन । सिन्धुम् । महीः । अपः । रथान्ऽइव । प्रऽचोदयः ॥ पन्थाम् ।

मृतस्य । यातवे । तम् । ईमहे ॥ ९ ॥

इति पञ्चमेनुवाके षड्विंशं सूक्तम् ॥

जिस प्रभावसे आपने विशाल जलोंको सिन्धुकी ओर रथकी  
समान चला रक्खा है, अमृतके मार्गमें जानेके लिये हम उस  
प्रभावकी याचना करते हैं ॥ ९ ॥

पञ्चम अनुवाकमें छत्तीसवाँ सूक्त समाप्त ( ६७९ )

अभिसवस्य पञ्चमेदनि “एन्द्र नो गधि प्रियः” इति उक्त्य-  
स्तोत्रियो भवति । तद् उक्तं वैताने । “पञ्चम एन्द्र नो गधि प्रिय  
इति” इति [ वै० ८. ३ ] ॥

अभिसवके पञ्चम दिनमें “एन्द्र नो गधि प्रियः” ये उक्त्य-



स्तोत्रिय होता है । इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि—“पञ्चम एन्द्र नो गधि प्रियः” ( वैतानसूत्र ८ । ३ ) ॥

एन्द्र नो गधि प्रियः सत्राजिदगोह्यः । गिरिर्न विश्व-  
तस्पृथुः पतिर्दिवः ॥ १ ॥

आ । इन्द्र । नः । गधि । प्रियः । सत्राजिन् । अगोह्यः ॥ गिरिः ।

न । विश्वतः । पृथुः । पतिः । दिवः ॥ १ ॥

हे इन्द्र ! आप हमारे प्रिय हैं, हमको प्रियरूपमें ग्रहण करिये, आप सत्यसे विजय पाने वाले हैं, कोई आपको छिपा नहीं सकता, आप पर्वतकी समान विशाल हैं और स्वर्गके स्वामी हैं ॥ १ ॥

अभि हि सत्य सोमपा उभे बभूथ रोदसी । इन्द्रासि  
सुन्वतो वृधः पतिर्दिवः ॥ २ ॥

अभि । हि । सत्य । सोमपाः । उभे इति । बभूथ । रोदसी इति ॥

इन्द्र । असि । सुन्वतः । वृधः । पतिः । दिवः ॥ २ ॥

हे सत्य इन्द्र ! आप अभिमुख होकर सोमका पान करनेवाले हैं द्युलोक और पृथिवीलोक दोनोंमें आप प्रकट होजाते हैं, हे इन्द्र ! आप अभिषेक करनेवालेको बढ़ानेवाले और स्वर्गके स्वामी हैं ॥ २ ॥

त्वं हि शश्वतीनामिन्द्र दर्ता पुरामसि । हन्ता  
दस्योर्मनोवृधः पतिर्दिवः ॥ ३ ॥

त्वम् । हि । शश्वतीनाम् । इन्द्र । दर्ता । पुराम् । असि ॥ हन्ता ।

दस्योः । मनोः । वृधः । पतिः । दिवः ॥ ३ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप शशवत पुरोंको तोड़ने वाले हैं, दस्युओंका  
संहार करने वाले हैं, मनुको बढ़ाने वाले हैं और स्वर्गके स्वामी हैं  
एतु मध्वो मदन्तरं सिञ्च वाध्वर्यो अन्धसः । एवा  
हि वीर स्तवते सदावृधः ॥ ४ ॥

आ । इत् । ऊं इति । मध्वः । मदन्तरम् । सिञ्च । वा ।

अध्वर्यो इति । अन्धसः । एव । हि । वीरः । स्तवते । सदावृधः ४

हे अध्वर्यो ! मधुसे भी अधिक मद करने वाले अरुणके भागसे  
इन इन्द्रदेवको वृत्त करो, यजमानकी सदा बढ़ातरी करने वाले  
यह इन्द्र स्तुति पाते हैं ॥ ४ ॥

इन्द्रं स्थातर्हरीणां नकिंष्टे पूर्व्यस्तुतिम् । उदानंश  
शवसा न भन्दना ॥ ५ ॥

इन्द्र । स्थातः । हरीणाम् । नकिः । ते । पूर्व्यस्तुतिम् ॥ उत् ।

आनंश । शवसा । न । भन्दना ॥ ५ ॥

हे हरि नामक घोड़ों पर स्थित होने वाले इन्द्र ! आपके पूर्व  
कर्मोंके कारण की जाने वाली स्तुतिको और कन्याओंको कोई  
बलसे नहीं पासका है ॥ ५ ॥

तं वो वाजानां पतिमहूमहि श्रवस्यवः । अप्रायुभि-  
र्यज्ञेभिर्वावृधेन्यम् ॥ ६ ॥

तम् । वः । वाजानाम् । पतिम् । अहूमहि । श्रवस्यवः । अप्रा-

युभिः । यज्ञेभिः । ववृधेन्यम् ॥ ६ ॥

इति पञ्चमेनुवाके सप्तविंशं सूक्तम् ॥

अन्नको चाहने वाले हम, हविरूप अन्नके स्वामी इन्द्रका आह्वान करते हैं। यह इन्द्रदेव सावधानतापूर्वक किये हुए यज्ञों से चारम्बार बढ़ते हैं ॥ ६ ॥

पञ्चम अनुवाकमें सत्तार्वसर्वा सूक्त समाप्त ( ६८० )

दशाहस्य नवमेहनि “एतो न्विन्द्रं स्तवाम” इति उक्थस्तोत्रियो भवति । तद् उक्तं वैताने । “नवम एतो न्विन्द्रं स्तवामेति” इति [ वै० ८. ४ ] ॥

दशाहके नवम दिनमें “एतो न्विन्द्रं स्तवाम” यह उक्थस्तोत्रिय होता है। इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि—“नवम एतो न्विन्द्रं स्तवामेति” ( वैतानसूत्र ८ । ४ ) ॥

एतो न्विन्द्रं स्तवाम सखाय स्तोम्यं नरम् । कृष्टीयो विश्वा अभ्यस्त्येक इत् ॥ १ ॥

एतो इति । जु । इन्द्रम् । स्तवाम । सखायः । स्तोम्यम् । नरम् ॥

कृष्टीः । यः । विश्वाः । अभि । अस्ति । एकः । इत् ॥१॥

मित्ररूप हम इस ओर आनेके लिये इन्द्रकी स्तुति करते हैं, यह इन्द्र स्तुतिके पात्र हैं, नेता हैं, यह इन्द्र सकल कर्मफलोंको असाधारणरूपसे प्रेरित करते हैं ॥ १ ॥

अगोरुधाय गविषे वृक्षाय दस्म्यं वचः । घृतात् स्वादीयो मधुनश्च वोचत ॥ २ ॥

अगोरुधाय । गोऽग्ने । वृक्षाय । दस्म्यम् । वचः ॥ घृतात् ।

स्वादीयः । मधुनः । च । वोचत ॥ २ ॥

गौओंको न रोकने वाले, वाणीरूप अन्न वाले, दमकने वाले,



दर्शनीय इन्द्रके लिये हे स्तोताओं ! तुम घृत और शहदसे भी मधुर वचनका उच्चारण करो ॥ २ ॥

यस्यामितानि वीर्या॑ न राधः॑ पर्येतवे । ज्योतिर्न॑  
विश्वमभ्यस्ति॑ दक्षिणा ॥ ३ ॥

यस्य । अमितानि । वीर्या । न । राधः । परिऽएतवे ॥ ज्योतिः ।  
न । विश्वम् । अभि । अस्ति । दक्षिणां ॥ ३ ॥

इति पञ्चमेनुवाके अष्टाविंशं सूक्तम् ॥

इन इन्द्रदेवमें कार्यको साधनेके लिये अमित वीर्य हैं और दमकती हुई दक्षिणा हैं ॥ ३ ॥

पञ्चम अनुवाकम् अट्ठादिसर्गं सूक्तं समाप्तम् ( ६८१ )

स्तुहीन्द्रं॑ व्यश्वदन्मि॑ वाजिनं॑ यमम् । अर्यो गयं॑  
महमानं॑ वि दाशुषे ॥ १ ॥

स्तुहि । इन्द्रम् । व्यश्वऽवत् । अन्मिम् । वाजिनम् । यमम् ॥  
अर्यः । गयम् । महमानम् । वि । दाशुषे ॥ १ ॥

हे ऋत्विज ! घोड़ोंको छोड़ कर यज्ञमें निश्चल भावसे विराजमान धनी और प्रशंसाके पात्र इन्द्रकी आप हविर्दाता यजमान के कन्याणके लिये स्तुति करिये ॥ १ ॥

एवा नूनमुप॑ स्तुहि वैयश्वदशमं॑ नवम् । सुविद्वांसं॑  
चर्कृत्यं॑ चरणीनाम् ॥ २ ॥

एव । नूनम् । उप । स्तुहि । वैयश्व । दशमम् । नवम् ॥ सुऽ-  
विद्वांसम् । चर्कृत्यम् । चरणीनाम् ॥ २ ॥

हे वैश्व ! आप सदा नवीन, दशम, परमविद्वान्, चरणियों  
का बारम्बार कर्तन करने वाले इन्द्रदेवकी स्तुति करिये ॥ २॥  
वेत्था हि निऋतीनां वज्रहस्त परिवृजम् । अहरहः  
शुन्ध्युः परिपदामिव ॥ ३ ॥

वेत्थ । हि । निःऽऋतीनाम् । वज्रऽहस्त । परिऽवृजम् । अहःऽअहः ।  
शुन्ध्युः । परिपदाम्ऽइव ॥ ३ ॥

पञ्चमेनुवाके एकोनत्रिंशं सूक्तम् ॥  
इति पञ्चमोनुवाकः ॥

हे वज्रधारिन् इन्द्र ! जैसे शोधक आदित्य प्रतिदिन परिपदों  
को ( चारों ओर पतन करने वालीं किरणों आदिको ) जानते  
हैं, इसी प्रकार आप पीड़ा देनेवाली शक्तियोंके समूहको जानते हैं ३  
पञ्चम अनुवाकर्म उन्तीसवाँ सूक्त समाप्त ( ६८२ )

पञ्चम अनुवाक समाप्त

पृष्ठ्यषडहस्य षष्ठेहनि प्रातःसवनमाध्यन्दिनयोर्द्वयोः सवनयोः  
प्राकृतीनां प्रस्थितयाज्यानां पुरस्तात् “वनोति हि” इत्याद्याः  
पारुच्छेप्याख्या ऋचः संबध्नाति । तद् उक्तं वैताने । “पृष्ठ्य-  
षष्ठे वनोति हि सुन्वन् क्षयं परीणसः [ २०. ६७ ] विश्वेषु हि  
त्वा सवनेषु तुञ्जते [ २०. ७२ ] इति पारुच्छेपीरूपदधाति द्वयोः  
सवनयोः पुरस्तात् प्रस्थितयाज्यानाम्” इति [ वै० ६. १ ] ॥

पृष्ठ्य षडहके छठे दिन प्रातः सवन और माध्यन्दिन दोनों  
सवनोंमें प्राकृती प्रस्थितयाज्याओंसे पहिले “वनोति हि” आदिक  
पारुच्छेप्या नामक ऋचाएँ पढ़ी जाती हैं । इसी बातको वैतान-  
सूत्रमें कहा है, कि—“पृष्ठ्यषष्ठे वनोति हि सुन्वन् क्षयं परीणसः  
( २० । ६७ ) विश्वेषु हि त्वा सवनेषु तुञ्जते ( २० । ७२ )

इति पारुच्छेपीरुपदधाति द्वयोः सवनयोः पुरस्तात् प्रस्थितयाज्या-  
नाम्” ( वैतानसूत्र ६ । १ )

व॒नोति॒ हि सु॒न्वन् क्ष॒यं परी॑णसः सु॒न्वानो॒ हि ष्मा  
य॒जत्य॒व द्विषो॑ दे॒वाना॒मव॒ द्विषः॑ ।

सु॒न्वान इत् सि॒षास॑ति स॒हस्रा॑ वा॒ज्यवृ॑तः ।

सु॒न्वाना॑येन्द्रो॒ ददा॑त्याभु॒वं र॒यिं द॑दात्याभु॒वम् ॥१॥

व॒नोति॒ । हि । सु॒न्वन् । क्ष॒यम् । परी॑णसः । सु॒न्वानः । हि । स्म ।

य॒जति॒ । अ॒व । द्विषः॑ । दे॒वाना॒म् । अ॒व । द्विषः॑ ।

सु॒न्वानः । इत् । सि॒षास॑ति । स॒हस्रा॑ । वा॒जी । अ॒वृ॒तः ।

सु॒न्वाना॑य । इन्द्रः । द॒दा॒ति । आऽभु॑वम् । र॒यिम् । द॒दा॒ति । आऽ-

भु॒वम् ॥ १ ॥

सोमका अभिषव करने वाला पुरुष बहुतसे घरोंको प्राप्त करता है, सोमका अभिषव करता हुआ अपने शत्रुओंका अवयजन करता है, और देवशत्रुओंका अवयजन करता है। सोमका अभिषव करने वाला सहस्रों वस्तुओंका दान करना चाहता है, अन्नसे सम्पन्न रहता है, और शत्रुओंसे घिरा हुआ नहीं रहता है। अभिषव करने वालेके लिये इन्द्रदेव पृथ्वीभरका धन देते हैं १

मो षु वो अ॒स्मद॒भि ता॒नि पौ॑स्या॒ सना॑ भू॒वन् तु-

म्नानि॒ मोत॑ जा॒रिषु॒रस्मत् पुरो॑त जा॒रिषुः॑ ।

यद् व॒श्चित्रं॑ यु॒गेयु॑गे न॒व्यं घो॑षा॒दम॑र्त्यम् ।



अस्मासु तन्मरुतो यच्च दुष्टं दिधृता यच्च दुष्टम्

मो इति । सु । वः । अस्मत् । अभि । तानि । पौस्या । सना ।

भुवन् । धूमनानि । मा । उत । जारिषुः । अस्मत् । पुरा । उत । जारिषु

यत् । वः । चित्रम् । युगेऽयुगे । नव्यम् । घोषात् । अमर्त्यम् ।

अस्मासु । तत् । मरुतः । यत् । च । दुस्तरम् । दिधृत । यत् ।

च । दुस्तरम् ॥ २ ॥

( हे मरुद्गणों ! ) आपके जो दमकते हुए पुरुषार्थमय तापक तेज हैं, वे हमारे अभिमुख न होवें, वे हमें जीर्ण न करें, वे हमें जीर्ण न करें आपका जो घोषके कारण अमर्त्य नव्य चायनीय बल है, उसको हममें स्थापित करो, उस शत्रुओंसे दुस्तर बल को हममें स्थापित करो ॥ २ ॥

अग्निं होतारं मन्ये दास्वन्तं वसुं सूनुं सहसो जात-

वेदसं विप्रं न जातवेदसम् ।

य ऊर्ध्वयां स्वध्वरो देवो देवाच्यां कृपा ।

घृतस्य विभ्राष्टिमनु वष्टि शोचिषा जुह्वानस्य सर्पिषः

अग्निम् । होतारम् । मन्ये । दास्वन्तम् । वसुम् । सूनुम् । सहसः ।

जातवेदसम् । विप्रम् । न । जातवेदसम् ।

यः । ऊर्ध्वयां । सुऽअध्वरः । देवः । देवाच्यां । कृपा ।

घृतस्य । विऽभ्राष्टिम् । अनु । वष्टि । शोचिषा । आऽजुहानस्य ।  
सर्पिषः ॥ ३ ॥

अग्निदेवको मैं देवताओंका होता, धनका प्रदान करनेवाला, बलका अनुज, उत्पन्न होने वालोंको जाननेवाले विप्रकी समान जातवेदा मानता हूँ । यह अग्निदेव अपनी देवताओंको पहुँचने वाली समर्थ ऊँची लपटसे यज्ञको सुन्दर बनाते हैं और होमेहुए घृतकी दमकको और घृतकी बिन्दुओंकी कामना करते हैं ॥३॥

यज्ञैः संमिश्राः पृषतीभिर्ऋष्टिभिर्यामं छुभ्रासो अजिषु  
प्रिया उत ।

आसद्या बर्हिर्भरतस्य सूनवः पोत्रादा सोमं पिबता  
दिवो नरः ॥ ४ ॥

यज्ञैः । सम्मिश्राः । पृषतीभिः । ऋष्टिभिः । यामन् । शुभ्रासः ।  
अजिषु । प्रियाः । उत ।

आऽसद्य । बर्हिः । भरतस्य । सूनवः । पोत्रात् । आ । सोमम् ।  
पिबत । दिवः । नरः ॥ ४ ॥

हे भरण करने वाले इन्द्रके छोटे भाई मरुद्गणों ! तुम स्वर्गके नेता हो, तुम फलप्रदानके अवसर पर अपनी हींसती हुई पृषती नामक घोड़ियोंके द्वारा यज्ञोंमें आते हो, तुम प्रिय हो और शुभ्र हो, ऐसे आप कुशाओं पर बैठ कर पोत्रसे सोमका पान करो ४  
आ वंक्षि देवाँ इह विप्र यक्षि चोशन् होतर्नि पंदा  
योनिषु त्रिषु ।

प्रति वीहि प्रस्थितं सोम्यं मधु पिवाग्नीध्रात् तव  
भागस्य तृणुहि ॥ ५ ॥

आ । व॒त्ति । दे॒वान् । इ॒ह । वि॒प्र । य॒त्ति । च । उ॒शन् । हो॒तः ।  
नि । स॒द । यो॒निषु । त्रिषु ।

प्रति । वी॒हि । प्र॒स्थि॒तम् । सो॒म्यम् । म॒धु । पि॒ब । आ॒ग्नी॒ध्रात् ।  
तव । भा॒गस्य । तृ॒णुहि ॥ ५ ॥

हे अग्ने ! आप इस यज्ञमें देवताओंको लाइये, और उनका पूजन करिये, हे कामयमान होतः ! आप तीनों स्थानोंमें विराजमान हूजिये, प्रस्थित भागको पहुँचानेके अनन्तर स्वयं भी भक्षण करिये, और आग्नीध्रसे सोम्य मधुका पान करिये, इस प्रकार अपने भागसे तृप्त हूजिये ॥ ५ ॥

एष स्य ते तन्वो नृम्णवर्धनः सह ओजः प्रदिवि  
बाहोर्हितः ।

तुभ्यं सुतो मघवन् तुभ्यमाभृतस्त्वमस्य ब्राह्मणादा  
तृपत् पिब ॥ ६ ॥

एषः । स्यः । ते । तन्वः । नृ॒म्णा॒व॒र्ध॒नः । सहः । ओ॒जः । प्र॒दि॒वि ।  
बा॒होः । हि॒तः ।

तु॒भ्यम् । सु॒तः । म॒घ॒व॒न् । तु॒भ्यम् । आ॒भृ॒तः । त्वम् । अ॒स्य ।  
ब्रा॒ह्म॒णा॒त् । आ । तृ॒प॒त् । पि॒ब ॥ ६ ॥



हे मधवन् ! यह सोम आपके शरीरके बलको बढ़ाने वाला है, विजिगीषाके लिये आपकी भुजाओंमें दूसरोंको दबानेकी शक्ति और ओज भरा हुआ है, हे इन्द्र ! यह सोम आपके लिये अभिषुत हुआ है, आपके लिये ही पात्रमें भरा गया है आप ब्राह्मणके द्वारा तृप्ति पर्यन्त इसका पान करिये ॥ ६ ॥

यमु पूर्वमहुवे तमिदं हुवे सेदु हव्यो ददियो नाम  
पत्यते ।

अध्वर्युभिः प्रस्थितं सोम्यं मधु पोत्रात् सोमं द्रविणोदः  
पिब ऋतुभिः ॥ ७ ॥

यम् । ऊं इति । पूर्वम् । अहुवे । तम् । इदम् । हुवे । सः । इत् ।

ऊं इति । हव्यः । ददिः । यः । नाम । पत्यते ।

अध्वर्युभिः । प्रस्थितम् । सोम्यम् । मधु । पोत्रात् । सोमम् ।

द्रविणोदः । पिब । ऋतुभिः ॥ ७ ॥

इति षष्ठेनुवाके प्रथमं सूक्तम् ॥

मैं जिन इन्द्रदेवका पहिले आवाहन किया करता था, अब भी उनका ही आवाहन करता हूँ, यह वही हव्य दिया जा रहा है, जो ऐश्वर्यसम्पन्न करता है, हे धनप्रद इन्द्र ! अध्वर्युओंके दिये हुए इस सोम्य मधुका समयानुसार पान करिये ॥ ७ ॥

छठे अनुवाकमें प्रथम सूक्त समाप्त ( ६८३ )

छन्दोमानां प्रथमेहनि प्रातःसवने “सुरूपकृत्नुमूतये” इति द्वादश ऋच आवापस्थाने आवपते । तद् उक्तं वैताने । “सुरूप-कृत्नुमूतय इति द्वादशर्चः” इति [ वै० ६. ३ ] ॥

छन्दोमके प्रथम दिन प्रातः सवनमें “सुरूपकृत्स्नुमृतये” इन बारह ऋचाओंको आवापके स्थानमें पढ़े । इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि—“सुरूपकृत्स्नुमृतये इति द्वादशर्चः” (वैतानसूत्र ६।३) ॥  
सुरूपकृत्स्नुमृतये सुदुघामिव गोदुहे । जुहूमसि द्यवि-  
द्यवि ॥ १ ॥

सुरूपऽकृत्स्नुम् । ऊतये । सुदुघाम्ऽइव । गोऽदुहे ॥ जुहूमसि ।  
द्यविऽद्यवि ॥ १ ॥

जैसे दूध दुहने वालेके लिये सरलतासे दुहाने वाली गौको बुलाया जाता है, इसी प्रकार हम रक्षाके लिये प्रत्येक अवसर पर इन्द्रदेवका आवाहन करते हैं ॥ १ ॥

उपः नः सवना गंहि सोमस्य सोमपाः पिब । गोदा  
इद् रेवतो मदः ॥ २ ॥

उप । नः । सवना । आ । गंहि । सोमस्य । सोऽमपाः । पिब ॥  
गोऽदाः । इत् । रेवतः । मदः ॥ २ ॥

इन्द्रदेव गौएँ देने वाले हैं, हर्षमें भरे रहते हैं, धनसम्पन्न हैं, ऐसे इन्द्रदेव हमारे सोमसवनोंके समीप आइये और सोमका पान करिये ॥ २ ॥

अथा ते अन्तमानां विद्याम सुमतीनाम् । मा नो  
अति ख्य आ गंहि ॥ ३ ॥

अथ । ते । अन्तमानाम् । विद्याम् । सुऽमतीनाम् ॥ मा । नः । अति ।  
ख्य । आ । गंहि ॥ ३ ॥

हे इन्द्र ! हम आपके समीप रहने वालीं सुन्दर बुद्धियोंको जानते हैं, आप हमारी अधिक निन्दा न होने दीजिये और हमारे पास आइये ॥ ३ ॥

परा॑हि वि॒ग्रमस्तृ॑तभिन्द्रं॑ पृ॒च्छा विप॒श्चितम् । यस्ते॒  
सखि॑भ्य आ वरम् ॥ ४ ॥

परा॑ । इ॒हि । वि॒ग्रम् । अस्तृ॑तम् । इन्द्र॑म् । पृ॒च्छ । विपः॑चितम् ॥

यः । ते । सखि॑भ्यः । आ । वरम् ॥ ४ ॥

हे स्तोतः ! आप किसीसे हिंसित न होनेवाले, विग्र विद्वान् इन्द्रकी शरणमें जाओ और उनसे ( कुशल ) बूझो, वह इन्द्र आपके मित्रोंके लिये वर देते हैं ॥ ४ ॥

उत॑ ब्रुवन्तु नो॒ निदो॑ निरन्यतश्चि॒दारत॑ । दधा॑ना  
इन्द्र॑ इत् दुवः ॥ ५ ॥

उत॑ । ब्रु॒वन्तु॑ । नः॑ । निदः॑ । निः । अ॒न्यतः॑ । चि॒त् । आ॒रत॑ ॥

दधा॑नाः । इन्द्रे॑ । इत् । दुवः ॥ ५ ॥

निन्दक पुरुष हमारी निन्दा न करें, हे स्तोताओं ! तुम इन्द्र में ही मनको लगाते हुए इन्द्रकी शरणमें जाओ ॥ ५ ॥

उत॑ नः सु॒भगाँ॑ अ॒रिर्वो॑चेयुर्दस्म कृ॒ष्टयः॑ । स्या॑मे-  
दिन्द्र॑स्य शर्मा॒णि ॥ ६ ॥

उत॑ । नः॑ । सु॒भगा॑न् । अ॒रिः । वो॒चेयुः॑ । द॒स्म । कृ॒ष्टयः॑ ॥

स्या॑म । इत् । इन्द्र॑स्य । शर्मा॒णि ॥ ६ ॥



हमारे शत्रु भी हमारे सौभाग्यका बखान करें, हम इन्द्रके सुख प्रदान करने पर दर्शनीय खेतियों वाले हों ॥ ६ ॥

ए॒मा॒शु॒मा॒शवे॑ भर॒ यज्ञ॒श्रियं॑ नृ॒मा॒दनम् । प॒त॒यन्म॑न्द॒-  
यत्स॑खम् ॥ ७ ॥

आ । ईम् । आ॒शुम् । आ॒शवे॑ । भर॒ । य॒ज्ञऽश्रियम् । नृ॒मा॒दनम् ॥

प॒त॒यत् । म॒न्द॒यत्ऽस॑खम् ॥ ७ ॥

हे स्तोतः ! इन यज्ञकी शोभारूप, मनुष्योंको हर्षित करने वाले, मित्रोंको प्रसन्न करने वाले आशुकारी इन्द्रको अश्वके ऊपर भरण कर ॥ ७ ॥

अ॒स्य पी॒त्वा श॑त॒क्रतो॑ घ॒नो वृ॒त्राणा॑म॒भवः॑ । प्रा॒वो  
वा॒जेषु॑ वा॒जिन॑म् ॥ ८ ॥

अ॒स्य । पी॒त्वा । श॑त॒क्रतो॑ इति॑ शतऽक्रतो । घ॒नः । वृ॒त्राणा॑म् ।

अ॒भ॒वः ॥ म । प्रा॒वः । वा॒जेषु॑ । वा॒जिन॑म् ॥ ८ ॥

हे इन्द्र ! आप इसके ( सोमको ) पीकर आवरक शत्रुओंके लिये घन हूजिये । और युद्धोंमें हमारे घोड़ेकी रक्षा करिये ॥ ८ ॥

तं त्वा॒ वा॒जेषु॑ वा॒जिनं॑ वा॒जया॑मः श॑त॒क्रतो॑ । धना॑-  
नामि॑न्द्र सा॒तये॑ ॥ ९ ॥

तम् । त्वा॒ । वा॒जेषु॑ । वा॒जिन॑म् । वा॒जया॑मः । श॑त॒क्रतो॑ इति॑

श॑तऽक्रतो ॥ धना॑नाम् । इन्द्र॑ । सा॒तये॑ ॥ ९ ॥

हे शतक्रतो इन्द्र ! हम आप यज्ञान्नसे सम्पन्नको यज्ञ वा संग्राममें आवाहन करते हैं । हे इन्द्र ! हम धनप्राप्तिके लिये संग्राम में वा यज्ञमें आपका आवाहन करते हैं ॥ ६ ॥

यो रायोऽवनिर्महान्सुपारः सुन्वतः सखा । तस्मा

इन्द्राय गायत ॥ १० ॥

यः । रायः । अवनिः । महान् । सुपारः । सुन्वतः । सखा ॥

तस्मै । इन्द्राय । गायत ॥ १० ॥

जो इन्द्र धनके बड़े भारी रक्षक हैं, सुन्दरतासे पालन करने वाले हैं और सोमका अभिषव करने वालेके मित्र हैं, उन इन्द्र के लिये हे स्तोताओं ! तुम स्तुतिका गान करो ॥ १० ॥

आ त्वेता नि पीदतेन्द्रमभि प्र गायत । सखाय

स्तोमवाहसः ॥ ११ ॥

आ । तु । आ । इत । नि । पीदत । इन्द्रम् । अभि । प्र ।

गायत ॥ सखायः । स्तोमवाहसः ॥ ११ ॥

हे स्तोमका वहन करने वाले मित्ररूप स्तोताओं ! तुम आओ और इधर बैठो तथा इन्द्रका गान करो ॥ ११ ॥

पुरुतमं पुरुणामीशानं वार्याणाम् । इन्द्रं सोमे

सचा सुते ॥ १२ ॥

पुरुतमम् । पुरुणाम् । ईशानाम् । वार्याणाम् । इन्द्रम् । सोमे ।

सचा । सुते ॥ १२ ॥

इति षष्ठेनुवाके द्वितीयं सूक्तम् ॥

परमविशाल, और बड़े २ वरणीयोंके स्वामी इन्द्रदेवको सोम का अभिषेक होनेके साथ ही ( आह्वान करो ) ॥ १२ ॥

छठे अनुवाकमें द्वितीय सूक्त समाप्त ( ६८४ )

छन्दोमानां द्वितीयेद्विनि “स घा नो योग आ भुवत्” इति द्वात्रिंशत् ऋच आवपते । तद् उक्तं वैताने । “स घा नो योग आ भुवदिति द्वात्रिंशत्” इति [ वै० ६. ३ ] ॥

छन्दोमोंके द्वितीय दिनमें “स घा नो योग आभवत्” इस द्वात्रिंशत्की ऋचाएँ पढ़ी जाती हैं । इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि—“स घा नो योग आभुवदिति द्वात्रिंशत्” ( वैतान-सूत्र ६ । ३ ) ॥

स घा नो योग आ भुवत् स राये स पुरंध्याम् ।

गमद् वाजेभिरा स नः ॥ १ ॥

सः । घ । नः । योगे । आ । भुवत् । सः । राये । सः । पुरम्-  
ध्याम् ॥ गमत् । वाजेभिः । आ । सः । नः ॥ १ ॥

पुरोंकी चिन्ताके अवसर पर वह इन्द्रदेव हमारे सामने प्रकट होते हैं, वह अन्नोंके साथ हमारे पास आवें ॥ १ ॥

यस्य संस्थे न वृणवते हरी समत्सु शत्रवः । तस्मा  
इन्द्राय गायत ॥ २ ॥

यस्य । सम्स्थे । न । वृणवते । हरी इति । समत्सु । शत्रवः ॥

तस्मै । इन्द्राय । गायत ॥ २ ॥

जिन इन्द्रदेवके स्थित होने पर संग्रामोंमें शत्रु इन्द्रके हरी



नामक घोड़ोंको नहीं घेरते हैं, उन इन्द्रदेवके लिये हे स्तोताओं !  
तुम स्तुतिका गान करो ॥ २ ॥

सुत॒पा॒व्ने सु॒ता इ॒मे शुच॑यो यन्ति वी॒तये॑ । सोमा॑सो  
द॒ध्या॑शिरः ॥ ३ ॥

सु॒त॒पा॒व्ने । सु॒ताः । इ॒मे । शुच॑यः । य॒न्ति । वी॒तये॑ । सोमा॑सः ।

द॒धिऽआ॑शिरः ॥ ३ ॥

यह दधि पड़े, अभिषुत पवित्र सोम, अभिषुत सोमका पान  
करने वाले इन्द्रदेवके भक्षणके लिये जा रहे हैं ॥ ३ ॥

त्वं सु॒तस्य॑ पी॒तये॑ स॒द्यो वृ॒द्धो अ॒जाय॑थाः । इन्द्र॑  
ज्यैष्ठ्या॑य सु॒क्रतो॑ ॥ ४ ॥

त्वम् । सु॒तस्य॑ । पी॒तये॑ । स॒द्यः । वृ॒द्धः । अ॒जाय॑थाः ॥ इन्द्र॑ ।

ज्यैष्ठ्या॑य । सु॒क्रतो॑ इति सु॒क्रतो॑ ॥ ४ ॥

हे सुक्रतो इन्द्र ! आप अभिषुत सोमका बड़ा पान करनेके  
लिये शीघ्र ही बड़े होजाते हैं ॥ ४ ॥

आ त्वां वि॒शन्त्वा॑श॒वः सोमा॑स इन्द्र॑ गिर्व॒णः । शं  
ते॑ सन्तु प्र॒चेत॑से ॥ ५ ॥

आ । त्वा । वि॒शन्तु॑ । आ॒शवः॑ । सोमा॑सः । इन्द्र॑ । गिर्व॒णः ॥

शम् । ते । सन्तु॑ । प्र॒चेत॑से ॥ ५ ॥

हे स्तुतिगोसे संभजनीय इन्द्र ! फुर्ती देने वाले सोम आपमें  
अभिमुख होकर प्रवेश करें । और आपके चित्तको शांति देने  
वाले हों ॥ ५ ॥

त्वां स्तोमां अवीवृधन् त्वामुक्था शतक्रतो । त्वां  
वर्धन्तु नो गिरः ॥ ६ ॥

त्वाम् । स्तोमाः । अवीवृधन् । त्वाम् । उक्था । शतक्रतो इति

शतऽक्रतो । त्वाम् । वर्धन्तु । नः । गिरः ॥ ६ ॥

हे शतक्रतो इन्द्र ! स्तोम आपको बढ़ाते हैं, उक्थ्य आपको  
बढ़ाते हैं और हमारी वाणियों आपको बढ़ावें ॥ ६ ॥

अक्षितोतिः सनेदिमं वाजमिन्द्रः सहस्रिणम् । यस्मिन्  
विश्वानि पौस्या ॥ ७ ॥

अक्षितऽऊतिः । सनेत् । इमम् । वाजम् । इन्द्रः । सहस्रिणम् ॥

यस्मिन् । विश्वानि । पौस्या ॥ ७ ॥

जिसमें सैंकड़ों प्रकारके सहस्रों पुरुषार्थ भरे हुए हैं उस यज्ञ  
का अनुष्ण रक्षा वाले इन्द्रदेव सेवन करें ॥ ७ ॥

मा नो मर्ता अभि दुहन् तनूनामिन्द्र गिर्वणः ।

ईशानो यवया वधम् ॥ ८ ॥

मा । नः । मर्ताः । अभि । दुहन् । तनूनाम् । इन्द्रः । गिर्वणः ॥

ईशानः । यवय । वधम् ॥ ८ ॥

हे स्तुतियोंसे संभजनीय इन्द्र ! मनुष्य हमारे शरीरोंसे द्रोह  
न करें आप हमारे ईश्वर हैं, अतः हमारे वधनिमित्तको दूर  
करिये ॥ ८ ॥

युञ्जन्ति ब्रध्नमरुषं चरन्तं परि तस्थुषः । रोचन्ते  
रोचना दिवि ॥ ६ ॥

युञ्जन्ति । ब्रध्नम् । अरुषम् । चरन्तम् । परि । तस्थुषः ॥ रोचन्ते ।  
रोचना । दिवि ॥ ६ ॥

महान्, दमकते हुए और स्थावर तथा जंगमोंके ऊपर विच-  
रण करते हुए इन्द्रके रथमें हरि नामक अश्व जुतते हैं और वह  
दमकते हुए अश्व बलोकमें दमकते हैं ॥ ६ ॥

युञ्जन्त्यस्य काम्या हरी विपक्षसा रथे । शोणा धृष्णू  
नृवाहसा ॥ १० ॥

युञ्जन्ति । अस्य । काम्या । हरी इति । विपक्षसा । रथे ॥  
शोणा । धृष्णू इति । नृवाहसा ॥ १० ॥

इन इन्द्रदेवके रथमें सारथी हरी नाम वाले अश्वोंको जोतते  
हैं । ये अश्व कामना करने योग्य हैं, रथकी दोनों करबटोंमें  
रहते हैं, रक्त वर्ण वाले हैं, दबाने वाले हैं, सारथी आदि मनुष्यों  
को सवारी देने वाले हैं ॥ १० ॥

केतुं कृणवन्नकेतवे पेशो मर्या अपेशसे । समुषद्भि-  
रजायथा ॥ ११ ॥

केतुम् । कृणवन् । अकेतवे । पेशः । मर्याः । अपेशसे ॥ सम् ।

उषत्भिः । अजायथाः ॥ ११ ॥

हे मरणधर्मसहित मनुष्यों ! प्रज्ञानरहित पुरुषको ज्ञान देने



वाले और अंधकारसे आवृत होनेके कारण रूपरहित पदार्थको रूप प्रदान करने वाले इन सूर्यात्मक इन्द्रदेवको तुम देखो, यह अपनी किरणोंके साथ प्रकट हुए हैं ॥ ११ ॥

आदह स्वधामनु पुनर्गर्भत्वमसिरे । दधाना नामं यज्ञियम् ॥ १२ ॥

आत् । अहः । स्वधाम् । अनु । पुनः । गर्भत्वम् । आऽईरिरे ॥

दधानाः । नामं । यज्ञियम् ॥ १२ ॥

इति षष्ठेऽनुवाके तृतीयं सूक्तम् ॥

इसके अनन्तर ये मरुद्गण स्वधा देने वाले गर्भत्वको प्राप्त होजाते हैं और यज्ञिय नामको धारण करते हैं ॥ १२ ॥

छठे अनुवाकमें तृतीय सूक्त समाप्त ( ६८५ )

छन्दोमानां तृतीयेहनि “वीलु चिदारुजत्नुभिः” इति षट्त्रिंशतम् ऋचः आवापस्थाने आवपते । तद् उक्तं वैताने । “वीलु चिदारुजत्नुभिरिति षट्त्रिंशतम् आवपते” इति [ वै० ६. ३ ] ॥

छन्दोमके तृतीय दिनमें “वीलु चिदारुजत्नुभिः” इस षट्त्रिंशत्को ऋचाओंके आवापस्थानमें पढ़े । इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि—

वीलु चिदारुजत्नुभिर्गुहां चिदिन्द्र वह्निभिः । अविन्द उस्त्रिया अनु ॥ १ ॥

वीलु । चित् । आरुजत्नुभिः । गुहा । चित् । इन्द्र । वह्निभिः ॥

अविन्दः । उस्त्रियाः । अनु ॥ १ ॥

हे इन्द्र ! आपने अपनी प्रकाशक भेदन करने वाली शक्तियों से, उत्सर्पणशील उषाके अनन्तर ही गुफामें स्थित धनको प्राप्त किया है ॥ १ ॥

देवयन्तो यथा मतिमच्छा विदद् वसुं गिरः । महामनूषत श्रुतम् ॥ २ ॥

देवयन्तः । यथा । मतिम् । अच्छ । विदद् वसुम् । गिरः । महाम् । अनूषत । श्रुतम् ॥ २ ॥

हे स्तुतिदाणियों ! जिस प्रकार हम देवताओंकी कामना करने वाले अपनी मतिको उनके अभिमुख कर सकें, उन प्रसिद्ध और महान् इन्द्रकी तुम स्तुति करो ॥ २ ॥

इन्द्रेण सं हि दत्तसे संजग्मानो अविभ्युषा । मन्दसमानवर्चसा ॥ ३ ॥

इन्द्रेण । सम् । हि । दत्तसे । सम्जग्मानः । अविभ्युषा ॥ मन्द इति । समानवर्चसा ॥ ३ ॥

हे भगवन् इन्द्र ! आप अभयवान् मरुद्गणसे मिलते हुए सदा ही देखे जाते हैं, मरुद्गण और आप दोनों एकत्र मिल कर नित्य प्रसुद्धित होते हैं और आप दोनोंकी दीप्ति समान है ॥ ३ ॥

अनवद्यैरभिद्युभिर्मखः सहस्रवद्वर्चति । गणैरिन्द्रस्य काम्यैः ॥ ४ ॥

अनवद्यैः । अभिद्युभिः । मखः । सहस्रवत् । अर्चति ॥ गणैः । इन्द्रस्य । काम्यैः ॥ ४ ॥

निष्पाप और दमकते हुए इन्द्रके काम्यगणोंसे यज्ञ बलपूर्वक शोभा पाता है ॥ ४ ॥

अतः परिज्मन्ना गंहि दिवो वा रोचनादधि ।

समस्मिन्नृजते गिरः ॥ ५ ॥

अतः । परिज्मन् । आ । गंहि । दिवः । वा । रोचनात् । अधि ॥

सम् । अस्मिन् । ऋजते । गिरः ॥ ५ ॥

हे व्यापनशील इन्द्र ! आप इस भूलोकसे वा रोचनशील धुलोकसे आइये, इन इन्द्रदेवमें वाणियों संयुक्त होती हैं ॥ ५ ॥

इतो वा सातिमीमहे दिवो वा पार्थिवादधि । इन्द्रं

महो वा रजसः ॥ ६ ॥

इतः । वा । सातिम् । ईमहे । दिवः । वा । पार्थिवात् । अधि ।

इन्द्रम् । महः । वा । रजसः ॥ ६ ॥

हम इन्द्रदेवकी प्राप्तिको वह इस पार्थिव लोकमें हों तो इस लोकसे, स्वर्गमें हों तो स्वर्गसे, महर्लोकमें हों तो महर्लोकसे चाहते हैं ॥ ६ ॥

इन्द्रमिद् गाथिनो बृहदिन्द्रमर्केभिरर्किणः । इन्द्रं वाणी-

रनूषत ॥ ७ ॥

इन्द्रम् । इत् । गाथिनः । बृहत् । इन्द्रम् । अर्केभिः । अर्किणः ॥

इन्द्रम् । वाणीः । अनूषत् ॥ ७ ॥



गाथागान करने वाले पुरुष इन्द्रकी ही प्रशंसा करते हैं, पूजा करने वाले मन्त्रोंके द्वारा विशाल इन्द्रका ही पूजन करते हैं और वाणियों भी इन्द्रकी ही स्तुति करती हैं ॥ ७ ॥

इन्द्र इन्द्र्योः सचा संमिश्र आ वचोयुजा । इन्द्रो  
वज्री हिरण्ययः ॥ ८ ॥

इन्द्रः । इत् । इर्योः । सचा । सम्मिश्रः । आ । वचःयुजा ॥

इन्द्रः । वज्री । हिरण्ययः ॥ ८ ॥

इन्द्रदेव ही हरि नामक घोड़ोंके साथ रहते हैं, यह मन्त्रसे रथ में संयुक्त होने वाले घोड़ोंसे भली प्रकार प्राप्त होते हैं इन्द्रदेव ही हित रमणीय हैं और वज्रधारी हैं ॥ ८ ॥

इन्द्रो दीर्घाय चक्षस आ सूर्य रोहयद् दिवि । वि  
गोभिरद्रिमैरयत् ॥ ९ ॥

इन्द्रः । दीर्घाय । चक्षसे । आ । सूर्यम् । रोहयत् । दिवि ॥

वि । गोभिः । अद्रिम् । ऐरयत् ॥ ९ ॥

इन्द्रदेवने दीर्घदर्शनके लिये सूर्यको आकाशमें चढ़ाया है और सूर्यात्मक इन्द्रने किरणोंसे मेघोंको विदीर्ण किया है ॥ ९ ॥

इन्द्र वाजेषु नोव सहस्रप्रधनेषु च । उग्र उग्राभिरू-  
तिभिः ॥ १० ॥

इन्द्र । वाजेषु । नः । अव । सहस्रप्रधनेषु । च । उग्रः । उग्राभिः ।

ऊतिभिः ॥ १० ॥

हे इन्द्रदेव ! सहस्रों उत्कृष्ट धन वाले संग्राममें आप हमारी रक्षा करिये, आप उग्र हैं अतः अपनी प्रचण्ड रक्षक शक्तियोंसे हमारी रक्षा करिये ॥ १० ॥

इन्द्रं वयं महाधन इन्द्रमर्भे हवामहे । युजं वृत्रेषु वज्रिणम् ॥ ११ ॥

इन्द्रम् । वयम् । महाधने । इन्द्रम् । अर्भे । हवामहे । युजम् । वृत्रेषु । वज्रिणम् ॥ ११ ॥

हम महाधनप्राप्तिके अवसर पर वा स्वप्नप्राप्तिके समय इन्द्र का आवाहन करते हैं, यह आवरक शत्रुओं पर वज्रको संयुक्त करने वाले हैं ॥ ११ ॥

स नो वृषन्नमुं चरुं सत्रादावन्नपा वृधि । अस्मभ्यमप्रतिष्कृतः ॥ १२ ॥

सः । नः । वृषन् । अमुम् । चरुम् । सत्रादावन् । अप । वृधि ॥ अस्मभ्यम् । अप्रतिष्कृतः ॥ १२ ॥

हे फलोंकी वर्षा करने वाले, और सत्य दान देने वाले इन्द्र ! आप इस चरुका सेवन करिये और किसीसे न हटने वाले आप हमको बढ़ाइये ॥ १२ ॥

तुञ्जेतुञ्जे य उत्तरे स्तोमा इन्द्रस्य वज्रिणः । न विन्धे अस्य सुष्टुतिम् ॥ १३ ॥

तुञ्जेतुञ्जे । ये । उत्तरे । स्तोमाः । इन्द्रस्य । वज्रिणः ॥ न । विन्धे । अस्य । सुष्टुतिम् ॥ १३ ॥

प्रत्येक दानके अवसर पर, उत्तरोत्तर दानसे परिनुष्ट हुआ मैं वज्ररानी इन्द्रके जिन २ स्तोत्रोंका विचार करता हूँ, उनकी समाप्ति को ही मैं नहीं पाता ॥ १३ ॥

वृषां यूथान् वंसगः कुट्टीस्यित्योर्जसा । ईशानो अप्र-  
तिष्कृतः ॥ १४ ॥

वृषां यूथाऽथ । वंसगः । कुट्टीः । इत्यर्नि । ओर्जसा ॥ ईशानः ।

अप्रतिष्कृतः ॥ १४ ॥

आप यूथानि वननीयगति वृषभके खेतियोंको मेरित करने की समान वज्रसे फलोंको मेरित करते हैं, आप ईशान हैं, और अप्रतिष्कृत हैं ॥ १४ ॥

य एकं चर्षणीनां वसूनामिर्जयति । इन्द्रः पञ्च क्षिती-  
नाम् ॥ १५ ॥

यः । एकः । चर्षणीनाम् । वसूनाम् । इरजयति ॥ इन्द्रः । पञ्च ।

क्षितीनाम् ॥ १५ ॥

जो इन्द्रदेव अद्वितीय रूपमें मनुष्यों और धनोंके स्वामी हैं और यह इन्द्रदेव पञ्च क्षितियोंके स्वामी हैं ॥ १५ ॥

इन्द्रं वो विश्वतस्परिहवामहे जनेभ्यः । अस्माकमस्तु  
केवलः ॥ १६ ॥

इन्द्रम् । यः । विश्वतः । परि । हवामहे । जनेभ्यः ॥ अस्माकम् ।

अस्तु । केवलः ॥ १६ ॥



हम चारों ओरके प्राणिमंडली ओरसे ( हटा कर ) इन्द्रका  
आवाहन करते हैं, वह केवल हमारे ही हों ॥ १६ ॥

ए॒न्द्रः सान॒सिं र॒यिं स॒जित्वा॑नं स॒दास॑हम् । व॒र्षि॑ष्ठ॒मू॒तये॑  
भर ॥ १७ ॥

आ । इ॒न्द्र । सान॒सिम् । र॒यिम् । स॒जित्वा॑नम् । स॒दा॒स॑हम् ।  
व॒र्षि॑ष्ठम् । ऊ॒तये॑ । भर ॥ १७ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप प्रीति देने वाले, धनरूप, सजित्वा, सदा-  
सह और फलोंकी वर्षा करने वाले अपने बलको हमारी रक्षा  
करनेके लिये धारण करिये ॥ १७ ॥

नि येन मुष्टि॒हत्य॑या नि वृ॒त्रा रु॒णधाम॑है । त्वा॒ता॑सो  
न्य॒र्वता ॥ १८ ॥

नि । येन । मु॒ष्टि॒ह॒त्य॑या । नि । वृ॒त्रा । रु॒ण॒धाम॑है । त्वा॒ऊ॒ता॑सः ।  
नि । अ॒र्वता ॥ १८ ॥

आपकी रक्षा वाले हमघोड़े वाले होकर आवरक एक शत्रुओं  
की पक्षोंकी मारसे मार डालें ॥ १८ ॥

इन्द्र॒ त्वा॒ता॑स॒ आ व॒यं व॒ज्रं घ॒ना द॑दीमहि । जये॑म  
सं युधि॒ स्पृधः॑ ॥ १९ ॥

इन्द्र । त्वा॒ऊ॒ता॑सः । आ । व॒यम् । व॒ज्रम् । घ॒ना । द॒दी॒म॒हि ।  
ज॒य॒म । स॒म् । यु॒धि । स्पृ॒धः ॥ १९ ॥

हे इन्द्र ! आपकी रक्षा वाले हम वज्रकी मचण्डरूपसे ग्रहण

करं और स्पर्धा करने वालोंको युद्धमें जीत लें ॥ १६ ॥

वयं शूरेभिरस्तुभिरिन्द्र त्वया युजा वयम् । सासह्यामं

पृतन्यतः ॥ २० ॥

वयम् । शूरेभिः । अस्तुभिः । इन्द्र । त्वया । युजा । वयम् ॥

सासह्यामं । पृतन्यतः ॥ २० ॥

इति षष्ठेनुवाके चतुर्थं सूक्तम् ॥

हे इन्द्रदेव ! हम आपसे और अहिंसित शूरोसे सम्पन्न होकर, सेना लेकर अपने ऊपर चढ़ने वाले शत्रुओंको दबावें २०

छठे अनुवाकमें चतुर्थं सूक्त समाप्त ( ६८६ )

“सं चोदय चित्रमर्वाक्” [ २०. ७१. ११ ] इत्यस्य विनियोगः “प्रणेतारं वस्यो अच्छा” [ २०. ४६ ] इत्यनेन सह उक्तः ॥

“सं चोदय चित्रमर्वाक्” ( २० । ७१ । ११ ) इसका विनियोग “प्रणेतारं वस्यो अच्छा” ( २० । ४६ ) के साथ कह दिया है  
महाँ इन्द्रः परश्च नु महित्वमस्तु वज्रिणे । द्यौर्न  
प्रथिना शवः ॥ १ ॥

महान् । इन्द्रः । परः । च । नु । महित्वम् । अस्तु । वाज्रिणे ॥

द्यौः । न । प्रथिना । शवः ॥ १ ॥

इन्द्रदेव महान् हैं और उत्कृष्ट हैं उन इन्द्रदेवके लिये महत्त्व ही उनका बल थलोककी समान विस्तृत होवे ॥ १ ॥

समोहे वा य आशत नरस्तोकस्य सनितौ । विप्रांसो  
वा धियायवः ॥ २ ॥

सम्ऽग्रोहे । वा । ये । आशत । नरः । तोक्य । सन्तौ ।

विपासः । वा । धियाऽयवः ॥ २ ॥

जो बुद्धि चाहने वाले मेधावी पुरुष हैं, वे नेता प्रेमपात्र युद्ध में पुत्रके साथ भी युद्धमें व्याप्त होजाते हैं ॥ २ ॥

यः कुक्षिः सोमपातमः समुद्र इव पिन्वते । उर्वीरापो

न काकुदः ॥ ३ ॥

यः । कुक्षिः । सोमपातमः । समुद्रऽइव । पिन्वते ॥ उर्वीः ।

आपः । न । काकुदः ॥ ३ ॥

जो सोमका पान करने वाले इन्द्रदेवकी कुक्षि है वह ककुद वाले वृषभकी समान और विशाल जल वाले समुद्रकी समान बढ़ी है ॥ ३ ॥

एवा ह्यस्य सूनुनां विरप्शी गोमती मही । पक्वा

शाखा न दाशुषे ॥ ४ ॥

एव । हि । अस्य । सूनुनां । विरप्शी । गोऽमती । मही ॥ पक्वा ।

शाखा । न । दाशुषे ॥ ४ ॥

इनकी मधुर गोप्रदात्री विशाल भूमि हवि प्रदान करने वाले यजमानको पक्व शाखाकी समान ( फलप्रदान करने वाली है ) ४

एवा हि ते विभूतय उक्तय इन्द्र मावते । सद्यश्चित्

सन्ति दाशुषे ॥ ५ ॥



ए॒व । हि॒ । ते॒ । वि॒ष्मृत॑यः । ऊ॒तयः॑ । इ॒न्द्र । मा॒श्व॑ते ॥ सु॒द्यः ।

चि॒त् । सन्ति॑ । दा॒शु॒षे ॥ ५ ॥

हे पृथ्वीपति इन्द्र ! आपकी रक्तक विभूतियों, इबि देने वाले यजमानके लिये शीघ्र ही उपस्थित होजाती हैं ॥ ५ ॥

ए॒वा ह्य॑स्य॒ काम्या॑ स्तोमं॒ उक्थं॑ च॒ शंस्या॑ । इन्द्रा॑य॒  
सोम॑प्री॒तये ॥ ६ ॥

ए॒व । हि॒ । अ॒स्य । का॒म्या । स्तो॒मः । उ॒क्थम् । च॒ । शं॒स्या ॥

इन्द्रा॑य । सोम॑प्री॒तये ॥ ६ ॥

इन्द्रको सोमका पान कराते समय स्तोम उक्थ और शंस्या ( नामक स्तुतियों ) इन्द्रदेवको कमनीय होती हैं ॥ ६ ॥

इ॒न्द्रेहि॒ मत्स्य॑न्ध॒सो वि॒श्वेभिः॑ सोम॒पर्व॑भिः । म॒हौ  
अ॒भिष्टि॑रोज॒सा ॥ ७ ॥

इ॒न्द्र । आ॒ । इ॒हि । म॒त्सि । अ॒न्ध॒सः । वि॒श्वे॑भिः । सोम॒पर्व॑भिः ॥

म॒हान् । अ॒भिष्टिः॑ । ओज॑सा ॥ ७ ॥

हे इन्द्रदेव ! आइये और सकल सोमपर्वोंसे तथा सोमरूपी अन्नसे आनन्दमें भरिये, आपकी अभिष्टि ओजसे बड़ी है । ७॥

ए॒मेन॑ सृ॒जता॑ सु॒ते म॒न्दिमिन्द्रा॑य म॒न्दिने॑ । च॒क्रिं  
वि॒श्वानि॑ च॒क्रये ॥ ८ ॥

आ॒ । ई॒म् । ए॒नम् । सृ॒ज॒त । सु॒ते । म॒न्दि॒म् । इन्द्रा॑य । म॒न्दिने॑ ॥

च॒क्रिम् । वि॒श्वानि॑ । च॒क्रये ॥ ८ ॥

हे अध्वर्युओं ! दिये हुए उक्थपात्रोंसे और चमसोंसे आप सोमकी रचना करो, यह सोम अभिषुत होने पर प्रसन्नता-मय इन्द्रको प्रसन्न करने वाला है संस्कृत कर्मोंसे सम्पन्न कर्म करते हुए इन्द्रको प्रसन्न करने वाला है ॥ ८ ॥

मत्स्वा सुशिप्र मन्दिभि स्तोमेभिर्विश्वचर्षणे । सचैषु  
सवनेष्वाम् ॥ ९ ॥

मत्स्व । सुशिप्र । मन्दिभिः । स्तोमेभिः । विश्वचर्षणे ॥

सचा । एषु । सवनेषु । आम् ॥ ९ ॥

हे सबके साक्षी सुन्दर ठोड़ी वाले इन्द्र ! आप सबनोंमें साथ ही साथ इन आनन्दप्रद स्तोत्रोंसे भी हर्षमें भरिये ॥ ९ ॥

असृग्रमिन्द्र ते गिरः प्रतित्वामुदहासत । अजोषा  
वृषभं पतिम् ॥ १० ॥

असृग्रम् । इन्द्र । ते । गिरः । प्रति । त्वाम् । उद् । अहासत ॥

अजोषाः । वृषभम् । पतिम् ॥ १० ॥

हे इन्द्र ! प्रीति न करने वालों स्त्रियों जैसे वृषभ पतिकी त्याग देती हैं, तथा इसी प्रकार स्तुतियों आपके त्यागती हैं ? नहीं ॥ १० ॥

सं बोदय चित्रमर्वाण राधं इन्द्र वरेण्यम् । असदित्  
ते विभु प्रभु ॥ ११ ॥

सम् । चोदय । चित्रम् । अर्वाक् । राधः । इन्द्र । वरेण्यम् ॥

असत् । इत् । ते । विऽभ्युः । प्रऽभ्यु ॥ ११ ॥

हे इन्द्रदेव ! कमं गीय धनको हमारी ओर प्रेरित करिये, जो आपका प्रभु वा विभु धन हो उसको प्रेरित करिये ॥ ११ ॥

अस्मान्तसु तत्र चोदयेन्द्र राये रभस्वतः । तुविद्युम्न

यशस्वतः ॥ १२ ॥

अस्मान् । सु । तत्र । चोदय । इन्द्र । राये । रभस्वतः ॥ तुवि-

द्युम्न । यशस्वतः ॥ १२ ॥

हे परम दमकने वाले इन्द्र ! आप हमको यशस्वी महान् पुरुषके धनके लिये प्रेरित करिये ॥ १२ ॥

सं गोमदिन्द्र वाजवदस्मे पृथु श्रवो बृहत् । विश्वा-

युर्धेह्यक्षितम् ॥ १३ ॥

सम् । गोऽमत् । इन्द्र । वाजऽवत् । अस्मे इति । पृथु । श्रवः ।

बृहत् ॥ विश्वऽआयुः । धेहि । अक्षितम् ॥ १३ ॥

हे इन्द्रदेव ! हमको गौओंसे, यज्ञान्नसे सम्यन्त विशाल वश पदान करिये और हमको क्षीयत्तरहित विशाल आयु पदान करिये ॥ १३ ॥

अस्मे धेहि श्रवो बृहद् द्युम्नं सहस्रसातमम् । इन्द्र-

ता रथिनीरिषः ॥ १४ ॥



अस्मे इति । धेहि । श्रवः । बृहत् । शुम्नम् । सहस्रऽसातमम् ॥

इन्द्र । ताः । रथिनीः । इयः ॥ १४ ॥

हे इन्द्रदेव ! हममें सहस्रोंसे सेवनीय विशाल दमकते हुए श्रव को प्रदान करिये और रथिनी इषाओंको प्रदान करिये ॥ १४ ॥

वसोरिन्द्रं वसुपतिं गीर्भिर्गृणन्तं ऋग्मियम् । होम-  
गन्तारमूतये ॥ १५ ॥

वसोः । इन्द्रम् । वसुऽपतिम् । गीऽभिः । गृणन्तः । ऋग्मियम् ॥

होम । गन्तारम् । ऊतये ॥ १५ ॥

स्तुतिमयी वाणियोंसे स्तुति करते हुए हम धनके स्वामी, वसुपति, ऋग्मिय और होमको प्राप्त होने वाले इन्द्रकी रक्षाकी रक्षाकी पूजा करते हैं ॥ १५ ॥

सुनेसुने न्योर्कसे बृहद् बृहत एदरिः । इन्द्राय शुष-  
मर्चति ॥ १६ ॥

सुनेऽसुते । निऽमोकसे । बृहत् । बृहते । आ । इत् । अरिः ॥

इन्द्राय । शुषम् । अर्चति ॥ १६ ॥

षष्ठेनुवाके पञ्चमं सूक्तम् ॥

इति षष्ठेनुवाकः ॥

न्योकसमें बृहत् इन्द्रके लिये प्रत्येक बार सोमका अभिषव होने पर अरि इन्द्रके बलकी प्रशंसा करते हैं ॥ १६ ॥

छठे अनुवाकमें पञ्चम सूक्त समाप्त ( ६८७ )

छठा अनुवाक समाप्त

पृष्ठयषडहस्य षष्ठेहनि “विश्वेषु हि त्वा सवनेषु तुञ्जते” इत्यस्य विनियोगः “वनोति हि सुन्वन् क्षयं परीणसः” [२०. ६७] इत्यनेन सह उक्तः ॥

पृष्ठयषडहके छठे दिन “विश्वेषु हि त्वा सवनेषु तुञ्जते” इस का विनियोग “वनोति हि सुन्वन् क्षयं परीणसः” (२० । ६७) के साथ कह दिया है ।

विश्वेषु हि त्वा सवनेषु तुञ्जते समानमेकं वृषमण्यवः

पृथक् स्वः सनिष्यवः पृथक् ।

तं त्वा नावं न पर्षणिं शूषस्य धुरिं धीमहि ।

इन्द्रं न यज्ञैश्चितयन्त आयवः स्तोमेभिरिन्द्रमायवः १

विश्वेषु । हि । त्वा । सवनेषु । तुञ्जते । समानम् । एकम् । वृष-

मन्यवः । पृथक् । स्वः । सनिष्यवः । पृथक् ।

तम् । त्वा । नावम् । न । पर्षणिम् । शूषस्य । धुरि । धीमहि ।

इन्द्रम् । न । यज्ञैः । चितयन्त । आयवः । स्तोमेभिः । इन्द्रम् ।

आयवः ॥ १ ॥

हे इन्द्रदेव ! पृथक् २ स्वर्गको चाहने वाले फलवर्षाके लिये दीनता करने वाले, सब सवनोंमें केवल एक आपसे ही दान माँगते हैं । हम नौकारूप, अन्नके पूले वाले आपको बलके बोझ में नियुक्त करते हैं । यज्ञोंसे इन्द्रको प्रबोधित करते हुए हम लोक-वासी स्तोत्रोंसे ( इन्द्रकी स्तुति करते हैं ) ॥ १ ॥

वि त्वां ततस्त्रे मिथुना अवस्यवो ब्रजस्य साता गव्य-  
स्य निःसृजः सत्तन्त इन्द्र निःसृजः ।

यद् गव्यन्ता द्वा जना स्वर्यन्तां समूहसि ।

आविष्करिक्त्वा वृषणं सचाभुवं वज्रमिन्द्र सचाभुवम्

वि । त्वा । ततस्त्रे । मिथुनाः । अवस्यवः । ब्रजस्य । साता ।

गव्यस्य । निःसृजः । सत्तन्तः । इन्द्र । निःसृजः ।

यत् । गव्यन्ता । द्वा । जना । स्वर्यः । यन्ता । समूहसि ।

आविः । करिक्त्वा । वृषणम् । सचाऽभुवम् । वज्रम् । इन्द्र । सचाऽभुवम्

अन्न चाहने वाले मिथुन, गव्य ब्रजके दानके अवसर पर आपमें ध्यान लगाते हुए आपको फलप्रदानके लिये प्रेरित करते हैं आप स्वर्गको जाने वाले गव्यन्त दो जनोंको भली प्रकार पहिचानते हैं, हे इन्द्र ! उस समय आप अपने वर्षक सहायक रूप वज्रको प्रकाशित करते हैं ॥ २ ॥

उतो नो अस्या उषसो जुषेत ह्यर्कस्य बोधिं हविषो

हवीमभिः स्वर्षाता हवीमभिः ।

यदिन्द्र हन्तवे मृधो वृषां वज्रिं चिकेतसि ।

आ मे अस्य वेधसो नवीयसो मन्म श्रुधि नवीयसः ३

उतो इति । नः । अस्याः । उषसः । जुषेत । हि । अर्कस्य । बोधि ।

हविषः । हवीमभिः । स्वर्षाता । हवीमभिः ।



यत् । इन्द्र । हन्तवे । सृवः । वृषा । वज्रिन् । चिकेतसि ।

आ । मे । अस्य । वेवसः । नवीयसः । मन्म । अधि । नवीयसः

इति सप्तमेनुवाके प्रथमं सूक्तम् ॥

सूर्यकी ज्ञापिका इस उषाकी हविको हम स्वर्गका उपभोग करनेके लिये हवन करते हैं, हे वर्षक इन्द्र ! आप संग्राम करने वालोंको नष्ट करनेके लिये अपने वज्रको उठाते हैं, आप इस नवीन स्रष्टा ( मेरे ) मननीय स्तोत्रको सुनिये ॥ ३ ॥

सप्तम अनुवाकमें प्रथमसूक्त समाप्त ( ६८८ )

पृष्ठ्यस्य चतुर्थेहनि “तुभ्येदिमा सवना शूर विश्वा” इति पुरस्तात्संपातसूक्तात् षट् पदं आवपते । तासां प्रथमास्तिस्र ऋचः अर्धर्चशः शंसति । तद् उक्तं वैताने । “चतुर्थे तुभ्यदिमा सवना शूर विश्वेति षट् पुरस्तात्संपाताः । तिस्रोर्धर्चशः” इति [ वै० ६. २ ]

पृष्ठ्यके चौथे दिन “तुभ्येदिमा सवना शूर विश्वा” इसकी छः ऋचाओंको सम्पातसूक्तसे पहिले पढ़े । इनमें पहिली तीन ऋचाओंको अर्धर्चशः पढ़े । इसी बातको वैतानसूत्र ६ । २ में कहा है, कि—“चतुर्थे तुभ्येदिमा सवना शूर विश्वेति षट् पुरस्तात् सम्पाताः” ॥

तुभ्येदिमा सवना शूर विश्वा तुभ्यं ब्रह्माणि वर्धना कृणोमि । त्वं नृभिर्हव्यो विश्वधामि ॥ १ ॥

तुभ्य । इत् । इमा । सवना । शूर । विश्वा । तुभ्यम् । ब्रह्माणि ।

वर्धना । कृणोमि । ताम् । नृभिः । हव्यः । विश्वधा । अस्मि १

हे शूर ! यह सब सवन आपके ही लिये हैं । मैं आपके लिये

ही इन मन्त्रोंको वर्धक करता हूँ । आप मनुष्योंसे आहुति पाने के पात्र हैं और आप सबको पुष्ट करने वाले हैं ॥ १ ॥

नूचिन्नु ते मन्यमानस्य दस्मोदंशुवन्ति महिमानमुग्र ।

न वीर्यमिन्द्र ते न राधः ॥ २ ॥

नु । चिन् । नु । ते । मन्यमानस्य । दस्म । उत् । अश्नुवन्ति ।

महिमानम् । उग्र । न । वीर्यम् । इन्द्र । ते । न । राधः ॥ २ ॥

हे अभिमान रखने वाले उग्र इन्द्र ! आपकी महिमा सुदृश्यत्वं वीर्य और धनको अन्य नहीं पासकते ॥ २ ॥

प्र वो महे महिवृधे भरध्वं प्रचेतसे प्रसुमति कृणुध्वम् ।

विशः पूर्वीः प्र चरा चर्षणिप्राः ॥ ३ ॥

प्र । वः । महे । महिवृधे । भरध्वम् । प्रचेतसे । प्र । सुमतिम् ।

कृणुध्वम् । विशः । पूर्वीः । प्र । चर । चर्षणिप्राः ॥ ३ ॥

हे याजकों ! तुम महत्त्व पानेके लिये महिवृध् प्रचेतस इन्द्रका हविसे भरण करो, सुमति करो, हे मनुष्योंको अभिमत फलसे पूर्ण करने वाले ! आप प्रकृष्टरूपसे हविका भक्षण करिये ॥ ३ ॥

यदा वज्रं हिरण्यमिदथा रथं हरी यमस्य वहंतो वि  
सूरिभिः ।

आ तिष्ठति मघवा मनश्नुत इन्द्रो वाजस्य दीर्घश्रव-

सस्पतिः ॥ ४ ॥

यदा । वज्रम् । हिरण्यम् । इत् । अथ । रथम् । हरी इति । यम् ।

अस्य । बहतः । वि । । सूरिऽभिः ।

आ । तिष्ठति । मघऽवा । सनऽश्रुतः । इन्द्रः । वाजस्य । दीर्घ-

ऽश्रवसः । पतिः ॥ ४ ॥

जब सबको बशमें रखने वाले इन्द्रके हरी नामक अश्व सुवर्णमय वज्रको और रथको लगामोंसे खेंचने लगते हैं, तब तपसे प्रसिद्ध यज्ञान्न और विशाल कीर्तिके स्वामी मघवा इन्द्र रथ पर अधिष्ठित होते हैं ॥ ४ ॥

सो चिन्नु वृष्टिर्यूथ्या३ स्वा सचाँ इन्द्रः श्मश्रूणि  
हरिताभिः प्रुणुते ।

अव वेति सुक्षयं सुते मधूदिद्धूनोति वातो यथा  
वनम् ॥ ५ ॥

सो इति । चित् । नु । वृष्टिः । यूथ्या । स्वा । सचा । इन्द्रः ।

श्मश्रूणि । हरिता । अभि । प्रुणुते ।

अव । वेति । सुऽक्षयम् । सुते । मधु । उत् । इत् । धूनोति ।

वातः । यथा । वनम् ॥ ५ ॥

बड़ी भारी वृष्टि इन्द्रकी अपनी ही है, और वह सहायक इन्द्र सोमलताओंसे अपनी मूँछोंको स्नान करा देते हैं, जैसे वायु वनको काँपाता है, इसी प्रकार वह सोमका अभिषव होने पर घर पर आते हैं और मधुको कंपित करते हैं ॥ ५ ॥



यो वाचा विवाचो मृध्रवाचः पुरु सहसाशिवा जघान  
तत्तदिदस्य पौंस्यं गृणीमसि पितेव यस्तविषीं वावृधे  
शवः ॥ ६ ॥

यः । वाचा । विवाचः । मृध्रवाचः । पुरु । सहसा । अशिवा ।  
जघान ।

तत्स्तत् । इत् । अस्य । पौंस्यम् । गृणीमसि । पिताइव । यः ।  
तविषीम् । ववृधे । शवः ॥ ६ ॥

इति सप्तमेनुवाके द्वितीयं सूक्तम् ॥

जो इन्द्रदेव विकृत बोलने वालोंको अपनी वाणियोंसे कोमल  
बाणी वाले कर देते हैं, सहस्रों अशुभकारियोंको मार डालते हैं,  
इन्द्रदेवके उन २ पुरुषार्थोंकी हम स्तुति करते हैं, जो पिताकी  
समान महान् बलको बढ़ाते हैं ॥ ६ ॥

सप्तम अनुवाकमें द्वितीय सूक्त समाप्त ( ६८९ )

पृष्ठ्यस्य पञ्चमेहनि पुरस्तात् संपातात् पङ्क्तिच्छन्दस्कम् “यच्चिद्धि  
सत्य सोमपाः” इति सूक्तम् आवपते । तस्य शंसनधर्ममपि सूत्र-  
कार आह । तद् उक्तं वैताने । “पञ्चमे यच्चिद्धि सत्य सोमपा  
इति पाङ्क्तं सप्तर्चम् । द्वौ द्वाववसाय पञ्चमं सन्तनोति । त्रयं वाव-  
साय द्वयम्” इति [ वै० ६. २ ] ॥ अस्य अर्थः पाङ्क्तस्य  
एकैकस्य द्वौ द्वौ पादौ संहतौ अवसाय अर्धर्चशस्यवत् पञ्चमं  
पादं प्रणवेनोपसंतनोति संबध्नाति । पादत्रयं संहतं वा अवसाय  
अन्त्यपादद्वयं संहतं प्रणवेनोपसंतनोति इति ॥

पृष्ठ्यके पञ्चम दिनमें सम्पातसे पहिले पंक्ति छन्द वाले

“यच्चिद्धि सत्य सोमपाः” इस सूक्तको पढ़े । इसके शंसनधर्म को भी सूत्रकारने कहा है, कि—“पञ्चमे यच्चिद्धि सत्य सोमपा इति पांक्तं सप्तर्चम् । द्वौ द्वाववसाय पञ्चमं सन्ननोति । त्रयं वावसाय द्वयम्” ( वैतानसूत्र ६ । २ ) इसका अर्थ यह है, कि—पांक्त्यके एक २ मन्त्रके दो दो मिले हुए पादोंका अवसान करके अर्धर्चशस्यकी समान प्रणवसे उपसन्तान करता हुआ संबंधन करे । वा तीनों संहत पादोंका अवसान करके अन्तिम मिले हुए दो पादोंको प्रणवसे उपसन्तान करे ।

यच्चिद्धि सत्य सोमपा अनाशस्ता इव स्मसि ।

आ तू न इन्द्र शंसय गोष्वश्वेषु शुभिषु सहस्रेषु

तुवीमघ ॥ १ ॥

यत् । चित् । हि । सत्य । सोमपाः । अनाशस्ताः इव । स्मसि ।

आ । तू । नः । इन्द्र । शंसय । गोषु । अश्वेषु । शुभिषु । सह-

स्रेषु । तुविमघ ॥ १ ॥

हे सोमका पान करने वाले सत्य इन्द्र ! आप अनाशस्ता ही हैं, हे बहुधन इन्द्र ! आप हमारी सहस्रों गौओंमें घोड़ोंमें और शुभ्रियोंमें अनाशस्त्वको कहिये ॥ १ ॥

शिप्रिन् वाजानां पते शचीवस्तव दंसना । आ तू ० २

शिप्रिन् । वाजानाम् । पते । शचीवः । तव । दंसना । ० २

हे सुन्दर ठोड़ी वाले धनोंके स्वामी शक्तिपति इन्द्र ! शत्रुओं को डँसनेकी शक्ति आपकी है, हे बहुधन इन्द्र उसको आप हमारे सहस्रों गौ घोड़ोंमें और शुभ्रियोंमें कहिये ॥ २ ॥

निष्वापया मिथुष्टशां सस्तामबुध्यमाने । आ तू० ।

नि । स्वापय । मिथुष्टशा । सस्ताम् । अबुध्यमाने । इति । ० ३

दोनों नेत्रोंसे आप सुलाइये, अबुध्यमान होकर दोनों नेत्र सोवें, हे बहुधन इन्द्र ! हमारी गौओंमें घोड़ोंमें और पवित्र सहस्रों प्राणियोंमें निद्राको प्रदान करिये ॥ ३ ॥

ससन्तु त्या अरातयो बोधन्तु शूर रातयः । आ तू० ४

ससन्तु । त्या । अरातयः । बोधन्तु । शूर । रातयः । ॥ ४ ॥

वे शत्रु निद्राके आधीन होजावें, हे शूर ! धन जागृत होजावें, हे बहुधन इन्द्र ! आप हमारे सहस्रों घोड़े गौ और पवित्र प्राणियोंमें धनको कहिये ॥ ४ ॥

समिन्द्र गर्दभं मृण नुवन्तं पापयांमुया । आ तू० ५

सम् । इन्द्र । गर्दभम् । मृण । नुवन्तम् । पापयां । अमुया । ० ५

हे इन्द्र ! इस पापवृत्तिसे खदेड़ते हुए गधेका आप संहार करिये और हे बहुधन इन्द्र ! आप हमारे घोड़े आदिमें संहारक शक्ति दीजिये ॥ ५ ॥

पताति कुण्डृणाव्या दूरं वातो वनादधि आ तू० ६

पताति । कुण्डृणाव्या । दूरम् । वातः । वनात् । अधि । ० । ६ ।

कुण्डृणाचीके द्वारा वायु वनसे दूर जाता है हे बहुधन इन्द्र ! आप हमारी गौ घोड़े और सहस्रों पवित्र प्राणियोंमें कुण्डृणाची कहिये ॥ ६ ॥

सर्वं परिक्रोशं जहि जम्भया कृकदाश्वम् ।



आ तू न इन्द्र शंसय गोष्वश्वेषु शुभिषु सहस्रेषु  
तुवीमघ ॥ ७ ॥

सर्वम् । परिऽक्रोशम् । जहि । जम्भय । कृकदाश्वम् ।

आ । तू । नः । इन्द्र । शंसय । गोषु । अश्वेषु । शुभिषु ।  
सहस्रेषु । तुविऽमघ ॥ ७ ॥

इति सप्तमेनुवाके तृतीयं सूक्तम् ॥

हे इन्द्र ! आप सब परिक्रोशको दूर करिये, और कृकदाश्व  
का नाश करिये, और हे बहुधन इन्द्र ! हमारी गौ घोड़े और  
पवित्र प्राणियोंमेंसे परिक्रोशको हटाइये ॥ ७ ॥

असम अनुवाकमें तृतीय सूक्त समाप्त ( ६९० )

पृष्ठ्यस्य षष्ठेहनि पुरस्तात् संपातात् “वि त्वा ततस्ते मिथुना  
अवस्यवः” इति तिस्रः सप्तपदा आवपते सूत्रोक्तप्रकारेण प्रणवे-  
नोपसंतनोति च । तद् उक्तं वैताने । “षष्ठे वि त्वा ततस्ते मिथुना  
अवस्यव इति । सप्तपदानामेकैकपवसाय द्वयं संतनोति । द्वयम-  
वसाय द्वयम्” इति [ वै० ६. २ ] ॥ अस्य अर्थः । सप्तपदानां  
तिसृणामृचाम् एकैकस्यामृचि एकैकं पदम् अवसाय पदत्रयं प्रण-  
वेनोपसंतनोति । ततः परं पादद्वयमवसाय अपरं पादद्वयं प्रणवे-  
नोपसंतनोति ॥

पृष्ठ्यके छठे दिन सम्पातसे पहिले “वि त्वा ततस्ते मिथुना  
अवस्यवः” इन तीन सप्तपदोंका आवपन करे और सूत्रोक्तरीति  
से प्रणवसे उपसन्तान भी करे । इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा  
है । “षष्ठे वि त्वा ततस्ते मिथुना अवस्यव इति । सप्तपदानामेकै-  
कमवसाय द्वयं संतनोति । द्वयमवसाय द्वयम् ।” ( वैतानसूत्र ६ । २ )

इसका अर्थ यह है, कि-सप्तपदोंकी तीन ऋचाओंमेंसे एक एक ऋचामें एक २ पदका अवसान करके तीन पादोंका प्रणवसे उपसंतान करे ।

वि त्वा ततस्ते मिथुना अवस्यवो व्रजस्य साता

गव्यस्य निःसृजः सक्षन्त इन्द्र निःसृज ।

यद् गव्यन्तां द्वा जना स्वर्ग्यन्तां समूहसि ।

आविष्करिक्त् वृषणं सचाभुवं वज्रमिन्द्र सचाभुवम्

वि । त्वा । ततस्ते । मिथुनाः । अवस्यवः । व्रजस्य । साता ।

गव्यस्य । निःसृजः । सक्षन्तः । इन्द्र । निःसृजः ।

यत् । गव्यन्ता । द्वा । जना । स्वर्ग्यः । यन्ता । समूहसि ।

आविः । करिक्त् । वृषणम् । सचाभुवम् । वज्रम् । इन्द्र ।

सचाभुवम् ॥ १ ॥

अन्व चाहने वाले मिथुन, गव्य व्रजके दानके अवसर पर आपमें ध्यान लगाते हुए आपको फलप्रदानके लिये प्रेरित करते हैं आप स्वर्गको जाने वाले गव्यन्त दो जनोंको भली प्रकार पहिचानते हैं, हे इन्द्र ! उस समय आप अपने वर्षक सहायकरूप वज्रको प्रकाशित करते हैं ॥ १ ॥

विदुष्टे अस्य वीर्यस्य पूरवः पुरो यदिन्द्र शारदीर-

वातिरः सासहानो अवातिरः ।

शासस्तमिन्द्र मर्त्यमयज्युं शवसस्पते ।

महीममुष्णाः पृथिवीमिमा अपो मन्दसान इमा अपः

विदुः । ते । अस्य । वीर्यस्य । पूरवः । पुरः । यत् । इन्द्र ।

शारदीः । अवऽअतिरः । ससहानः । अवऽअतिरः ।

शासः । तम् । इन्द्र । मर्त्यम् । अयज्युम् । शवसः । पते ।

महीम् । अमुष्णाः । पृथिवीम् । इमाः । अपः । मन्दसानः ।

इमाः । अपः ॥ २ ॥

मनुष्य इन इन्द्रके वीर्योंको जानते हैं, कि-जो यह शरद्व ऋतु का वस्तुओंमें अवतीर्ण होते हैं यह शत्रुओंको बारम्बार दबाते हुए अवतीर्ण होते हैं, हे बलके अधिष्ठात्री देवता इन्द्र ! जो मरण-धर्मी पुरुष 'आपका यजन नहीं करता है, उसका आप शासन करिये, और इस विशालपृथिवीको और अमुष्ण जलोंको हर्षित करिये ॥ २ ॥

आदित् ते अस्य वीर्यस्य चर्किरमन्देषु वृषन्नुशिजो

यदाविथ सखीयतो यदाविथ ।

चकथे कारमेभ्यः पृतनासु प्रवन्तवे ।

ते अन्यामन्या नद्यं सनिष्णत श्रवस्यन्तः सनिष्णत

आत् । इत् । ते । अस्य । वीर्यस्य । चर्किरन् । मन्देषु । वृषन् ।

उशिजः । यत् । आविथ । सखिऽयतः । यत् । आविथ ।

चकथे । कारम् । एभ्यः । पृतनासु । प्रऽवन्तवे ।



ते । अन्याम्ऽअन्याम् । नद्यम् । सनिष्णत । अवस्यन्तः ।

सनिष्णत ॥ ३ ॥

इति सप्तमेनुवाके चतुर्थं सूक्तम् ॥

हे वृषन् ! अब हम आपके वीर्यको ( कहते हैं, कि-) हे कांति-  
मय जलों ! तुम इन्द्रदेवको मद होने पर रक्षा करते हो, सखि-  
भाव रखने वालोंकी रक्षा करते हो, और पृतनाओंमें सेवन करने  
के लिये कृत्योंको करते हो, तुम दूसरी २ नदियोंका आश्रय  
लो, अन्न देते हुए स्नान कराओ ॥ ३ ॥

सप्तम अनुवाकमें चतुर्थं सूक्त समाप्त ( ६९१ )

पृष्ठ्यस्य षष्ठेहन्येव पूर्वोक्तसप्तपदाभ्योनन्तरं पुरस्तात् संपातात्  
“वने न वा यो न्यधायि चाकन्” इत्यष्टर्चम् आवपते । तद् उक्तं  
वैताने । “वने न वा यो न्यधायि चाकन्नित्यष्टर्चं च” इति  
[ वै० ६. २ ] ॥

तथा छन्दोमानां द्वितीयतृतीययोरक्षोः माध्यंदिने सवने उप-  
रिष्ठात् संपाताद् अष्टर्चम् [ २०. ७६ ] “आ सत्यो यातु मघवाँ  
ऋजीषी” [ २०. ७७ ] इति सूक्तं चावपते । तद् उक्तं वैताने ।  
“उत्तरयोरष्टर्चम् आ सत्यो यातु मघवाँ ऋजीषीति चावपते”  
इति [ वै० ६. ३ ] ॥ “वने न वा यो न्यधायि चाकन्” इत्यस्य  
अष्टर्चम् इति संज्ञा ॥

पृष्ठ्यके छठे दिन ही पूर्वोक्त सप्तपदाओंके अनन्तर  
सम्पातसे पहिले “वने न वा यो न्यधायि चाकन्” इस आठ  
ऋचा वाले सूक्तको पढ़े । इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि-  
“वने न वा यो न्यधायि चाकन्नित्यष्टर्चं च” ( वैतानसूत्र ६।२ )

तथा छन्दोमोंके द्वितीय तृतीय दिनोंमें माध्यंदिन सवनमें  
संपातसे पहिले आठ ऋचा वाले ( २० । ७६ ) को और “आ

सत्यो यातु मधवाँ अजीषी” इस ! ( २० । ७७ ) सूक्तको भी पढ़े । इसी बातको वैतानसूक्तमें कहा है, कि—“उत्तरयोरष्टार्धम् आ सत्यो यातु मधवाँ अजीषीति चावपते” ( वैतानसूत्र ६।३ ) “वने न वा यो न्यधायि चाकन्” इसकी अष्टर्च संह्रा है ।

वने न वा यो न्यधायि चाकं छुचिर्वा स्तोमो भुर-

णावजीगः ।

यस्येदिन्द्रः पुरुदिनेषु होता नृणां नर्यो नृतमः क्षपा-  
वान् ॥ १ ॥

वने । न । वा । यः । नि । अधायि । चाकन् । शुचिः । वाम् ।

स्तोमः । भुरणौ । अजीगरिति ।

यस्य । इत् । इन्द्रः । पुरुदिनेषु । होता । नृणाम् । नर्यः ।

नृतमः । क्षपावान् ॥ १ ॥

हे देवताओंका भरण करने वाले भूरण्य अश्विनीकुमारों ! जो यह स्तोम हममें निहित है, यह दोषरहित है और पक्षिपुत्रके वृक्ष मेंसे देखनेकी समान इन्द्रकी कामना करता है ( यह वह स्तोम है, कि—) जिसके इन्द्र बहुत दिनोंसे आहाता थे, कि—इससे कोई मेरी स्तुति करे । वह इन्द्रदेव मनुष्योंमें भी मनुष्यतम हैं अर्थात् शूरोंमें भी शूर हैं, और सोमका भाग पाने वाले हैं, यह स्तोम उन ही की ओर जाता है ॥ १ ॥

प्र ते अस्या उषसः प्रापरस्या नृतौ स्याम नृतमस्य  
नृणाम् ।

अनु त्रिशोकः शतमावहन्नन् कुत्सेन रथो यो असत्  
ससवान् ॥ २ ॥

प्र । ते । अस्याः । उषसः । प्र । अपरस्याः । नृतौ । स्याम् ।  
नृत्तमस्य । नृणाम् ।

अनु । त्रिऽशोकः । शतम् । आ । अवहत् । नृन् । कुत्सेन ।  
रथः । यः । असत् । ससऽवान् ॥ २ ॥

हम इस दूसरी उषाके पारको प्राप्त होवें, और शूरोंमें शूर  
इन्द्रकी नृतिमें रहें, त्रिशोक नामक ऋषि मनुष्योंको सैकड़ों उषाओं  
को प्राप्त करा चुके हैं, जो संसाररूपी रथ है वह कुत्स ऋषि  
के द्वारा अन्न वाला हुआ है ॥ २ ॥

कस्ते मद इन्द्र रन्त्यो भूद् दुरो गिरो अभ्युऽग्रो वि  
धाव ।

कद् वाहो अर्वागुप मा मनीषा आ त्वा शक्या-  
मुपम राधो अन्नैः ॥ ३ ॥

कः । ते । मदः । इन्द्र । रन्त्यः । भूत् । दुरः । गिरः । अभि ।  
उग्रः । वि । धाव ।

कत् । वाहः । अर्वाक् । उप । मा । मनीषा । आ । त्वा ।  
शक्याम् । उपऽमम् । राधः । अन्नैः ॥ ३ ॥



हे इन्द्र ! कौनसा हर्षप्रद स्तोम आपको प्रसन्न करता हुआ  
हमारे लिये दाता होसकता है, हे उग्र ! आप स्तोत्ररूप वाणियों  
की ओर दौड़िये, कौनसा अश्व बुद्धिसे आपको मेरे पास लावेगा  
आप उपमाके योग्यको मैं अन्नोसे ( हवियोंसे ) साध सकूँगा  
कद्दु दुष्मनिन्द्रत्वावतो नृन् कया धिया करसे कन्न  
आगन् ।

मित्रो न सत्य उरुगाय भृत्या अन्ने समस्य यद-  
सन्मनीषाः ॥ ४ ॥

कत् । ऊं इति । युष्मत् । इन्द्र । त्वाऽवतः । नृन् । कया । धिया ।  
करसे । कत् । नः । आ । अगन् ।

मित्रः । न । सत्यः । उरुगाय । भृत्यै । अन्ने । समस्य । यत् ।  
असन् । मनीषाः ॥ ४ ॥

हे इन्द्र ! आप अपनी शरणमें रहने वाले मनुष्योंको किस  
बुद्धिसे दमकते हुए करते हैं, हे विशालकीर्ति ! आप सच्चे मित्रकी  
समान भृतिके लिये अन्नमें जो इसकी बुद्धिमें हों ( उनको करिये )  
प्रेरय सूर्यो अर्थं न पारं ये अस्य कामं जनिधा इव  
गमन् ।

गिरश्च ये ते तुविजात पूर्वीर्नर इन्द्र प्रतिशिस्त्यन्नैः ५  
प्र । ईरय । सूर्यः । अर्थम् । न । पारम् । ये । अस्य । कामम् ।

जनिधाःऽइव । गमन् ।

गिरः । च । ये । ते । तुविऽजात । पूर्वीः । नरः । इन्द्र । मतिऽ-

शिक्षन्ति । अन्नैः ॥ ५ ॥

हे सूर्यात्मक इन्द्रदेव ! आप हमको अर्थकी समान पार पहुँचाइये, जो इसकी अभिलाषाको पूर्ण करनेके लिये माताकी समान प्राप्त होती है, और हे तुविजात ! जो आपकी प्राचीन स्तुतियों हैं ( उनको आप इस यजमानके हितके लिये प्रेरित करिये ) हे इन्द्र ! नेता पवन इसको अन्न प्रदान करें ॥ ५ ॥

मात्रे नु ते सुमिते इन्द्र पूर्वी द्यौर्मज्मना पृथिवी  
काव्येन ।

वराय ते घृतवन्तः सुतासः स्वाध्नं भवन्तु पीतये  
मधूनि ॥ ६ ॥

मात्रे इति । नु । ते । सुमिते इति सुऽमिते । इन्द्र । पूर्वी इति ।

द्यौः । मज्मना । पृथिवी । काव्येन ।

वराय । ते । घृतऽवन्तः । सुतासः । स्वाध्नं । भवन्तु । पीतये ।

मधूनि ॥ ६ ॥

हे इन्द्र ! निर्माता सुमित् आपके लिये पूर्वी पृथिवी और द्यौ अपने बंधक काव्यके साथ ( हितकारी हों ) ये घृत वाले निचोड़े हुए सोम आपके पीनेके लिये स्वाद वाले हों ॥ ६ ॥

आ सध्वो अस्मा असिचन्द्रमत्रमिन्द्राय पूर्णं स हि

सुहवराधाः ।

स वा॒वृ॒धे॒ वरि॑मन्ना पृथि॒व्या अ॒भि कृ॒त्वा न॒र्यः  
पौ॒स्यैश्च ॥ ७ ॥

आ । म॒ध्वः । अ॒स्मै । अ॒सि॒चन् । अ॒म॒त्रम् । इन्द्रा॑य । पू॒र्णम् ।  
सः । हि । स॒त्यऽरा॒धाः ।

सः । व॒वृ॒धे । वरि॑मन् । आ । पृथि॒व्याः । अ॒भि । कृ॒त्वा । न॒र्यः ।  
पौ॒स्यैः । च ॥ ७ ॥

इस पात्रको इन्द्रदेवके लिये पूर्णरूपसे मधुसे भर दिया गया है, वह इन्द्रदेव ही सत्यसे साधे जाते हैं, वह मनुष्योंके हितकारी अपने पुरुषार्थों करके पृथ्वीसे बढ़ते हैं ॥ ७ ॥

व्या॒न॒लिन्द्रः॑ पृ॒त॒ना॒ स्वो॒जा आ॒स्मै यत॑न्ते स॒ख्याय॑  
पू॒र्वीः ।

आ॒स्मा रथं॑ न पृ॒त॒ना॒सु तिष्ठ॑ यं भ॒द्रया॑ सु॒म॒त्या चोद॑यासे

वि । आ॒न॒त् । इन्द्रः॑ । पृ॒त॒नाः । सु॒ओ॒जाः । आ । अ॒स्मै । यत॑न्ते ।

स॒ख्याय॑ । पू॒र्वीः ।

आ । स्म । रथम् । न । पृ॒त॒ना॒सु । तिष्ठ॑ । यम् । भ॒द्रया॑ । सु॒ऽ-

म॒त्या । चोद॑यासे ॥ ८ ॥

॥ इति सप्तमेनुवाके पञ्चमं सूक्तम् ॥

सुन्दर बल वाले इन्द्र इन सेनाओंमें व्याप्त होगए हैं, इनकी मित्रता करनेके लिये बहुतसी सेनाएँ चेष्टाएँ करती हैं, आप



जिसे अपनी सुमतिसे प्रेरणा करते हैं, उस सुमतिसे आप रथ की समान हमारी सेनामें स्थित हूजिये ॥ ८ ॥

सप्तम अनुवाकमें पञ्चम सूक्त समाप्त ( ६९२ )

छन्दोमानां द्वितीयतृतीययोरहोः “आ सत्यो यातु मघवाँ ऋजीषी” इत्यस्य विनियोगः पूर्वसूक्ते उक्तः ॥

छन्दोमके द्वितीय तृतीय दिनोंमें “आसत्यो यातु मघवाँ ऋजीषी” इसका विनियोग पूर्वसूक्तमें कहा है ।

आ सत्यो यातु मघवाँ ऋजीषी द्रवन्त्वस्य हरय उप नः  
तस्मा इदन्धः सुषुमा सुदक्षमिहाभिपित्वं करते गृणानः

आ । सत्यः । यातु । मघवान् । ऋजीषी । द्रवन्तु । अस्य ।  
हरयः । उप । नः ।

तस्मै । इत् । अन्धः । सुषुम् । सुदक्षम् । इह । अभिपित्वम् ।  
करते । गृणानः ॥ १ ॥

सत्य, धनवान्, सोमका पान करने वाले इन्द्रदेव आवें, इनके घोड़े हमारे पासको दौड़ें, हम उनके लिये ही सोमरूपी अन्नका अभिषव कर रहे हैं, इसी कारण जो स्तुति करने वाला है, वह यहाँ ही स्नान आदि कर रहा है ॥ १ ॥

अवस्य शूराध्वनो नान्तेस्मिन् नो अद्य सवने मन्दधै  
शंसात्युक्थमुशनेव वेधाश्चिकितुषे असुर्याय मन्म

अव । स्य । शूर । अध्वनः । न । अन्ते । अस्मिन् । नः । अद्य ।  
सवने । मन्दधै ।

शंसाति । उक्थम् । उशनाऽव । वेधाः । चिकितुषे । असुर्याय । मन्म

हे शूर ! हमारे पासमें आप मार्गको बाँधसा दीजिये और आज इस हमारे यज्ञमें मदमें भरिये, यह वेधा ज्ञानवान् इन्द्रके लिये शुक्राचार्यकी समान मननीय उक्थका उच्चारण कर रहे हैं २ कविर्न निण्यं विदथानि साधन् वृषा यत्सेकं विपि-

पानो अर्चात् ।

दिव इत्था जीजनत् सप्त कारूनह्ना चिचक्रुर्वयुना

गृणन्तः ॥ ३ ॥

कविः । न । निण्यम् । विदथानि । साधन् । वृषा । यत् । सेकम् ।

विऽपिपानः । अर्चात् ।

दिवः । इत्था । जीजनत् । सप्त । कारून । अह्ना । चित् । चक्रुः ।

वयुना । गृणन्तः ॥ ३ ॥

फलोंकी वर्षा करने वाले इन्द्र वर्षा करके पृथ्वीको पूर्ण करते हुए आवें इस लिये चतुर ऋत्विज निश्चितसा यज्ञोंको साध रहा है, विजिगीषामे इस प्रकार सात स्तोताओंको प्रकट किया है और वह सुन्दर स्तोत्रोंका उच्चारण कर रहे हैं ॥३॥

स्वर्ग्यद् वेदि सुहृशीकर्मकर्महि ज्योती रुचुर्यद्

वस्त्राः ।

अन्धा तमांसि दुधिता विनक्षे नृभ्यश्चकार नृतपो

अभिष्टौ ॥ ४ ॥

स्वः । यत् । वेदि । सुऽदृशीकम् । अकैः । महि । ज्योतिः । रुचुः ।

यत् । इ । वस्तोः ।

अन्धा । तमांसि । दुधिता । विऽचक्षे । नृऽभ्यः । चकार । नृनमः ।

अभिष्टौ ॥ ४ ॥

जिन मन्त्रोंके द्वारा भली प्रकार देखने योग्य स्वर्ग जाना जाता है और जो मन्त्र दिनकी परम ज्योति-सूर्य-को दमकाते हैं और जो सूर्यात्मक इन्द्र दूर होने पर भी घोर अन्धकारको दूर करके प्रकाश करते हैं और जो परम शूर अभिष्टि स्थापित कर देते हैं, ( उनके लिये प्रणाम है ) ॥ ४ ॥

ववक्ष इन्द्रो अमितमृजीष्युः१ भे आपप्रौ रोदसी महित्वा  
अतश्चिदस्य महिमा वि रेच्यभि यो विश्वा भुवना

बभूव ॥ ५ ॥

ववक्षे । इन्द्रः । अमितम् । मृजीषी । उभे इति । आ । प्रौ ।

रोदसी इति । महिऽत्वा ।

अतः । चित् । अस्य । महिमा । वि । रेचि । अभि । यः । विश्वा ।

भुवना । बभूव ॥ ५ ॥

यह सोमका पान करने वाले इन्द्रदेव अमित धनको ( यजमानोंके पास ) पहुँचाते हैं और अपनी महिमा अलोक और भूलोक दोनोंको भर देते हैं, जो यह सब भुवनोंमें व्याप्त होगए हैं, इस लिये इनकी महिमा अधिक है ॥ ५ ॥



विश्वानि शक्रो नर्याणि विद्वानपो रिरेच सखिभि-  
निकामैः ।

अश्मानं चिद् ये बिभिदुर्वचोभिर्ब्रजं गोमन्तमुशिजो  
वि वव्रुः ॥ ६ ॥

विश्वानि । शक्रः । नर्याणि । विद्वान् । अपः । रिरेच । सखिः-  
भिः । निऽकामैः ।

अश्मानम् । चिद् । ये । बिभिदुः । वचःऽभिः । ब्रजम् । गोऽ-  
मन्तम् । उशिजः । वि । वव्रुरिति वव्रुः ॥ ६ ॥

विद्वान् इन्द्रदेवने मनुष्योंका हित करने वाले जलोंको, इच्छा-  
नुसार चलने वाले मित्र (—रूप मेघों ) से बढ़ाया है, वे जल  
अपनी वाणीसे ( गड़गड़ाहटसे ) पत्थरोंको भी विदीर्ण कर  
हालते हैं—अलग अलग कर देते हैं और कामना करते हैं तो  
गौओं वाले ब्रजको घेर लेते हैं ॥ ६ ॥

अपो वृत्रं वव्रिवांसं पराहन् प्रावत् ते वज्रं पृथिवी  
सचेताः ।

प्राणीसि समुद्रियाण्यैनोः पतिर्भवं छवसा शूरघृष्णो  
अपः । वृत्रम् । वव्रिऽवांसम् । परा । अहन् । म । आवत् । ते ।

वज्रम् । पृथिवी । सऽचेताः ।

प्र । अर्णो॑सि । समु॒द्रिया॑णि । ऐ॒नोः । पतिः । भवन् । शव॑सा ।

शूर । धृ॒ष्णो इति ॥ ७ ॥

जलोंने आवरण करते हुए मेघको विदीर्ण कर डाला है और पृथिवी सावधान होकर ( हे इन्द्र ) आपके वज्रकी रक्षा करती है और समुद्रके जलोंकी रक्षा करती है, हे धर्षक शूर इन्द्र ! आप बलपूर्वक इसके स्वामी बनते हैं ॥ ७ ॥

अ॒गो यद॑द्रि॒ पुरु॑हू॒त द॑र्दरा॒विर्भु॑वत् सर॒मा पू॒र्व्यं ते ।  
स नो॑ ने॒ता वाज॑मा द॒र्षि भूरि॑ गो॒त्रा रु॒जन्न॑ङ्गिरो-  
भिर्गृ॑णानः ॥ ८ ॥

अ॒पः । यत् । अ॒द्रिम् । पु॒रु॒हू॒त । द॑र्दः । अ॒विः । भु॒वत् । स॒र॒मा ।  
पू॒र्व्यम् । ते ।

सः । नः । ने॒ता । वाज॑म् । आ । द॒र्षि । भूरि॑म् गो॒त्रा । रु॒जन् ।

अ॒ङ्गिरः॑भिः । गृ॒णानः ॥ ८ ॥

इति सप्तमेऽनुवाके षष्ठं सूक्तम् ॥

हे बहुतसे यजमानोंसे आहूत इन्द्र ! आप जो पर्वतको वा मेघ को जल प्रदान करते हैं, वह आपसे पहिले ही प्रकट होकर चलते हैं, ऐसे नेता आम् अंगिरागोत्री ऋत्विजोंसे स्तुति पाते हुए मेघोंको विदीर्ण करते हुए हमें बहुतसा अन्न प्रदान करते हैं ८

सप्तमः अनुवाकमै छठा सूक्त समाप्त ( ६६३ )

वाजपेये “तद् वो गाय” इति स्तोत्रियो भवति । तद् उक्तं तैताने । “तद् वो गायेति स्तोत्रियः” इति [ वै० ४, ३ ] ॥

तथा बृहस्पतिसवे “तद् वो गाय सुते सचा” [ २०. ७८ ]  
 “वयमेनमिदाह्यः” [ २०. ६७ ] एतौ आज्यपृष्ठस्तोत्रियौ यथा-  
 क्रमं भवतः । तद् उक्तं वैताने । “बृहस्पतिसवे तद् वो गाय सुते  
 सचा वयमेनमिदाह्य इति” इति [ वै० ८. १ ] ॥

तथा तत्रैव प्रातःसवनमाध्यन्दिनसवनयोः एतावेव उक्थमुखीयं  
 तृचपर्यासश्च भवतः माध्यन्दिने पर्यासाद्यतृचवर्जम् । तद् उक्तं  
 वैताने । “सवनयोरुक्थमुखीयतृचपर्यासौ । माध्यन्दिने पर्यासाद्य-  
 तृचवर्जम्” इति [ वै० ८. १ ] ॥

तथा सर्वजित्यषभे मरुत्स्तोमे सहस्रान्त्ये च चतुर्ष्वेकाहेषु “तद्  
 वो गाय सुते सचा” “वयमेनमिदाह्यः” एतौ आज्यपृष्ठस्तोत्रियौ  
 भवतः । तद् उक्तं वैताने । “सर्वजित्यषभे मरुत्स्तोमे सहस्रान्त्ये  
 तद् वो गाय सुते सचा वयमेनमिदाह्य इति” इति [ वै० ८. १ ] ॥

वाजपेयमें “तद् वो गाय” यह स्तोत्रिय होता है । इसी बात  
 को वैतानसूत्रमें कहा है, कि—“तद् वो गायेति स्तोत्रियः”  
 ( वैतानसूत्र ४ । ३ ) ॥

तथा बृहस्पतिसवमें “तद् वो गाय सुते सचा” ( २०।७८ )  
 “वयमेनमिदाह्यः” ( २०।६७ ) ये यथाक्रम आज्यपृष्ठस्तोत्रिय  
 होते हैं । इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि—“बृहस्पतिसवे  
 तद् वो गाय सुते सचा वयमेनमिदाह्यः” ( वैतानसूत्र ८ । १ ) ॥

तथा तहाँ ही प्रातःसवन और माध्यन्दिन सवनमें ये ही उक्थ-  
 मुखीय और तृचपर्यास होते हैं और माध्यन्दिनमें पर्यासाद्यतृच  
 नहीं होता है । इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि—“सवन-  
 मोरुक्थमुखीयतृचपर्यासौ । माध्यन्दिने पर्यासाद्यतृचवर्जम्”  
 ( वैतानसूत्र ८ । १ ) ॥

तथा सर्वजित् ऋषभ मरुत्स्तोम और सहस्रान्त्य इन चारोंके  
 एकाहोंमें “तद् वो गाय सुते सचा वयमेनमिदाह्य इति” (वैतान-  
 सूत्र ८ । १ ) ॥



तद् वो॑ गाय॒ सुते॑ सचा॑ पुरु॒हूताय॑ सत्त्वे॑ने । शं॒ यद्  
गवे॑ न शाकि॒ने ॥ १ ॥

तत् । वः । गाय॒ । सुते॑ । सचा॑ । पुरु॒हूताय॑ । सत्त्वे॑ने ॥ शम् ।  
यत् । गवे॑ । न । शाकि॒ने ॥ १ ॥

अपने सोमका अभिषव होने पर जल वाले पुरुहूत इन्द्रके लिये  
स्तोत्रका गान करो, जिससे, कि-वह गौकी समान हम शाक  
( सोम ) वालोंके लिये कन्याणकारी होवें ॥ १ ॥

न घा॑ वसु॒र्नि य॑मते॒ दानं॑ वाज॒स्य गो॑म॒न्तः । यत्  
सी॒मुप॑ श्रव॒द् गिरः॑ ॥ २ ॥

न । घा॑ । वसुः॑ । नि । य॑मते॒ । दानम् । वाज॒स्य । गो॑म॒न्तः ॥  
यत् । सीम् । उप॑ । श्रवत् । गिरः॑ ॥ २ ॥

यह इन्द्रदेव यदि स्तुतिरूपा वाणीको सुन लेते हैं, तो वह उस  
यंजमानके लिये वसुके और गोसम्पन्न अन्नके दानको नहीं  
रोकते हैं ॥ २ ॥

कु॒वित्सं॑स्य॒ प्र हि॑ ब्र॒जं गो॑म॒न्तं द॑स्यु॒हा ग॑म॒त् । शची॑-  
भि॒रप॑ नो वर॒त् ॥ ३ ॥

कु॒वित्सं॑स्य । प्र । हि॑ । ब्र॒जम् । गो॑म॒न्तम् । द॑स्यु॒हा ॥ ग॑म॒त् ।  
शची॑भिः । अप॑ । नः । वर॒त् ॥ ३ ॥

इति सप्तमेऽनुवाके सप्तमं सूक्तम् ॥

हे बहुतसे धान्यसे सम्पन्न ! वृत्ररूपी दस्युका संहार करने वाले इन्द्र ! आप गौ ( बाणी ) वाले व्रज ( यज्ञ ) की ओर आवें और शक्तियोंसे हमको भरें ॥ ३ ॥

सप्तम अनुवाकमें सप्तम सूक्त समाप्त ( ६९३ )

वाजपेये माध्यन्दिने सवने “इन्द्र क्रतुं न आ भर” [ २०. ७६ ] “इन्द्र ज्येष्ठम्” [ २०. ८० ] “उदु त्ये मधुमत्तमाः” [ २०. ५६ ] इत्येतेषामन्यतमो विकल्पेन स्तोत्रियो भवति । तद् उक्तं वैताने । “माध्यन्दिन इन्द्र क्रतुं न आ भरेति स्तोत्रियः । इन्द्र ज्येष्ठम् उदुत्ये मधुमत्तमा इति वा” इति [ वै० ४. ३ ] ॥

तथा विषुवति सौर्यपृष्ठे “इन्द्र क्रतुं न आ भर” “इन्द्र ज्येष्ठं न आ भर” इति विकल्पेन स्तोत्रियानुरूपौ भवतः । तद् उक्तं वैताने । “इन्द्र क्रतुं न आ भर इन्द्र ज्येष्ठं न आ भरेति वा” इति [ वै० ६. ३ ] ॥

तथा विश्वजिति वैराजपृष्ठे “इन्द्र क्रतुं न आ भर” इति इमां पूर्वाभ्यां तृतीयाम् अर्धर्चशः प्रग्रथनां शंसति । तद् उक्तं वैताने । “इन्द्र क्रतुं न आ भरेति तृतीयाम्” इति [ वै० ६. ३ ] ॥

तथा इन्द्रस्तोमाख्ये एकाहे “इन्द्र क्रतुं न आ भर” [ २०. ७६ ] “तव त्यदिन्द्रियं बृहत्” [ २०. १०६ ] इत्येतौ पृष्ठोक्त-स्तोत्रियौ भवतः । तद् उक्तं वैताने । “इन्द्रस्तोम इन्द्रं क्रतुं न आ भर तव त्यदिन्द्रियम् बृहदिति” इति [ वै० ८. १ ] ॥

तथा विषुवति एकाहीभूते “इन्द्र क्रतुं न आ भर” इति पृष्ठ-स्तोत्रियो भवति । तद् उक्तं वैताने । “विषुवतीन्द्र क्रतुं न आ भरेति” इति [ वै० ८. २ ] ॥

वाजपेयके माध्यन्दिन सवनमें “इन्द्र क्रतुं न आ भर” ( २०। ७६ ) “इन्द्र ज्येष्ठम्” ( २०। ८० ) “उदु त्ये मधुमत्तमाः” ( २०। ५६ ) इनमेंसे कोई एक विकल्पसे स्तोत्रिय होता है ।

इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि—“माध्यन्दिन इन्द्र क्रतुं न आ भरेति स्तोत्रियः । इन्द्र ज्येष्ठम् उदु त्ये मधुमत्तमा इति वा” ( वैतानसूत्र ४ । ३ ) ॥

तथा विषुवत् सौर्यपृष्ठमें “इन्द्र क्रतुं न आ भर” “इन्द्र ज्येष्ठं न आ भर” ये विकल्पसे स्तोत्रिय अनुरूप होते हैं । इसी बात को वैतानसूत्रमें कहा है, कि—“इन्द्र क्रतुं न आ भर इन्द्र ज्येष्ठं न आभरेति वा” ( वैतानसूत्र ६ । ३ ) ॥

तथा विश्वजित् वैराजपृष्ठमें “इन्द्र क्रतुं न आ भर” इसको दो पूर्वाओंसे, तृतीयाको अर्धर्चशः प्रग्रथनारूप कहे । इसी बात को वैतानसूत्रमें कहा है, कि—“इन्द्र क्रतुं न आ भरेति तृतीयाम्” ( वैतानसूत्र ६ । ३ ) ॥

तथा इन्द्रस्तोम नामक एकाहमें “इन्द्र क्रतुं न आ भर” ( २० । ७६ ) “तव तदिन्द्रियं बृहत्” ( २० । १०६ ) ये पृष्ठोक्त स्तोत्रिय होते हैं । इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि—“इन्द्रस्तोम इन्द्र क्रतुं न आ भर तत्र तदिन्द्रियं बृहदिति” ( वैतानसूत्र ८ । १ ) ॥

तथा एकाहीभूत विषुवत्में “इन्द्र क्रतुं न आ भर” यह पृष्ठ-स्तोत्रिय होता है । इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि—“विषु-वतीन्द्र क्रतुं न आभरेति” ( वैतानसूत्र ८ । २ ) ॥

इन्द्र क्रतुं न आ भर पिता पुत्रेभ्यो यथा ।

शिक्षा णो अस्मिन् पुरुहून् यामनि जीवा ज्योति-  
रशीमहि ॥ १ ॥

इन्द्र । क्रतुम् । नः । आ । भर । पिता । पुत्रेभ्यः । यथा ।



शि॒क्ष । नः । अ॒स्मिन् । पु॒रु॒ऽहू॒त । या॒मनि । जी॒वाः । ज्यो॒तिः ।

अ॒शी॒महि ॥ १ ॥

हे इन्द्रदेव ! जैसे पिता पुत्रोंको अभिमत वस्तु देता है, इसी प्रकार आप हमको सोमयाग आदिरूप अभिमत वस्तु दीजिये, हे बहुतसे यजमानोंसे बुलाये जाने वाले पुरुहूत इन्द्रदेव ! आप हमको संसारयात्रामें अभिमत वस्तुएँ दीजिये और हम भी आपके प्रसादसे चिरकालका जीवन पाकर इस लोकके सुखका अनुभव करना रूप ज्योतिको पावें ॥ १ ॥

मा नो अ॒ज्ञा॒ता वृ॒जना॑ दु॒रा॒ध्यो ३ माशि॑वा॒सो अव

क्र॒मुः ।

त्वया॑ व॒यं प्र॒वतः॑ श॒श्व॑ती॒रपो॑तिं शूर॒ तरा॑मसि । २ ।

मा । नः । अ॒ज्ञा॒ताः । वृ॒जनाः॑ । दुः॒ऽआ॒ध्यः । मा । अशि॑वा॒सः ।

अव । क्र॒मुः ।

त्वया॑ । व॒यम् । प्र॒वतः॑ । श॒श्व॑तीः । अ॒पः । अ॒ति । शूर॑ । तरा॒मसि॑

इति सप्तमेनुवाके अष्टमं सूक्तम् ॥

हे शूर ! अज्ञात पाप हम पर आक्रमण न करें, दुष्ट आधियें हम पर आक्रमण न करें, अकल्याण करने वाली वार्तायें हम पर आक्रमण न करें, आपकी कृपासे हम मनुष्योंसे सम्पर्क रहते हुए सदा कर्मोंके पार पहुँचते रहें ॥ २ ॥

सप्तम अनुवाकमें अष्टम सूक्त समाप्त ( ६९५ )

वाजपेये माध्यन्दिने सवने “इन्द्र ज्येष्ठम्” इत्यस्य पूर्वसूक्तेन सह उक्तो विनियोगः ॥

तथा विषुवति सौर्यपृष्ठे अस्य पूर्वसूक्तेन सह उक्तो विनियोगः ॥  
वाजपेयके माध्यन्दिनसवनमें “इन्द्र ज्येष्ठम्” इसका विनि-  
योग पूर्वसूक्तके साथ कह दिया है ।

तथा विषुवत् सौर्यपृष्ठमें इसका पूर्वसूक्तके साथ विनियोग  
कहा है ।

इन्द्र ज्येष्ठं न आ भरँ ओजिष्ठं पपुरि श्रवः ।

येनेमे चित्र वज्रहस्त रोदसी ओभे सुशिप्र प्राः १

इन्द्र । ज्येष्ठम् । नः । आ । भर । ओजिष्ठम् । पपुरि । श्रवः ।

येन । इमे इति । चित्र । वज्रहस्त । रोदसी इति । आ ।

उभे इति । सुशिप्र । प्राः ॥ १ ॥

हे इन्द्र ! आप अपने ज्येष्ठ ओजिष्ठ और पूर्ण करने वाले  
धनको हमें दीजिये, हे चायनीय वज्रहस्त सुन्दर ठोड़ी वाले  
इन्द्र ! आपने जिस धनसे दोनों द्युलोक और पृथिवीलोकको  
व्याप्त कर रखा है, उसे हमें दीजिये ॥ १ ॥

त्वामुग्रमवसे चर्षणीसहं राजन् देवेषु हूमहे ।

विश्वा सु नो विथुरा पिबदना वसो मित्रान् सुषहान्  
कृधि ॥ २ ॥

त्वाम् । उग्रम् । अवसे । चर्षणिः सहम् । राजन् । देवेषु । हूमहे ।

विश्वा । सु । नः । विथुरा । पिबदना । वसो इति । मित्रान् ।

सुःसहान् । कृधि ॥ २ ॥

इति सप्तमेनुवाके नवमं सूक्तम् ॥

हे राजन् ! हम देवताओंमेंसे आप चर्षणीसह उग्रका ही रक्षा के लिये आह्वान करते हैं । हे वासक इन्द्र ! हमारे भयके सब कारणोंको आप नष्ट करिये और शत्रुओंको भली प्रकार दवाने योग्य कर दीजिये ॥ २ ॥

सप्तम अनुवाकमें नवम सूक्त समाप्त ( ६९६ )

अप्नोर्यामिण क्रतौ माध्यंदिने सवने “यद् द्याव इन्द्र ते शतम्” [ २०. ८१ ] इति स्तोत्रियम् अभितः प्राकृतः स्तोत्रियो भवति । “यदिन्द्र यावत्स्त्वम्” [ २०. ८२ ] इत्यनुरूपम् अभितः प्राकृतोऽनुरूपः । तद् उक्तं वैताने । “माध्यंदिने यद् द्याव इन्द्र ते शतं यदिन्द्र यावत्स्त्वम् इति स्तोत्रियानुरूपावभितस्तोत्रियानुरूपौ” इति [ वै० ४. ३ ] ॥

तथा विश्वजिति वैराजपृष्ठे “यद् द्याव इन्द्र ते शतम्” “यदिन्द्र यावत्स्त्वम्” इति पृष्ठस्तोत्रियानुरूपौ बार्हतौ प्रगाथौ भवतः । तद् उक्तं वैताने । “विश्वजिति वैराजपृष्ठे यद् द्याव इन्द्र ते शतं यदिन्द्र यावत्स्त्वम् इति पृष्ठस्तोत्रियानुरूपौ बार्हतौ” इति [ वै० ६. ३ ] ॥

तथा तनूगृष्ठे षडहे “अभि त्वा शूर नोनुमः” [ २०. १२१ ] “त्वामिद्धि हवामहे” [ २०. ६८ ] “यद् द्याव इन्द्र ते शतम्” [ २०. ८१ ] “पित्रा सोममिन्द्र मन्दतु त्वा” [ २०. ११७ ] “कया नश्चित्र आ भुवत्” [ २०. १२४ ] “रेवतीर्नः सधमादे” [ २०. १२२ ] इति पृष्ठस्तोत्रिया यथाक्रमं भवन्ति । तद् उक्तं वैताने । “तनूगृष्ठेभि त्वा शूर नोनुमस्त्वामिद्धि हवामहे यद् द्याव इन्द्र ते शतं पित्रा सोममिन्द्र मन्दतु त्वा कया नश्चित्र आ भुवत् रेवतीर्नः सधमाद इति” इति [ वै० ८. ४ ] ॥

अप्नोर्यामिण क्रतुके माध्यन्दिन सवनमें “यद् द्याव इन्द्र ते शतम्” ( २० । ८१ ) यह स्तोत्रिय चारों ओरसे प्राकृत स्तोत्रिय होना



है । “यदिन्द्र यावतस्त्वम्” ( २० । ८२ ) यह अनुरूप अभितः प्राकृत अनुरूप है । इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि— “माध्यन्दिने यद् द्याव इन्द्र ते शतम् यदिन्द्र यावतस्त्वम् इति स्तोत्रियानुरूपावभितस्तोत्रियानुरूपौ” ( वैतानसूत्र ४ । ३ ) ॥

तथा विश्वजित् वैराजपृष्ठमें “यद् द्याव इन्द्र ते शतम्” “यदिन्द्र यावतस्त्वम्” ये पृष्ठस्तोत्रियानुरूप बार्हत प्रगाथ होते हैं । इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि— “विश्वजिति वैराजपृष्ठे यद् द्याव इन्द्र ते शतम् यदिन्द्र यावतस्त्वम् इति पृष्ठस्तोत्रियानुरूपौ बार्हतौ ( वैतानसूत्र ६ । ३ ) ॥

तथा तनूपृष्ठ षडहमें “अभि त्वा शूर नोनुवः” ( २० । १२१ ) “त्वामिद्धि हवामहे” ( २० । ६८ ) “यद् द्याव इन्द्र ते शतम्” ( २० । ८१ ) “पिबा सोमिन्द्र मदन्तु त्वा” ( २० । ११७ ) “कया नश्चित्र आभुवत् ( २० । १२४ ) “रेवतीर्नः सधमादे” ( २० । १२२ ) ये यथाक्रम पृष्ठस्तोत्रिय होते हैं । इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि— “तनूपृष्ठेऽभि त्वा शूर नोनुमस्त्वामिद्धि हवामहे यद् द्याव इन्द्र ते शतं पिबा सोममिन्द्र मदन्तु त्वा कया नश्चित्र आभुवद् रेवतीर्नः सधमाद इति” ( वैतानसूत्र ८ । ४ ) यद् द्याव इन्द्र ते शत शतं भूमीरुत स्युः ।

न त्वा वज्रिनसहस्रं सूर्या अनु न जातमष्ट रोदसी । १ ।

यत् । द्यावः । इन्द्र । ते । शतम् । शतम् । भूमीः । उत ।  
स्युरिति । स्युः ।

न । त्वा । वज्रिन । सहस्रम् । सूर्याः । अनु । न । जातम् ।  
अष्ट । रोदसी इति ॥ १ ॥

हे भगवन् इन्द्र ! यदि सैकड़ों धुलोक सैकड़ों भूमि और सहस्रों सूर्य आपके उपमानमें होजायें, तब भी हे वज्रधारिन् इन्द्र ! आपसे नहीं बढ़ सकते ॥ १ ॥

आ पंप्राथ महिना वृष्ण्या वृषन् विश्वा शविष्ठ शवता ।  
अस्माँ अव मघवन् गोमति व्रजे वज्रिं चित्राभिरू-  
तिभिः ॥ २ ॥

आ । पंप्राथ । महिना । वृष्ण्या । वृषन् । विश्वा । शविष्ठ ।  
शवता ।

अस्मान् । अव । मघवन् । गोमति । व्रजे । वज्रिन् । चित्राभिः ।

ऊतिभिः ॥ २ ॥

इति सप्तमेनुवाके दशमं सूक्तम् ॥

हे वज्रिन् शविष्ठ मघवन् फलप्रद इन्द्र ! हमारे गौओं वाले व्रजमें अपनी विचित्र रक्तक शक्तियोंसे हमारी रक्षा करिये और अपना महिमासे बलपूर्वक हमको बढ़ाइये ॥ २ ॥

सप्तम अनुवाकमें दशम सूक्त समाप्त ( ६६७ )

अप्नोर्यामिण क्रतौ “यदिन्द्र यावतस्त्वम्” इति सूक्तस्य पूर्व-  
सूक्तेन सह उक्तो विनियोगः ॥

तथा विश्वजिति वैराजपृष्ठे अस्य सूक्तस्य पूर्वसूक्तेन सह  
उक्तो विनियोगः ॥

अप्नोर्याम क्रतुमें “यदिन्द्र यावतस्त्वम्” इस सूक्तका पूर्वसूक्तके  
साथ विनियोग कह दिया है ।

तथा विश्वजित् वैराज्यपृष्ठमें इस सूक्तका पूर्वसूक्तके साथ  
विनियोग कह दिया है ।

यदिन्द्र यावत्स्त्वमेतावदहमीशीय ।

स्तोतारमिद् दिधिषेय रदावसो न पापत्वाय रासीय १

यत् । इन्द्र । यावत्तः । त्वम् । एतावत् । अहम् । ईशीय ।

स्तोतारम् । इत् । दिधिषेय । रदयसो इति रदऽवसो । न ।

पापऽत्वाय । रासीय ॥ १ ॥

हे इन्द्र ! आप जितने हैं, इतना मैं ईश्वर होजाऊँ, स्तोताओं को धन प्रदान करूँ, मैं पापत्वके लिये विलिखित न होऊँ अर्थात् पाप करके पक्षियोंके द्वारा नोचा न जाऊँ ॥ १ ॥

शिक्षेयमिन्महयते दिवेदिवे राय आ कुहचिद्विदे ।

नहि त्वदन्यन्मघवन् न आप्यं वस्यो अस्ति पिता

चन ॥ २ ॥

शिक्षेयम् । इत् । महऽयते । दिवेऽदिवे । रायः । आ । कुहचित्-  
ऽविदे ।

नहि । त्वत् । अन्यत् । मघऽवन् । नः । आप्यम् । वस्यः ।

अस्ति । पिता । चन ॥ २ ॥

इति सप्तमेनुवाके एकादशं सूक्तम् ॥

जो मुझसे बढ़ना चाहे ( उसे संग्राममें मार कर ) स्वर्गमें जानेका दण्ड दूँ, चाहे कहींसे धनको प्राप्त करूँ, हे मघवन् ! आपसे अतिरिक्त और कौन हमको पूर्ण करने वाला वासक और पालक है ॥ २ ॥

सप्तम अनुवाकमें एकादश सूक्त समाप्त ( ६९८ )



अप्सोर्याम्णि प्राकृतसामप्रगाथादनन्तरम् “इन्द्र त्रिधातु शरणम्” इति सामप्रगाथो भवति । तद् उक्तं वैताने । “सामप्रगाथाद् इन्द्र त्रिधातु शरणम् इति सामप्रगाथः” इति [वै० ४. ३] ॥

तथा विश्वजिति वैराजपृष्ठे “इन्द्र त्रिधातु शरणम्” इति सामप्रगाथो भवति । तद् उक्तं वैताने । “इन्द्र त्रिधातु शरणम् इति सामप्रगाथः” इति [वै० ६. ३] ॥

अप्सोर्याममें प्रकृत सामप्रगाथके अनन्तर “इन्द्र त्रिधातु शरणम्” यह साम प्रगाथ होता है । इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि—“सामप्रगाथाद् इन्द्र त्रिधातु शरणम्” (वैतानसूत्र ४ । ३) ॥

तथा विश्वजित् वैराजपृष्ठमें “इन्द्र त्रिधातु शरणम्” यह सामप्रगाथ होता है । इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि—“इन्द्र त्रिधातु शरणम् इति सामप्रगाथः” (वैतानसूत्र ६ । ३) ॥

इन्द्र त्रिधातु शरणं त्रिवरूथं स्वस्तिमत् ।

छर्दिर्यच्छ मघवञ्जयश्च मह्यं च यावयां दिद्युमेभ्यः १

इन्द्र । त्रिधातु । शरणम् । त्रिवरूथम् । स्वस्तिमत् ।

छर्दिः । यच्छ । मघवत्ऽभ्यः । च । मह्यम् । च । यावय ।

दिद्युम् । एभ्यः ॥ १ ॥

हे इन्द्र ! त्रिधातु त्रिवरूथ और स्वस्तिसम्पन्न गृहको धनवानोंके लिये और मेरे लिये प्रदान करिये और इनसे दिद्युको अलग करिये—खण्डन करने वाले वज्रको अलग करिये ॥१॥

ये गव्यता मनसा शत्रुमादभुरभिप्रघ्नन्ति धृष्णुया ।

अध स्मा नो मघवन्निन्द्र गिर्वणस्तनूपा अन्तमो

भव ॥ २ ॥

ये । ग॒व्य॒ता । म॒न॒सा । श॒त्रु॒म् । आ॒ज्य॒भुः । अ॒भि॒ऽप्र॒घ्नन्ति ।  
धृ॒ष्णु॒ऽया ।

अ॒ध्र । स्म । नः । म॒घ॒ऽव॒न् । इ॒न्द्र । गि॒र्व॒णः । त॒नू॒ऽपाः ।  
अ॒न्त॒मः । भ॒व । २ ॥

इति सप्तमेनुवाके द्वादशं सूक्तम् ॥

जो गमनशील मनसे शत्रुओंकी हिंसा करते हैं और अपनी धर्षक शक्तियोंसे शत्रुको विकटरूपसे पीटते हैं ( वे आपके बल शत्रुओंको पीटें ) इसके अनन्तर हे स्तुतिवाणियोंसे सेवनीय मघवन् इन्द्र ! आप हमारे पास रह कर हमारे शरीरकी रक्षा करिये ॥ २ ॥

सप्तम अनुवाकमें द्वादश सूक्त समाप्त ( ६९९ )

चतुर्विंशे द्वितीयेहनि प्रातःसवने “इन्द्रा याहि चित्रभानो” इति विकल्पेन आज्यस्तोत्रियो भवति । तद् उक्तं वैताने । “इन्द्रा याहि चित्रभानो इति वा” इति [ वै० ६. १ ] ॥

तथा छन्दोमाख्येषु त्रिष्वहःसु प्रातःसवने अस्य “तमिन्द्रं वाजयामसि” [ २०. ४७ ] इत्यनेन सह त्रिनियोग उक्तः ॥

तथा चतुर्विंशे सांवत्सरिके एकाहीभुते “इन्द्रा याहि चित्रभानो” [ २०. ८४ ] “मा चिदन्यद् वि शंसत” [ २०. ८५ ] इत्याज्यपृष्ठस्तोत्रियो भवतः । तद् उक्तं वैताने । “चतुर्विंश इन्द्रा याहि चित्रभानो मा चिदन्यद् वि शंसतेति” इति [ वै० ८. २ ] ॥

चतुर्विंशके द्वितीय दिनके प्रातःसवनमें “इन्द्रा याहि चित्रभानो” यह विकल्पसे आज्यस्तोत्रिय होता है । इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि—“इन्द्रा याहि चित्रभानो इति वा” ( वैतानसूत्र ६ । १ )

तथा छन्दोमोंके तीनों दिनोंके प्रातःसवनमें इसका “तमिन्द्रं वाजयामसि” के साथ विनियोग कह दिया है ।

तथा चतुर्विंश साम्प्रत्सरिक एकाही भूतमें “इन्द्रा याहि चित्रभानो” ( २० । ८४ ) “मा चिदन्यद् विशंसत” ( २० । ८५ ) ये आज्यपृष्ठस्तोत्रिय होते हैं । इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि—“चतुर्विंश इन्द्रा याहि चित्रभानो मा चिदन्यद् विशंसतेति” ( वैतानसूत्र ८ । २ ) ॥

इन्द्रा याहि चित्रभानो सुता इमे त्वायवः । अण्वीभिस्तनां पूतासः ॥ १ ॥

इन्द्र । आ । याहि । चित्रभानो इति चित्रभानो । सुताः । इमे । त्वायवः । अण्वीभिः । तनां । पूतासः ॥ १ ॥

हे चित्रभानो इन्द्र ! आइये, यह सूक्ष्म ( वस्त्रों ) से निचोड़े हुए धनरूप सोम आपके ही हैं ॥ १ ॥

इन्द्रा याहि धियेषितो विप्रंजूनः सुतावतः । उपब्रह्माणि वाघतः ॥ २ ॥

०धिया । इषितः । विप्रंजूनः । सुतावतः ॥ उप । ब्रह्माणि । वाघतः ॥ २ ॥

हे इन्द्र ! ब्राह्मण आपको अग्नेसे उत्कृष्ट समझने हैं । इस लिये बुद्धिसे प्रेरित होकर, इन अभिषुन सोम वाले और मन्त्रों ( का उच्चारण करते हुए ) ऋत्विजोंके पास आइये ॥ २ ॥

इन्द्रा याहि तूतुजान उपब्रह्माणि हरिवः । सुते दधिष्व नश्चनः ॥ ३ ॥



इन्द्र । आ । याहि । तूनुनानः । उप । ब्रह्माणि । हरिऽवः ।

सुने । दधिष्व । नः । चनः ।

इति सप्तमेनुवाके त्रयोदश सूक्तम् ॥

हे हरि नामक घोड़ों वाले इन्द्र ! आप शीघ्रता करके स्तोत्रों की ओर आइये और हमारे अभिषुन सोमके पास अपने घोड़ों को कुछ ठहराइये ॥ ३ ॥

सप्तम अनुवाकमें त्रयोदश सूक्त समाप्त ( ७०० )

चतुर्दिशे माध्यंदिने सवने “मा चिदन्यद् वि शंसत” [ २०. ८५. १. २ ] “यच्चिद्धि त्वा जना इमे” [ २०. ८५. ३. ४ ] इति विकल्पेन पृष्ठस्तोत्रियानुरूपौ बार्हतौ प्रगाथौ भवतः । तद् उक्तं वैताने । “मा चिदन्यद् वि शंसत यच्चिद्धि त्वा जना इम इति वा” इति [ वै० ६. १ ] ॥

तथा चतुर्दिशे सांवत्सरिके एकाहीभूते “मा चिदन्यद् वि शंसत” इत्यस्य विनियोगः पूर्वसूक्ते उक्तः ॥

चतुर्दिश माध्यन्दिन सवनमें “मा चिदन्यद् विशंसत” ( २० । ८५ । १, २ ) “यच्चिद्धि त्वा जना इमे” ( २० । ८५ । ३, ४ ) ये विकल्पसे पृष्ठस्तोत्रियानुरूप बार्हत प्रगाथ होते हैं । इसी बात को वैतानसूत्रमें कहा है, कि—“मा चिदन्यद् विशंसत यच्चिद्धि त्वा जना इम इति वा” ( वैतानसूत्र ६ । १ ) ॥

तथा चतुर्दिश साम्वात्सरि एकाहीभूतमें “मा चिदन्यद् वि शंसत” इसका विनियोग पूर्वसूक्तके साथ कह दिया है ।

मा चिदन्यद् वि शंसत सखायो मा रिषयत ।

इन्द्रमित् स्तोता वृषणं सचा सुने मुहुरुन्था च शंसत ।

मा । चित् । अन्यत् । वि । शंसत् । सखायः । मा । रिषण्यत् ।  
इन्द्रम् । इत् । स्तोत् । वृषणम् । सचा । सुते । मुहुः । उक्था ।  
च । शंसत् ॥ १ ॥

हे मित्ररूप स्तोताओं ! तुम विविध प्रकारकी स्तुतियोंसे और किसीकी स्तुति न करो तथा चित्तसे भी और किसी देवताके पास न जाओ, फलोंकी वर्षा करने वाले इन्द्रकी ही स्तुति करो हे इस अभिषुन सोमके पास रहने वाले होताओ ! तुम बारम्बार उक्थका गान करो ॥ १ ॥

अवक्रक्षिणं वृषभं यथाजुरं गां न चर्षणीसहम् ।  
विद्वेषणं संवननोभयंकरं मंहिष्ठमुभयाविनम् ॥ २ ॥  
अवऽक्रक्षिणम् । वृषभम् । यथा । अजुरम् । गाम् । न । चर्षणिऽ-  
सहम् ।

विऽद्वेषणम् । सम्ऽवनना । उभयम्ऽकरम् । मंहिष्ठम् । उभया-  
विनम् ॥ २ ॥

अवक्रक्षी, वृषभ, अजुर, बैलकी समान चर्षणीसह, शत्रुओं से द्वेष करने वाले, संवननीय, मंहिष्ठ और दोनों लोकोंमें रक्षा करने वाले ( इन्द्रदेवका मैं आह्वान करता हूँ ) ॥ २ ॥

यच्चिद्धि त्वा जना इमे नाना हवन्ते ऊतये ।  
अस्माकं ब्रह्मेदमिन्द्र भूतु तेहा विश्वा च वर्धनम् ३  
यत् । चित् । हि । त्वा । जनाः । इमे । नाना । हवन्ते । ऊतये ।

अस्माकम् । ब्रह्म । इदम् । इन्द्र । भूतु । ते । अहा । विश्वा । च ।

वर्धनम् ॥ ३ ॥

हे इन्द्र ! ये बहुतसे पुरुष रक्षाके लिये अनेक प्रकारकी स्तुतियोंसे आपका आवाहन करते हैं, हे इन्द्र ! हमारा यह मन्त्र-मय स्तोत्र सब दिन आपको बढ़ाने वाला होवे ॥ ३ ॥

वि तर्तूर्यन्ते मघवन् विपश्चितोर्यो विपो जनानाम्  
उप क्रमस्व पुरुरूपमा भर वाजं नेदिष्ठमूतये ॥ ४ ॥

वि । तर्तूर्यन्ते । मघऽवन् । विपऽचितः । अर्यः । विपः । जनानाम् ।  
उप । क्रमस्व । पुरुऽरूपम् । आ । भर । वाजम् । नेदिष्ठम् ।

ऊतये ॥ ४ ॥

इति सप्तमेनुवाके चतुर्दशं सूक्तम् ॥

हे मघवन् ! विद्वान् पुरुष, यज्ञस्वामी और मनुष्योंकी अँगुलियें त्वरा कर रही हैं आप आइये और विशाल रूपको धारण करिये और रक्षा करनेके लिये अन्नको निकटतम करके प्रदान करिये ४

सप्तम अनुवाकमें चतुर्दश सूक्त समाप्त ( ७०१ )

संवत्सरे माध्यंदिने सवने सामप्रगाथाद् अनन्तरम् “ब्रह्मणा ते ब्रह्मयुजा युनजिम्” इति आरम्भणीया भवति । तद् उक्तं वैताने । “ब्रह्मणा ते ब्रह्मयुजा युनजमीत्यारम्भणीया” इति [वै० ६. ५] ॥

संवत्सरके माध्यन्दिन सवनमें सामप्रगाथके अनन्तर “ब्रह्मणा ते ब्रह्मयुजा युनजिम्” यह आरम्भणीया होती है । इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि—“ब्रह्मणा ते ब्रह्मयुजा युनजमीत्यारम्भणीया भवति” ( वैतानसूत्र ६ । ५ ) ॥



ब्रह्मणा ते ब्रह्मयुजा युनज्मि हरी सखाया सधमाद  
आशू ।

स्थिरं रथं सुखमिन्द्राधितिष्ठन् प्रजानन् विद्वाँ उप याहि  
सोमम् ॥ १ ॥

ब्रह्मणा । ते । ब्रह्मयुजा । युनज्मि । हरी इति । सखाया ।  
सधमादे । आशू इति ।

स्थिरम् । रथम् । सुखम् । इन्द्र । अधितिष्ठन् । प्रजानन् ।  
विद्वान् । उप । याहि । सोमम् ॥ १ ॥

इति सप्तमेनुवाके पञ्चदशं सूक्तम् ॥

कर्ममें लगे हुए मन्त्रके द्वारा मैं आपके हरिनामक शीघ्रगामी  
घोड़ोंको यज्ञमें आनेके लिये रथमें जोड़ता हूँ, हे इन्द्रदेव ! आग  
विद्वान् हैं अतः रथको स्थिर और सुखपद समझ उस पर चढ़  
कर सोमके समीप आइये ॥ १ ॥

सप्तम अनुवाकमें पञ्चदश सूक्त समाप्त ( ७०२ )

द्वितीये छन्दोमेहनि “अध्वर्यवोरुणं दुग्धमंशुम्” [ २०. ८७ ]  
“यस्तस्तम्भ सहसा वि उग्रो अन्तान्” [ २०. ८८ ] “अस्तेव  
सु प्रतरं लायमस्यन्” [ २०. ८९ ] इत्यैकाहिकानि भवन्ति ।  
तद् उक्तं वैताने । “द्वितीयेध्वर्यवोरुणं दुग्धमंशुं यस्तस्तम्भ सहसा  
वि उग्रो अन्तान् अस्तेव सु प्रतरं लायमस्यन् इत्यैकाहिकानि”  
इति [ वै० ६. ३ ] ॥

तथा तृतीये छन्दोमेहनि “अध्वर्यवोरुणम्” [ २०. ८७ ] “यो  
अद्रिभित् प्रथमजा ऋतावा” [ २०. ९० ] “आ यात्विन्द्रः स्व-

पतिर्मदाय” [ २०. ६४ ] इत्येतानि ऐकाहिकानि भवन्ति । तद्व  
उक्तं वैताने । “तृतीयेध्वर्यवोरुणं यो अद्रिभित् । प्रथमजा ऋतावा  
यात्विन्द्रः स्वपतिर्मदायेति” इति [ वै० ६. ३ ] ॥

द्वितीय छन्दोम दिनमें “अध्वर्यवोरुणम् दुग्धमंशुम्” ( २० ।  
८७ ) “यस्तस्तम्भ सहसा वि उमो अन्तान्” अस्तेव सु प्रतरं  
लायमस्यन् ( २० । ८६ ) ये ऐकाहिक होते हैं । इसी बातको  
वैतानसूत्रमें कहा है, कि—“द्वितीयेध्वर्यवोरुणं दुग्धमंशुं  
यस्तस्तम्भ सहसा वि उमो अन्तान् अस्तेव सु प्रतरं लायमस्यन्  
इत्यैकाहिकानि” ( वैतानसूत्र ६ । ३ ) ॥

तथा तृतीय छन्दोम दिनमें “अध्वर्यवोरुणम् ( २० । ८७ )  
“यो अद्रिभित् प्रथमजा ऋतावा” ( २० । ६० ) “आ यात्विन्द्रः  
स्वपतिर्मदाय” ( २० । ६४ ) ये ऐकाहिक होते हैं, इसी बात  
को वैतानसूत्रमें कहा है, कि—“तृतीयेध्वर्यवोरुणं यो अद्रिभित्  
प्रथमजा ऋतावा यात्विन्द्रः स्वपतिर्मदायेति” ( वैतानसूत्र ६ । ३ ) ॥

अध्वर्यवोरुणं दुग्धमंशुं जुहोतन वृषभाय क्षितीनाम् ।  
गौराद् वेदीयाँ अवपानमिन्द्रो विश्वाहेद्याति सुत-  
सोममिच्छन् ॥ १ ॥

अध्वर्यवः । अरुणम् । दुग्धम् । अंशुम् । जुहोतन । वृषभाय ।  
क्षितीनाम् ।

गौरात् । वेदीयान् । अवपानम् । इन्द्रः । विश्वाहा । इत् । याति ।

सुतः सोमम् । इच्छन् ॥ १ ॥

हे अध्वर्युओं ! तुम पृथ्वीके वर्षक इन्द्रके लिये सोमके अंश

अरुण दुग्धकी आहुति दो, विश्वाहा विद्वान् इन्द्र सुतसोमको  
चाहता हुआ गौरसे अवपान पर आता है ॥ १ ॥

यद् दधिषे प्रदिवि चार्वन्नं दिवेदिवे पीतिमिदस्य  
वक्षि ।

उत हृदोत मनसा जुषाण उशन्निन्द्र प्रस्थितान् पाहि  
सोमान् ॥ २ ॥

यत् । दधिषे । प्रदिवि । चारु । अन्नम् । दिवेदिवे । पीतिम् ।  
इत् । अस्य । वक्षि ।

उत । हृदा । उत । मनसा । जुषाणः । उशन् । इन्द्र । प्रस्थितान् ।  
पाहि । सोमान् ॥ २ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप जो ब्रूलोकमें चारु अन्नको धारण करते हैं,  
और प्रत्येक क्रीड़ाके अवसर पर जो इस सोमकी पीतिको धारण  
करते हैं, हे इन्द्र ! हृदय और मनसे इस सोमको चाहते हुए  
आप प्रस्थित सोमोंकी रक्षा करिये ॥ २ ॥

जज्ञानः सोमं सहसे पपाथ प्र ते माता महिमान-  
मुवाच ।

एन्द्र पप्रार्थोर्वन्तरिक्षं युधा देवेभ्यो वरिवश्चकथ ३

जज्ञानः । सोमम् । सहसे । पपाथ । प्र । ते । माता । महिमानम् ।  
उवाच ।



आ । इन्द्र । पपाय । उरु । अन्तरिक्षम् । युधा । देवेभ्यः ।

वरिवः । चकर्थ ॥ ३ ॥

आप आविर्भूत होते ही बलके लिये सोम पर जाते हैं, अन्तरिक्ष आपकी महिमाको प्रकृष्टरूपसे कहता है । हे इन्द्रदेव ! आप विशाल अन्तरिक्षमें जाते हैं और आपने युद्ध करके देवताओंको धन प्रदान किया है ॥ ३ ॥

यद् योधया महतो मन्यमानान् साक्षाम तान् बाहुभिः  
शाशदानान् ।

यद्वा नृभिर्वृत इन्द्राभियुध्यास्तं त्वयाजिं सौश्रवसं जयेम

यत् । योधयाः । महतः । मन्यमानान् । साक्षाम । तान् । बाहुऽ-

भिः । शाशदानान् ।

यत् । वा । नृभिः । वृतः । इन्द्र । अभियुध्याः । तम् । त्वया ।

आजिम् । सौश्रवसम् । जयेम ॥ ४ ॥

आप अपनेको बड़ा मानते हुआसे युद्ध करते हैं, उन भुजाओं से विशरण करते हुआसे हम संगत होवें, अथवा हे इन्द्र ! आप मनुष्योंसे घिर कर युद्ध करिये आपके प्रभाववश हम सुन्दर यश के साथ युद्धको जीतें ॥ ४ ॥

प्रेन्द्रस्य वोचं प्रथमा कृतानि प्रनूतना मघवा या चकारं

यदेदेवीरसंहिष्ट माया अथाभवत् केवलः सोमो अस्य

प्र । इन्द्रस्य । वोचम् । प्रथमा । कृतानि । प्र । नूतना । मघवा ।

या । चकार ।

यदा । इत् । अदे॒वीः । अस॑हिष्ट ॥ मा॒याः । अथ । अ॒भ॒वत् ।

के॒वलः । सोमः । अ॒स्य ॥ ५ ॥

मैं इन्द्रके पहिले किये हुए कृत्योंका वर्णन कर रहा हूँ और धनी इन्द्रदेवने जो नवीन कर्म किये हैं उनका वर्णन करता हूँ, जो इन्होंने आसुरी मायाओंको सहा है, इससे सोम केवल इन के लिये होगया है ॥ ५ ॥

तवे॒दं वि॒श्वम॑भि॒तः प॒श॒व्यं १ यत् प॒श्य॑सि चक्ष॑सा

सूर्य॑स्य ।

गवा॑मसि गो॒प॑तिरे॒कं इन्द्र॑ भ॒क्षीम॑हि ते प्र॒य॑तस्य व॒स्वः

तव । इ॒दम् । वि॒श्वम् । अ॒भि॒तः । प॒श॒व्यम् । यत् । प॒श्य॑सि ।

चक्ष॑सा । सूर्य॑स्य ।

गवा॑म् । अ॒सि । गो॒प॑ति । ए॒कः । इन्द्र॑ । भ॒क्षीम॑हि । ते । प्र॒य॑त॒-

तस्य । व॒स्वः ॥ ६ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप सूर्यरूपी नेत्रसे जिसको देखते हैं यह सब पशुधन आपका ही है, हे इन्द्रदेव ! आप गौओंके असाधारण गोपालक हैं हम, आप प्रयत्न अपने भक्तफलकत्वमें प्रकृष्टरूपसे लगे रहने वालेके धनका उपभोग करें ॥ ६ ॥

बृह॑स्पते यु॒वमिन्द्र॑श्च व॒स्वो दि॒व्यस्ये॑शाथे उ॒त पार्थि॑वस्य

ध॒त्तं र॒यिं स्तु॑व॒ते की॒रये॑ चिद् यू॒यं पा॑त स्व॒स्तिभिः

सदा॑ नः ॥ ७ ॥

बृहस्पते । यु॒वम् । इन्द्रः । च । वस्वः । दि॒व्यस्य । ई॒शा॒थे इति ।

उ॒त । पा॒थि॒वस्य ।

ध॒त्तम् । र॒यिम् । स्तु॒वते । की॒रये । चि॒त् । यू॒यम् । पा॒न । स्व॒-

स्तिऽभिः । स॒दा । नः ॥ ७ ॥

इति सप्तमेनुवाके षोडशं सूक्तम् ॥

हे बृहस्पते ! आप और इन्द्रदेव तुम दोनों ही ध्रुलोकके और भूलोकके धनके स्वामी हैं आप स्तुति करनेवाले स्तोताके लिये धनको दीजिये और अपनी रक्षक शक्तियोंसे सदा हमारी रक्षा करिये, ॥ ७ ॥

सप्तम अनुवाकमें सोलहवाँ सूक्त समाप्त ( ७०३ )

द्वितीये छन्दोमेहनि “यस्तस्तम्भ सहसा वि ज्मो अन्तान्” इत्यस्य विनियोगः पूर्वसूक्तेन सह उक्तः ॥

द्वितीय छन्दोम दिनमें “यस्तस्तम्भ सहसा विज्मो अन्तान्” इसका विनियोग पूर्व सूक्तके साथ कह दिया है ।

यस्तस्तम्भ सहसा वि ज्मो अन्तान् बृहस्पतिस्त्रिषधस्थो रवेण ।

तं प्र॒ता॒स ऋ॒षयो दी॒ध्या॒नाः पु॒रो वि॒प्रा दधि॒रे म॒न्द्र॒जिह्वम् ॥ १ ॥

यः । तस्त॒म्भ । सह॒सा । वि । ज्मः । अन्ता॒न् । बृहस्प॒तिः ।

त्रिऽस॒ध॒स्थः । रवे॑ण ।

तम् । प्र॒ता॒सः । ऋ॒षयः । दी॒ध्या॒नाः । पु॒रः । वि॒प्रा । दधि॒रे ।

म॒न्द्रऽजिह्वम् ॥ १ ॥



जिन त्रिसधस्थ बृहस्पतिने अपने घोषसे पृथ्वीके छोर तक को स्तम्भित कर दिया था, प्राचीन ऋषि, उनका वारम्बार ध्यान करते हैं और ब्राह्मण उन हर्षप्रद जिह्वा वालेको पहिले रखते हैं ॥ १ ॥

धुनेतयः सुप्रकेतं मदन्तो बृहस्पते अभि ये नस्ततस्त्रे  
पृषन्तं सुप्रमदब्धमूर्ध्वं बृहस्पते रक्षतादस्य योनिम् २

धुनऽइतयः । सुप्रकेतम् । मदन्तः । बृहस्पते । अभि । ये । नः ।  
ततस्त्रे ।

पृषन्तम् । सुप्रम् । अदब्धम् । ऊर्ध्वम् । बृहस्पते । रक्षतात् । अस्य ।  
योनिम् ॥ २ ॥

हे बृहस्पते ! ध्वनिको प्रेरित करते हुए आनन्दमें भरे हुए जो ऋत्विज आपको हमारी ओर प्रेरित करते हैं । हे बृहस्पते ! उस ऋत्विक्संघके कारण, गमनशील, सबसे अहिंसित बलवान् घृतविन्दु वाले की आप रक्षा करिये ॥ २ ॥

बृहस्पते या परमा परावदत आ तं ऋतस्पृशो नि  
षेदुः ।

तुभ्यं स्वाता अवता अद्रिदुग्धा मध्वं श्रोतन्त्यभितो  
धिरप्शम् ॥ ३ ॥

बृहस्पते । या । परमा । परावदत् । अतः । आ । ते । ऋतस्पृशः ।  
नि । सेदुः ।

दुभ्यम् । खांताः । अवताः । अद्रिऽदुग्धाः । मध्वः । ओतन्ति ।

अभितः । विऽरप्शम् ॥ ३ ॥

हे बृहस्पते ! आपकी परम रक्षक शक्ति रक्षा करती है, इसी कारण ऋतस्पृश ऋत्विज् आपके पास बैठे हैं, आपके लिये तोड़े हुए, रक्षित और पहाड़ परसे लाये हुए मधुके अधिकरण चारों ओरसे विशाल परिमाणमें मधुको वरसाते हैं ॥ ३ ॥

बृहस्पतिः प्रथमं जायमानो महो ज्योतिषः परमे

व्योमिन् ।

सप्तास्यस्तुविजातो रवेण वि सप्तरश्मिरधमत् तमांसि ४

बृहस्पतिः । प्रथमम् । जायमानः । महः । ज्योतिषः । परमे ।

विऽओमन् ।

सप्तऽआस्यः । तुविऽजातः । रवेण । वि । सप्तरश्मिः । अधमत् ।

तमांसि ॥ ४ ॥

बृहस्पति देव ज्योतिषके महिष्मय चक्रसे परम व्योममें प्रकट होते हैं, तब वह तुविजात सप्तास्य सप्तरश्मि वन अपने शब्दसे अन्धकारोंको नष्ट कर डालते हैं ॥ ४ ॥

स सुष्टुभा स ऋक्ता गणेन तलं रुरोज फलिगं रवेण ।

बृहस्पतिरुसियां हव्यसूदः कनिऽकदद् वावशतीरुदाजत्

सः । सुऽस्तुभा । सः । ऋक्ता । गणेन । तलम् । रुरोज ।

फलिगम् । रवेण ।

बृहस्पतिः । उ॒त्ति॒याः । ह॒व्यऽसू॒दः । क॒निक्र॑दत् । वा॒च॒श॒तीः ।

उ॒त । आ॒ज॒त् ॥ ५ ॥

बृहस्पति देव सुन्दरतासे स्तुति करने वाले ऋचामयगणसे और रवसे मेघको विदीर्ण कर डालते हैं—वर्षा करते हैं । हव्यसे प्रेरित हुए बृहस्पति देव कामना करती हुई गौओंके लिये बार-बार शब्द करते हैं और प्राप्त होजाते हैं ॥ ५ ॥

ए॒वा पि॒त्रे वि॒श्वदे॒वाय॒ वृ॒ष्णे य॒ज्ञैर्वि॒धेम॒ नम॑सा ह॒विर्भिः॑ ।

बृह॑स्पते सु॒प्र॒जा वी॒रव॑न्तो व॒यं स्या॑म॒ पत॑यो रयी॒णाम् ६

ए॒व । पि॒त्रे । वि॒श्वऽदे॒वाय॒ । वृ॒ष्णे । य॒ज्ञैः । वि॒धेम॒ । नम॑सा ।

ह॒विः॑भिः ।

बृह॑स्पते । सु॒प्र॒जाः । वी॒रऽव॑न्तः । व॒यम् । स्या॑म॒ । पत॑यः ।

रयी॒णाम् ॥ ६ ॥

इति सप्तमेनुवाके सप्तदशं सूक्तम् ॥

ऐसे पालक विश्वदेव वर्षक बृहस्पतिके लिये हम यज्ञोंके द्वारा नमस्कारके द्वारा और हविके द्वारा सेवा करते हैं, हे बृहस्पति-देव ! हम सुन्दर प्रजा वाले, वीरोंसे सम्पन्न होवें और धनके स्वामी होवें ॥ ६ ॥

सप्तमं अनुवाकमे सप्तदश सूक्तं समाप्त (७०४)

द्वितीये छन्दोमेहनि “अस्तेव सु प्रतरं लायमस्यन्” इत्यस्य विनियोगः “अध्वर्यवोरुणं दुग्धमंशुम्” [ २०. ८७ ] इत्यनेन सह उक्तः ॥

द्वितीय छन्दोम दिनमें “अस्तेव सु प्रतरं लायमस्यन्” इसका



विनियोष-“अध्वर्यव्रोहणं दुग्धमंशुम्” ( २० । ८७ ) के साथ कह दिया है ।

अस्तेव सु प्रतरं लायमस्यन् भूषन्निव प्र भरा स्तोम-  
मस्मै ।

वाचा विप्रास्तरत वाचमर्यो नि रामय जरितः सोम-  
इन्द्रम् ॥ १ ॥

अस्ताऽइव । सु । प्र॒तर॒म् । ला॒य॒म् । अ॒स्य॒न् । भू॒ष॒न्ऽइव । प्र ।

भ॒र । स्तो॒म॒म् । अ॒स्मै ।

वा॒चा । वि॒प्राः । त॒र॒त । वा॒च॒म् । अ॒र्यः । नि । र॒म॒य । ज॒रि॒त-  
रि॒ति । सो॒मे । इन्द्र॒म् ॥ १ ॥

जैसे फेंकने वाला पुरुष, ग्रहण करने वाली वस्तुको विभूषित होता हुआ फेंकता है, इसी प्रकार आप इन इन्द्रदेवके लिये स्तोमका भरण करिये । हे विप्रों ! तुम मन्त्ररूपा वाणीके वाणीसे पार जाओ हे स्तोतः ! आप स्वामी हैं अतः सोममें इन्द्रको रमण कराइये ॥ १ ॥

दोहेन गामुप शिक्ता सखायं प्र बोधय जरितर्जार-  
मिन्द्रम् ।

कोशं न पूर्ण वसुना न्यूष्टमा च्यावय मघदेयाय  
शूरम् ॥ २ ॥

दोहेन । गाम् । उप । शि॒क्त । स॒खा॒य॒म् । प्र । बो॒ध॒य । ज॒रि॒तः ।

जा॒र॒म् । इन्द्र॒म् ।

कोशम् । न । पूर्णम् । वसुना । निःशृष्टम् । आ । च्यवय ।

मघऽदेयाय । शूरम् ॥ २ ॥

आप मित्ररूपा वाणीको दोहनसे शिञ्चित करिये और हे स्तुति करने वाले ! शत्रुओंको जीर्ण करने वाले इन्द्रको प्रबोधित करिये । और धनसे पूर्ण कोशकी समान शूरताप्रद शुद्ध सोम को धनप्रद इन्द्रके लिये च्यावित करिये ॥ २ ॥

किमङ्ग त्वां मघवन् भोजमाहुः शिशीहि मां शिशयं  
त्वां शृणोमि ।

अम्रस्वती मम धीरस्तु शक्र वसुमिदं भगमिन्द्रा  
भरा नः ॥ ३ ॥

किम् । अङ्ग । त्वा । मघऽवन् । भोजम् । आहुः । शिशीहि ।  
मा । शिशयम् । त्वा । शृणोमि ।

अम्रस्वती । मम । धीः । अस्तु । शक्र । वसुऽविदम् । भगम् ।  
इन्द्र । आ । भर । नः ॥ ३ ॥

हे मघवन् इन्द्रदेव ! आपको भोगने वाला कहते हैं, आप मुझे क्षीण न करिये, मैं आपको शत्रुक्षीणकर्ता सुनता हूँ । हे शक्र ! मेरी बुद्धि कर्म वाली हो और हे इन्द्रदेव ! आप हमको धन प्राप्त कराने वाला भाग्य दीजिये ॥ ३ ॥

त्वां जनां ममसत्येष्विन्द्र संतस्थाना वि ह्वयन्ते  
समीके ।

अत्रा युजं कृणुते यो हविष्मान्नासुन्वता सख्यं वष्टि  
शूरः ॥ ४ ॥

त्वाम् । जनाः । मयऽसत्येषु । इन्द्र । समुऽतस्थानाः । वि ।  
हयन्ते । समुऽईके ।

अत्र । युजम् । कृणुते । यः । हविष्मान् । न । असुन्वत । सख्यम् ।  
वष्टि । शूरः ॥ ४ ॥

हे इन्द्र ! मेरे यज्ञोंमें खड़े हुए और युद्धमें खड़े हुए पुरुष  
आपका ही विशेषरूपसे आह्वान करते हैं, जो हवि वाला आप  
के लिये योग करता है वह शूर आपकी मित्रता चाहता है अतः  
सोमका अभिषव करता है ॥ ४ ॥

धनं न स्पन्दं बहुलं यो अस्मै तीव्रान्तसोमो आसु-  
नोति प्रयस्वान् ।

तस्मै शत्रून्सुतुकान् प्रातरहो नि स्वष्ट्रान् युवति  
हन्ति वृत्रम् ॥ ५ ॥

धनम् । न । स्पन्दम् । बहुलम् । यः । अस्मै । तीव्रान् । सोमान् ।  
आऽसुनोति । प्रयस्वान् ।

तस्मै । शत्रून् । सुऽतुकान् । प्रातः । अहः । नि । सुऽअष्ट्रान् ।  
युवति । हन्ति । वृत्रम् ॥ ५ ॥

जो हविरूप अन्नसे सम्पन्न पुरुष अपने धनको धीरे धीरे



सरकने वाला रख कर इन इन्द्रदेवके लिये तीव्र सोमोंका अभि-  
षव नहीं करता है उसके लिये इन्द्रदेव दिनके प्रातःकालमें शीघ्र  
गमन करने वाले भली प्रकार व्याप्त कर लेने वाले शत्रुओंको  
मिताते हैं और वज्रका प्रहार करते हैं ॥ ५ ॥

यस्मिन् वयं दधिमा शंसमिन्द्रे यः शिश्रायं मघवा  
काममस्मे ।

आराचित्सन् भयतामस्य शत्रुर्न्यस्मै ह्युम्ना जन्या  
नमन्ताम् ॥ ६ ॥

यस्मिन् । वयम् । दधिम् । शंसम् । इन्द्रे । यः । शिश्रायं ।  
मघवा । कामम् । अस्मे इति ।

आरात् । चित् । सन् । भयताम् । अस्य । शत्रु । नि । अस्मै ।  
ह्युम्ना । जनिया । नमन्ताम् ॥ ६ ॥

जिस इन्द्रमें हम प्रशंसाको स्थापित कर रहे हैं अर्थात् जिस  
इन्द्रकी प्रशंसा कर रहे हैं और जो धनवान् इन्द्र हममें इच्छाको  
आश्रित करते हैं—अर्थात् हमारी इच्छाको पूर्ण करते हैं । इन  
इन्द्रदेवका शत्रु इनके पासमें आते ही डरने लगे और दमकता  
हुआ जनसमूह इनको प्रणाम करे ॥ ६ ॥

आराच्छत्रुमप बाधस्व दूरमुग्रो यः शम्भः पुरुहूत तेन  
अस्मे धेहि यवमद् गोमदिन्द्र कृधी धियं जरित्रे  
वाजरत्नाम् ॥ ७ ॥

आ॒रात् । श॒त्रुम् । अ॒प । बा॒धस्व । दू॒रम् । उ॒ग्रः । यः । श॒म्भः ।

पु॒रु॒हू॒त । ते॒न ।

अ॒स्मे इति । धे॒हि । य॒व॒ऽमत् । गो॒ऽमत् । इ॒न्द्र । कृ॒धि । धि॒यम् ।

ज॒रि॒त्रे । वा॒ज॒ऽर॒त्नाम् ॥ ७ ॥

हे पुरुहूत इन्द्र ! आपका जो उग्र वज्र है, उसके द्वारा आप दूर पर स्थित वा समीपमें स्थित शत्रुको बाधा दीजिये । और हे इन्द्र ! हममें जौं आदि अन्न और गौं आदि पशुओं वाले धन को स्थापित करिये और स्तोताके लिये अन्नरूपी धन वाली बुद्धिको करिये ॥ ७ ॥

प्र॒य॒म॒न्त॒र्वृष॒स॒वा॒सो अ॒ग्म॒न् ती॒व्राः सो॒मा बहु॒लान्ता॑स॒  
इन्द्र॑म् ।

नाह॑ दा॒मानं॑ म॒घवा॒ नि यंस॑न् नि सु॒न्व॒ते व॑हति॒  
भूरि॑ वा॒मम् ॥ ८ ॥

प्र । यम् । अ॒न्तः । वृष॒ऽस॒वासः । अ॒ग्मन् । ती॒व्राः । सो॒माः ।

ब॒हु॒ल॒ऽअ॒न्ता॒सः । इन्द्र॑म् ।

न । अ॒ह । दा॒मानम् । म॒घ॒ऽवा । नि । यंस॑त् । नि । सु॒न्व॒ते ।

व॒हति॑ । भूरि॑ । वा॒मम् ॥ ८ ॥

जिन इन्द्रके पास बहुलान्तास वृषसवास तीव्र सोम जाते हैं, उसके लिये मघवा धनको रोकनेवाली रस्सीको रोक लेते हैं और सोमाभिषव करने वालेके लिये बहुतसा सेवनीय धन देते हैं ॥

उ॒त प्र॒हाम॑ति॒दी॒वा ज॑यति॒ कृत॑मि॒व श्व॒घ्नी वि॒चि॒नोति॑  
काले ।

यो दे॒वका॑मो न ध॒नं रु॒णद्धि॑ स॒मि॒त् तं रा॒यः सृ॑जति  
स्व॒धाभिः॑ ॥ ६ ॥

उ॒त । प्र॒हाम् । अ॒तिऽदी॒वा । ज॑यति । कृतम्ऽइ॒व । श्व॒घ्नी ।  
वि । चि॒नोति॑ । का॒ले ।

यः । दे॒वऽका॑मः । न । ध॒नम् । रु॒णद्धि॑ । स॒म् । इ॒त् । तम् ।  
रा॒यः । सृ॑जति । स्व॒धाभिः॑ ॥ ६ ॥

बड़ा भारी खिलाड़ी पुरुष अत्नोंसे प्रहार करने वाली प्रति-  
पत्नी जुआरीको जीत लेता है, क्योंकि—वह जुआरी घूतके समय  
लाभके हेतु कृत नामक अयको ही ढूँढ़ता है, वह इन्द्रदेवकी इच्छा  
करता हुआ जुआरी पुरुष उस धनको रोकता नहीं है अर्थात्  
व्यर्थ ही स्थापित नहीं करता है, किन्तु इन्द्रदेवताके निमित्त  
विनियुक्त करता है और उनको स्वधासे संयुक्त करता है ॥६॥

गो॒भि॒ष्ट्रे॒मा॒म॑तिं दु॒रे॒वां य॒वे॒न वा॒ जु॒धं॑ पु॒रु॒हू॒त् वि॒श्वे॑  
व॒यं रा॒ज॑सु प्र॒थ॒मा ध॒ना॒न्यरि॑ष्टासो वृ॒ज॒नीभि॑र्जयेम  
गो॒भिः । त॒रे॒म । अ॒म॑तिम् । दुः॒ए॒वाम् । य॒वे॒न । वा । जु॒धम् ।

पु॒रु॒हू॒त् । वि॒श्वे॑ ।

व॒यम् । रा॒ज॑सु । प्र॒थ॒माः । ध॒नानि॑ । अ॒रि॑ष्टासः । वृ॒ज॒नीभिः॑ ।  
ज॒ये॒म ॥ १० ॥



हे इन्द्रदेव ! हम दुष्ट गतिवाली दरिद्रतासे आई हुई दुर्बुद्धि  
को पशुओंके द्वारा तरें, यव आदि धान्यके द्वारा बुभुक्षाका निवा-  
रण करें, राजाओंमें स्थित श्रेष्ठ धनको हम प्रतिपत्नी जुआरियों  
से पराजित न होकर बलकारिणी अक्षशलाकाओंसे जीत लें १०  
बृहस्पतिर्नः परि पातु पश्चादुतोत्तरस्मादधरादधायोः  
इन्द्रः पुरस्तादुत मध्यतो नः सखा सखिभ्यो वरीयः  
कृणोतु ॥ ११ ॥

बृहस्पतिः । नः । परि । पातु । पश्चात् । उत । उत्तरस्मात् ।  
अधरात् । अधायोः ।

इन्द्रः । पुरस्तात् । उत । मध्यतः । नः । सखा । सखिभ्यः ।  
वरीयः । कृणोतु ॥ ११ ॥

इति सप्तमेनुवाके अष्टादशं सूक्तम् ॥

जो हमारी हिंसारूप पापको करना चाहता है उस शत्रुसे बृह-  
स्पतिदेव पश्चिम उत्तर और दक्षिण दिशाकी ओरसे हमको  
बचावें, इन्द्रदेव पूर्वदिशाकी ओरसे हमको बचावें, हमारे मित्ररूप  
बृहस्पति अन्य मित्रोंसे हमको श्रेष्ठ करें ॥ ११ ॥

सप्तम अनुवाकमें अठारहवाँ सूक्त समाप्त ( ७०५ )

तृतीये छन्दोमेहनि “यो अद्रिभित्” इत्यस्य विनियोगः  
“अध्वर्यवोरुणम्” [ २०. ८७ ] इत्यनेन सह उक्तः ॥

तथा उभयोर्द्वितीयतृतीययोरहोरेकाहिकानां सूक्तानां मध्यमस्य  
आदावन्ते वा “यो अद्रिभित्” [ २०. ६० ] “इमां धियं सप्त-  
शीर्ष्णीं पिता नः” [ २०. ६१ ] इत्येतयोर्यथाक्रमम् एकैकं

शंसति । तद् उक्तं वैताने । “यो अद्रिभित् इमां धियं सप्तशीर्ष्णीं पिता न इत्युभयोरेकैकं मध्यमस्यादावन्त्ये व” इति [वै० ६.३] ॥

तृतीय छन्दोम दिनमें “यो अद्रिभित्” का विनियोग “अध्व-  
र्यवोऽरुणम्” ( २० । ८७ ) के साथ कह दिया है ।

तथा दोनों द्वितीय तृतीय दिनोंके ऐकाहिक सूक्तोंके मध्यम का आदि वा अन्तमें “यो अद्रिभित्” ( २० । ६० ) “इमां धियं सप्तशीर्ष्णीं पिता नः” ( २० । ६१ ) को यथाक्रम एक एक करके कहे । इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि—“यो अद्रि-  
भित् इमां धियं सप्तशीर्ष्णीं पिता न इत्युभयोरेकैकं मध्यमस्या-  
दावन्त्ये वा” ( वैतानसूत्र ६ । ३ ) ॥

यो अद्रिभित् प्रथमजा ऋतावा बृहस्पतिराङ्गिरसो हवि-  
ष्मान् ।

द्विर्वर्हज्मा प्राघर्मसत् पिता न आ रोदसी वृषभो  
रोरवीति ॥ १ ॥

यः । अद्रिभित् । प्रथमजाः । ऋतवा । बृहस्पतिः । आङ्गि-  
रसः । हविष्मान् ।

द्विर्वर्हज्मा । प्राघर्मसत् । पिता । नः । आ । रोदसी इति ।  
वृषभः । रोरवीति ॥ १ ॥

जो मेघोंको विदीर्ण करने वाले हैं, प्रथम प्रादुर्भूत होने वाले हैं, सत्यसम्पन्न हैं, वह अङ्गिरागोत्री बृहस्पति हविके पात्र हैं, द्विर्वर्हज्मा हैं, प्राघर्मसत् हैं, पालक हैं, वर्षक हैं और धुलोक तथा पृथ्वीलोकमें बारम्बार शब्द करते हैं ॥ १ ॥

जनाय चिद् य ईवन्त उ लोकं बृहस्पतिर्देवहूतौ चकार ।  
घ्नन् वृत्राणि वि पुरो दर्दरीति जयं छत्रूरमित्रान् पृत्सु  
साहन् ॥ २ ॥

जनाय । चित् । यः । ईवन्ते । ऊं इति । लोकम् । बृहस्पतिः ।

देवऽहूतौ । चकार ।

घ्नन् । वृत्राणि । वि । पुरः । दर्दरीति । जयन् । शत्रून् । अमि-

त्रान् । पृत्सु । सहन् ॥ २ ॥

जो बृहस्पतिदेव मनुष्योंके लिये चलते हैं और देवहूतिमें जिन्होंने लोकको किया है, वह आवरक मेघोंको विदीर्ण करते हुए पुरोंका दारण करते हैं, शत्रुओंको जीतते हैं और सेनाओं में शत्रुओंको सहते हैं ॥ २ ॥

बृहस्पतिः समजयद् वसूनि महो ब्रजान् गोमतो  
देव एषः ।

अपः सिषासन्तस्वः प्रतीतो बृहस्पतिर्हन्त्यमित्रमर्कैः

बृहस्पतिः । सम् । अजयत् । वसूनि । महः । ब्रजान् । गोऽमतः ।

देवः । एषः ।

अपः । सिषासन् । स्वः । अप्रतिऽहः । बृहस्पतिः । हन्ति ।

अमित्रम् । अर्कैः ॥ ३ ॥

सप्तमेनुवाके एकोनविंशं सूक्तम् ॥ इति सप्तमोऽनुवाकः ॥



इन बृहस्पति देवने बड़े २ गौओं वाले गोठोंको और धनोंको जीत लिया है, जलोंका दान करनेके लिये वह अप्रतीतरूपमें स्वर्गमें जाते हैं और मन्त्रोंके द्वारा शत्रुका नाश करते हैं ॥ ३ ॥

सप्तम अनुवाकमें उक्तीसवाँ सूक्त समाप्त ( ७०६ )

सप्तम अनुवाक समाप्त

“इमां धियं सप्तशीर्ष्णीं पिता नः” इति सूक्तस्य पूर्वसूक्तेन सह उक्तो विनियोगः ॥

“इमां धियं सप्तशीर्ष्णीं पिता नः” इस सूक्तका पूर्वसूक्तके साथ विनियोग कह दिया है ।

इमां धियं सप्तशीर्ष्णीं पिता न ऋतप्रजातां बृहती-  
मविन्दत् ।

तुरीयं स्विज्जनयद् विश्वजन्योयास्यं उक्थमिन्द्राय  
शंसन् ॥ १ ॥

इमाम् । धियम् । सप्तशीर्ष्णीम् । पिता । नः । ऋतप्रजाताम् ।  
बृहतीम् । अविन्दत् ।

तुरीयम् । स्वित् । जनयत् । विश्वजन्यः । अयास्यः । उक्थम् ।  
इन्द्राय । शंसन् ॥ १ ॥

हमारे पालक बृहस्पतिदेवने सत्यसे उत्पन्न हुई इस सात शिर वाली विशाल बुद्धिको पाया है, और उन विश्वजन्य अयास्यने इन्द्रसे कह कर तुरीयको प्रकट किया है ॥ १ ॥

ऋतं शंसन्त ऋजु दीध्याना दिवस्पुत्रासो असुरस्य  
वीराः ।

विप्रं पदमङ्गिरसो दधाना यज्ञस्य धाम प्रथमं मनन्त  
ऋतम् । शंसन्तः । ऋजु । दीध्यानाः । दिवः । गुत्रासः । असु-  
रस्य । वीराः ।

विप्रम् । पदम् । अङ्गिरसः । दधानाः । यज्ञस्य । धाम । प्रथमम् ।  
मनन्त ॥ २ ॥

सत्य बोलते हुए, सरलताका ध्यान रखते हुए प्राणबलीके  
वीर्यसे प्रकट हुए दिवस्पुत्र अङ्गिरागोत्री विप्रत्वको धारण करते  
हैं और यज्ञके धाममें प्रथम माने जाते हैं ॥ २ ॥

हंसैरिव सखिभिर्वावदङ्गिरश्मन्मयानि नहन्ता व्यस्यन्  
बृहस्पतिरभिकनिक्रदद् गा उत प्रास्तौदुच्च विद्वां  
अगायत् ॥ ३ ॥

हंसैःइव । सखिऽभिः । वावदत्ऽभिः । अश्मन्ऽमयानि । नहन्ता ।  
विऽअस्यन् ।

बृहस्पतिः । अभिऽकनिक्रदत् । गाः । उत । प्र । अस्तौत् । उत् ।  
च । विद्वान् । अगायत् ॥ ३ ॥

हंसकी समान भाषण करने वाले अपने मित्रोंसे ओले भरे  
हुए बंधक ( मेघों ) को खोलते हुए बृहस्पति बाणियोंका उच्चा-  
रण करते समय स्तुतिसी करते हैं और गाते हुए विद्वान्से प्रतीत  
होते हैं ॥ ३ ॥

अवो द्वाभ्यां पर एकया गा गुहा तिष्ठन्तीरनृतस्य  
सेतौ ।

बृहस्पतिस्तमसि ज्योतिरिच्छन्नुदुस्त्रा आकर्वि हि तिस्र  
आवः ॥ ४ ॥

अवः । द्वाभ्याम् । पुरः । एकया । गाः । गुहा । तिष्ठन्तीः ।  
अनृतस्य । सेतौ ।

बृहस्पतिः । तमसि । ज्योतिः । इच्छन् । उत् । उस्त्राः । आ ।  
अकः । वि । हि । तिस्रः । आवरित्यावः ॥ ४ ॥

अन्नको दो से फिर एकसे हृदयदेशमें स्थित वाणियोंको प्रकट करते हैं, और बृहस्पतिदेव अन्धकारमें प्रकाशको चाहते हुए तीन प्रकारके प्रकाशोंको करते हैं ॥ ४ ॥

विभिद्या पुरं शयथेमपाचीं निस्त्रीणि साकमुदधेर-  
कृन्तत् ।

बृहस्पतिरुषसं सूर्यं गामकं विवेद स्तनयन्निव द्यौः  
विभिद्यं । पुरम् । शयथां । ईम् । अपाचीम् । निः । त्रीणि ।  
साकम् । उदधेः । अकृन्तत् ।

बृहस्पतिः । उषसम् । सूर्यम् । गाम् । अकम् । विवेद । स्तनयन्-  
इव । द्यौः ॥ ५ ॥

आप पुरको विदीर्ण करके पश्चिममें शयन करते हैं और समुद्र के चारों भागोंको नहीं काटते हैं—अर्थात् उनमें वर्षा करते हैं । बृहस्पति ध्रुवको कडकाते हुएसे उषा सूर्य गौ और मन्त्रको प्राप्त होते हैं ॥ ५ ॥

इन्द्रो वलं रक्षितारं दुधानां करेणैव विचकर्ता रवेण ।



स्वेदाञ्जिभिराशिरमिच्छामानोरोदयत् पणिमा गा  
अमुष्णात् ॥ ६ ॥

इन्द्रः । बलम् । रक्षितारम् । दुधानाम् । करेणऽइव । वि । चकर्त ।  
रवेण ।

स्वेदाञ्जिभिः । आशिरम् । इच्छमानः । अरोदयत् । पणिम् ।  
आ । गाः । अमुष्णात् ॥ ६ ॥

इन्द्रदेव कामदुधा धेनुओंके रक्तक मेघको बलपूर्वक विदीर्ण  
कर डालते हैं, इन्होंने स्वेदाञ्जियोंसे दधिकी इच्छा करके पणि  
नामके असुरको रुलाया, कि-जिसने गौएँ चुरा ली थीं ॥६॥  
स ई सत्येभिः सखिभिः शुचन्निर्गोधायसं वि धन-  
सैरदर्दः ।

ब्रह्मणस्पतिर्वृषभिर्वराहैर्धर्मस्वेदेभिर्द्रविणं व्यानट् ७

सः । ईम् । सत्येभिः । सखिभिः । शुचत्भिः । गोऽधायसम् ।  
वि । धनऽसैः । अदर्दरित्यदर्दः ।

ब्रह्मणः । पतिः । वृषभिः । वराहैः । धर्मस्वेदेभिः । द्रविणम् ।  
वि । आनट् ॥ ७ ॥

वह इन्द्रदेव मित्ररूप यज्ञात्मक धनप्रद मेघों को तापदायक  
यज्ञोंसे पृथ्वीको पुष्ट करने वाले मेघको विदीर्ण करते हैं, और  
ब्रह्मणस्पति वर्षक धर्मस्वेद मेघोंके द्वारा धनमें व्याप्त होजाते हैं ७  
ते सत्येन मनसा गोपतिं गा इयानासं इषण्यन्त धीभिः

बृहस्पतिर्मिथोऽवद्यपेभिरुदुसिया असृजत स्वयुग्भिः

ते । सत्येन । मनसा । गोऽपतिम् । गाः । इयानासः । इषण्यन्त ।  
धीभिः ।

बृहस्पतिः । मिथःऽअवद्यपेभिः । उत् । उदुसियाः । असृजत ।

स्वयुक्ऽभिः ॥ ८ ॥

बृह मेघ सत्य मनसे गोपति-वृषभ और गौओं पर जानेंकी  
इच्छा करते हुए अपनी बुद्धियोंसे उनको प्राप्त होते हैं और बृह-  
स्पति देव उन स्वयुक् अनवद्यप-प्रशस्त शब्दकी रक्षा करनेवाले  
मेघोंके द्वारा गौओंमें मिलते हैं ॥ ८ ॥

तं वर्धयन्तो मतिभिः शिवाभिः सिंहमिव नानन्दतं  
सधस्थे ।

बृहस्पतिं वृषणं शूरसातौ भरेभरे अनु मदेम जिष्णुम् ६

तम् । वर्धयन्तः । मतिऽभिः । शिवाभिः । सिंहम्ऽइव । नानन्द-

तम् । सधऽस्थे ।

बृहस्पतिम् । वृषणम् । शूरऽसातौ । भरेऽभरे । अनु । मदेम ।

जिष्णुम् ॥ ६ ॥

उन यज्ञमें ( वा संग्राममें ) सिंहकी समान बारम्बार गरजने  
वाले वर्षक जयशील बृहस्पतिदेवको हम अपनी कन्याणमयी  
बुद्धियोंसे बढ़ाते हुए प्रत्येक संग्रामके अवसर पर हर्षित करते हैं ६  
यदा वाजमसनद् विश्वरूपमाद्यामरुक्षदुत्तराणि सद्यं

बृहस्पतिं वृषणं वर्धयन्तो नाना सन्तो विभ्रतो  
ज्योतिरासा ॥ १० ॥

यदा । वाजम् । असनत् । विश्वऽरूपम् । आ । धाम् । अरुक्षत् ।

उत्स्तराणि । सन् ।

बृहस्पतिम् । वृषणम् । वर्धयन्तः । नाना । सन्तः । विभ्रतः ।

ज्योतिः । आसा ॥ १० ॥

जब यह विश्वरूप—सब प्रकारके रूपों वाले गेहूँ जौ चावल  
आदि—अन्नको देना चाहते हैं तब द्युलोकरूपी भवन पर आरुढ़  
होते हैं, उस समय अनेक होते हुए और ज्योतिको धारण करते  
हुए बुद्धिसे वर्षक बृहस्पतिको बढ़ाते हैं ॥ १० ॥

सत्यामाशिषं कृणुता वयोधैः कीरिं चिच्चवथ स्वेभिरेवैः  
पश्चा मृधो अप भवन्तु विश्वास्तद् रोदसी शृणुतं  
विश्वमिन्वे ॥ ११ ॥

सत्याम् । आऽशिषम् । कृणुत । वयःऽधैः । कीरिम् । चित् । हि ।

अवथ । स्वेभिः । एवः ।

पश्चा । मृधः । अप । भवन्तु । विश्वाः । तत् । रोदसी इति ।

शृणुतम् । विश्वमिन्वे इति विश्वम्ऽइन्वे ॥ ११ ॥

अन्नको पुष्ट करने वाले कारणोंसे आशीर्वादको सत्य करिये,  
और अपने गमनोंसे इस स्तोताकी रक्षा करिये, जितने युद्ध हैं  
सब पीछे होजावें, इस बातको हे धावापृथिवी ! आप अग्न्यर्चिके  
प्रचण्ड होने पर सुनिये ॥ ११ ॥



इन्द्रो॑ म॒ह्ना म॒हतो॑ अ॒र्णव॑स्य॒ वि॒मूर्धा॑नम॒भिन॑द॒र्बुद॑स्य ।  
अ॒ह॒न्नहि॑मरि॒णात् स॒प्त सि॒न्धून् दे॒वैर्द्या॑वापृथि॒वी प्रां॒-  
व॑तं नः ॥ १२ ॥

इन्द्रः । म॒ह्ना । म॒हतः । अ॒र्णव॑स्य । वि । मूर्धा॑नम् । अ॒भिन॑त् ।  
अ॒र्बुद॑स्य ।

अ॒ह॒न् । अ॒हिम् । अ॒रि॒णात् । स॒प्त । सि॒न्धून् । दे॒वैः । द्या॒वापृ॒थि॒वी इति॑ ।  
प्र । अ॒व॒त॒म् । नः ॥ १२ ॥

इति अष्टमेनुवाके प्रथमं सूक्तम् ॥

इन्द्रदेव अपनी महती महिमासे जल वाले मेघके मस्तकको बिदीर्ण कर डालते हैं, वह मेघ पर प्रहार करके दमकती हुई जलविन्दुओंसे सात नदियोंको प्रवृत्त कर देते हैं । हे द्यावापृथिवी ! आप हमारी रक्षा करिये ॥ १२ ॥

अष्टम अनुवाकमें प्रथम सूक्त समाप्त ( ७०७ )

अतिरान्ने मध्यमे पर्याये “अभि त्वा वृषभा सुते” [ २०. २२ ]  
“अभि प्र गोपतिं गिरा” [ २०. ६२ ] एतौ स्तोत्रियानुरूपौ  
उक्थशंसनधर्मकौ भवतः । तद् उक्तं वैताने । “अभि त्वा वृषभा  
सुतेभि प्र गोपतिं गिरेति स्तोत्रियानुरूपौ” इति [ वै० ४. २ ] ॥

तथा पृष्ठथषडहस्य षष्ठेहनि प्रातःसवने “अभि प्र गोपतिं गिरा”  
इत्येकविंशतिपृच आवपते । तद् उक्तं वैताने । “षष्ठेभि प्र गोपतिं  
गिरेत्येकविंशतिः” इति [ वै० ६. २ ] ॥

तथा अभिजिति “अभि प्र गोपतिं गिरा” इत्याज्यस्तोत्रियो  
भवति । तद् उक्तं वैताने । अभिजित्यभि प्र गोपतिं गिरेति च”  
इति [ वै० ८. २ ] ॥

तथा त्रिककुदशाहे अस्य विनियोगः “क ई वेद सुते सचा”  
[ २०. ५३ ] इत्यनेन सह उक्तः ॥

अतिरात्रके मध्यमपर्यायमें “अभि त्वा वृषभा सुते” (२०।२२)  
“अभि प्र गोपतिं गिरा” (२०।६२) ये उक्त्यंशंसनधर्मक  
स्तोत्रिय और अनुरूप होते हैं। इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा  
है, कि—“अभि त्वा वृषभा सुतेभि प्र गोपतिं गिरेति स्तोत्रिया-  
नुरूपौ” (वैतानसूत्र ४।२) ॥

तथा पृष्ठयषडहके छठे दिन प्रातःसवनमें “अभि प्र गोपतिं गिरा”  
इन इक्कीस ऋचाओंको पढ़े। इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि  
“षष्ठेभि प्र गोपतिं गिरेत्येकविंशतिः” इति (वैतानसूत्र ६।२)

तथा अभिजित्में “अभि प्र गोपतिं गिरा” यह आड्यस्तो-  
त्रिय होता है। इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है कि—अभिजि-  
त्यभि प्र गोपतिं गिरेति च” इति (वैतानसूत्र ८।२) ॥

अभि प्र गोपतिं गिरेन्द्रमर्च यथा विदे । सूनुं सत्यस्य  
सत्पतिम् ॥ १ ॥

अभि । प्र । गोपतिम् । गिरा । इन्द्रम् । अर्चः । यथा । विदे ॥

सूनुम् । सत्यस्य । सत्पतिम् ॥ १ ॥

हे स्तोतः ! गौओंके स्वामी इन्द्रको मैं जिस प्रकार प्राप्त कर  
सकूँ अर्थात् वह जिस प्रकार वह हमको अपना समझने लगे  
तिस प्रकार तू इन्द्रकी श्रेष्ठतासे पूजा कर। यह इन्द्रदेव सत्य  
फल वाले यज्ञके पुत्रस्थानीय हैं, और सत्कर्म करने वाले अपने  
सेवकोंका पालन करने वाले हैं ॥ १ ॥

आ हरयः ससृज्जिरेरुषीरधि बर्हिषि । यत्राभि संन-  
वामहे ॥ २ ॥

आ । हरयः । समृजिरे । अरुषीः । अधि । बर्हिषि ॥ यत्र ।

अभि । समृजनवामहे ॥ २ ॥

रूपवान् हरि नामक घोड़े फैली हुई उन कुशाओं पर इन्द्रके रथको संयुक्त करें, जिन कुशाओं पर हम इन्द्रकी स्तुति कर रहे हैं २ इन्द्राय गाव आशिरं दुदुहे वज्रिणे मधु । यत् सी-मुपहरे विदत् ॥ ३ ॥

इन्द्राय । गावः । आशिरम् । दुदुहे । वज्रिणे । मधु ॥ यत् । सीम् । उपहरे । विदत् ॥ ३ ॥

वज्रयुक्त इन्द्रके लिये गौएँ मधुर दुग्धको दुहती हैं, उस समय समीपमें वर्तमान मधुकी समान स्वादिष्ट सोमको इन्द्र सब ओर से पाते हैं ॥ ३ ॥

उद् यद् ब्रध्नस्य विष्टपं गृहमिन्द्रश्च गन्वहि ।

मध्वः पीत्वा सचेवहि त्रिः सप्त सख्युः पदे ॥ ४ ॥

उत् । यम् । ब्रध्नस्य । विष्टपम् । गृहम् । इन्द्रः । च । गन्वहि ।

मध्वः । पीत्वा । सचेवहि । त्रिः । सप्त । सख्युः । पदे ॥ ४ ॥

जो ब्रध्नका घर स्वर्ग है उसमें हम और इन्द्र जावें, हम इक्कीस बार मधु पीकर इन्द्रके मित्र बनें ॥ ४ ॥

अर्चन्त प्रार्चन्त प्रियमेधासो अर्चन्त ।

अर्चन्तु पुत्रका उत पुर न धृष्णवर्चन्त ॥ ५ ॥

अर्चन्त । प्र । अर्चन्त । प्रियमेधासः । अर्चन्त ।

अर्चन्तु । पुत्रकाः । उत । पुरम् । न धृष्णु । अर्चन्त ॥ ५ ॥



हे प्रिय बुद्धि वालों ! आप इन्द्रका पूजन करिये, पूजन करिये श्रेष्ठ रीतिसे पूजन करिये, हे पुत्रो ! तुम इन्द्रका पूजन करो सामने खड़े हुएकी समान उनका अपने शत्रुओंको हवाने वाला पूजन करो ॥ ५ ॥

अव स्वराति गर्गरो गोधा परि सनिष्वणत् ।  
पिङ्गा परि चनिष्कददिन्द्राय ब्रह्मोद्यतम् ॥ ६ ॥

अव । स्वराति । गर्गरः । गोधा । परि । सनिष्वणत् ।

पिङ्गा । परि । चनिष्कदत् । इन्द्राय । ब्रह्मा । उद्यतम् ॥ ६ ॥

जब इन्द्रके लिये मन्त्र उद्यत होता है तब गर्गर-कलश-शब्द करता है, धनुषकी प्रत्यङ्गाकी समान शब्द करता है और पिशंग वर्ण वाला पदार्थ चलता है ॥ ६ ॥

आ यत् पतन्त्येन्यः सुदुघा अनपस्फुरः ।  
अपस्फुरं गृभायत् सोममिन्द्राय पातवे ॥ ७ ॥

आ । यत् । पतन्ति । एन्यः । सुदुघाः । अनपस्फुरः ।

अपस्फुरम् । गृभायत् । सोमम् । इन्द्राय । पातवे ॥ ७ ॥

ये जो श्वेत वर्णकी गौएँ आरही हैं (इनमें) अनपस्फुर-अविनाशी ( नष्ट न होने देने वाला ) पदार्थ है उस अविनाशी पदार्थ को ग्रहण करो सोमको इन्द्रके पानके लिये ग्रहण करो ॥ ७ ॥

अपादिन्द्रो अषादमिर्विश्वे देवा अमत्सत ।

वरुण इदिह क्षयत् तमापो अभ्यनूषत वत्सं संशि-  
श्वरीरिव ॥ ८ ॥

अपात् । इन्द्रः । अपात् । असिः । विश्वे । देवाः । अमत्सत् ।

वरुणः । इत् । इह । ज्ञायत् । तम् । आपः । अभि । अनूषत् ।

वत्सम् । संशिश्वरीऽइव ॥ ८ ॥

इसको इन्द्रदेवने पीलिया है, अग्निदेवने इसका पान कर लिया है, विश्वेदेवता इस सोमका पान करके मदमें भर गए हैं, हे जलों ! यदि वरुण यहाँ निवास करते हैं तो संशिश्वरीके वत्सकी समान उनकी स्तुति करो ॥ ८ ॥

सुदेवो असि वरुण यस्य ते सप्त सिन्धवः ।

अनुत्तरन्ति काकुदं सूर्यम् सुषिरामिव ॥ ९ ॥

सुदेवः । असि । वरुण । यस्य । ते । सप्त । सिन्धवः ।

अनुत्तरन्ति । काकुदम् । सूर्यम् । सुषिराम् इव ॥ ९ ॥

हे वरुणदेव ! आप शोभन देवता हैं, क्योंकि—आपके पास अश्वा, तितुवा, अभ्रपत्नी, मेघपत्नी, वर्षयन्ती और पुरस्तात् अरुन्धा नाम वाली सात अन्तरिक्ष नदियों ( वा सात समुद्र ) हैं । जैसे ऊँचे स्थानका जल नगरके जल निकलनेकी भूमिकी ओर दौड़ता है, इसी प्रकार वे नदियों जल बहाती हैं ॥ ९ ॥

यो व्यतीरफाणयत् सुयुक्ताँ उप दाशुषे ।

तको नेता तदिद् वपुरुपमा यो अमुच्यत ॥ १० ॥

यः । व्यतीन् । अफाणयत् । सुयुक्तान् । उप । दाशुषे ।

तवः । नेता । तत् । इत् । वपुः । उपमा । यः । अमुच्यत १०

जो हविदाता यजमानके लिये सुयुक्त व्यक्तियोंको फाणित करते हैं, तब हैं, नेता हैं, जो छूट गए हैं उनकी शरीर उपमा है अनीदु शक्र ओहत इन्द्रो विश्वा अति द्विषः ।

भिनत् कनीन ओदनं पच्यमानं परो गिरा ॥११॥

अति । इत् । ऊं । शत । शक्रः । ओहते । इन्द्रः । विश्वाः ।

अति । द्विषः ।

भिनत् । कनीनः । ओदनम् । पच्यमानम् । परः । गिरा ॥११॥

इन्द्रदेव इस बड़े भारी भारको सम्हालते हैं, इन्द्रदेव समस्त शत्रुओंको दबा देते हैं, इन्होंने कनीन होने पर भी मन्त्रसे पकते हुए ओदनको भेद डाला था ॥ ११ ॥

अर्भको न कुमारकोधिं तिष्ठन्नवं रथम् ।

स पक्षन्महिषं मृगं पित्रे मात्रे विभुक्रतुम् ॥१२॥

अर्भकः । न । कुमारकः । अधि । तिष्ठत् । नवम् । रथम् ।

सः । पक्षत् । महिषम् । मृगम् । पित्रे । मात्रे । विभुऽक्रतुम् १२

श्रेष्ठ बालककी समान वह नवीन रथ पर सवार होते हैं और माता पिता ( आवापृथिवी ) के लिये विभुक्रतु महिष और मृग का पचन करते हैं ॥ १२ ॥

आ तू सुशिप्र दंपते रथं तिष्ठा हिरण्ययम् ।

अध द्युक्षं संचेवहि सहस्रपादमरुषं स्वस्तिगामनेहसम्

आ । तु । सुऽशिप्र । दम्पते । रथम् । तिष्ठ । हिरण्ययम् ।



अध । यु॒क्तम् । स॒चे॒वहि॒ । स॒हस्र॑ऽपादम् । अ॒रु॒षम् । स्व॒स्तिऽ-  
गा॒म् । अ॒ने॒ह॒सम् ॥ १३ ॥

हे सुन्दर ठोड़ी वाले दम्पते इन्द्र ! आप सुवर्णके रथ पर  
अधिष्ठित हूजिये और हम भी फिर सहस्रों मार्ग वाले, रूपवान्  
स्वस्तिमय बाणियोंसे सम्पन्न निष्पाप स्वर्ग पर आरूढ़ होवें १३  
तं धे॒मि॒त्था न॒मस्वि॒न उप॑ स्व॒राज॑मासते ।

अ॒र्थं चि॒दस्य॑ सु॒धितं॑ यदे॒तव॑ आ॒वर्त॑यन्ति दा॒वने॑ १४

तम् । घ । ई॒म् । इ॒त्या । न॒मस्वि॒नः । उप॑ । स्व॒राज॑म् । आ॒सते॑ ।

अ॒र्थम् । चि॒त् । अ॒स्य । सु॒धित॑म् । यत् । ए॒तवे॑ । आ॒वर्त॑यन्ति ।

दा॒वने॑ ॥ १४ ॥

उनको इस प्रकार जान कर प्रणाम करने वाले पुरुष स्वराज  
पर बैठते हैं, और इनके पास जो धन भली प्रकार स्थित है उस  
को ऋत्विज हविर्दाता यजमानके लिये लाते हैं ॥ १४ ॥

अ॒नु प्र॒त्नस्यो॑कसः प्रि॒यमे॑धास ए॒षाम् ।

पूर्वा॑मनु प्रय॒तिं वृ॒क्तव॑र्हिषो हि॒तप्र॑यस आ॒शत॑ १५

अ॒नु । प्र॒त्नस्य॑ । ओ॒कसः॑ । प्रि॒यमे॑धासः । ए॒षाम् ।

पूर्वा॑म् । अ॒नु । प्र॒यति॑म् । वृ॒क्तव॑र्हिषः । हि॒तप्र॑यसः । आ॒शत॑

इनके प्राचीन भवनके प्रियबुद्धि ऋत्विज हितकारक अन्न  
वाले होकर पूर्वा प्रयतिका उपभोग लगाते हैं ॥ १५ ॥

यो राजा चर्षणीनां याता रथेभिरघ्निगुः ।

विश्वासां तरुता पृतनानां ज्येष्ठो यो वृत्रहा गृणे १६

यः । राजा । चर्षणीनाम् । याता । रथेभिः । अघ्निगुः ।

विश्वासां । तरुता । पृतनानाम् । ज्येष्ठः । यः । वृत्रहा । गृणे

जो मनुष्योंके राजा इन्द्रदेव रथसे चलते हैं । सम्पूर्ण सेनाओं को तरने वाले हैं और ज्येष्ठ हैं, उनकी मैं स्तुति करता हूँ १६

इन्द्रं तं शुम्भ पुरुहन्मन्नवसे यस्य द्विता विधर्तरि ।

हस्ताय वज्रः प्रति धायि दर्शतो महो दिवे न सूर्यः

इन्द्रम् । तम् । शुम्भ । पुरुहन्मन् । अवसे । यस्य । द्विता । वि-

धर्तरि ।

हस्ताय । वज्रः । प्रति । धायि । दर्शतः । महः । दिवे । न । सूर्यः

हे पुरुहन्मन् ! इस विशेषरूपसे धारक यज्ञमें आप अन्नके लिये इन्द्रको अलंकृत करिये, उनकी सत्ता मध्यमलोक अन्तरिक्ष और स्थान ( स्वर्ग ) में भी है । उन दर्शनीयका क्रीड़ाके लिये हाथमें उठाया हुआ वज्र पूजनीय सूर्यसा दीखता है ॥ १७ ॥

नकिष्टं कर्मणा नशद् यश्चकार सदावृधम् ।

इन्द्रं न यज्ञैर्विश्वगूर्तमृभ्वसमधृष्टं धृष्णवोजसम् १८

नकिः । तम् । कर्मणा । नशत् । यः । चकार । सदावृधम् ।

इन्द्रम् । न । यज्ञैः । विश्वगूर्तम् । ऋभ्वसम् । अधृष्टम् । धृष्णव-

ओजसम् ॥ १८ ॥

जो पुरुष यज्ञोंके द्वारा, सब कार्योंमें प्रचण्ड बली, सदा वृद्धि करने वाले, ऋभ्वस, अघृष्ट और धर्षक तेज वाले इन्द्रकी सेवा करता है, कोई पुरुष उसको अपने कर्मसे नष्ट नहीं कर सकता १८

अषांरुहमुग्रं पृतनासु सासहिं यस्मिन् महीरुरुज्रयः।  
सं धेनवो जायमाने अनोनवुर्द्यावः क्षामो अनोनवुः  
अषांरुहम् । उग्रम् । पृतनासु । ससहिम् । यस्मिन् । महीः । उरुरुज्रयः  
सम् । धेनवः । जायमाने । अनोनवुः । द्यावः । क्षामः । अनोनवुः

जो इन्द्रदेव सेनाओंमें असह्य हैं, और प्रचण्ड हैं, जिनमें विशाल शरण मार्ग हैं, जिनके प्रकट होने पर बाणियों भली प्रकार स्तुति करती हैं, धुलोक और पृथिवीलोक स्तुति करते हैं ( उन इन्द्रकी तुम स्तुति करो ) ॥ १९ ॥

यद् द्यावं इन्द्र ते शतं शतं भूमीरुत स्युः ।  
न त्वां वज्रिन्सहस्रं सूर्या अनु न जातमष्ट रोदसी  
यत् । द्यावः । इन्द्र । ते । शतम् । शतम् । भूमीः । उत । स्यु-  
रिति स्युः ।

न । त्वा । वज्रिन् । सहस्रम् । सूर्याः । अनु । न । जातम् । अष्ट ।  
रोदसी इति ॥ २० ॥

हे भगवन् ! इन्द्र ! यदि सैंकड़ों धुलोक और सैंकड़ों भूलोक हों वा सहस्रों सूर्य और द्यावापृथिवी होजावें तथापि आप मादु-  
र्भूत हुए मात्रको भी वह नहीं पहुँच सकते ॥ २० ॥

आषप्राथमहिना वृषण्यां वृषन् विश्वां शविष्ठ शवसा



अस्माँ अव मघवन् गोमंति व्रजे वज्रिं चित्राभिरू-  
तिभिः ॥ २१ ॥

आ । प॒माथ । म॒हिना । वृ॒ष्ण्या । वृ॒षन् । वि॒श्वा । श॒विष्ठ ।  
शवसा ।

अस्मान् । अव । मघ॒ऽवन् । गो॒ऽमंति । व्र॒जे । वज्रिन् । चि॒त्राभिः ।  
ऊ॒तिऽभिः ॥ २१ ॥

इति अष्टमेनुवाके द्वितीयं सूक्तम् ॥

हे वज्रिन् शविष्ठ मघवन् वर्षक इन्द्र ! हमारे गौओं वाले व्रज में अपना विचित्र रक्तक शक्तियोंसे हमारी रक्षा करिये और अपनी महिमासे हमको बलपूर्वक बढ़ाइये ॥ २१ ॥

अष्टम अनुवाकमें द्वितीय सूक्त समाप्त ( ७०८ )

दशरात्रे दशमेहनि “उत् त्वा मन्दन्तु” इति आज्यस्तोत्रियो भवति । तद् उक्तं वैताने । “उत् त्वा मन्दत्विज्याज्यस्तोत्रियः” इति [ वै० ६. ३ ] ॥

तथा श्येनसंदंशाजिरवज्रेषु एकाहेषु “सुरूपकृन्नुमृतये” [ २०. ५७ ] “उत् त्वा मन्दन्तु स्तोमाः” [ २०. ६३ ] “त्वामिद्धि हवामहे” [ २०. ६८ ] इत्याद्यावाज्यस्तोत्रियौ विकल्पितौ भवतः । तृतीयः पृष्ठस्तोत्रियो भवति । तद् उक्तं वैताने । “श्येनसंदंशाजिरवज्रेषु सुरूपकृन्नुमृतय उत् त्वा मन्दन्तु स्तोमास्त्वामिद्धि हवामहे इति” इति [ वै० ८. १ ] ॥

महाव्रते प्रातःसवने “ईह्वयन्तीरपस्युवः” [ २०. ६३. ४ ] इति पञ्चर्चं सूक्तम् आवापस्थाने आवपते । तद् उक्तं वैताने । “ईह्वयन्तीरपस्युव इत्यावपते” इति [ वै० ६. ४ ] ॥

दशरात्रके दशम दिनमें “उत् त्वा मन्दन्तु” यह आज्यस्तोत्रिय होता है। इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि—“उत् त्वा मन्दन्तिवत्याज्यस्तोत्रियः” ( वैतानसूत्र ६ । ३ ) ॥

तथा श्येनसंदंशाजिरवज्र एकाहोंमें “सुरूपकृत्तुमृतये” ( २० । ५७ ) “उत् त्वा मन्दन्तु स्तोमाः” ( २० । ६३ । ) “त्वामिद्धि हवामहे” ( २० । ६८ ) ये विकल्पित आज्यस्तोत्रिय होते हैं। तृतीय पृष्ठस्तोत्रिय होता है, इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि—“श्येनसंदंशाजिरवज्रेषु सुरूपकृत्तुमृतये उत् त्वा मन्दन्तु स्तोमास्त्वमिद्धि हवामहे” ( वैतानसूत्र ८ । १ ) ॥

महाव्रतके प्रातःसवनमें “ईक्ष्वन्तीरपस्युवः” ( २० । ६३ । ४ ) इस पञ्चर्च सूक्तको आवापस्थानमें पढ़ा जाता है। इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि—“ईक्ष्वन्तीरपस्युव इत्यावपते” ( वैतानसूत्र ६ । ४ ) ॥

उत् त्वा मन्दन्तु स्तोमाः कृणुष्व राधो अद्रिवः । अव  
ब्रह्मद्विषो जहि ॥ १ ॥

उत् । त्वा । मन्दन्तु । स्तोमाः । कृणुष्व । राधः । अद्रिवः ॥

अव । ब्रह्मद्विषः । जहि ॥ १ ॥

हे वज्रधारिन् इन्द्र ! यह स्तोत्र आपको आनन्द देवें, आप हमें धन प्रदान करिये और ब्रह्मद्वेषियोंका संहार करिये ॥१॥

पदा पणीरराधसो नि बाधस्व महौ असि । नहित्वा  
कश्चन प्रति ॥ २ ॥

पदा । पणीन् । अराधसः । नि । बाधस्व । महान् । असि ॥

नहि । त्वा । कः । चन । प्रति ॥ २ ॥

आप पणि नामक असुरोंको निर्धन करके उनका संहार करिये,  
क्योंकि—आप महान् हैं, आपसे टक्कर लेने वाला कोई नहीं है २  
त्वमींशिषे सुतानामिन्द्र त्वमसुतानाम् । त्वं राजा  
जनानाम् ॥ ३ ॥

त्वम् । ईंशिषे । सुतानाम् । इन्द्र । त्वम् । असुतानाम् ॥ त्वम् ।

राजा । जनानाम् ॥ ३ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप अभिषुत और अनभिषुत ( निचोड़े और  
न निचोड़े हुए ) सोमोंके ईश्वर हैं और जनोंके ईश्वर हैं ॥३॥  
ईक्ष्वन्तीरपस्युव इन्द्रं जातमुपासते । भेजानासः सु-  
वीर्यम् ॥ ४ ॥

ईक्ष्वन्तीः । अपस्युवः । इन्द्रम् । जातम् । उप । आसते ॥ भेजा-  
नासः । सुवीर्यम् ॥ ४ ॥

सुन्दर शक्तिका सेवन करती हुई जल चाहती हुई सोमात्मक  
औषधियें प्रकट होते ही इन्द्रकी उपासना करने लगती हैं ॥४॥  
त्वमिन्द्र बलादधि सहसो जात ओजसः । त्वं वृषन्  
वृषेदसि ॥ ५ ॥

त्वम् । इन्द्र । बलात् । अधि । सहसः । जातः । ओजसः ॥

त्वम् । वृषन् । वृषा । इत् । असि ५ ॥

हे इन्द्रदेव ! वर्षक ओजके बलसे प्रकट हुए हैं हे वृषन् !  
आप फलोंकी वर्षा करने वाले ही हैं ॥ ५ ॥



त्वमिन्द्रासि वृत्रहा व्यन्तरिक्षमतिरः । उद्ध्यामस्तम्भना  
ओजसा ॥ ६ ॥

त्वम् । इन्द्र । असि । वृत्रहा । वि । अन्तरिक्षम् । अतिरः ॥

उत् । ध्याम् । अस्तम्भनाः । ओजसा ॥ ६ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप वृत्र ( असुर वा मेघ ) का संहार करने वाले हैं और आप अन्तरिक्षको विशिष्टतासे पार कर जाते हैं और आप अपने ओजसे धलोकको स्तम्भित कर डालते हैं ॥ ६ ॥

त्वमिन्द्र सजोषसमर्क विभर्षि बाहोः । वज्रं शिशानि  
ओजसा ॥ ७ ॥

त्वम् । इन्द्र । सजोषसम् । अर्कम् । विभर्षि । बाहोः ॥ वज्रम् ।

शिशानः । ओजसा ॥ ७ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप प्रीति उत्पन्न करने वाले मन्त्रको धारण करके अपनी भुजाओंके बलसे वज्रको तीक्ष्ण करके धारण करते हैं ॥ ७ ॥

त्वमिन्द्राभिभूरसि विश्वा जातान्योजसा । स विश्वा  
भुव आभवः ॥ ८ ॥

त्वम् । इन्द्र । अभिभूः । असि । विश्वा । जातानि । ओजसा ॥

सः । विश्वाः । भुवः । आभवः ॥ ८ ॥

इति अष्टमेनुवाके तृतीयं सूक्तम् ॥

हे इन्द्रदेव ! जितने प्रकट होने वाले पदार्थ हैं उनको आप अपने बलसे दवा सकते हैं, वह आप ( हमारे विरुद्ध ) प्रकट होने वाली सब शक्तियोंका पराभव करिये ॥ ८ ॥

अष्टम अनुशास्त्रमे तृतीय सूक्त समाप्त ( ७०६ )

तृतीये छन्दोमेहनि “आ यात्विन्द्रः स्वपतिर्मदाय” इत्यस्य “अध्वर्यवोरुणम्” [२०. ८७] इत्यनेन सह उक्तो विनियोगः ॥

तृतीय छन्दोम दिनमें “आ यात्विन्द्रः स्वपतिर्मदाय” इसका “अध्वर्यवोरुणम्” ( २०।८७ ) के साथ विनियोग कह दिया है

आ यात्विन्द्रः स्वपतिर्मदाय यो धर्मणा तूतुजानस्तु-  
विष्मान् ।

प्रत्स्वच्चाणो अति विश्वा सहांस्यपारेण महता वृष्णयेन  
आ । यातु । इन्द्रः । स्वपतिः । मदाय । यः । धर्मणा । तूतुजानः ।

तुविष्मान् ।

प्रत्स्वच्चाणः । अति । विश्वा । सहांसि । अपारेण । महता ।

वृष्णयेन ॥ १ ॥

बलवान् इन्द्र कि-जो धर्मसे शीघ्रता करते हैं, वह धनपति इन्द्र मदके लिये आवें, और अपने अपार महान् वर्षक बलसे सब दवाने वालोंको क्षीण करें ॥ १ ॥

सुध्रमा रथः सुयमा हरां ते मिम्यक्ष वज्रो नृपते गभंस्तौ  
शीर्भं राजन् सुपथा याह्यर्वाङ् वर्धाम ते पपुषो

वृष्णयानि ॥ २ ॥

सु॒ऽस्थामा । रथः । सु॒ऽपमा । हरी॑ इति । ते । मि॒म्य॒क्ष । वज्रः ।

नृ॒ऽपते । ग॒भ॒स्तौ ।

शी॒भम् । रा॒जन् । सु॒ऽपथा । आ । या॒हि । अ॒र्वाङ् । वर्धाम ।

ते । प॒पुषः । वृ॒ण॒यानि ॥ २ ॥

आपके रथमें बैठनेका स्थान अच्छा है, आपके घोड़े बली प्रकार वधमें रहने वाले हैं । हे नृपते ! आपके हाथमें वज्र प्राप्त होता है हे राजन् ! आप स्वर्गसे नीचेको सुन्दर मार्गसे आइये हम आप पान करनेकी इच्छा वालेके अभिवर्षक बलोंको बढ़ाते हैं २

ए॒न्द्र॒वाहो॑ नृ॒पतिं॑ वज्र॑वाहु॒मु॒ग्रमु॒ग्रासं॑ स्त॒विषासं॑ ए॒नम् प्र॒त्वि॒क्षसं॑ वृ॒षभं॑ स॒त्यशु॒ष्ममे॒मस्म॒त्रा स॒ध॒मादो॑ वह॒न्तु ३

आ । इ॒न्द्र॒ऽवाहः । नृ॒ऽपतिम् । वज्र॑ऽवाहुम् । उ॒ग्रम् । उ॒ग्रासः ।

त॒वि॒षासः । ए॒नम् ।

प्र॒ज्त्व॒क्षसम् । वृ॒ष॒भम् । स॒त्यशु॒ष्मम् । आ । ई॒म् । अ॒स्म॒ऽवा ।

स॒ध॒मादः । वह॒न्तु ॥ ३ ॥

इन्द्रको सवारी देनेवाले उग्र बलवान् घोड़े इन नृपति, भुजाओं में वज्रको धारण करने वाले, उग्र शत्रुओंको क्षीण करने वाले, फलवर्षक, सत्यबली इन्द्रको इस यज्ञमें लावें ॥ ३ ॥

ए॒वा प॒तिं द्रो॒णसा॒चं स॒चे॒तस॒मूर्जं॑ स्क्व॒भं ध॒रुण॑ आ वृ॒षाय॑से ।



ओजः कृष्व सं गृभाय त्वे अप्यसो यथा केनिपाना-  
मिनो वृधे ॥ ४ ॥

एव । पतिम् । द्रोणऽसाचम् । सऽचेतसम् । ऊर्जः । स्कम्भम् ।  
धरुणे । आ । वृषऽयसे ।

ओजः । कृष्व । सम् । गृभाय । त्वे इति । अपि । असः । यथा ।  
केऽनिपानाम् । इनः । वृधे ॥ ४ ॥

( हे अश्विज ! ) द्रोण नामक पात्रसे संयुक्त होने वाले, ज्ञान-  
वान, बली, स्कम्भ इन्द्रको आप जलमें धरसाइये, आप बल प्रदान  
करिये, मुझको भली प्रकार ग्रहण करिये, मैं केनिपानोंकी वृद्धि  
के लिये आपमें होऊँ ॥ ४ ॥

गमन्नस्मे वसून्या हि शंसिषं स्वाशिषं भरमा याहि  
सोमिनः ।

त्वमीशिषे सास्मिन्ना सत्सि बर्हिष्यनाधृष्या तव  
पात्राणि धर्मणा ॥ ५ ॥

गमन् । अस्मे इति । वसूनि । आ । हि । शंसिषम् । सुऽआशि-  
षम् । भरम् । आ । याहि । सोमिनः ।

त्वम् । ईशिषे । सः । अस्मिन् । आ । सत्सि । बर्हिषि । अनाधृष्या ।  
तव । पात्राणि । धर्मणा ॥ ५ ॥

हे इन्द्रदेव ! इस यजमानमें घनको प्राप्त कराइये, इस यन्त्र-  
पाठ करने वालेको सुन्दर आशीर्वाद सम्पन्न करिये और इस  
सोम वाले यजमानके घरमें आइये, आप ईश्वर हैं अतः इस  
कुशासन पर बैठिये, धारण शक्तिके कारण आपके पात्र अघृष्य हैं ५

पृथक् प्रायन् प्रथमा देवहूतयोऽकृण्वत श्रवस्यानि दुष्टरा ।  
न ये शेकुर्यज्ञियां नावमारुहमीमैव ते न्यविशन्त केपयः  
पृथक् । प्र । आयन् । प्रथमाः । देवऽहूतयः । अकृण्वत । श्रवस्यानि ।

दुस्तरा ।

न । ये । शेकुर्यः । यज्ञियाम् । नावम् । आरुहम् । ईमा । एव ।

ते । नि । अविशन्त । केपयः ॥ ६ ॥

जो विद्या और कर्मके अनुरूप पृथक् २ देवयान वा पितृ-  
यानसे प्रयाण करना चाहते हैं और जो सर्व साधारणसे कठि-  
नतासे करने योग्य देवहूति यज्ञोंको करते हैं किन्तु आपकी  
कृपादृष्टि न होने पर वे यज्ञरूपी नौका पर नहीं चढ़ सकते और  
यज्ञरूपी नौका पर न चढ़नेके कारण वे कपूय कर्मको ही करते  
हैं अतः कर्मानुसार इसी लोककी किसी योनिमें पड़े रहते हैं ६

एवैवापागपरे सन्तु दूद्योश्वा येषां दुर्युजं आयुयुञ्जे ।

इत्था ये प्राशुपरे सन्ति दावने पुरूणि यत्र वयुनानि

भोजेना ॥ ७ ॥

एव । एव । अपाक् । अपरे । सन्तु । दुऽध्यः । अरवाः । येषाम् ।

दुऽयुजः । आयुयुञ्जे ।

इत्था । ये । प्राक् । उपरे । सन्ति । दावने । पुरुणि । यत्र ।

वयुनानि । भोजना ॥ ७ ॥

दूसरे दुःध्य अश्व अपाक् रहें, कि-जिनको दुर्युज संयुक्त करते हैं, और जो दाताके लिये जिनमें बहुतसे श्रेष्ठ भोजन भरे हुए हैं वे मेघ हों ॥ ७ ॥

गिरीरज्रान् रेजमानाँ आधारयद् द्यौः क्रन्ददन्तरिक्षाणि  
कोपयत् ।

समीचीने धिषणे वि ष्कभायति वृष्णः पीत्वा मदं  
उक्थानि शंसति ॥ ८ ॥

गिरीन् । अज्रान् । रेजमानान् । आधारयत् । द्यौः । क्रन्दत् ।

अन्तरिक्षाणि । कोपयत् ।

समीचीने इति समुद्भीचीने । धिषणे इति । वि । ष्कभायति ।

वृष्णः । पीत्वा । मदे । उक्थानि । शंसति ॥ ८ ॥

इन्द्रदेव इस वर्षक सोमके रसको पीकर मद होने पर श्रेष्ठ २ पर्वतोंको धारण करते हैं, द्यलोकको क्रन्दित करते हैं, अन्तरिक्ष के पदार्थोंको कुपित करते हैं, समीचीन द्यावापृथिवीको विष्कभित करते हैं, और उक्थोंकी प्रशंसा करते हैं ॥ ८ ॥

इमं विभर्मि सुकृतं ते अद्भुशं येनारुजासि मघवंछ हारुजः  
अस्मिन्त्सु ते सर्वने अस्त्वोक्थं सुत इष्टौ मघवन् बोध्या-

भगः ॥ ९ ॥



इ॒मम् । वि॒भ॒र्षि॒ । सु॒ऽकृ॒तम् । ते अ॒ङ्कु॒शम् । येन॑ । आ॒ऽरु॒जासि॑ ।

मघ॑ऽवन् । शफ॑ऽआरुजः ।

अ॒स्मिन् । सु॒ । ते॒ । सव॑ने । अ॒स्तु । ओ॒क्व॒य॒म् । सु॒ते । इ॒ष्टौ ।

मघ॑ऽवन् । बो॒धि॒ । आ॒ऽभ॒गः ॥ ६ ॥

हे मघवन् ! मैं आपके इस सुकृत अंकुशको धारण कर रहा हूँ, जिससे आप नाखूनोंसे ( वा खुरोंसे ) पीड़ा देनेवाले प्राणियों का नाश करते हैं, इस सवनमें आपका ओक्व होवे, और सोम का अभिषव होने पर आप धनको समझें ॥ ६ ॥

गो॒भि॒ष्ट्रेमा॒मंति॑ दु॒रेवां॑ यवे॒न लु॒धं पु॒रु॒हूत॑ वि॒श्वा॒म् ।  
व॒यं रा॒ज॒भिः प्र॒थ॒मा ध॒नान्य॑स्मा॒कै॒न वृ॒ज॒ने॒ना ज॒येम॑  
गो॒भिः । त॒रे॒म॒ । अ॒म॒ति॒म् । दुः॒ऽए॒वाम् । यवे॑न । ल॒ध॒म् । पु॒रु॒हूत॑ ।

वि॒श्वा॒म् ।

व॒यम् । रा॒ज॒भिः । प्र॒थ॒माः । ध॒नानि॑ । अ॒स्मा॒कै॒न । वृ॒ज॒ने॒न । ज॒येम॑

हे अनेक यजमानोंसे आह्वान किये हुए इन्द्र ! हम आपसे अनुग्रह पाते हुए यजमान, आपकी दी हुई गौओंसे दुर्गति—दरिद्रताके पार पहुँच जावें और आपके दिये हुए यव व्रीहि आदिसे पुत्र मृत्य आदि सबकी लुधाको दूर करें, और आपके अनुग्रहसे अपने समान पुरुषोंमें मुख्य बने हुए हम उनसे धन प्राप्त करें और अपने बलसे शत्रुओंको जीतें ॥ १० ॥

बृ॒ह॒स्प॒ति॒र्नः॑ परि॒ पातु॑ प॒श्चादु॒तोत्तर॑स्मा॒दध॑रा॒दघा॑योः ।

इन्द्रः॑ पु॒रस्ता॑दु॒त म॑ध्य॒तो नः॑ सखा॒ सखि॑भ्यो वरि॒वः कृ॒णोतु॑

बृहस्पतिः । नः । परि । पातु । पश्चात् । उत । उत्तरस्मात् । अध-  
रात् । अधऽयोः ।

इन्द्रः । पुरस्तात् । उत । मध्यतः । नः । सखा । सखिऽभ्यः ।

वरिवः । कृणोतु ॥ ११ ॥

इति अष्टमेनुवाके चतुर्थं सूक्तम् ॥

बृहस्पति देवता पश्चिम दिशाकी ओरसे आते हुए हिंसक पुरुष  
से हमारी भली भाँति रक्षा करें, उत्तर दिशासे तथा दक्षिण  
दिशासे आते हुए हिंसक पुरुषसे भी हमारी रक्षा करें, इन्द्र-  
देवता पूर्वदिशासे और मध्य दिशासे हमको भली भाँति बचावें,  
इस प्रकार रक्षा करके मित्र बने हुए इन्द्र मित्र बने हुए हमको  
धन प्रदान करें ॥ ११ ॥

अष्टम अनुवाकमें चतुर्थं सूक्त समाप्त ( ७१० )

महाव्रते “त्रिकदुकेषु महिषः” [ २०. ६५. १ ] ‘प्रो ऽवस्मै  
पुरोरथम्” [ २०. ६५. २ ] इति पृष्ठस्तोत्रियानुरूपौ भवतः ।  
तद् उक्तं वैताने । त्रिकदुकेषु महिषः प्रो ऽवस्मै पुरोरथमिति स्तो-  
त्रियानुरूपौ” इति [ वै० ६. ४ ] ॥

महाव्रतमें “त्रिकदुकेषु महिषः” ( २० । ६५ । १ ) “प्रो ऽव-  
स्मै पुरोरथम्” ( २० । ६५ । २ ) ये पृष्ठस्तोत्रिय अनुरूप होते  
हैं । इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि—“त्रिकदुकेषु महिष  
प्रो ऽवस्मै पुरो रथमिति स्तोत्रियानुरूपौ” ( वैतानसूत्र ६ । ४ )

त्रिकदुकेषु महिषो यवांशिरं तुविशुष्मस्तृपत् सोमम-  
पिबद् विष्णुना सुतं यथावशात् ।

स ई॑ म॒माद॑ म॒हि क॑र्म क॒र्त॒वे म॒हामु॑रुं सैनं॑ स॒श्वद्  
दे॒वो दे॒वं स॒त्यमिन्द्रं॑ स॒त्य इन्द्रुः॑ ॥ १ ॥

त्रिऽक॒द्रुकेषु॑ । म॒हिषः॑ । यवऽआ॒शिरम् । तु॒विऽशु॒ष्मः । तृ॒पत् ।

सोमम् । अ॒पि॒ब॒त् । विष्णु॑ना । सु॒तम् । यथा॑ । अ॒व॒शत् ।

सः । ई॒म् । म॒मा॒द । म॒हि । क॑र्म । क॒र्त॒वे । म॒हाम् । उ॒रुम् । सः ।

ए॒नम् । स॒श्वत् । दे॒वः । दे॒वम् । स॒त्यम् । इन्द्र॑म् । स॒त्यः । इन्द्रुः॑ १

परमबली राजा इन्द्र त्रिकद्रुक सोमयागोंमें जों मिले हुए पदार्थ से तृप्त होते हैं, सोमका पान करते हैं, विष्णुके निचोड़े हुए सोमको वशमें करते हैं, वह सोम विशाल कर्म करनेके लिये इन इन्द्रको मदमें भर देता है, यह सत्य सोम देव इन विशाल सत्य-देव इन्द्रसे संयुक्त होता है ॥ १ ॥

प्रो ऽ॒स्मै पुरो॑रथमिन्द्रा॒य शू॒षम॑र्चत ।

अ॒भीके॑ चिदु॒ लोक॑कृत् स॒ङ्गे स॒मत्सु॑ वृ॒त्रहा॑स्माकं बोधि  
चो॒दिता॑ नभ॒न्ताम॑न्यकेषां ज्या॒का अ॒धि ध॒न्व॑सु २

प्रो इति॑ । सु । अ॒स्मै । पुरः॑रथम् । इन्द्रा॑य । शू॒षम् । अ॒र्च॒त ।

अ॒भीके॑ । चि॒त् । ऊं॑ इति॑ । लो॒कऽकृ॒त् । स॒म॒जो । स॒म॒त्सु॑ ।

वृ॒त्रऽहा॑ । अ॒स्माक॑म् । बो॒धि । चो॒दिता॑ । नभ॒न्ताम् । अ॒न्यके॑-

षाम् । ज्या॑काः । अ॒धि । ध॒न्व॑सु ॥ २ ॥

इन इन्द्रके लिये तुम पूजा करो, रथके आगे रहने वाले इन के बलकी पूजा करो, यह संग्राममें लोककर्ता हैं, संग्राममें आव-



रक शत्रुओंका नाश करने वाले हैं, यह प्रेरक देव हमारे स्तोत्रों को जान गए हैं, दूसरे पुरुषों की प्रत्यश्चाएँ धनुष पर न चढ़ सकें २ त्वं सिन्धूरवासृजोधराचो अहन्नहिम् ।

अशत्रुर्इन्द्र जज्ञिषे विश्वं पुष्यसि वार्यं तं त्वा परि  
ष्वामहे नभः ॥ ३ ॥

त्वम् । सिन्धून् । अव । असृजः । अधराचः । । अहन् । अहिम् ।  
शत्रुः । इन्द्र । जज्ञिषे । विश्वम् । पुष्यसि । वार्यम् । तम् । त्वा ।  
परि । स्वजामहे । ॥ ३ ॥

हे इन्द्रदेव ! आपने नदियोंको दक्षिणकी ओर जाने वाली करके रचा है, और आपने मेघ वा वृत्रासुरका संहार किया है, हे इन्द्रदेव ! आप शत्रुरहित होते हुए प्रकट होते हैं, सब वरण करने योग्य पदार्थोंको पुष्ट करते हैं ऐसे आपका हम आलिङ्गन करते हैं दूसरोंकी प्रत्यश्चाएँ धनुषों पर न चढ़ सकें ॥ ३ ॥

वि षु विश्वा अरातयो यो नशन्त नो धियः ।

अस्तासि शत्रवे वधं यो न इन्द्र जिघांसति या ते  
रातिर्दादिर्वसु नभन्तामन्यकेषां ज्याका अधि धन्वसु

वि । सु । विश्वाः । अरातयः । अर्यः । नशन्तः । नः । धियः ।

अस्ता । असि । शत्रवे । वधम् । यः । नः । इन्द्र । जिघांसति ।

या । ते । रातिः । दादिः । वसु । नभन्ताम् । अन्यकेषाम् ।

ज्याकाः । अधि । धन्वसु ॥ ४ ॥

इति अष्टमेनुवाके पञ्चमं सूक्तम् ॥

हे इन्द्रदेव ! आप हमारे स्वामी हैं, अतः हमारे जो सम्पूर्ण शत्रु हैं, उनकी बुद्धियें नष्ट होजावें, हे इन्द्र ! जो शत्रु हमको मारना चाहता है आप उस शत्रु पर मृत्युके साधन वज्रको फैंकिये आपका जो धन है उस धनको हमें प्रदान करिये, आपके अनुग्रहसे शत्रुओंकी प्रत्यश्चाएँ धनुष पर न चढ़ सकें ॥ ४ ॥

अष्टम अनुवाकमें पञ्चम सूक्त समाप्त ( ७११ )

महाव्रते माध्यन्दिने सवने “तीव्रस्याभिव्यसो अस्य पाहि” इत्येताश्चतुर्विंशतिम् ऋचः आवापस्थाने आवपते । तद् उक्तं वैताने । “तीव्रस्याभिव्यसो अस्य पाहीति चतुर्विंशतिम् आवपते” इति [ वै० ६. ४ ] ॥

महाव्रतके माध्यन्दिनसवनमें “तीव्रस्याभिव्यसो अस्य पाहि” इन चौबीस ऋचाओंको आवापस्थानमें पढ़े। इसी बातको वैतान-सूत्रमें कहा है, कि—“तीव्रस्याभिव्यसो अस्य पाहीति चतुर्विंश-निम् आवपते” ( वैतानसूत्र ६ । ४ ) ॥

तीव्रस्याभिव्यसो अस्य पाहि सर्वरथा वि हरी इह मुञ्च  
इन्द्र मा त्वा यजमानासो अन्ये नि रीरमन् तुभ्य-  
मिमे सुतासः ॥ १ ॥

तीव्रस्य । अभिव्यसः । अस्य । पाहि । सर्वरथा । वि ।

हरी इति । इह । मुञ्च ।

इन्द्र । मा । त्वा । यजमानासः । अन्ये । नि । रीरमन् । तुभ्यम् ।

इमे । सुतासः ॥ १ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप इस तीव्र हविरूप अन्नके अभिमुख रहने वाले यजमानके सब रथियोंकी रक्षा करिये और इस यज्ञमें

अपने घोड़ोंको छोड़िये, हे इन्द्र ! दूसरे यजमान आपको अधिक रमण न करा सकें, क्योंकि—आपके लिये इन सोमोंका अभिषव होचुका है ॥ १ ॥

तुभ्यं सुतास्तुभ्यमु सोत्वासस्त्वां गिरः श्वात्र्या आ हयन्ति ।

इन्द्रेदमद्य सवनं जुषाणो विश्वस्य विद्वाँ इह पाहि सोमम् ॥ २ ॥

तुभ्यम् । सुताः । तुभ्यम् । ऊँ इति । सोत्वासः । त्वाम् । गिरः । श्वात्र्याः । आ । हयन्ति ।

इन्द्र । इदम् । अद्य । सवनम् । जुषाणः । विश्वस्य । विद्वान् । इह । पाहि । सोमम् ॥ २ ॥

हे इन्द्र ! ये सोम आपके लिये निचोड़े गए हैं, आपके लिये ही सोत्वास ( निचोड़े गए ) हैं, ये वाणियों शीघ्रता करती हुई आपका ही आह्वान कर रही हैं, हे इन्द्र ! आप सबको जानने वाले हैं अतः आज इस सवनका सेवन करके इस सोमका पान करिये ॥ २ ॥

य उशता मनसा सोममस्मै सर्वहृदा देवकामः सुनोति न गा इन्द्रस्तस्य परा ददाति प्रशस्तमिच्चारुमस्मै कृणोति ॥ ३ ॥

यः । उशता । मनसा । सोमम् । अस्मै । सर्वहृदा । देवकामः । सुनोति ।



न । गाः । इन्द्रः । तस्य । परा । ददाति । प्रशस्तम् । इत् ।

चारुम् । अस्मै । कृणोति ॥ ३ ॥

देवताओंकी कामना वाला जो पुरुष कामना करते हुए पूर्ण मनसे इन इन्द्रदेवके लिये सोमका अभिषव करता है, इन्द्रदेव उसकी स्तुतियोंको नहीं लौटाते—ग्रहण कर लेते हैं—और इसके लिये सुन्दर और श्रेष्ठ बातको करते हैं ॥ ३ ॥

अनुस्पष्टो भवत्येषो अस्य यो अस्मै रेवान् न सुनोति  
सोमम् ।

निरन्तौ मघवा तं दधाति ब्रह्मद्विषो हन्त्यनानुदिष्टः

अनुस्पष्टः । भवति । एषः । अस्य । यः । अस्मै । रेवान् । न ।  
सुनोति । । सोमम् ।

निः । अरन्तौ । मघवा । तम् । दधाति । ब्रह्मद्विषः । हन्ति ।

अननुदिष्टः ॥ ४ ॥

जो धनवान् पुरुष इन इन्द्रदेवके लिये सोमका अभिषव नहीं करता है वह इन इन्द्रदेवसे अनुस्पष्ट होता है, इन्द्रदेव उसको अपने मुक्केमें धरते हैं और इन्द्रके निमित्त हवि न देनेसे वह उन ब्रह्मद्वेषियोंको मार डालते हैं ॥ ४ ॥

अश्वायन्तो गव्यन्तो वाजयन्तो हवामहे त्वोपगन्तवा  
उ ।

आभूषन्तस्ते सुमत्तौ नवायां वयमिन्द्र त्वा शुनं हुवेम

अश्वऽयन्तः । गव्यन्तः । वाजयन्तः । हवामहे । त्वा । उपऽगन्तव्यौ ।  
ऊं इति ।

आऽभूषन्तः । ते । सुऽपतौ । नवायाम् । नयम् । इन्द्र । त्वा ।  
शुनम् । हुवेम ॥ ५ ॥

घोड़े गौ और अन्नको चाहते हुए हम आपकी शरण लेनेके  
लिये आपका आह्वान करते हैं, हम आपकी नवीन सुमतिमें  
विभूषित होते हुए आप सुखरूपका आह्वान करते हैं ॥ ५ ॥

मुञ्चामि त्वा हविषा जीवनाय कमज्ञातयक्ष्मादुत  
राजयक्ष्मात् ।

ग्राहिर्जग्राह यद्येतदेनं तस्या इन्द्राग्नी प्र मुमुक्तमेनम्

मुञ्चामि । त्वा । हविषा । जीवनाय । कम् । अज्ञातयक्ष्मात् ।

उत । राजयक्ष्मात् ।

ग्राहिः । जग्राह । यदि । एतत् । एनम् । तस्याः । इन्द्राग्नी इति ।

प्र । मुमुक्तम् । एनम् ॥ ६ ॥

हे रोगिन् ! मैं तुझको जीवित रहनेके लिये हविके द्वारा  
अज्ञातयक्ष्मा और राजयक्ष्मा रोगसे छुड़ाता हूँ, यदि ग्राहिका  
पिशाचीने इसको पकड़ लिया हो तो हे इन्द्र और अग्निदेवताओं !  
तुम इस रोगीको उसके पाससे मुक्त करो ॥ ६ ॥

यदि क्षितायुर्यदि वा परेतो यदि मृत्योरन्तिकं नीत

एव ।

तमा ह॑रामि॒ नि॒ऋ॒तेरु॒प॒स्थाद॒स्पा॒र्शमे॒नं श॒तशार्॑दाय ७

यदि॑ । क्षि॒तऽआ॒युः । यदि॑ । वा । परा॑ऽइतः । यदि॑ । मृ॒त्योः ।

अ॒न्तिक॑म् । निऽइतः । ए॒व ।

तम् । आ । ह॒रामि॑ । निऽऽ॒मृतेः॑ । उ॒प॒स्थात् । अ॒स्पा॒र्शम् ।

ए॒नम् । श॒तऽशार्॑दाय ॥ ७ ॥

यदि इसकी आयु क्षीण होगई है, यह बड़ा ही गया बीता हुआ होगया है, वा मृत्युके पास ही पहुँच चुका है, तब भी मैं इसको निऋति राक्षसीकी गोदमेंसे खेंचता हूँ, मैंने सौ वर्षकी आयु तक जीवित रहनेके लिये इसका स्पर्श कर लिया है ॥७॥

सह॒स्रा॒क्षेण॑ श॒तवी॑र्येण श॒तायु॑षा ह॒विषा॑हार्षमे॒नम् ।

इन्द्रो॑ यथै॒नं श॒रदो॑ नया॒त्यति॑ विश्व॑स्य दु॒रित॑स्य

पा॒रम् ॥ ८ ॥

सह॒स्रऽअ॒क्षेण॑ । श॒तऽवी॑र्येण । श॒तऽआ॒युषा॑ । ह॒विषा॑ । आ ।

अ॒हार्ष॑म् । ए॒नम् ।

इन्द्रः॑ । यथा॑ । ए॒नम् । श॒रदः॑ । नया॒ति । अ॒ति । विश्व॑स्य ।

दुऽइ॒तस्य॑ । पा॒रम् ॥ ८ ॥

सैकड़ों प्रकारके वीर्य और सहस्रों प्रकारकी सूक्ष्मदृष्टि और सौ वर्षकी आयु ( प्रदान करने ) वाली हविसे मैं इस रोगीको मृत्युसे हर लाया हूँ, इन्द्रदेव इसको वर्षों तक सब पापोंके पार पहुँचावे ॥ ८ ॥



शतं जीव शरदो वर्धमानः शतं हेमन्तान्छतम् वस-  
न्तान् ।

शतं त इन्द्रो अग्निः सविता बृहस्पतिः शतायुषा हवि-  
षाहार्षमेनम् ॥ ९ ॥

शतम् । जीव । शरदः । वर्धमानः । शतम् । हेमन्तान् । शतम् ।  
ऊँ इति । वसन्तान् ।

शतम् । ते । इन्द्रः । अग्निः । सविता । बृहस्पतिः । शतऽआयुषा ।  
हविषा । आ । अहार्षम् । एनम् ॥ ९ ॥

हे रोगिन् ! तू सौ वर्ष तक जीवित रह, सौ वर्ष तक बढ़ता  
रह, सौ हेमन्त और वसन्त ऋतुओं तक रह, इन्द्र अग्नि सविता  
और बृहस्पति देवता तुझको सौ वर्षकी आयु प्रदान करें, मैं  
सौ वर्षकी आयु देने वाली हविसे इसको ले आया हूँ ॥ ९ ॥

आहार्षमविदं त्वा पुनरागाः पुनर्णवः ।

सर्वाङ्ग सर्वं ते चक्षुः सर्वमायुश्च तेविदम् ॥ १० ॥

आ । अहार्षम् । अविदम् । त्वा । पुनः । आ । अगाः । पुनः-  
ऽनवः ।

सर्वऽअङ्ग । सर्वम् । ते । चक्षुः । सर्वम् । आयुः । च । ते ।  
अविदम् ॥ १० ॥

मैं तुझको लौटाया हुआ समझता हूँ, तू फिर आ, फिर  
नवीन हो, हे सर्वाङ्ग ! मैंने तेरी चक्षु और पूर्ण आयुको इस  
कर्मके प्रभावसे पा लिया है ॥ १० ॥

ब्रह्मणाभिः संविदानो रक्षोहा बाधतामितः ।

अमीवा यस्ते गर्भं दुर्णामा योनिमाशये ॥ ११ ॥

ब्रह्मणा । अभिः । सम्विदानः । रक्षःऽहा । बाधताम् । इतः ।

अमीवा । यः । ते । गर्भम् । दुःनामा । योनिम् । आऽशये ११

राक्षसोंका संहार करने वाले अग्निदेव मन्त्रसे संयुक्त होते हुए उसको यहाँसे बाधा दे जो दूषित नाम वाला रोग तेरे गर्भ योनिमें शयन कर रहा है ॥ ११ ॥

यस्ते गर्भममीवा दुर्णामा योनिमाशये ।

अग्निष्टं ब्रह्मणा सह निष्क्रव्यादमनीनशत् ॥ १२ ॥

यः । ते । गर्भम् । अमीवा । दुःनामा । योनिम् । आऽशये ।

अग्निः । तम् । ब्रह्मणा । सह । निः । क्रव्यऽअदम् । अनीनशत् १२

जो दूषित नाम वाला रोग तेरे गर्भ और योनिमें शयन कर रहा है उन स्थानोंको अग्निदेव मन्त्रकी सहायतासे कच्चे मांस का भक्षण करने वाले रोगसे रहित करके उस रोगको ही नष्ट कर डालें ॥ १२ ॥

यस्ते हन्ति पतयन्तं निषत्सुं यः संरीसृपम् ।

जातं यस्ते जिघांसति तमितो नाशयामसि ॥ १३ ॥

यः । ते । हन्ति । पतयन्तम् । निऽसत्सुम् । यः । संरीसृपम् ।

जातम् । यः । ते । जिघांसति । तम् । इतः । नाशयामसि १३

जो तेरे गिरते हुए, सरकते हुए निपस्त्रु वा निकलते हुए गर्भ को मारना चाहता है उसको हम यहाँसे नष्ट करते हैं ॥ १३ ॥  
यस्तं ऊरु विहरत्यन्तरा दम्पती शये ।

योनिं यो अन्तरोरेलिह तमितो नाशयामसि ॥ १४ ॥

यः । ते । ऊरु इति । विहरति । अन्तरा । दम्पती इति दम्प-  
पती । शये ।

योनिम् । यः । अन्तः । आरेन्निह । तम् । इतः । नाशयामसि १४

जो रोग वा भूत राक्षस, तेरी ऊरुओंमें विहार करता है तुम दोनों दम्पतियोंमें शयन करता है जो योनिके भीतर आलेहन करता है उसको हम यहाँसे नष्ट करते हैं ॥ १४ ॥

यस्त्वा भ्राता पतिर्भूत्वा जारो भूत्वा निपद्यते ।

प्रजां यस्ते जिघांसति तमितो नाशयामसि ॥ १५ ॥

यः । त्वा । भ्राता । पतिः । भूत्वा । जारः । भूत्वा । निपद्यते ।

प्रजाम् । यः । ते । जिघांसति । तम् । इतः । नाशयामसि १५

जो भूत वा राक्षस तुम्हको भाई, पति, वा जार बन कर प्राप्त होता है और जो तेरी सन्तानको नष्ट करना चाहता है, उसको हम यहाँसे नष्ट करते हैं ॥ १५ ॥

यस्त्वा स्वप्नेन तमसा मोहयित्वा निपद्यते ।

प्रजां यस्ते जिघांसति तमितो नाशयामसि ॥ १६ ॥

यः । त्वा । स्वप्नेन । तमसा । मोहयित्वा । निपद्यते ।



प्रजाम् । यः । ते । जिघांसति । तम् । इतः । नाशयामसि १६

जो पुरुष तुम्हको स्वप्नके अँधेरेसे मोहमें डाल कर मार हो-  
जाता है और जो तेरी प्रजाको नष्ट करना चाहता है उसको  
हम यहाँसे नष्ट करते हैं ॥ १६ ॥

अक्षीभ्यां ते नासिकाभ्यां कर्णाभ्यां छुबुकादधि ।

यक्ष्मं शीर्षण्यं मस्तिष्काज्जिह्वाया वि वृहामि ते १७

अक्षीभ्याम् । ते । नासिकाभ्याम् । कर्णाभ्याम् । छुबुकात् । अधि ।

यक्ष्मम् । शीर्षण्यम् । मस्तिष्कात् । जिह्वायाः । वि । वृहामि । ते १७

मैं तेरे नेत्रोंसे, तेरी नाकके दोनों नथुनोंसे, दोनों कानोंसे,  
तेरी ठोड़ीसे यक्ष्मा रोगको, और मस्तिष्कमें होने वाले शीर्षण्य  
रोगको मस्तिष्कसे और जिह्वासे निकालता हूँ ॥ १७ ॥

ग्रीवाभ्यस्त उष्णिहाभ्यः कीकसाभ्यो अनूक्यात् ।

यक्ष्मं दोषण्यं शंसाभ्यां बाहुभ्यां वि वृहामि ते १८

ग्रीवाभ्यः । ते । उष्णिहाभ्यः । कीकसाभ्यः । अनूक्यात् ।

यक्ष्मम् । दोषण्यम् । शंसाभ्याम् । बाहुभ्याम् । वि । वृहामि । ते १८

हे व्याधिग्रस्त ! तेरी ग्रीवा ( गरदन ) की चौदह सूक्ष्म नाड़ियों  
से मैं यक्ष्मारोगको दूर करता हूँ और रक्तप्रवाहके कारण ऊपर  
को स्नान कराने वाली स्निग्ध उष्णिह नामकी नाड़ियोंसे,  
हँसली और वक्षःस्थलकी नाड़ियोंसे, तथा जिसमें क्रमशः  
अस्थियें मिलती हैं उस अनूक्यसे मैं यक्षमारोगको दूर करता हूँ,  
तथा तेरे कंधे और भुजाओंसे मैं यक्षमारोगको दूर करता हूँ १८

हृदयात् ते परि क्लोम्नो हलीक्षणात् पार्श्वाम्भ्याम् ।

यक्ष्मं मतस्नाभ्यां स्नीहो यक्रस्ते वि वृहामसि १६

हृदयात् । ते । परि । क्लोम्नः । हलीक्षणात् । पार्श्वाम्भ्याम् ।

यक्ष्मम् । मतस्नाभ्याम् । स्नाहः । यक्रः । ते । वि । वृहामसि १६

हे रोगिन् ! मैं तेरे हृदयकमलसे यक्ष्मारोगको दूर करता हूँ और हृदयके समीप स्थित क्लोम ( मूत्राधार-मसाने ) से तथा हलीक्षणा नामक मांसपिण्डसे दोनों पसलियोंसे, दोनों पित्ताधार वात्रोंसे और उदर तथा पसलियोंमें स्थित श्येन पक्षीकी समान आकार वाले स्नीहा ( तिन्ली ) से और हृदयके समीपमें स्थित यक्र ( जिगर ) से भी मैं राजयक्ष्मा रोगको दूर करता हूँ १६

आन्त्रेभ्यस्ते गुदाभ्यो वनिष्ठोरुदरादधि ।

यक्ष्मं कुक्षिभ्यां प्लाशेर्नाभ्या वि वृहामि ते ॥२०॥

आन्त्रेभ्यः । ते । गुदाभ्यः । वनिष्ठोः । उदरात् । अधि ।

यक्ष्मम् । कुक्षिभ्याम् । प्लाशः । नाभ्याः । वि । वृहामि । ते २०

हे यक्ष्मारोगसे ग्रसे हुए ! मैं तेरी अंतड़ियोंसे, मल और मूत्रके सरकनेके स्थानोंसे, मोटी आँतसे और इन सबके आधार उदरसे यक्ष्मारोगको दूर करता हूँ, तथा तेरी दाईं बाईं कोखों से और अनेक छिद्र वाले मलपात्र प्लाशिसे तथा नाभिमण्डल से तेरे यक्ष्मारोगको दूर करता हूँ ॥ २० ॥

ऊरुभ्यां ते अष्टीवद्भ्यां पार्श्विभ्यां प्रपदाभ्याम् ।

यक्ष्मं भसत्रं श्रोणिभ्यां भासदं भंससो वि वृहामि ते

ऊरुऽभ्याम् । ते । अष्टीवत्ऽभ्याम् । पाणिऽभ्याम् । प्रऽपदाभ्याम् ।  
यक्ष्मम् । भक्ष्मम् । श्रोणिऽभ्याम् । भासदम् । भंससः । वि ।  
बृहामि । ते ॥ २१ ॥

मैं तेरी ऊरुओंसे, जानुओंसे, पैरोंके अपरभागसे और पैरोंके  
अग्रभागसे यक्ष्मारोगको अलग करता हूँ और तेरी कमरमें होने  
वाले यक्ष्माको कटिके नीचेके भागसे अलग करता हूँ और गुह्य-  
देशमें होनेवाले रोगको भासमान गुह्यस्थानसे पृथक् करता हूँ २१

अस्थिभ्यस्ते मज्जभ्यः स्नावभ्यो धमनिभ्यः ।  
यक्ष्मं पाणिभ्यामङ्गुलिभ्यो नखेभ्यो वि बृहामि ते २२

अस्थिऽभ्यः । ते । मज्जऽभ्यः । स्नावऽभ्यः । धमनिऽभ्यः ।  
यक्ष्मम् । पाणिऽभ्याम् । अङ्गुलिऽभ्यः । नखेभ्यः । वि । बृहामि ।  
ते ॥ २२ ॥

मैं तेरी हड्डी मज्जा आदि सब धातुओंसे, सूक्ष्म नाड़ियोंसे,  
स्थूल नाड़ियोंसे, हाथ अङ्गुलि और नखोंसे यक्ष्मारोगको दूर  
करता हूँ ॥ २२ ॥

अङ्गेऽङ्गे लोम्निऽलोम्नि यस्ते पर्वणिऽपर्वणि ।  
यक्ष्मं त्वचस्यं ते वयं कश्यपस्य वीबर्हेण विष्वञ्चं वि  
बृहामसि ॥ २३ ॥

अङ्गेऽङ्गे । लोम्निऽलोम्नि । यः । ते । पर्वणिऽपर्वणि ।



यक्ष्मम् । त्वचस्यम् । ते । वयम् । कश्यपस्य । विऽबर्हेण । विष्व-  
श्चम् । वि । वृहामसि ॥ २३ ॥

हे रोगिन् ! तेरे ऊपर न कहे गए प्रत्येक अँगोंमें, सम्पूर्ण  
रोमकूणोंमें और प्रत्येक जोड़ोंमें जो यक्ष्मारोग होगया है उस रोग  
को हम दूर करते हैं । और तेरी त्वचामें जो यक्ष्मारोग पहुँच  
गया है, उसको हम दूर करते हैं, और तेरे नेत्र आदि सम्पूर्ण  
अँगोंमें व्याप्त रोगको हम महर्षि कश्यपके इस विवर्ह मन्त्रसे दूर  
करते हैं ॥ २३ ॥

अपेहि मनसस्पतेपं काम परश्चर ।

परो निर्ऋत्या आ चक्ष्व बहुधा जीवतो मनः २४

अप । इहि । मनसः । पते । अप । काम । परः । चर ।

परः । निऽऋत्यै । आ । चक्ष्व । बहुधा । जीवतः । मनः २४

अष्टमेनुवाके षष्ठं सूक्तम् ॥

इति अष्टमोनुवाकः ॥

हे मन पर अधिकार जमाने वाले रोग ! दूर जा, भाग, दूर  
विचर, निर्ऋतिसे इस जीवित पुरुषके मनसे दूर रहनेको कह २४

अष्टम अनुवाकमें छठा सूक्त समाप्त ( ७१२ )

अष्टम अनुवाक समाप्त

बृहस्पतिसवे “वयमेनमिदा ह्यः इत्यस्य “तद् वो गाय सुते  
सचा” [ २०. ७८ ] इत्यनेन सह उक्तो विनियोगः ॥ तथा सर्व-  
जित्यृषभादिषु अस्य तेनैव सह उक्तो विनियोगः ॥

तथा त्रिवृदादिषु सूत्रोक्तेषु सप्तसु त्रिरात्रैकाहेषु “उभयं शृणु-  
वृच नः” [ २०. ११३ ] “वयमेनमिदा ह्यः” [ २०. ६७ ]

“पिवा सोममिन्द्र मन्दतु त्वा” [ २०, ११७ ] एते आज्यस्तो-  
त्रिया भवन्ति चकारात् पृष्ठस्तोत्रिया विकल्पिता भवन्ति तद्  
उक्तं वैताने । “त्रिवृत्पञ्चदशसप्तदशैकविंशत्रिणवत्रयस्त्रिंशन्वस-  
प्तदशेषूभयं शृणवच्च नो वयमेनमिदा ह्यः पिवा सोममिन्द्र मन्दतु  
त्वेति” इति [ वै०. ८. २ ] ॥

तथा त्रिककुदशाहे अस्य विनियोगः “क ई वेद सुते सचा  
[ २०. ५३ ] इत्यनेन सह उक्तः ॥

बृहस्पतिसवमें “वयमेनमिदा ह्यः” इसका “तद् वो गाय सुते  
सचा” ( २० । ७८ ) के साथ विनियोग कह दिया है ।

तथा सर्वजित् ऋषभ आदिमें भी इसका उसके साथ ही  
विनियोग कह दिया है ।

तथा त्रिवृत् आदि सूत्रोक्त सात त्रिरात्रैकाहोंमें “उभयं शृण-  
वच्च नः” ( २० । ११३ ) “वयमेनमिदा ह्यः” ( २० । ६७ )  
“पिवा सोममिन्द्र मन्दतु त्वा” ( २० । ११७ ) ये आज्यस्तो-  
त्रिय होते हैं, चकारसे विकल्पित पृष्ठस्तोत्रिय होते हैं । इसी  
बातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि—“त्रिवृत्पञ्चदशसप्तदशैकविंश-  
त्रिणवत्रयस्त्रिंशन्वसप्तदशेषूभयं शृणवच्च नो वयमेनमिदा ह्यः  
पिवा सोममिन्द्र मन्दतु त्वेति” ( वैतानसूत्र ८ । २ ) ॥

तथा त्रिककुद दशाहमें इसका विनियोग “क ई वेद सुते  
सचा” ( २० । ५३ ) के साथ कह दिया है ।

वयमेनमिदा ह्योपीपेमेह वज्रिणम् ।

तस्मा उ अद्य समना सुतं भरा नूनं भूषत श्रुते १

वयम् । एनम् । इदा । ह्यः । अपीपेम । इह । वज्रिणम् ।

तस्मै । ऊं इति । अथ । समना । सुतम् । भर । आ । नूनम् ।  
भूषत । श्रुते ॥ १ ॥

हम कल इस सोमसे वज्रधारी इन्द्रको पुष्ट कर चुके हैं उनके  
लिये ही आज आप मनको प्रसन्न करके अभिषुत सोम दीजिये,  
हे स्तोताओं ! इस बातको सुन कर तुम भी उन इन्द्रको स्तुतियों  
से अवश्य भूषित करो ॥ १ ॥

वृकंश्चिदस्य वारण उरामथिरा वयुनेषु भूषति ।  
सेमं नः स्तोमं जुजुषाण आ गहीन्द्र प्र चित्रया धिया  
वृकः । चित् । अस्य । वारणः । उरामथिः । आ । वयुनेषु ।  
भूषति ।

सः । इमम् । नः । स्तोमम् । जुजुषाणः । आ । गहि । इन्द्र ।  
प्र । चित्रया । धिया ॥ २ ॥

इन इन्द्रके पास वृक अर्थात् कुत्ता भी है, वह शत्रुओंको हटाने  
वाला है, वह मेढ़ोंका मथन करने वाला है, वह प्रज्ञानोंमें आभूषित  
करता है, ऐसे हे इन्द्र ! आप हमारे इस स्तोत्रको सुन कर अपनी  
कमनीय बुद्धिसे इस यज्ञमें आइये [ सरमा देवकुत्ती प्रसिद्ध है  
अतः उसके पोते धेवते भी देवताओंके ही हैं इस लिये यहाँ कुत्ते  
को वृक कहा है, क्योंकि—और श्वापदोंका श्रवणाभाव है ] २

कदू न्वस्याकृतमिन्द्रस्यास्ति पौंस्यम् ।

केनो नु कं श्रोमतेन न शुश्रुवे जनुषः परिवृत्रहा ३  
कत् । ऊं इति । नु । अस्य । अकृतम् । इन्द्रस्य । अस्ति ।

पौंस्यम् ।



केनो इति । जु । कम् । श्रोमतेन । न । शुश्रवे । अनुषः । परि ।  
वृत्रऽहा ॥ ३ ॥

इति नवमेनुवाके प्रथमं सूक्तम् ॥

ऐसा कौनसा पुरुषार्थका काम है जो इन इन्द्रदेवका किया हुआ नहीं है । किस श्रवणशक्ति सम्पन्नने यह सुखमय बात नहीं सुनी है, कि-यह वृत्रासुरका संहार करनेवाले हैं ॥ ३ ॥

नवम अनुवाकमें प्रथम सूक्त समाप्त ( ७१३ )

श्येनसंदंशाजिरवज्रेषु एकाहेषु “त्वामिद्धि हवामहे” इत्यस्य विनियोगः “सुरूपकृन्तुमृतये” [२०.५७] इत्यनेन सह उक्तः ॥

तथा तनूपृष्ठे षडहे अस्य विनियोगः “यद् द्याव इन्द्र ते शतम्” [ २०. ८१ ] इत्यनेन सह उक्तः ॥

श्येनसंदंशाजिरवज्र एकाहोंमें “त्वामिद्धि हवामहे” का विनियोग “सुरूपकृन्तुमृतये” ( २० । ५७ ) के साथ कह दिया है ।

तथा तनूपृष्ठ षडहमें इसका विनियोग “यद् द्याव इन्द्र ते शतम्” ( २० । ८१ ) के साथ कह दिया है ।

त्वामिद्धि हवामहे साता वाजस्य कारवः ।

त्वां वृत्रेष्विन्द्र सत्पतिं नरस्त्वां काष्ठास्वर्वतः ॥ १ ॥

त्वाम् । इत् । हि । हवामहे । साता । वाजस्य । कारवः ।

त्वाम् । वृत्रेषु । इन्द्र । सत्पतिम् । नरः । त्वाम् । काष्ठासु ।

अर्वतः ॥ १ ॥

हम स्तोता अन्नप्राप्ति कराने वाले यज्ञमें आपका ही आवाहन करते हैं, हे इन्द्र ! कोई घेर लेता है ऐसे अवसरों पर सज्जनोंके पालक दिशाओंमें उदकको प्रेरित करनेवाले आपका ही नेता लोग आवाहन करते हैं ॥ १ ॥

स त्वं नश्चित्र वज्रहस्त धृष्णुया महस्तवानो अद्रिवः  
गामश्वं रथ्यमिन्द्र सं किर सत्रा वाजं न जिग्युषे  
सः । त्वम् । नः । चित्र । । वज्रहस्त । धृष्णुया । महः ।  
स्तवानः । अद्रिश्चः ।

गाम् । अश्वम् । रथ्यम् । इन्द्र । सम् । किर । सत्रा । वाजम् ।  
न । जिग्युषे ॥ २ ॥

इति नवमेनुवाके द्वितीयं सूक्तम् ॥

हे चायनीय ! वज्रहस्त वज्र वाले इन्द्र ! ऐसे आप हमारी धन-  
कत्व प्रदान करने वाली स्तुतिसे स्तुत होकर इस विजय चाहने  
वाले राजाके लिये गौ अश्व और रथकी वस्तुएँ अन्नकी समान  
प्रदान करिये ॥ २ ॥

नवम अनुवाकमें द्वितीय सूक्त समाप्त ( ७१४ )

अपूर्वाख्ये एकाहे “अभि त्वा पूर्वपीतये” इत्येष पृष्ठस्तोत्रियो  
भवति । तद् उक्तं वैताने । “अपूर्वेभि त्वा पूर्वपीतय इति” इति  
[ वै० ८. १ ] ॥

अपूर्वं नामक एकाहमें “अभि त्वा पूर्वपीतये” यह पृष्ठस्तोत्रिय  
होता है । इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि—“अपूर्वेभि त्वा  
पूर्वपीतय इति” ( वैतानसूत्र ( ८ । १ ) ॥

अभि त्वा पूर्वपीतय इन्द्र स्तोमेभिरायवः ।

समीचीनास ऋभवः समस्वरन् रुद्रा गृणन्त पूर्यम्  
अभि । त्वा । पूर्वपीतये । इन्द्र । स्तोमेभिः । आयवः ।

सम् । ईचीनासः । ऋभवः । सम् । अस्वरन् । रुद्राः । गृणन्त ।  
पूर्यम् ॥ १ ॥

हे इन्द्र ! ये मनुष्य समीचीन ऋशु देवता और रुद्रदेवता आप पूर्वकी पहिले पान करनेके लिये स्तुतियोंसे स्तुति कर रहे हैं ॥ १ ॥

अस्येदिन्द्रो वावृधे वृष्णयं शवो मदे सुतस्य विष्णवि ।

अद्या तमस्य महिमानमायवोनुं ध्रुवन्ति पूर्वथां २

अस्य । इत् । इन्द्रः । ववृधे । वृष्णयम् । शवः । मदे । सुतस्य ।  
विष्णवि ।

अद्य । तम् । अस्य । महिमानम् । आयवः । अनु । स्तुवन्ति ।  
पूर्वथा ॥ २ ॥

इति नवमेनुवाके तृतीयं सूक्तम् ॥

यज्ञमें अभिषुत सोमका मद होने पर इस यजमानके ही बल को और धनवर्षकत्वको इन्द्रदेव बढ़ाते हैं । ये स्तोता मनुष्य इन्द्रदेवकी उस महिमाका ही पहिलेकी समान गान कर रहे हैं २

नवम अनुवाकमें तृतीय सूक्त समाप्त ( ७१५ )

ब्रात्यस्तोमाख्येषु एकाहेषु “आ त्वेता नि षीदत” [ २०. ६८. ११ ] “अद्या हीन्द्र गिर्वणः” [ २०. १०० ] इति आज्य-पृष्ठस्तोत्रियौ यथाक्रमं भवतः । तद् उक्तं वैताने । ब्रात्यस्तोमेष्वेवा त्वेता नि षीदताद्या हीन्द्र गिर्वण इति” [ वै० ८. १ ] ॥

तथा पवित्रादिषु राजसूयैकाहेषु “यत् सोममिन्द्र विष्णवि” [ २०. १११ ] “अद्या हीन्द्र गिर्वणः” [ २०. १०० ] “अभ्रा-तृव्यो अना त्वम्” [ २०. ११४ ] “त्वम् न इन्द्रा भर” [ २०. १०८ ] एते यथासंभवम् उक्थस्तोत्रिया भवन्ति । चकाराद् “यद्य कच्च वृत्रहन्” [ २०. ११२ ] “उभयं शृणवच्च नः” [ २०. ११३ ] एतौ आज्यपृष्ठस्तोत्रियौ भवतः ॥



तथा चतुरहपञ्चाहाहीनदशाहच्छन्दोमदशाहेषु “यत् सोममिन्द्र विष्णवि” एते चत्वारो यथासंभवम् उक्थस्तोत्रिया भवन्ति ॥

तद् उक्तं वैताने । “राजसूयेषु यत्सोममिन्द्र विष्णव्यधा हीन्द्र गिर्वणोऽभ्रातृव्यो अना त्वं त्वं न इन्द्रा भरेति च । चतुरहपञ्चाहाहीनदशाहच्छन्दोमदशाहेषु इति” इति [ वै० ८, २ ] ॥

व्रात्यस्तोम नामक एकाहोमं ‘आ त्वेता नि षीदत’ ( २० । ६८ । ११ ) ‘अथा हीन्द्र गिर्वणः’ ( २० । १०० ) ये यथाक्रम आज्यपृष्ठस्तोत्रिय होते हैं । इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि—‘व्रात्यस्तोमेष्व आ त्वेता नि षीदताधा हीन्द्र गिर्वण इति’ ( वैतानसूत्र ८ । १ ) ॥

तथा पवित्र आदि राजसूय एकाहोमं ‘यत् सोममिन्द्र विष्णवि’ ( २० । १११ ) ‘अथा हीन्द्र गिर्वणः’ ( २० । १०० ) ‘अभ्रातृव्यो अना त्वम्’ ( २० । ११४ ) ‘त्वं न इन्द्रा भर’ ( २० । १०८ ) ये यथासंभव उक्थस्तोत्रिय होते हैं । चकारसे ‘यदद्य कच्च वृत्र हन्’ ( २० । ११२ ) उभयं शृणवच्च नः’ ( २० । ११३ ) ये आज्यपृष्ठस्तोत्रिय होते हैं ॥

तथा चतुरह पञ्चाह अहीनदशाह और छन्दोमदशाहोमं ‘यत् सोममिन्द्र विष्णवि’ ये चार यथासंभव उक्थस्तोत्रिय होते हैं ।

इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि—‘राजसूयेषु यत्सोममिन्द्र विष्णव्यधा हीन्द्र गिर्वणोऽभ्रातृव्यो अना त्वं त्वं न इन्द्रा भरेति च । चतुरहपञ्चाहाहीनदशाहच्छन्दोमदशाहेषु च’ ( वैतानसूत्र ८ । २ ) ॥

अथा हीन्द्र गिर्वणः उप त्वा कामान् महः ससृज्महे ।

उदेव यन्त उदभिः ॥ १ ॥

अध । हि । इन्द्र । गिर्वृषः । उप । त्वा । कामान् । महः । सस्र-  
जमहे । उदाऽइव । यन्तः । उदऽभिः ॥ १ ॥

जैसे जलसे काम लेने वाले पुरुष जलसे जलको संयुक्त करते हैं, इसी प्रकार हे स्तुतियोंसे सेवनीय इन्द्र ! आपसे कामनाओं को चाहते हुए हम सोमात्मक जलोंसे आपको संयुक्त करते हैं ?  
वाणं त्वां यव्याभिर्वर्धन्ति शूर ब्रह्माणि । वावृध्वांसं  
चिदद्विवो दिवेदिवे ॥ २ ॥

वाः । न । त्वा । यव्याभिः । वर्धन्ति । शूर । ब्रह्माणि ॥ वावृध्वा-  
सम् । चित् । अद्विऽवः । दिवेऽदिवे ॥ २ ॥

हे वज्रधारिन् शूर इन्द्र ! प्रत्येक स्तुतिके अवसर पर बार-बार बढ़ना चाहते हुए आपको ये मन्त्र यव्याओंसे जलकी समान बढ़ाते हैं ॥ २ ॥

युञ्जन्ति हरीं इषिरस्य गाथयोरौ रथं उरुयुगे । इन्द्र-  
वाहा वचोयुजा ॥ ३ ॥

युञ्जन्ति । हरी इति । इषिरस्य । गाथया । उरौ । रथे । उरुऽ-  
युगे ॥ इन्द्रऽवाहा । वचऽयुजा ॥ ३ ॥

इति नवमेनुवाके चतुर्थं सूक्तम् ॥

युद्धगमनशील इन्द्रकी गाथासे, मन्त्रसे संयुक्त होने वाले इन्द्र के हरि नामक घोड़े विशाल युग वाले इन्द्रके रथमें जुतते हैं ३

नवम अनुवाकमें चतुर्थं सूक्त समाप्त ( ७१६ )

अग्निष्टुत्सु एकाहेषु “ईलेन्यो नमस्यः” [२०. १०२] “अग्निं दूतं वृणीमहे” [२०. १०१] “अग्निमीलिष्वावसे” [२०. १०३] “अग्न आ याह्यग्निभिः” [२०. १०३. २] एषु आद्यौ आज्यस्तोत्रियौ विकल्पितौ भवतः । उत्तरौ पृष्ठस्तोत्रियौ विकल्पितौ भवतः । तद् उक्तं वैताने । “अग्निष्टुत्स्वीलेन्यो नमस्योग्निं दूतं वृणीमहेग्निमीलिष्वावसेग्न आ याह्यग्निभिरिति” इति [ वै० ८. १ ] ॥

तथा विराजेग्नेः स्तोमेग्नेः कुलाये “अग्निं दूतं वृणीमहे” अग्निमीलिष्वावसे” एतौ आज्यपृष्ठस्तोत्रियौ भवतः । तद् उक्तं वैताने । “विराजेग्नेःस्तोमेग्नेःकुलायेग्निं दूतं वृणीमहेग्निमीलिष्वावस इति” [ वै० ८. २ ] ॥

अग्निष्टुत् एकाहोमे “ईलेन्यो नमस्यः” ( २० । १०२ ) “अग्निं दूतं वृणीमहे” ( २० । १०१ ) “अग्निमीलिष्वावसे” ( २० । १०३ ) “अग्न आयाह्याग्निभिः” ( २० । १०३ । २ ) इनमें पहिले दो विकल्पित आज्यस्तोत्रिय होते हैं । अगले विकल्पित पृष्ठस्तोत्रिय होते हैं । इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि—“अग्निष्टुत्स्वीलेन्यो नमस्योग्निं दूतं वृणीमहेग्निमीलिष्वावसेग्न आ ह्यग्निभिरिति” ( वैतानसूत्र ८ । १ )

तथा विराजमें अग्निके और स्तोममें अग्निके कुलायमें “अग्निं दूतं वृणीमहे” “अग्निमीलिष्वावसे” ये आज्यपृष्ठ स्तोत्रिय होते हैं । इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि—“विराजेऽग्नेः स्तोमेग्नेः कुलायेग्निं दूतं वृणीमहेग्निमीलिष्वावस इति” (वैतानसूत्र ८।२)

अग्निं दूतं वृणीमहे होतारं विश्ववेदसम् । अस्य

यज्ञस्य सुक्रतुम् ॥ १ ॥



अग्निम् । दूतम् । वृणीमहे । होतारम् । विश्वज्वेदसम् ॥ अस्य ।

यज्ञस्य । सुऽक्रतुम् ॥ १ ॥

हम अग्निदेवताका वरण करते हैं वह होता है और सबको जानने वाले हैं और इस यज्ञके कर्मोंको श्रेष्ठ बनाने वाले हैं ॥१॥

अग्निमग्निं हवीमभिः सदा हवन्त विशपतिम् । हव्य-  
वाहं पुरुप्रियम् ॥ २ ॥

अग्निम्ऽअग्निम् । हवीमऽभिः । सदा । हवन्त । विशपतिम् ॥

हव्यऽवाहम् । पुरुऽप्रियम् ॥ २ ॥

पुरुष हव्यका वहन करने वाले, बहुतसे पुरुषोंके प्रिय प्रजा-पति अग्निको सदा हवि देते हैं अतः हम भी अग्निको हवि प्रदान करते हैं ॥ २ ॥

अग्ने देवाँ इहा वह जज्ञानो वृक्तबर्हिषे । असि होता  
न ईडयः ॥ ३ ॥

अग्ने । देवान् । इह । आ । वह । जज्ञानः । वृक्तऽबर्हिषे ॥ असि ।

होता । नः । ईडयः ॥ ३ ॥

इति नवमेनुवाके पञ्चमं सूक्तम् ॥

हे अग्ने ! आप ऋत्विज्के लिये प्रकट होते हुए यहाँ पर देवताओंको लाइये आप हमारे पूज्य होता हैं ॥ ३ ॥

नवम अनुवाकमें पञ्चम सूक्त समाप्त ( ७१७ )

अग्निष्टुत्सु एकाहेषु “ईलेन्यो नमस्यः” इत्यस्य पूर्वेण सह  
उक्तो विनियोगः ॥

अग्निष्टुत् एकाहोमे "ईलेन्यो नमस्यः" का पूर्वसूक्तके साथ विनियोग कह दिया है ।

ईलेन्यो नमस्यस्तिरस्तमांसि दर्शतः । समग्निरिध्यते  
वृषा ॥ १ ॥

ईलेन्यः । नमस्यः । तिरः । तमांसि । दर्शतः ॥ सम् । अग्निः ।

इध्यते । वृषा ॥ १ ॥

स्तुति और प्रणाम करने योग्य दर्शनीय फलवर्षक इन्द्रदेव धुएँको तिरछा करते हुए भली प्रकार दीप्त होते हैं ॥ १ ॥

वृषो अग्निः समिध्यतेश्वो न देववाहनः । तं हवि-  
ष्मन्त ईलते ॥ २ ॥

वृषो इति । अग्निः । सम् । इध्यते । अश्वः । न । देववाहनः ॥

तम् । हविष्मन्तः । ईलते ॥ २ ॥

देववाहन अश्वकी समान फलवर्षक अग्निदेव दीप्त होते हैं, हवि वाले पुरुष उनका पूजन करते हैं ॥ २ ॥

वृषणं त्वा वयं वृषन् वृषणः समिधीमहि । अग्ने  
दीद्यतं बृहत् ॥ ३ ॥

वृषणम् । त्वा । वयम् । वृषन् । वृषणः । सम् । इधीमहि ॥

अग्ने । दीद्यतम् । बृहत् ॥ ३ ॥

इति नवमेनुवाके षष्ठं सूक्तम् ॥

हविकी वर्षा करने वाले हम हे वृषन् ! आप फलवर्षकको भली प्रकार प्रदीप्त करते हैं, हे अग्निदेव ! आप भली प्रकार दीप्त हजिये ॥ ३ ॥

नवम अनुष्ठाकमें छठा सूक्त समाप्त ( ७१८ )

“अग्निमीलिष्वावसे” इत्यस्य “अग्निं दूतं वृणीमहे” [ २०. १०१ ] इत्यनेन सह उक्तो विनियोगः ॥

“अग्निमीलिष्वावसे” का “अग्निं दूतं वृणीमहे” (२०।१०१) के साथ विनियोग कह दिया है” ।

अग्निमीलिष्वावसे गाथाभिः शीरशोचिषम् ।

अग्निं राये पुरुमीलह श्रुतं नरोग्निं सुदीतये छर्दिः १

अग्निम् । ईलिष्व । अवसे । गाथाभिः । शीरऽशोचिषम् ।

अग्निम् । राये । पुरुऽमीलह । श्रुतम् । नरः । अग्निम् । सुऽदीतये ।

छर्दिः ॥ १ ॥

हे नर ! व्यापक तापक अग्निकी तू गाथाओंसे अन्नके लिये पूजा कर । हे पुरुमील ! सुन्दर दीप्ति और धनके लिये श्रुति-प्रसिद्ध शरणरूप अग्निदेवकी तू पूजा कर ॥ १ ॥

अग्न आ याह्यग्निभिर्होतारं त्वा वृणीमहे ।

आ त्वामनक्तु प्रयता हविष्मती यजिष्ठं बर्हिरासदे २

अग्ने । आ । याहि । अग्निऽभिः । होतारम् । त्वा । वृणीमहे ।

आ । त्वाम् । अनक्तु । प्रयता । हविष्मती । यजिष्ठम् । बर्हिः ।

आऽसदे ॥ २ ॥



हे अग्निदेव ! आप अपनी विभूतिरूप अन्य अग्नियोंके साथ आइये आप होताका हम आह्वान करते हैं, आप यजनीयसे बैठने के स्थानमें प्रयत्ना इविष्यती वहिं संयुक्त होवे ॥ २ ॥

अच्छा हि त्वां सहसः सूनो अङ्गिरः सुचश्चरन्त्यध्वरे ।

ऊर्जो नपातं घृतकेशमीमहेभि यज्ञेषु पूर्यम् ॥ ३ ॥

अच्छ । हि । त्वा । सहसः । सूनो इति । अङ्गिरः । सुचः ।

चरन्ति । अध्वरे ।

ऊर्जः । नपातम् । घृतकेशम् । ईमहे । अग्निम् । यज्ञेषु । पूर्यम् ॥ ३ ॥

इति नवमेनुवाके सप्तमं सूक्तम् ॥

हे जलके पुत्र अंगिरागोत्री अग्निदेव ! यज्ञमें सुवे आपके अभिमुख विचरण करते हैं । हम भी बलको बने रखने वाले, केशोंकी समान घृतको ऊपर धारण करने वाले सदा नवीन ही रहने वाले अग्निदेवकी यज्ञोंमें प्रार्थना करते हैं ॥ ३ ॥

नवम अनुवाकमें सप्तम सूक्त समाप्त ( ५१९ )

“इमा उ त्वा पुरुवसो” इत्यस्य विनियोगः “अयमु ते समतसि” [ २०. ४५ ] इत्यनेन सह उक्तः ॥

“इमा उ त्वा पुरुवसो” का विनियोग “अयमु ते समतसि” ( २० । ४५ ) के साथ कह दिया है ।

इमा उ त्वा पुरुवसो गिरो वर्धन्तु या मम ।

पावकवर्णाः शुचयो विपश्चितोभि स्तोमैरनूषत ॥ १ ॥

इमाः । ऊं इति । त्वा । पुरुवसो इति पुरुवसो । गिरः । वर्धन्तु ।

याः । मम ।

पा॒ष॒कऽव॒र्णाः । शु॒च॒यः । वि॒पऽधि॒तः । अ॒ग्नि॒ । स्तो॒त्रैः ।  
अ॒नु॒ष॒त ॥ १ ॥

हे विशाल धमसे सम्पन्न इन्द्र ! जो हमारी अग्निकी समान  
शुद्ध वर्ण वाली पवित्र वाणियाँ हैं वह आपको बढ़ावे, हे विद्वानों !  
तुम स्तोत्रोंसे इन्द्रकी स्तुति करो ॥ १ ॥

अ॒यं स॒हस्र॒मृ॒षि॒भिः स॒ह॒स्कृतः स॒मु॒द्र इ॒व प॒प्रथे ।  
स॒त्यः सो अ॒स्य म॒हि॒मा गृ॒णे श॒वो य॒ज्ञेषु॑ वि॒प्र॒राज्ये २  
अ॒यम् । स॒हस्रम् । ऋ॒षिऽभिः । स॒हऽकृतः । स॒मु॒द्रऽइ॒व । प॒प्र॒थे ।  
स॒त्यः । सः । अ॒स्य । म॒हि॒मा । गृ॒णे । श॒वः । य॒ज्ञेषु॑ । वि॒प्र॒॒राज्ये ॥ २ ॥

यह अग्निदेव ऋषियोंके द्वारा जलसे बने हुए समुद्रकी  
समान सहस्रगुणे बढ़ जाते हैं, मैं इनकी इस सत्य महिमाका  
वर्णन कर रहा हूँ, इनका बल विप्रराज्य यज्ञोंमें दीप्तता है २  
आ नो विश्वासु हव्य इन्द्रः समत्सु भूषतु ।

उप॒ ब्र॒ह्मा॒णि स॒र्व॒ना॒नि वृ॒त्र॒हा प॒र॒म॒ज्या ऋ॒ची॒ष॒मः ३  
आ नः । वि॒श्वा॒सु । ह॒व्यः । इ॒न्द्रः । स॒म॒त्सु । भू॒ष॒तु ।

उप । ब्रह्माणि । सर्वनानि । वृत्रहा । परमज्याः । ऋचीषमः ३

हवि देने योग्य इन्द्रदेव ! सब यज्ञोंमें आप हमको भूषित  
करिये, यह इन्द्रदेव वास्तवमें अपरिमेय होने पर भी ऋचाओंकी  
समान अपने रूपको बना लेते हैं, ऐसे यह वृत्रासुरके संहारक  
इन्द्रदेव मन्त्रोंको सवनोंको और श्रेष्ठ २ धनुषोंको विभूषित  
करें ॥ ३ ॥

त्वं दाता प्रथमो राधसामस्यसि सत्य ईशानकृत् ।

तुविद्युन्नस्य युज्या वृणीमहे पुत्रस्य शवसो महः ४

त्वम् । दाता । प्रथमः । राधसाम् । असि । असि । सत्यः । ईशान-  
कृत् ।

तुविद्युन्नस्य । युज्या । आ । वृणीमहे । पुत्रस्य । शवसः । महः ४

इति नवमेनुवाके अष्टमं सूक्तम् ॥

हे ईश्वर बनाने वाले सत्य अग्निदेव ! तुम धनोंके मुख्य-  
दाता हो, अतिदमकते हुए जलके पुत्रकी युक्तिका हम वरण  
करते हैं ॥ ४ ॥

नवम अनुवाकमें अष्टमसूक्त समाप्त ( ७२० )

प्रतीचीनस्तोमे एकाहे “त्वमिन्द्र प्रतूर्तिषु” इत्येष आज्यपृष्ठ-  
स्तोत्रियो भवति । तद् उक्तं वैताने । “प्रतीचीनस्तोमे त्वमिन्द्र  
प्रतूर्तिष्विति” इति [ वै० ८. १ ] ॥

राजि एकाहे “यो राजा चर्षणीनाम्” [ २०. १०५. ४ ] इति  
पृष्ठस्तोत्रियो भवति । तद् उक्तं वैताने । “राजि यो राजा चर्ष-  
णीनाम् इति” [ वै ८. १ ] ॥

एक दिनमें होने वाले प्रतीचीनस्तोममें “त्वमिन्द्र प्रतूर्तिषु”  
यह आज्यपृष्ठस्तोत्रिय होता है । इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा  
है, कि—“प्रतीचीनस्तोमे त्वमिन्द्र प्रतूर्तिषु” ( वैतानसूत्र ८।१ ) ॥

राज् एकाहमें “यो राजा चर्षणीनाम्” ( २० । १०५ । ४ )  
यह पृष्ठस्तोत्रिय होता है, इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि-  
“राजि यो राजा चर्षणीनाम्” ( वैतानसूत्र ८ । १ ) ॥

त्वमिन्द्र प्रतूर्तिष्वभि विश्वा असि स्पृधः ।

अशस्तिहा जनिता विश्वतूरसि त्वंतूर्य तरुष्यतः १



त्वम् । इन्द्र । प्र॒स्तूर्ति॑षु । अ॒भि । वि॒श्वाः । अ॒सि । स्पृ॑धः ।  
अ॒श॒स्ति॒ऽहा । ज॒नि॒ता । वि॒श्व॒ज्जुः । अ॒सि । त्वम् । तूर्य॑ । त॒रु॒ण्य॒तः ।

हे इन्द्र आप हिंसा वाले युद्धोंमें सबसे स्पर्धा करने वाले हैं,  
और आप अशस्तिका नाश करने वाले, कन्याणको प्रकट करने  
वाले, सबसे त्वरा करने वाले हैं आप त्वरा करने वालोंको मारिये।

अनु॑ ते शु॒ष्मं तुर॑यन्तमी॒यतुः॑ क्षोणी॑ शिशुं॒ न मा॒तरा॑ ।  
वि॒श्वा॑स्ते स्पृ॑धः श्रथ॒यन्त॑ म॒न्यवे॑ वृ॒त्रं य॒दिन्द्र॑ तूर्व॑सि  
अनु॑ । ते शु॒ष्मम् । तुर॑यन्तम् । ई॒यतुः॑ । क्षो॒णी इति॑ । शिशु॑म् ।

न । मा॒तरा॑ ।

वि॒श्वाः । ते । स्पृ॑धः । श्र॒थ॒यन्त॑ । म॒न्यवे॑ । वृ॒त्रम् । यत् । इन्द्र॑ ।  
तूर्व॑सि ॥ २ ॥

त्वरा करते हुए आपके बलके पीछे, बच्चेके पीछे माता पिता  
की समान ध्रुलोक और पृथ्वीलोक प्राप्त होते हैं । हे इन्द्रदेव !  
जब आप क्रोधमें भर कर वृत्रका संहार कर रहे थे उस समय  
उसकी सब स्पर्धक वृत्तियें आपको मारना चाह रहीं थीं ॥ २ ॥

इ॒त ऊ॒ती वो॑ अ॒जरं॑ प्र॒हे॒तार॑म॒प्र॒हितम् ।

आ॒शुं जे॒तारं॑ हे॒तारं॑ र॒थि॒त॑म॒म॒तूर्तं॑ तु॒ग्रया॑वृ॒धम् ॥ ३ ॥

इ॒तः । ऊ॒ती । वः । अ॒जरम् । प्र॒हे॒तारम् । अ॒प्र॒हितम् ।

आ॒शुम् । जे॒तारम् । हे॒तारम् । र॒थि॒त॑म॒म् । अ॒तूर्त॑म् । तु॒ग्रया॑वृ॒धम् ३

यहाँसे मन्त्रशक्तिसे जो रत्नक वृत्तियें प्रेरित होती हैं वह उस समय आपको अजर, महेता, अप्रहित, शीघ्रता करने वाला, हेता, रथितम, अतूर्त और तुल्यवृद्ध बना रहें थीं ॥ ३ ॥

यो राजा चर्षणीनां याता स्थेभिरध्रिगुः ।

विश्वासां तरुता पृतनानां ज्येष्ठो यो वृत्रहा गृणे ४

यः । राजा । चर्षणीनाम् । याता । स्थेभिः । अध्रिऽगुः ।

विश्वासाम् । तरुता । पृतनानाम् । ज्येष्ठः । यः । वृत्रहा । गृणे ४

जो मनुष्योंके राजा हैं, जो रथोंके द्वारा मन्त्रोंके अभिसुख जाते हैं, सकल सेनाओंको तरने वाले हैं, जो ज्येष्ठ हैं और वृत्रासुरका संहार करने वाले हैं उनकी मैं स्तुति करता हूँ ॥४॥

इन्द्रं तं शुम्भ पुरुहन्मन्नवसे यस्य द्विता विधर्तरि ।

हस्ताय वज्रः प्रति धायि दर्शतो महो दिवे न सूर्यः

इन्द्रम् । तम् । शुम्भम् । पुरुहन्मन् । अन्वसे । अस्य । द्विता । वि-

धर्तरि ।

हस्ताय । वज्रः । प्रति । धायि । दर्शतः । महः । दिवे । न । सूर्यः

इति नवमेऽनुवाके नवमं सूक्तम् ॥

हे पुरुहन्मन् ! इस विशेषरूपसे धारक यज्ञमें आप अन्नके लिये इन्द्रको अलंकृत करिये, उनकी सत्ता मध्यमलोक अन्तरिक्ष और स्थान (स्वर्ग) में भी है । उन दर्शनीयका क्रीड़ाके लिये हाथमें उठाया हुआ वज्र पूजनीय सूर्यसा दीखता है ॥ ५ ॥

नवम अनुवाकमें नवम सूक्त समाप्त (७२१)

इन्द्रस्तोमाख्ये एकाहे “तव त्यदिन्द्रियं बृहत्” इत्यस्य “इन्द्र क्रतुं न आ भर” [ २०. ७६ ] इत्यनेन सह उक्तो विनियोगः ॥

इन्द्रस्तोम नामक एकाहमें “तव त्यदिन्द्रियं बृहत्” इसका “इन्द्र क्रतुं न आ भर” ( २० । ७६ ) के साथ विनियोग कह दिया है ।

तव त्यदिन्द्रियं बृहत् तव शुष्ममुत क्रतुम् । वज्रं  
शिशति धिषणा वरेण्यम् ॥ १ ॥

तव । त्यत् । इन्द्रियम् । बृहत् । तव । शुष्मम् । उत । क्रतुम् ॥  
वज्रम् । शिशति । धिषणा । वरेण्यम् ॥ १ ॥

आपका इन्द्रसम्बन्धी बृहद् बल है, वह बुद्धिसे वरने योग्य बल कर्म और वज्रको तीक्ष्ण करता है ॥ १ ॥

तव द्यौरिन्द्र पौंस्यं पृथिवी वर्धति श्रवः । त्वामापः  
पर्वतासश्च हिन्विरे ॥ २ ॥

तव । द्यौः । इन्द्र । पौंस्यम् । पृथिवी । वर्धति । श्रवः ॥ त्वाम् ।  
आपः । पर्वतासः । च । हिन्विरे ॥ २ ॥

हे इन्द्र ! द्युलोक आपका पुंस्त्व है, पृथिवी अन्नको बढ़ाती है, जल और पर्वत आपको प्रेरित करते हैं ॥ २ ॥

त्वां विष्णुर्बृहन् क्षयो मित्रो गृणाति वरुणः । त्वां  
शर्धो मदत्यनु मारुतम् ॥ ३ ॥



त्वाम् । विष्णुः । बृहन् । क्षयः । मित्रः । गृणाति । वरुणः ॥

त्वाम् । शर्धः । मदति । अनु । मारुतम् ॥ ३ ॥

इति नवमेऽनुवाके दशमं सूक्तम् ॥

विशाल विष्णुदेव, सूर्य, वरुण और यम आपकी प्रशंसा करते हैं, वायुके पीछे बल आपको मद प्रदान करता है ॥ ३ ॥

नवम अनुवाकमें दशम सूक्त समाप्त ( ७२२ )

विघने एकाहे “समस्य मन्यवे विशः” [ २०. १०७ ] “तदि-  
दास भुवनेषु ज्येष्ठम्” [ २०. १०७, ४ ] इत्येतौ आज्यपृष्ठस्तो-  
त्रियौ भवतः । तद् उक्तं वैताने । “विघने समस्य मन्यवे विश-  
स्तदिदास भुवनेषु ज्येष्ठमिति” इति [ वै० ८. १ ] ॥

विघन एकाहमें “समस्य मन्यवे विशः” ( २० । १०७ )  
“तदिदास भुवनेषु ज्येष्ठम्” ( २० । १०७ । ४ ) ये आज्यपृष्ठ  
स्तोत्रिय होते हैं । इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि—“विघने  
समस्य मन्यवे विशस्तदिदास भुवनेषु ज्येष्ठमिति” (वैतानसूत्र ८।१)  
समस्य मन्यवे विशो विश्वा नमन्त कृष्टयः । समु-

द्रायेव सिन्धवः ॥ १ ॥

सम् । अस्य । मन्यवे । विशः । विश्वाः । नमन्त । कृष्टयः ॥

समुद्राद्येव । सिन्धवः ॥ १ ॥

जैसे समुद्रके लिये नदियें नमती हैं, इसी प्रकार सम्पूर्ण प्रजाएँ  
कर्म करते हुए इन इन्द्रके लिये नमती हैं-इनकी शरणमें जाती हैं १  
ओजस्तदस्य तित्विष उभे यत् समवर्तयत् । इन्द्रश्चर्मैव

रोदसी ॥ २ ॥

ओजः । तत् । अस्व । तित्विषे । उभे इति । सम्यञ्चवर्तयत् ॥

इन्द्रः । चर्मञ्च । रोदसी इति ॥ २ ॥

इन इन्द्रने दोनों घावापृथिवीको चमड़ेकी समान लपेट लिया था. इनका वह वीर्य दमकता है ॥ २ ॥

वि चिद् वृत्रस्य दोधतो वज्रेण शतपर्वणा । शिरो  
विभेद वृष्णिना ॥ ३ ॥

वि । चित् । वृत्रस्य । दोधतः । वज्रेण । शतऽपर्वणा ॥ शिरः ।

विभेद । वृष्णिना ॥ ३ ॥

इन्द्रदेवने क्रोधमें भरे हुए वृत्रासुरके शिरको सैंकड़ों पर्ववाले और रुधिरकी वर्षा करनेवाले वज्रसे काट डाला था ॥ ३ ॥

तदिदांस भुवनेषु ज्येष्ठं यतो जज्ञ उग्रस्त्वेषन्मृणः ।  
सद्यो जज्ञानो नि रिणाति शत्रून्नु यदेनं मदन्ति  
विश्व ऊमाः ॥ ४ ॥

तत् । इत् । आस । भुवनेषु । ज्येष्ठम् । यतः । जज्ञे । उग्रः ।  
त्वेषन्मृणः ।

सद्यः । जज्ञानः । नि । रिणाति । शत्रून् । अन्नु । यत् । एन्म् ।  
मदन्ति । विश्वे । ऊमाः ।

क्योंकि—यह इन्द्रदेव धनवान् और बली हैं, इस कारण भुवनों में श्रेष्ठ माने जाते हैं, यह प्रकट होते ही शत्रुओंको मारने लगते हैं

इसी लिये इनकी ऊमा ( रक्षक शक्तियों ) इनके प्रकट होते ही आनन्दमें भर जाती हैं ॥ ४ ॥

वावृ॒धानः शव॑सा भूर्यो॑जाः शत्रु॑र्दा॒साय॑ भियसं॑ दधाति  
अव्य॑नच्च व्यन॒च्च सस्मि॑ सं ते॒ नवन्त॑ प्रभृ॒ता मदे॑षु  
ववृ॒धानः । शव॑सा । भूरि॑ऽओजाः । शत्रुः॑ । दा॒साय॑ । भिय॑सम् ।  
दधा॑ति ।

अवि॑ऽअनत् । च॒ । वि॑ऽअनत् । च॒ । सस्मि॑ । सम् । ते॒ । नव॑न्त ।  
प्रभृ॑ता । मदे॑षु ॥ ५ ॥

महाबलवान् बलसे बढ़ता हुआ शत्रु दासोंको भय देता है, स्थावर और जंगम सारा जगत् (परब्रह्ममें) शयन करता है अर्थात् लीन होजाता है, अतः भली प्रकार वेतन आदि देकर रखे हुए ( सैनिक ) वर्षके अवसर युद्धोंमें उन परब्रह्म वा इन्द्रकी स्तुति कर ( युद्धमें प्रवृत्त होजा ) ते हैं ॥ ५ ॥

त्वे क्रतु॑मपि॑ पृञ्चन्ति॑ भूरि॑ द्विर्य॑देते॒ त्रिर्भव॑न्त्यूमाः ।  
स्वादोः॑ स्वादी॑यः स्वा॒दुना॑ सृजा॒ सम॒दः सु॒ मधु॑ मधु॒-  
नाभि॑ यो॒धीः ॥ ६ ॥

त्वे इति॑ । क्रतु॑म् । अपि॑ । पृञ्च॑न्ति । भूरि॑ । द्विः । यत् । एते ।  
त्रिः । भव॑न्ति । ऊमाः ।  
स्वादोः॑ । स्वादी॑यः । स्वा॒दुना॑ । सृज॑ । सम् । अ॒दः । सु॒ । मधु॑ ।  
मधु॑ना । अ॒भि । यो॒धीः ॥ ६ ॥



जो यह जन्म और संस्कारसे दो बार उत्पन्न होते हैं, और युद्ध वा यज्ञकी दीक्षा ले तीन बार उत्पन्न होते हैं, ये बड़े भारी यज्ञको आपमें संयुक्त करते हैं, ऐसे हे स्वादिष्ट पदार्थोंको स्वादु बनाने वाले आप स्वादु पदार्थोंसे इन योधाओंको संयुक्त करिये। और हे सुन्दर जल वाले इन्द्रदेव ! आप योधाओंमें प्रवेश करके मधुर रीतिसे युद्ध करिये ॥ ६ ॥

यदि चिन्नु त्वा धना जयन्तं रणे रणे अनुमदन्ति विप्राः  
ओजीयः शुष्मिन् स्थिरमा तनुष्व मा त्वा दभन् दुरे-  
वासः कशोकाः ॥ ७ ॥

यदि । चिन्नु । त्वा । धना । जयन्तम् । रणेऽरणे । अनु-  
मदन्ति । विप्राः ।

ओजीयः । शुष्मिन् । स्थिरम् । आ । तनुष्व । मा । त्वा । दभन् ।  
दुःऽएवासः । कशोकाः ॥ ७ ॥

प्रत्येक रणमें धनोंको जीतने वाले आपकी ब्राह्मण यदि स्तुति करते हैं तो हे बलवान् ! आप उनमें स्थिर ( धन रूप ) बल फैलाइये, सुखमें दुःख करने वाले अत एव दुर्गति पाने वाले पुरुष आपको प्राप्त न हों ॥ ७ ॥

त्वया वयं शाशद्महे रणेषु प्रपश्यन्तो युधेन्यानि भूरि  
चोदयामि त आयुधा वचोभिः सं ते शिशामि ब्रह्मणा  
वयांसि ॥ ८ ॥

त्वया । त्वयम् । शाश्वदे । रणेषु । प्रऽपश्यन्तः । युधेन्यानि । भूरि  
चोदयामि । ते । आयुधा । वचऽभिः । सम् । ते । शिशामि ।  
ब्रह्मणा । वयांसि ॥ ८ ॥

हम देखते २ आपके द्वारा युद्धोंमें बहुतसे दूसरे पक्ष वालोंका  
संहार करा डालते हैं, मैं अपने तपः सिद्धवचनोंसे आपके आयुधों  
को प्रेरित करता हूँ और मन्त्रके द्वारा आपके पत्नीकीसी गति  
वाले बाणोंको तीक्ष्ण करता हूँ ॥ ८ ॥

नि तद् दधिषेवरे परं च यस्मिन्नाविथावसा दुरोणे ।  
आ स्थापयत मातरं जिगत्नुमतं इन्वत कर्कराणि भूरि  
नि । तत् । दधिषे । अवरे । परे । च । यस्मिन् । आविथ । अवसा ।  
दुरोणे ।

आ । स्थापयत । मातरम् । जिगत्नुम् । अतः । इन्वत । कर्क-  
राणि । भूरि ॥ ९ ॥

जिसको श्रेष्ठ और साधारण प्राणियोंने धारण किया है और  
जिस घरमें अन्नसे रक्षा पाई है उसमें चलती फिरती कालिका  
माता शक्तिको स्थापित करिये, तदनन्तर अनेक विचित्र पदार्थों  
को इसमें लाइये ॥ ९ ॥

स्तुष्व वर्ष्मन् पुरुवर्त्मानं समृभ्वाणमिनतं ममासमा-  
प्यानाम् ।

आ दर्शति शवसा भूर्योजाः प्र संचति प्रतिमानं  
पृथिव्याः ॥ १० ॥

स्तु॒ष्व । वर्ष्म॑न् । पु॒रु॒ऽव॒र्त्मान॑म् । स॒म् । ऋ॒भ्वा॑णम् । इ॒न॒ऽत॑मम् ।  
आ॒प्तम् । आ॒प्त्या॑नाम् ।

आ । दर्श॑ति । श॒वसा॑ । भुरि॑ऽओजाः । प्र । स॒क्षति॑ । प्र॒ति॒ऽमान॑म्  
पृथि॒व्याः ॥ १० ॥

हे स्तोतः ! अनेक मार्गोंमें विचरण करने वाले परम तेजस्वी,  
श्रेष्ठ स्वामी, आप पुरुषोंके गुणोंको प्राप्त हुए इन्द्रकी स्तुति कर  
यह पृथिवीकी प्रतिमा रूप महाबली इन्द्र यज्ञको देखते हुए यज्ञमें  
संलग्न हो रहे हैं ॥ १० ॥

इ॒मा ब्र॒ह्मं बृ॒हद्दि॒वः कृ॒णव॑दिन्द्रा॒य शु॒षम॑ग्रि॒यः स्व॒र्षाः ।  
म॒हो गो॒त्रस्य॑ क्ष॒यति॑ स्व॒राजा॒ तुर॑श्चिद् वि॒श्वम॑र्णवत्  
तप॑स्वान् ॥ ११ ॥

इ॒मा । ब्र॒ह्म । बृ॒हत्॒ऽदि॒वः । कृ॒णव॑त् । इन्द्रा॒य । शु॒षम् । अ॒ग्रि॒यः ।  
स्वः॑ऽसाः ।

म॒हः । गो॒त्रस्य॑ । क्ष॒यति॑ । स्व॒राजा॑ । तुरः॑ । चि॒त् । वि॒श्वम् ।  
अ॒र्णव॑त् । तप॑स्वान् ॥ ११ ॥

स्वर्गका सेवन करनेकी इच्छा वाला यह श्रेष्ठ राजा महास्वर्ग  
के अधिपति इन्द्रके लिये इन बड़े २ स्तोत्रोंको करता हुआ इन्द्र  
को सुख देता है, और स्वर्गका राजा शीघ्रता करने वाला तपस्वी  
इन्द्र मेघके जलका क्षय करता हुआ अर्थात् उसको बरसाता हुआ  
जगत्को जलपूर्ण करता है ॥ ११ ॥

ए॒वा म॒हान् बृ॒हद्दि॒वो अथ॒र्वा॒वाच॑त् स्वां त॒न्व॑ १ मिन्द्रमे॒व



स्वसारौ मातरिभ्वरी अरिप्रे हिन्वन्ति चैने शवसा  
वर्धयन्ति च ॥ १२ ॥

एव । महान् । बृहत्ऽदिवः । अथर्वा । अवोचत् । स्वाम् । तन्वम् ।  
इन्द्रम् । एव ।

स्वसारौ । मातरिभ्वरी इति । अरिप्रे इति । हिन्वन्ति । च ।  
एने इति । शवसा । वर्धयन्ति । च ॥ १२ ॥

अपनेको इन्द्र मानते हुए परमप्रकाशवान् महर्षिं अथर्वाने इस  
प्रकार कहा था, कि—निष्पाप मातरिभ्वरी बहिर्ने इसको प्रसन्न  
करती हैं और बलको बढ़ाती हैं ॥ १२ ॥

चित्रं देवानां केतुरनीकं ज्योतिष्मान् प्रदिशः सूर्यं  
उद्यन् ।

दिवाकरोति घुम्नैस्तमांसि विश्वातारीद् दुरितानि  
शुक्रः ॥ १३ ॥

चित्रम् । देवानाम् । केतुः । अनीकम् । ज्योतिष्मान् । प्रऽदिशः ।  
सूर्यः । उद्यन् ।

दिवाऽकरः । अति । घुम्नैः । तमांसि । विश्वा । अतारीत् ।  
दुऽदितानि । शुक्रः ॥ १३ ॥

यह पूजनीय, किरणोंके समूह वाले ज्ञापक ज्योतिः भरे हुए

दिशाओंकी ओरको उठते हुए अपने प्रकाशोंसे दिन कर देते हैं, सब अंधकारोंको तर जाते हैं और यह वीर्य सम्पन्न इन्द्र सब पापोंके पार जाते हैं अर्थात् उनको नष्ट कर डालते हैं ॥१३॥

चित्रं देवानामुदंगादनीकं चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्नेः ।

आप्राद् द्यावापृथिवी अन्तरिक्षं सूर्य आत्मा जग-

तस्तस्थुषश्च ॥ १४ ॥

चित्रम् । देवानाम् । उत् । अगात् । अनीकम् । चक्षुः । मित्रस्य ।

वरुणस्य । अग्नेः ।

आ । अप्रात् । द्यावापृथिवी इति । अन्तरिक्षम् । सूर्यः । आत्मा ।

जगतः । तस्थुषः । च ॥ १४ ॥

यह पूजनीय, किरणोंका जो समूह उदय होरहा है, यह मित्र वरुण और अग्निका चक्षु है । यह जो सूर्य हैं यह जंगम और स्थावरके आत्मा हैं अर्थात् सर्वभूतानुप्रवेशी हैं, यह सूर्यदेव अपनी महिमासे द्यावापृथिवी और अन्तरिक्षको भर देते हैं ॥ १४ ॥

सूर्यो देवीमुषसं रोचमानां मर्यो न योषामभ्येति

पश्चात् ।

यत्रा नरो देवयन्तो युगानि वितन्वते प्रति भद्राय

भद्रम् ॥ १५ ॥

सूर्यः । देवीम् । उषसम् । रोचमानाम् । मर्यः । न । योषाम् ।

अभि । एति । पश्चात् ।

यत्र । नरः । देवऽयन्तः । युगानि । विस्तन्वते । प्रति । भद्राय ।

भद्रम् ॥ १५ ॥

इति नवमेनुवाके एकादशं सूक्तम् ॥

जैसे मरणधर्मी पुरुष स्त्रीके पीछे जाता है, इसी प्रकार यह सूर्यदेव दमकती हुई देवी उषाको प्राप्त होते हैं, उस समय पुरुष दिनोंको देवताओंके उपयोगमें लाते हुए भद्र सूर्यके लिये ( अर्घ आदि ) भद्र कार्योंको करते हैं ॥ १५ ॥

नवम अनुवाकमें एकादश सूक्त समाप्त ( ७२३ )

वज्रपुनःस्तोमांख्ययोरेकादयोः “त्वं न इन्द्रा भर” इत्येष उक्थस्तोत्रियो भवति । तद् उक्तं वैताने । “वज्रे पुनःस्तोमे त्वं न इन्द्रा भरेति” इति [ वै० ८. १ ] ॥

तथा पवित्रादिषु राजसूयैकादेषु एतस्य विनियोगः “अथा हीन्द्रा गिर्वणः” [ २०. १०० ] इत्यनेन सह उक्तः ॥

तथा वैदस्वरसाम्नोऽपहयोः प्रथमयोरहोः एष उक्थस्तोत्रियो भवति । तद् उक्तं वैताने । “वैदस्वरसाम्नोऽस्त्वं न इन्द्रा भरेति” इति [ वै० ८. ३ ] ॥

तथा चतुरहाणां तृतीयेष्वहःसु अस्य विनियोगः “आयन्त इव सूर्यम्” [ २०. ५८ ] इत्यनेन सह उक्तः ॥

तथा अभ्यासङ्ग्यपञ्चशारदीययोः पञ्चाहयोर्द्वितीयेहनि एष उक्थस्तोत्रियो भवति । तद् उक्तं वैताने । “अभ्यासङ्ग्यपञ्चशारदीययोर्द्वितीये त्वं न इन्द्रा भरेति” इति [ वै० ८. ३ ]

तथा अभिसवस्यायुराख्येहनि एष उक्थस्तोत्रियो भवति । तद् उक्तं वैताने । “आयुषि त्वं न इन्द्रा भरेति” इति [ वै० ८. ३ ] ॥

तथा पृष्ठयषढस्य तृतीयेहनि अस्य विनियोगः “इन्द्रेण सं हि वृक्षसे” [ २०. ४० ] इत्यनेन सह उक्तः ॥



तथा द्वादशाहस्य छन्दोमन्त्र्यहस्य प्रथमान्त्ययोरहोः “त्वं न इन्द्रा भर” [२०. १०८] “य एक इद् विदयते” [२०. ६३. ४] एतौ उक्थस्तोत्रियौ यथाक्रमं भवतः । तद् उक्तं वैताने । “द्वादशाहस्य छन्दोमन्त्र्ययोस्त्वं न इन्द्रा भर य एक इद् विदयत इति” इति [ वै० ८. ४ ] ॥

वज्र और पुनःस्तोम नामक एकाहोंमें “त्वं न इन्द्रा भर” यह उक्थस्तोत्रिय होता है । इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि—“वज्रे पुनःस्तोमे त्वं न इन्द्रा भरेति” (वैतानसूत्र ८ । १) ॥

तथा पवित्र आदि राजसूय एकाहोंमें इसका विनियोग “अधा हीन्द्रा गिर्वणः” ( २० । १०० ) के साथ कह दिया है ।

तथा तीन दिनमें होने वाले वैदस्वरसामोंमें प्रथम दिन यह उक्थस्तोत्रिय होता है, इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि—“वैदस्वरसामोस्त्वं न इन्द्रा भरेति” ( वैतानसूत्र ८ । ३ ) ॥

तथा चतुरहोंके तीसरे दिनोंमें इसका विनियोग “आयन्त इव सूर्यम्” ( २० । ५८ ) के साथ कह दिया है ।

तथा अभ्यासङ्ग्य पञ्चशारदीय पञ्चाहोंके द्वितीय दिनोंमें यह उक्थस्तोत्रिय होता है । इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि—“अभ्यासङ्ग्यपञ्चशारदीययोर्द्वितीये त्वं न इन्द्रा भरेति” ( वैतानसूत्र ८ । ३ ) ॥

तथा अभिसवके आयु नामक दिनमें यह उक्थस्तोत्रिय होता है । इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि—“आयुषि त्वं न इन्द्रा भरेति” ( वैतानसूत्र ८ । ३ ) ॥

तथा षष्ठ्यषडहके तीसरे दिनमें इसका विनियोग “इन्द्रेण सहि दृक्षसे” ( २० । ४० ) के साथ कह दिया है ।

तथा द्वादशाह और छन्दोमन्त्र्यहके प्रथम और अन्तिम दिनों में “त्वं न इन्द्रा भर” ( २० । १०८ ) “य एक इद् विदयते”

( २० । ६३ । ४ ) ये यथाक्रम उक्थस्तोत्रिय होते हैं। इसी बातको  
वैतानसूत्रमें कहा है, कि—“द्वादशाहस्य च्छन्दोमप्रथमान्त्ययोस्त्वं  
न इन्द्रा भर य एक इद् विदयत इति ( वैतानसूत्र ८ । ४ ) ॥  
त्वं न इन्द्रा भर ओजो नृम्णं शतक्रतो विचर्षणे ।  
आ वीरं पृतनासहम् ॥ १ ॥

त्वम् । नः । इन्द्र । आ । भर । ओजः । नृम्णम् । शतक्रतो इति  
शतऽक्रतो । विऽचर्षणे ॥ आ । वीरम् । पृतनाऽसहम् ॥ १ ॥

हे विशेषरूपसे द्रष्टा शतक्रतु इन्द्र ! हममें धन और बलको  
स्थापित करिये और शत्रुओंकी सेनाओंका पराभव करने वाले  
वीर-पुत्र-को दीजिये ॥ १ ॥

त्वं हि नः पिता वसो त्वं माता शतक्रतो बभूविथ ।  
अधा ते सुम्नभीमहे ॥ २ ॥

त्वम् । हि । नः । पिता । वसो इति । त्वम् । माता । शतक्रतो  
इति शतऽक्रतो । बभूविथ ॥ अध । ते । सुम्नम् । भीमहे ॥ २ ॥

हे शतक्रतो ! आप हमारे पिता हैं और हे वसो इन्द्र ! आप  
हमारी माता हैं, इसलिये हम आपसे सुखकी याचना करते हैं २  
त्वां शुष्मिन् पुरुहूत वाजयन्तमुप ब्रुवे शतक्रतो ।

स नो रास्व सुवीर्यम् ॥ ३ ॥

त्वाम् । शुष्मिन् । पुरुहूत । वाजयन्तम् । उप । ब्रुवे । शतक्रतो  
इति शतऽक्रतो । सः । नः । रास्व । सुवीर्यम् ॥ ३ ॥

इति नवमेनुवाके द्वादशं सूक्तम् ॥

विषुवत् यज्ञके स्वादु मधुका स्तोत्र की वाणियों इस प्रकार पान करती हैं, कि-वह इन्द्रसे संयुक्त होकर रात्रियों तक इन्द्र को हर्षमें भरे रखती हैं, उसके अनन्तर हे यजमान ! तू भी स्वराज्य पर शोभा पावेगा ॥ १ ॥

ता अस्य पृशनायुवः सोमं श्रीणन्ति पृश्नयः ।

प्रिया इन्द्रस्य धेनवो वज्र हिन्वन्ति सायकं वस्वीरनु  
स्वराज्यम् ॥ २ ॥

ताः । अस्य । पृशनायुवः । सोमम् । श्रीणन्ति । पृश्नयः ।

प्रियाः । इन्द्रस्य । धेनवः । वज्रम् । हिन्वन्ति । सायकम् ॥ २

वह पृशनायुव पृश्नियों इसके सोमको पका रही हैं, यह इन्द्रकी धेनुएँ इन्द्रके सायक और वज्रको प्रेरित करती हैं। इन रात्रियों के अनन्तर आप स्वराज्य पर आरूढ़ हूजिये ॥ २ ॥

ता अस्य नमसा सहः सपर्यन्ति प्रचेतसः ।

व्रतान्यस्य सश्विरे पुरुणि पूर्वचित्तये वस्वीरनु स्व-  
राज्यम् ॥ ३ ॥

ताः । अस्य । नमसा । सहः । सपर्यन्ति । प्रचेतसः ।

व्रतानि । अस्य । सश्विरे । पुरुणि । पूर्वचित्तये । वस्वीः ।

अनु । स्वराज्यम् ॥ ३ ॥

इति नवमेनुवाके त्रयोदशं सूक्तम् ॥

वे प्रकृष्ट ज्ञान वाली वाणियों इस ( इन्द्र ) की हविके साथ



हे बलवन् शतक्रतो ! मैं आप हविरूप अन्न चाहने वाली की  
स्तुति करता हूँ, इस लिये आप सुन्दर वीरतासे सम्पन्न धन  
दीजिये ॥ ३ ॥

अथम अनुवाक्ये द्वादश सूक्तसमाप्त ( ५२४ )

साहस्राख्याश्चत्वार एकाहा ब्राह्मणपठिताः । तेषां प्रथमद्विती-  
ययोः “स्वादोरित्था विषूवतः” इति पृष्ठस्तोत्रियो भवति । तद्  
उक्तं वैताने । “साहस्राद्ययोः स्वादोरित्था विषूवत इति” इति  
[ वै० ८. १ ] ॥

तथा अश्वमेधज्यहस्य द्वितीयेदनि अस्य विनियोगः “वाचम-  
ष्टापदीमहम्” [ २०. ४२ ] इत्यनेन सह उक्तः ॥

साहस्र नामक चार एकाह ब्राह्मणमें पठित हैं । उनमेंसे  
पहिले दूसरेमेंसे “स्वादोरित्था विषूवतः” यह पृष्ठस्तोत्रिय होता  
है । इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि—“साहस्राद्ययोः स्वा-  
दोरित्था विषूवतः” ( वैतानसूत्र ८ । १ ) ॥

तथा अश्वमेध ज्यहके द्वितीय दिनमें इसका विनियोग “वाच-  
मष्टापदीमहम्” ( २० । ४२ ) के साथ कह दिया है ।

स्वादोरित्था विषूवतो मध्वः पिबन्ति गौर्यः ।

या इन्द्रेण सयावरीवृष्णा मदन्ति शोभसे वस्वीरनु

स्वराज्यम् ॥ १ ॥

स्वादोः । इत्था । विषुवतः । मध्वः । पिबन्ति । गौर्यः ।

याः । इन्द्रेण । सयावरीः । वृष्णा । मदन्ति । शोभसे । वस्वीः ।

अनु । स्वराज्यम् ॥ १ ॥

पूजा करती हैं, इस यजमानके बड़े २ व्रत इस पूर्वधित्ति इन्द्रमें संयुक्त होते हैं और यज्ञकी रात्रियोंके अनन्तर आप स्वराज्य पर आरूढ़ होंगे ॥ ३ ॥

नवम अनुवाकमें त्रयोदश सूक्त समाप्त ( ७२५ )

विराडादिषु सप्तस्वेकाहेषु “इन्द्राय मद्धने सुतम्” [२०.११०] “यत् सोममिन्द्र विष्णवि” [ २०. १११ ] एतौ आज्योक्थस्तोत्रियौ भवतः । तद् उक्तं वैताने । “विराजि भूमिस्तोमे वनस्पतिसवे त्विष्यपचित्योरिन्द्राग्न्योः स्तोम इन्द्राग्न्योःकुलाय इन्द्राय मद्धने सुतं यत् सोममिन्द्र विष्णवीति” इति [ वै० ८. २ ] ॥

विराट् आदि सात एकाहोंमें “इन्द्राय मद्धने सुतम्” (२०।११०) “यत् सोममिन्द्र विष्णवि” ( २० । १११ ) यह आज्योक्थस्तोत्रिय होते हैं । इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि—“विराजि भूमिस्तोमे वनस्पतिसवे त्विष्यपचित्योरिन्द्राग्न्योः स्तोम इन्द्राग्न्योः कुलाय इन्द्राय मद्धने सुतं यत् सोममिन्द्र विष्णवि” (वैतानसूत्र ८ । २ ) ॥

इन्द्राय मद्धने सुतं परिं शोभन्तु नो गिरः । अर्कमर्चन्तु कारवः ॥ १ ॥

इन्द्राय । मद्धने । सुतम् । परिं । स्तोभन्तु । नः । गिरः ॥ अर्कम् ।

अर्चन्तु । कारवः ॥ १ ॥

हमारे इस सेवनीय यज्ञमें अभिषुत सोमकी हमारी वाणियों स्तुति करें और स्तोता पूजनीय इन्द्रका पूजन करें ॥ १ ॥

यस्मिन् विश्वा अधि श्रियो रणन्ति सप्त संसदः ।

इन्द्रं सुते हवामहे ॥ २ ॥

यस्मिन् । विश्वाः । अधि । श्रियः । रणन्ति । सप्त । समुऽसदः ॥

इन्द्रम् । सुते । हवामहे ॥ २ ॥

सात संपत्तिरूपा सब सभाएँ जिनको प्राप्त होती हैं, उन इन्द्र-देवका हम सोमका अभिषव होने पर आह्वान करते हैं ॥ २ ॥

त्रिकटुकेषु चेतनं देवासो यज्ञमत्नत । तमिद् वर्धन्तु

नो गिरः ॥ ३ ॥

त्रिऽकटुकेषु । चेतनम् । देवासः । यज्ञम् । अत्नत ॥ तम् । इत् ।

वर्धन्तु । नः । गिरः ॥ ३ ॥

इति नवमेऽनुवाके चतुर्दशं सूक्तम् ॥

त्रिकटुकोंने इस ज्ञानप्रद यज्ञको आरंभ किया था, उसको हमारी वाणियों बढ़ावें ॥ ३ ॥

नवम अनुवाकमें चतुर्दश सूक्त समाप्त ( ७२६ )

“यत् सोममिन्द्र विष्णवि” इत्यस्य विनियोगः पूर्वसूक्तेन सह उक्तः ॥

तथा पवित्रादिषु राजसूयैकादेषु चतुरहादिषु च अस्य विनियोगः “अथा हीन्द्र गिर्वणः” [ २०, १०० ] इत्यनेन सह उक्तः ॥

तथा अभिसवस्य षष्ठमहः उक्थ्यसंस्थं चेद् भवति तदा “य एक इद् विदयते” [ २०, ६३, ४ ] “यत् सोममिन्द्र विष्णवि” [ २०, १११ ] एनौ उक्थस्तोत्रियौ विकल्पितौ भवतः । तद् उक्तं वैताने । “षष्ठमुक्थ्यं चेद् य एक इद् विदयते यत् सोममिन्द्र विष्णवीति” इति [ वै० ८, ३ ] ॥

“यत् सोममिन्द्र विष्णवि” का विनियोग पहिले सूक्तके साथ कह दिया है ।



तथा पवित्र आदि राजसूय एकादशमें तथा चतुरह आदिमें भी इसका विनियोग “अथा हीन्द्र गिर्वणः” ( २० । १०० ) के साथ कह दिया है ।

तथा अभिसवका छठा दिन यदि उक्थ्य-संस्थ होता है तो “य एक इद् विदयते” ( २० । ६३ । ४ ) यत् सोममिन्द्र विष्णवि” ( २० । १११ ) ये विकल्पित उक्थस्तोत्रिय होते हैं । इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि—“षष्ठमुक्थ्यं चेत् य एक इद् विदयते यत् सोममिन्द्र विष्णवीति” ( वैतानसूत्र ८ । ३ ) ॥

यत् सोममिन्द्र विष्णवि यद्वा घ त्रित आप्तये । यद्वा मरुत्सु मन्दसे समिन्दुभिः ॥ १ ॥

यत् । सोमम् । इन्द्र । विष्णवि । यत् । वा । घ । त्रिते । आप्तये ।

यत् । वा । मरुत्सु । मन्दसे । सम् । इन्दुभिः ॥ १ ॥

हे इन्द्र ! जो आप त्रितमें यज्ञमें वा आप्त्य तथा मरुत्में हर्ष में भरते हैं वह जलके साथके सोमसे ही हर्षमें भरते हैं ॥ १ ॥

यद्वा शक्र परावति समुद्रे अधि मन्दसे । अस्माक-  
मित् सुते रणा समिन्दुभिः ॥ २ ॥

यत् । वा । शक्र । परावति । समुद्रे । अधि । मन्दसे ॥ अस्मा-

कम् । इत् । सुते । रण । सम् । इन्दुभिः ॥ २ ॥

हे इन्द्र ! जो आप बहुत दूरके समुद्रमें वा हमारे यज्ञमें हर्षित होते हैं वह जल मिले सोमसे ही होते हैं ॥ २ ॥

यद्वासि सुन्वतो वृधो यजमानस्य सत्पते । उक्थे वा  
यस्य रण्यसि समिन्दुभिः ॥ ३ ॥

यत् । वा । असि । सुन्वतः । वृधः । यजमानस्य । सत्पते ॥  
उक्थे । वा । यस्य । रण्यसि । सम् । इन्दुभिः ॥ ३ ॥

इति नवमेनुवाके पंचदशं सूक्तम् ॥

हे सत्पते ! जो आप सोमाभिषव करने वाले यजमानके बढ़ाने वाले हैं, वा जिसके उक्थ्यमें रमणीय होते हैं वह सोमसे ही होते हैं ॥ ३ ॥

नवम अनुवाकमें पन्द्रहवाँ सूक्त समाप्त ( ७२७ )

विनुत्यभिभूत्यादिषु अष्टसु द्वन्द्वैकाहेषु “यदद्य कच्च वृत्रहन्”  
[ २०. ११२ ] “उभयं शृणवच्च नः” [ २०. ११३ ] एतौ  
आज्यपृष्ठस्तोत्रियौ भवतः । तद् उक्तं वैताने । “विनुत्यभिभूत्यो  
राशिमराशयोः शदोपशदयोः सम्राट्स्वराजोर्यदद्य कच्च वृत्रहन्नु-  
भयं शृणवच्च न इति” इति [ वै० ८. २ ] ॥

विनुति अभिभूति आदि आठ द्वन्द्वैकाहोंमें “यदद्य कच्च वृत्र-  
हन्” ( २० । ११२ ) “उभयं शृणवच्च नः” ( २० । ११३ )  
ये आज्यपृष्ठ स्तोत्रिय होते हैं । इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा  
है, कि—“विनुत्यभिभूत्यो राशिमराशयोः शदोपशदयोः सम्राट्-  
स्वराजोर्यदद्य कच्च वृत्रहन्नुभयं शृणवच्च न इति” (वैतानसूत्र ८।२)  
यदद्य कच्च वृत्रहन्नुदगा अभि सूर्य । सर्वं तदिन्द्रं ते  
वशे ॥ १ ॥

यत् । अद्य । कत् । च । वृत्रहन् । उत्सगाः । अभि । सूर्य ॥

सर्वम् । तत् । इन्द्र । ते । वशे ॥ १ ॥

हे मेघोंका संहार करने वाले वृत्रहन् सूर्यात्मक इन्द्र ! आप जब कभी उदय होते हैं, वह सब हे इन्द्रात्मक इन्द्र ! आपके वशमें है ॥ १ ॥

यद्वा प्रवृद्ध सत्पते न मरा इति मन्यसे । उतो तत् सत्यमित् तव ॥ २ ॥

यत् । वा । प्रवृद्ध । सत्पते । न । मरै । इति । मन्यसे ॥

उतो इति । तत् । सत्यम् । इत् । तव ॥ २ ॥

अथवा हे सत्पते इन्द्र ! जब आप यह विचारते हैं, कि—यह न मरे वह आपका विचार सत्य ही होता है ॥ २ ॥

ये सोमांसः परावति ये अर्वावति सुन्विरे । सर्वास्ताँ इन्द्र गच्छसि ॥ ३ ॥

ये । सोमांसः । परावति । ये अर्वावति । सुन्विरे ॥ सर्वान् । तान् । इन्द्र । गच्छसि ॥ ३ ॥

इति नवमेनुवाके षोडशं सूक्तम् ॥

जो सोम दूर वा पास पर निचोड़े जाते हैं, हे इन्द्र ! उन सबके पास आप प्राप्त होते हैं ॥ ३ ॥

नवम अनुवाकमें षोडश सूक्त समाप्त ( ७२८ )

विनुत्यभिभृत्यादिषु “उभयं शृणुवच्च नः” इत्यस्य विनियोगः पूर्वसूक्तेन सह उक्तः ॥

तथा त्रिवृदादिषु अस्य विनियोगः “वयमेनमिदा ह्यः” [ २०. ६७ ] इत्यनेन सह उक्तः ॥



विनुति अभिभूति आदिमें इसका विनियोग पूर्वसूक्तके साथ कह दिया है ।

तथा त्रिवृत् आदिमें इसका विनियोग “वयमेनमिदा ह्यः” ( २० । ६७ ) के साथ कह दिया है ।

उभयं शृण्वच्च न इन्द्रो अर्वागिदं वचः ।

सुत्राच्या मघवा सोमपीतये धिया शविष्ठ आ गमत्

उभयम् । शृण्वत् । च । नः । इन्द्रः । अर्वाक् । इदम् । वचः ।

सुत्राच्या । मघवा । सोमपीतये । धिया । शविष्ठः । आ । गमत्

दोनों लोकोंमें हित करने वाले हमारे इस वचनको इन्द्रदेव अभिमुख होकर सुनें, कि—सत्यात्मिका बुद्धिसे बलवान् इन्द्रदेव सोमपान करनेके लिये आरहे हैं ॥ १ ॥

तं हि स्वराजं वृषभं तमोजसे धिषणे निष्टतक्षतुः ।

उतोपमानां प्रथमो नि षीदसि सोमकामं हि ते मनः

तम् । हि । स्वराजम् । वृषभम् । तम् । ओजसे । धिषणे इति ।

निःस्ततक्षतुः ।

उत । उपमानाम् । प्रथमः । नि । षीदसि । सोमकामम् । हि । ते ।

मनः ॥ २ ॥

इति नवमेनुवाकं सप्तदशं सूक्तम् ॥

उन अपनी प्रभासे दमकने वाले, कामनाओंकी वर्षा करने वाले इन्द्रको बल पानेके लिये द्युलोक और पृथ्वीलोक तनू करते

हैं। तुम इनमेंसे उपमानाको प्रथम प्राप्त होते हो, तुम्हारा मन सोमकी इच्छा वाला है ॥ २ ॥

नञ्चा अनुशास्त्रं सत्रज्ञौ सूक्त समाप्त ( ७२९ )

पवित्रादिषु राजसूयैकाहेषु “अभ्रातृव्यो अना त्वम्” इत्यस्य विनियोगः “अथा हीन्द्र गर्विणः” [ २०. १०० ] इत्यनेन सह उक्तः।

तथा अभिसव षडहस्य गन्तव्येहेनि “अभ्रातृव्यो अना त्वम्” इत्येष उक्त्यस्तोत्रियो भवति । तद् उक्तं वैताने । “षडहस्य गव्य-भ्रातृव्यो अना त्वमिति” इति [ वै० ८. ३ ] ॥

पवित्र आदि राजसूय एकाहोंमें “अभ्रातृव्यो अना त्वम्” इसका विनियोग “अथा हीन्द्र गर्विणः” ( २० । १०० ) के साथ कह दिया है ।

तथा अभिसव षडहके गन्तव्य दिनमें अभ्रातृव्यो अना त्वम्” यह उक्त्यस्तोत्रिय होता है । इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि—“षडहस्य गव्यभ्रातृव्यो अना त्वमिति” ( वैतान-सूत्र ८ । ३ ) ॥

अभ्रातृव्यो अना त्वमनापिरिन्द्र जनुषा सनादसि ।

युधेदापित्वमिच्छसे ॥ १ ॥

अभ्रातृव्यः । अना । त्वम् । अनापिः । इन्द्र । जनुषा । सनात् ।

असि ॥ युधा । इत् । आपिऽत्वम् । इच्छसे ॥ १ ॥ ।

हे इन्द्र ! आप शत्रुरहित हैं, अना और अनापि हैं, आप प्रकट होते ही संभक्ति करते हैं और युद्धमें आप आपित्वको चाहते हैं ॥ १ ॥

नकीं ख्वन्तं सख्याय विन्दसे पीयन्ति ते सुराश्च ।

यदा कृणोषि नदनुं समूहस्यादित् पितेव हूयसे २  
नकिः । रेवन्तम् । सख्याय । विन्दसे । पीयन्ति । ते । सुराऽश्वः  
यदा । कृणोषि । नदनुम् । समू । ऊहसि । आत् । इत् । पिताऽ-  
इव । हूयसे ॥ २ ॥

इति नवमेनुवाके अष्टादशं सूक्तम् ॥

आप धनवान्को मित्रताके लिये प्राप्त करते हैं । सुराशु आप  
को पुष्ट करते हैं, जब आप अपने समूहकी गर्जनाको करते हैं  
तब आप पिताकी समान बुलाये जाते हैं ॥ २ ॥

नवम अनुवाकमें अठारहवाँ सूक्त समाप्त ( ७३० )

साद्यःक्राभिधानेषु एकाहेषु श्येनयागर्जितेषु “अहमिद्धि पितु-  
ष्परि” इत्याज्यस्तोत्रियो भवति । तद् उक्तं वैताने । “साद्यः-  
क्रेषु श्येनवर्जम् अहमिद्धि पितुष्परीति च” इति [ वै० ८. २ ]

श्येनयागरहित साद्यःक्राभिधान एकाहोंमें “अहमिद्धि पितु-  
ष्परि” यह आज्यस्तोत्रिय होता है । इसी बातको वैतानसूत्रमें  
कहा है, कि—“साद्यःक्रेषु श्येनवर्जम् अहमिद्धि पितुष्परीति च”  
( वैतानसूत्र ( ८ । २ ) ॥

अहमिद्धि पितुष्परि मेधामृतस्य जग्रभ । अहं सूर्य  
इवाजनि ॥ १ ॥

अहम् । इत् । हि । पितुः । परि । मेधाम् । मृतस्य । जग्रभ ॥

अहम् । सूर्यऽइव । अजनि ॥ १ ॥

मैंने पिता ब्रह्माकी मेधाको भली प्रकार ग्रहण कर लिया है ।  
और मैं सूर्यकी समान प्रकट हुआ हूँ ॥ १ ॥



अहं प्रत्नेन मन्मना गिरः शुम्भामि कण्ववत् । येनेन्द्रः  
शुष्ममिद् दधे ॥ २ ॥

अहम् । प्रत्नेन । मन्मना । गिरः । शुम्भामि । कण्ववत् ॥  
येन । इन्द्रः । शुष्मम् । इत् । दधे ॥ २ ॥

मैं प्राचीन मननीय स्तोत्रसे कण्व ऋषिकी समान बाणियों  
को अलंकृत करता हूँ । इससे इन्द्रमें बलको स्थापित करता हूँ २  
ये त्वामिन्द्र न तुष्टुवुर्ऋषयो ये च तुष्टुवुः । ममेद्  
वर्धस्व सुष्टुतैः ॥ ३ ॥

ये । त्वाम् । इन्द्र । नः । तुष्टुवुः । ऋषयः । ये । च । तुष्टुवुः ॥  
मम । इत् । वर्धस्व । सुऽस्तुतः ॥ ३ ॥

इति नवमेनुवाके एकोनविंशं सूक्तम् ॥

हे इन्द्र ! जिन ऋषियोंने आपकी स्तुति की है वा जिन ऋषियों  
ने आपकी स्तुति न की हो, ( उनकी ओर कुछ ध्यान न देकर )  
आप मुझसे ही भली प्रकार स्तुत होकर बढ़िये ॥ ३ ॥

नवम अनुवाकमें उन्नीसवाँ सूक्त समाप्त ( ७३१ )

अतिरात्राणां सर्वस्तोमाख्ययोः “मा भूमनिष्ठया इव” [ २०.  
११६ ] “विधुं दद्राणं सलिलस्य पृष्ठे” [ ६. १५. ६ ] एतौ  
पृष्ठस्तोत्रियौ यथाक्रमं भवतः । तद् उक्तं वैताने । “अतिरात्राणां  
सर्वस्तोमयोर्मा भूम निष्ठया इव विधुं दद्राणं सलिलस्य पृष्ठइति”  
[ वै० द. २ ] ॥

तथा चतुरहाणां सर्वेष्वहःसु एतौ पृष्ठस्तोत्रियौ विकल्पितौ

भवतः । तद् उक्तं वैताने । “सर्वेषु मा भूम निष्ठया इव विधुं दद्राणं सलिलस्य पृष्ठ इति” इति [ वै० ८. ३ ] ॥

अतिरात्रोको सर्वस्तोमाख्योर्मे “मा भूमनिष्ठया इव” ( २० । ११६ ) “विधुं दद्राणं सलिलस्य पृष्ठे” ( ६ । १५ । ६ ) ये यथाक्रम पृष्ठस्तोत्रिय होते हैं । इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि—“अतिरात्राणां सर्वस्तोमयोर्मा भूम निष्ठया इव विधुं दद्राणं सलिलस्य पृष्ठ इति” ( वैतानसूत्र ८ । २ ) ॥

तथा चतुरहोके सब दिनोंमें ये विकल्पित पृष्ठस्तोत्रिय होते हैं । इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि—“सर्वेषु मा भूम निष्ठया इव विधुं दद्राणं सलिलस्य पृष्ठ इति” ( वैतानसूत्र ८ । ३ ) ॥

मा भूम निष्ठया इवेन्द्र त्वदरणा इव ।

वनानि न प्रजहितान्यद्रिवो दुरोषासो अमन्महि १

मा । भूम । निष्ठयाऽइव । इन्द्र । त्वत् । अरणाऽइव ।

वनानि । न । प्रजहितानि । अद्रिऽवः । दुरोषासः । अमन्महि १

हम आपसे उच्छृण न होनेके कारण दुष्ट शत्रुसे न होवें, हम आपकी त्यागने योग्य वस्तुओंको दुष्ट पाक (दावानल) से संपन्न वनोंकी समान मानें ॥ १ ॥

अमन्महीदनाशवोऽनुग्रासश्च वृत्रहन् ।

सकृत् सु ते महता शूर राधसानु स्तोमं मुदीमहि २

अमन्महि । इत् । अनाशवः । अनुग्रासः । च । वृत्रहन् ।

सकृत् । सु । ते । महता । शूर । राधसा । अनु । स्तोमम् ।

मुदीमहि ॥ २ ॥

इति नवमेनुवाके विंशं सूक्तम् ॥

हे वृत्रहन् ! हम अपनेको आपसे नाशरहित + और अनुग्रह समझें  
हे शूर ! हम आपकी एक बारकी ही श्रद्धासे स्तोम करने पर  
आनन्द पावें ॥ २ ॥

नवम अनुष्ठाकमें बीसवाँ सूक्त समाप्त ( ७३२ )

त्रिवृदादिषु “पिवा सोममिन्द्र मन्दतु त्वा” इत्यस्य विनियोगः  
“वयमेनमिदा ह्यः” [ २०. ६७ ] इत्यनेन सह उक्तः ॥ तथा  
तनूपृष्ठे षडहे अस्य विनियोगः “यद् द्याव इन्द्र ते शतम्”  
[ २०. ८१ ] इत्यनेन सह उक्तः ॥

त्रिवृत् आदिमें “पिवा सोममिन्द्र मन्दतु त्वा” का विनियोग  
“वयमेनमिदा ह्यः” ( २० । ६७ ) के साथ कह दिया है ।

तथा तनूपृष्ठ षडहमें इसका विनियोग “यद् द्याव इन्द्र ते शतम्”  
( २० । ८१ ) के साथ कह दिया है ।

पिवा सोममिन्द्र मन्दतु त्वा यं ते सुषावं हर्यश्वदिः  
सोतुर्बाहुभ्यां सुयतो नार्वी ॥ १ ॥

पि॒वा । सोम॑म् । इन्द्र॑ । मन्द॑तु । त्वा । यम् । ते । सु॒षाव॑ ।

हरि॑ऽअश्व॑ । अ॒दिः ।

सो॒तुः । बा॒हुऽभ्या॑म् । सु॒यतः॑ । न । नार्वी॑ ॥ १ ॥

हे इन्द्र ! आप सोमका पान करिये, हे हर्यश्व ! जिसको  
पत्थरने निचोड़ा है वह सोम आपको हर्ष प्रदान करे । सधे हुए  
घोड़ेकी समान यह पत्थर अभिषव करने वालेके हाथमें रहा था  
यस्ते मदो युज्यश्चारुरस्ति येन वृत्राणि हर्यश्व हंसि  
स त्वामिन्द्र प्रभूवसो ममत्तु ॥ २ ॥



यः । ते । मदः । युज्यः । चारुः । अस्ति । येन । वृत्राणि ।

हरिऽअश्व । हंसि ।

सः । त्वाम् । इन्द्र । प्रभुवसो इति प्रभुऽवसो । ममत्त ॥ २ ॥

हे हरि नामक घोड़ों वाले इन्द्र ! जो आपका मद युज्य और चारु है और जिससे आप आवरक मेघोंको विदीर्ण करते हैं । हे प्रभुवसो इन्द्र ! वह आपको हर्ष देय ॥ २ ॥

बोधा सु मे मधवन् वाचमेमां यां ते वसिष्ठो अर्चति  
प्रशस्तिम् ।

इमा ब्रह्म सधमादे जुषस्व ॥ ३ ॥

बोध । सु । मे । मधऽवन् । वाचम् । आ । इमाम् । याम् । ते ।

वसिष्ठः । अर्चति । प्रऽशस्तिम् ।

इमा । ब्रह्म । सधऽमादे । जुषस्व ॥ ३ ॥

इति नवमेनुवाके एकविंशं सूक्तम् ॥

हे धनवान् इन्द्र ! आप मेरी इस वाणीको भली प्रकार जानिये कि-जिस प्रशस्तिकी वशिष्ठ पूजा करते हैं और इन मन्त्रसमूह का आप यज्ञमें सेवन करिये ॥ ३ ॥

नवम अनुवाकमें इक्कीसवाँ सूक्त समाप्त ( ७३३ )

चातुर्मास्यवैश्वदेवादीनां सप्तानां त्र्यहाणां प्रथमेण्वहःसु “शग्ध्यु  
षु शचीपते” इत्येष पृष्ठस्तोत्रियो भवति । तद् उक्तं वैताने ।  
“चातुर्मास्यवैश्वदेवगर्गवैदच्छन्दोमवत्पराकान्तर्वस्वरश्मधत्र्यहाणां  
शग्ध्यु षु शचीपत इति” इति [ वै० ट. ३ ] ॥

तथा त्रिककुदशाहाहीने अस्य विनियोगः “क ई वेद सुते सचा” [ २०, ५३ ] इत्यनेन सह उक्तः ॥

साकमेधज्यहस्य प्रथमेहनि “इन्द्रमिद् देवतातये” [ २०.११८.३ ] इत्येष पृष्ठस्तोत्रियो भवति । तद् उक्तं वैताने । ‘साकमेधस्येन्द्र मिद् देवतातय इति’ इति [ वै० ८. ३ ] ॥

चातुर्मास्य वैश्वदेव आदि सात ज्यहोंके प्रथम दिनोंमें “शग्ध्यु षु शचीपते” यह पृष्ठस्तोत्रिय होता है । इसी बातको वैतानसूत्र में कहा है, कि—“चातुर्मास्यवैश्वदेवगर्गवैदच्छन्दोमवत्पराकान्तर्व-स्वश्वमेधज्यहाणां शग्ध्यु षु शचीपते” ( वैतानसूत्र ८ । ३ ) ॥

तथा त्रिककुदशाहाहीनमें इसका विनियोग “क ई वेद सुते सचा” ( २० । ५३ ) के साथ कह दिया है ।

साकमेध ज्यहके प्रथमदिन “इन्द्रमिद् देवतातये” ( २० । ११८ । ३ ) यह पृष्ठस्तोत्रिय होता है । इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है, है, कि—“साकमेधस्येन्द्रमिद् देवतातये” ( वैतानसूत्र ८ । ३ ) ॥

शग्ध्यु ३ षु शचीपत इन्द्र विश्वाभिरूतिभिः ।

भगं न हि त्वां यशसं वसुविदमनु शूर चरामसि ?

शग्धि । ऊं इति । सु । शचीऽपते । इन्द्र । विश्वाभिः । ऊतिऽभिः

भगम् । न । हि । त्वा । यशसम् । वसुऽविदम् । अनु । शूर ।

चरामसि ॥ १ ॥

हे इन्द्रदेव ! मैं आपसे प्रार्थना करता हूँ, कि—आपकी सकल रत्नक शक्तियोंके द्वारा आपसे भाग्य और यश पानेके लिये हम आप धनलंभकके अनुकूल चलें ॥ १ ॥

पौरो अश्वस्य पुरुकृद् गवामस्युत्सो देव हिरण्ययः ।

नकि॒र्हि दानं॑ परि॒मर्धिष॑त् त्वे यद्यद्यामि॒ तदा भर॑ २

पौरः । अश्व॑स्य । पुरु॑ऽकृत् । गवा॑म् । अ॒सि । उत्सः॑ । दे॒व ।

हिरण्य॑गः ।

नकिः । हि । दानम् । परि॒ऽमर्धिष॑त् । त्वे इति । यत्स्य॑त् । यामि ।

तत् । आ । भर ॥ २ ॥

आप धन आदिको प्रचुर करने वाले हैं, पुरवासियोंके लिये अश्वरूप हैं अर्थात् उनको गन्तव्य स्थान पर पहुँचाने वाले हैं, आप गौओंको बहुत करने वाले हैं, उत्सदेव और हिरण्यग हैं, आपकी दानकी कोई हिंसा नहीं कर सकता । मैं जिस २ वस्तु की इच्छासे आपकी शरणमें प्राप्त हुआ हूँ उस २ वस्तुको आप मुझमें भरिये ॥ २ ॥

इन्द्र॑मिद् दे॒वता॑तय॒ इन्द्रं॑ प्रय॒त्यध्व॑रे ।

इन्द्रं॑ समी॒के व॒निनो॑ हवाम॒ह इन्द्रं॑ धन॑स्य सा॒तये॑ ३

इन्द्रम् । इत् । दे॒वऽता॑तये । इन्द्रम् । प्र॒त्यति॑ । अध्व॑रे ।

इन्द्रम् । समू॒ऽईके॑ । व॒निनः॑ । ह॒वाम॒हे । इन्द्रम् । धन॑स्य । सा॒तये॑ ३

हम यज्ञके लिये प्रयत् यज्ञमें इन्द्रका आवाहन करते हैं, इन्द्र की सेवा करने वाले हम युद्धके अवसर पर धनकी प्राप्तिके लिये इन्द्रका आवाहन करते हैं ॥ ३ ॥

इन्द्रो॑ म॒ह्ना रोद॑सी पप्रथ॒च्छ्व इन्द्रः॑ सूर्य॑मरोचयत् ।

इन्द्रे॑ह॒ विश्वा॑ भुव॑नानि येमि॒र इन्द्रे॑ सुवा॒नास॒ इन्द्र॑वः ४



इन्द्रे । म॒हा । रो॒द॒सी इति । प॒प्र॒यत् । श॒वः । इन्द्रः । सूर्यम् ।  
अ॒रो॒च॒यत् ।

इन्द्रे । इ॒ । वि॒श्वा । भु॒व॒नानि । ये॒मिरे । इन्द्रे । सु॒वा॒नासः । इन्द्र॑वः  
इति नवमेनुवाके द्वाविंशं सूक्तम् ॥

इन्द्रदेवने अपनी महिमासे आवापृथिवीका विस्तार किया है,  
इन्द्रात्मक बलसे सूर्यको दमका रक्खा है । सकल भुवन इन्द्रमें ही  
आश्रित होते हैं, और इन्द्रके लिये सोम अभिषुत होते हैं ॥४॥

नवम अनुवाकमें धार्दसर्वाँ सूक्त समाप्त ( ७३४ )

वैश्वदेवादित्र्यहेषु “अस्तावि मन्म पूर्व्यम्” इत्यस्य विनियोगः  
“तमिन्द्रं वाजयामसि” [ २०. ४७ ] इत्यनेन सह उक्तः ॥

वैश्वदेव आदि त्र्यहोंमें “अस्तावि मन्म पूर्व्यम्” का विनि-  
योग “तमिन्द्रं वाजयामसि” (२०।४७) के साथ कह दिया है ।

अस्ता॑वि मन्म॑ पू॒र्व्यं ब्र॒ह्मेन्द्रा॑य वो॒चत ।

पूर्वा॑ ऋ॒तस्य॑ बृ॒हती॑र॒नूष॑त स्तो॒तुर्मे॑धा असृ॒क्षत ॥१॥

अस्ता॑वि । मन्म॑ । पू॒र्व्यम् । ब्र॒ह्म । इन्द्रा॑य । वो॒चत ।

पूर्वा॑ः । ऋ॒तस्य॑ । बृ॒हती॑ः । अ॒नूष॑त । स्तो॒तुः । मे॒धाः । असृ॒क्षत १

मैं मननीय प्राचीन स्तोत्रसे इन्द्रकी स्तुति कर चुका हूँ अब  
हे ऋत्विजों ! तुम इन्द्रके लिये मन्त्रका उच्चारण करो, तुम  
इन्द्रकी यज्ञकी प्राचीन कालोंकी बड़ी २ ऋचाओंसे स्तुति करो,  
स्तुति करने वालों की बुद्धि ऋचाओंसे संयुक्त होगई ॥ १ ॥

तु॒र॒ण्यवो॑ मधु॒मन्तं॑ घृ॒तश्रु॑तं वि॒प्रा॒सो अ॒र्कमा॑नृ॒चुः ।

अ॒स्मे र॒यिः प॑प्र॒थे वृ॒ण्यं श॒वोस्मे॑ सु॒वा॒नास॑ इन्द्र॑वः २

तुरण्यवः । मधुऽमन्तम् । घृतऽश्रुतम् । विमासः । अर्कम् । आनृचुः ।

अस्मे इति । रयिः । पप्रथे । वृण्यम् । शवः । अस्मे इति ।

सुवानासः । इन्द्रवः ॥ २ ॥

इति नवमेनुवाके त्रयोविंशं सूक्तम् ॥

शीघ्रता करने वाले विप्र मधुमय घृतस्त्रावि पूजक (मन्त्र) की प्रशंसा करते हैं, इस यजमानके लिये धन विस्तृत होता है और वर्षक बल इसको प्राप्त होता है, और इन इन्द्रदेवके लिये सोम अग्निषुत होते हैं ॥ २ ॥

नवम अनुवाकमें तेईसवाँ सूक्त समाप्त ( ७३५ )

दशाहस्य गवामयनिकस्य अष्टमेहनि “यदिन्द्र प्रागपागुदक्” इत्येष उक्थस्तोत्रियो भवति । उक्तं वैताने । “दशाहस्याष्टमे यदिन्द्र प्रागपागुदमिति” इति [ वै० द. ४ ] ॥

तथा त्रिककुदशाहाहीने अस्य विनियोगः “क ई वेद सुते सचा” [ २०. ५३ ] इत्यनेन सह उक्तः ॥

दशाह गवामयनिकाको अष्टम दिनमें “यदिन्द्र प्रागपागुदक्” यह उक्थस्तोत्रिय होता है । इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि—“दशाहस्याष्टमे यदिन्द्र प्रागपागुदमिति” (वैतानसूत्र ८।४) ॥

तथा त्रिककुदशाहाहीनमें इसका विनियोग “क ई वेद सुते सचा” ( २० । ५३ ) के साथ कह दिया है ।

यदिन्द्र प्रागपागुदह्न्यग् वा ह्यसे नृभिः ।

सिमां पुरु नृषूतो अस्यानवेसिं प्रशर्ध तुर्वशे ॥ १ ॥

यत् । इन्द्र । प्राक् । अपाक् । उदक् । न्यक् । वा । ह्यसे । नृभिः ।

सिम । पुरु । नृषूतः । असि । आनवे । असि । प्रशर्ध । तुर्वशे

हे इन्द्रदेव ! आप पूर्व पश्चिम उत्तर दक्षिण जिस ओरसे भी मनुष्योंसे बुलाये जाते हैं हे सर्व ! हे प्रकृष्टरूपसे शत्रुओंका संहार करने वाले ! आप इस मनुष्यमें आनुके लिये हैं ॥ १ ॥  
 यद्वा रुमे रुशमे श्यावके कृप इन्द्र मादयसे सचा ।  
 कण्वासस्त्वा ब्रह्मभिः स्तोमवाहस इन्द्रा यच्छन्त्या गंहि  
 यत् । वा । रुमे । रुशमे । श्यावके । कृपे । इन्द्र । मादयसे । सचा ।  
 कण्वासः । त्वा । ब्रह्मभिः । स्तोमवाहसः । इन्द्र । आ । यच्छन्ति ।  
 आ । गंहि ॥ २ ॥

इति नवमेनुवाके चतुर्विंशं सूक्तम् ॥

हे समर्थ इन्द्र ! आप रुम रुशम और श्यावकमें साथ ही साथ आनन्द उत्पन्न करते हैं । कण्वगोत्री स्तोमधारी ऋषि आपको ( हवि ) देते हैं आप आइये ॥ २ ॥

नवम अनुवाकमें चौबीसवाँ सूक्त समाप्त ( ७३६ )

तनूपृष्ठे षडहे “अभि त्वा शूर नोनुमः” इत्यस्य विनियोगः  
 “यद्वा द्याव इन्द्र ते शतम्” [ २०. ८१ ] इत्यनेन सह उक्तः ॥

तनूपृष्ठ षडहमें “अभि त्वा शूर नोनुमः” का विनियोग  
 “यद्वा द्याव इन्द्र ते शतम्” ( २० । ८१ ) के साथ कह दिया है ।

अभि त्वा शूर नोनुमोदुग्धा इव धेनवः ।

ईशानमस्य जगतः स्वर्दशमीशानमिन्द्र तस्थुषः १

अभि । त्वा । शूर । नोनुमः । अदुग्धाः इव । धेनवः ।

ईशानम् । अस्य । जगतः । स्वः ऽदृशम् । ईशानम् । इन्द्र । तस्थुषः



हे शूर ! विना दुही हुई धेनुओंकी समान हम आपको प्रेरित करते हैं । आप इस चर जगत्के ईश्वर हैं । स्वर्गके द्रष्टा हैं और हे इन्द्र ! आप स्थावर जगत्के ईश्वर हैं ॥ १ ॥

न त्वावाँ अन्यो दिव्यो न पार्थिवो न जातो न जनि-  
निष्यते ।

अश्वायन्तो मघवन्निन्द्र वाजिनो गव्यन्तस्त्वा हवा-  
महे ॥ २ ॥

न । त्वाऽवान् । अन्यः । दिव्यः । न । पार्थिवः । न । जातः ।  
न । जनिष्यते ।

अश्वऽयन्तः । मघऽवन् । इन्द्र । वाजिनः । गव्यन्तः । त्वा ।  
हवामहे ॥ २ ॥

इति नवमेनुवाके पञ्चविंशं सूक्तम् ॥

हे इन्द्र ! आपकी समान और कोई दिव्य पदार्थ नहीं है, और कोई पार्थिव प्राणी आप की समान नहीं है, न कोई हुआ है और न कोई होगा । हे मघवन् ! इन्द्र ! हम गौ अश्व और अन्नकी प्रार्थना करते हुए आपका आह्वान करते हैं ॥ २ ॥

नवम अनुवाकमें पञ्चवीसवाँ सूक्त समाप्त ( ७३७ )

तनूषृष्टे षडहे “रेवतीर्नः सधमादे” इत्यस्य विनियोगः “यद्वा  
द्याव इन्द्र ते शतम्” [ २०. ८१ ] इत्यनेन सह उक्तः ॥

तनूषृष्ट षडहमें “रेवतीर्नः सधमादे” का विनियोग “यद्वा  
द्याव इन्द्र ते शतम्” ( २० । ८१ ) के साथ कह दिया है ।

रेवतीर्नः सधमाद् इन्द्रे सन्तु तुविवाजाः । जुमन्तो  
याभिर्मदेम ॥ १ ॥

रेवतीः । नः । सधमादे । इन्द्रे । सन्तु । तुविवाजाः ॥  
जुमन्तः । याभिः । मदेम ॥ १ ॥

हमारे यज्ञमें इन्द्र के आने पर हम यज्ञान्न और साधारण अन्न  
की धनमयी वस्तुओं से सम्पन्न होवें और उनसे हम आनन्द पावें १  
आ ध त्वावान् त्मनास्त स्तोतृभ्यो धृष्णवियानः ।  
ऋणोरक्षं न चक्रयोः ॥ २ ॥

आ । ध । त्वावान् । त्मना । आस्तः । स्तोतृभ्यः । धृष्णो इति ।  
इयानः ॥ ऋणोः । अक्षम् । न । चक्रयोः ॥ २ ॥

हे धृष्णो ! स्तोताओं की कृपा से आपकी दया को पाने वाला  
पुरुष गमनशील रथ के दोनों चक्रों में रहने वाले अक्ष की समान  
आप्त होजाता है ॥ २ ॥

आ यद् दुवः शतक्रतवा कामं जरितृणाम् । ऋणो-  
रक्षं न शचीभिः ॥ ३ ॥

आ । यद् । दुवः । शतक्रतो इति शतः क्रतो । आ । कामम् ।  
जरितृणाम् । ऋणोः । अक्षम् । न । शचीभिः ॥ ३ ॥

इति नवमेनुवाके षड्विंशं सूक्तम् ॥

हे शतक्रतो इन्द्र ! आपकी सेवा करने वाला पुरुष आपकी

शक्तियोंको पाकर स्तोताओंकी कामनाओंको गमनशील रखके  
अन्नकी समान ( पूर्ण करनेमें मुख्य ) होता है ॥ ३ ॥

नवम अनुवाकमें छब्बीसवाँ सूक्त समाप्त ( ७३८ )

विषुवति सौर्यपृष्ठे माध्यन्दिने “चित्रं देवानामुदगादनीकम्”  
[ २०. १०७. १४ ] “तत् सूर्यस्य देवत्वं तन्मदित्वम्” [ २०.  
१२३ ] इति पृष्ठस्तोत्रियानुरूपौ भवतः । तद् उक्तं वैताने ।  
“चित्रं देवानामुदगादनीकं तत् सूर्यस्य देवत्वं तन्मदित्वम् इति  
पृष्ठस्तोत्रियानुरूपौ” इति [ वै० ६. ३ ] ॥

विषुवत् सौर्यपृष्ठ माध्यन्दिनमें “चित्रं देवानामुदगादनीकं”  
( २० । १०७ । १४ ) “तत् सूर्यस्य देवत्वम् तन्मदित्वम्” ( २०।  
१२३ ) यह पृष्ठस्तोत्रिय और अनुरूप होते हैं । इसी बातको  
वैतानसूत्रमें कहा है, कि—चित्रं देवानामुदगादनीकं तत् सूर्यस्य  
देवत्वं तन्मदित्वं इति पृष्ठस्तोत्रियानुरूपौ” ( वैतानसूत्र ६ । ३ )

तत् सूर्यस्य देवत्वं तन्मदित्वं मध्या कर्तोर्विततं सं जभार  
यदेदयुक्त हरितः सधस्थादाद्रात्री वासस्तनुते सिमस्मै  
तत् । सूर्यस्य । देवत्वम् । तत् । मदित्वम् । मध्याः । कर्तोः । वित-  
तम् । सम् । जभार ।

यदा । इत् । अयुक्त । हरितः । सधस्थात् । आत् । रात्री ।  
वासः । तनुते । सिमस्मै ॥ १ ॥

यह सूर्यदेवका देवत्व और माहात्म्य है, कि—जब वह किरणों  
को अपनेमें अनुपवेश कराते हैं तो फैले हुए कामोंको बीचमें ही  
समेट लेते हैं, और तब इस भूलोकके लिये पृथ्वी अन्धकारको



चारों ओरसे समेट कर वस्त्ररूपमें अर्पण करती है ( वह अन्ध-  
कार सूर्यसे नष्ट होता है अतः सूर्य महिमामय है ) ॥ १ ॥

तन्मित्रस्य वरुणस्याभिचक्षे सूर्यो रूपं कृणुते द्यौरुपस्थे  
अनन्तमन्यद् रुशदस्य पाजः कृष्णमन्यद्धरितः सं  
भरन्ति ॥ २ ॥

।त् । मित्रस्य । वरुणस्य । अभिऽक्षे । सूर्यः । रूपम् । कृणुते ।  
द्योः । उपऽस्थे ।

अनन्तम् । अन्यत् । रुशत् । अस्य । पाजः । कृष्णम् । अन्यत् । हरितः ।  
सम् । भरन्ति ॥ २ ॥

इति नवमेनुवाके सप्तविंशं सूक्तम् ॥

मैं मित्र और वरुण देवताके माहात्म्यका वर्णन करता हूँ,  
कि—सूर्यदेव धुलोकमें अपना रूप करते हैं, इनका दमकता हुआ  
तेज अनन्त है, दूसरा वारुण तेज कृष्ण है उसको सूर्यकी किरणों  
भली प्रकार भरण करती हैं—खेंच कर लेजाती हैं ॥ २ ॥

नवम अनुवाकमें सत्ताईसवाँ सूक्त समाप्त ( ७३९ )

तनूपृष्ठे षडहे “कया नश्चित्र आ भुवत्” इत्यस्य विनियोगः  
“यद् द्याव इन्द्र ते शतम्” [ २०. ८१ ] इत्यनेन सह उक्तः ॥

तनूपृष्ठ षडहमें “कया नश्चित्र आभुवत्” का विनियोग “यद्  
द्याव इन्द्र ते शतम्” ( २० । ८१ ) के साथ कह दिया है ।

कया नश्चित्र आ भुवदूती सदावृधः सखा । कया  
शचिष्ठया वृता ॥ १ ॥

कया । नः । चित्रः । आ । भुवत् । ऊनी । सदाऽवृधः । सखा ॥

कयः । शचिष्ठया । वृता ॥ १ ॥

सदा वृद्धि करने वाले, चायनीय, सखा किस रक्षक शक्ति के द्वारा हमारी रक्षा करने वाले होंगे वह रक्षकत्ववृत्ति किस शक्तिमती धारणासे सम्पन्न होगी (सुखपदा धारणासे) ॥१॥

कस्त्वा सत्यो मदानां मंहिष्ठो मत्सदन्धसः । दृल्हा

चिदारुजे वसु ॥ २ ॥

कः । त्वा । सत्यः । मदानाम् । मंहिष्ठः । मत्सत् । अन्धसः ॥

दृल्हा । चित् । आऽरुजे । वसु ॥ २ ॥

हे इन्द्र ! सोमरूप अन्नका कौन अंश जो कि—मदजनक हवियों में श्रेष्ठ है तुम्हें प्रसन्न करता है, कि—आप जिससे प्रसन्न होकर दृढ़तासे रहने वाले धनको भक्तोंको विभाग करके देते हो ॥२॥

अभी पु णः सखीनामविता जरितृणाम् ॥ शतं भवा-

स्यूतिभिः ॥ ३ ॥

अभि । सु । नः । सखीनाम् । अविता । जरितृणाम् ॥ शतम् ।

भवासि । ऊतिऽभिः ॥ ३ ॥

हे इन्द्र ! मित्ररूप हम स्तोताओंके रक्षक आप रक्षा करनेके लिये भली प्रकार हमारे अभिमुख होकर सैकड़ों बार ( राम कृष्ण आदिके रूपमें ) प्रकट होते हैं ॥ ३ ॥

इमा नु कं भुवना सीषधामेन्द्रश्च विश्वं च देवाः ।

यज्ञं च नस्तन्वं च प्रजां चादित्यैरिन्द्रः सह चीकलृपाति  
इमा । नु । कम् । भुरना । सीसधाम । इन्द्रः । च । विश्वे । च । देवाः ।  
यज्ञम् । च । नः । तन्वम् । च । प्रजाम् । च । आदित्यैः । इन्द्रः ।  
सह । चीकलृपाति ॥ ४ ॥

इस रमणीय यज्ञको (सब प्रकट होने वाले ऋत्विज इन्द्र और सकल देवता (तथा हम) सिद्ध करें, आदित्यों सहित इन्द्रदेव हमारे यज्ञ शरीर और प्रजाको समर्थ रखें ॥ ४ ॥

आदित्यैरिन्द्रः सगणो मरुद्भिरस्माकं भूत्वविता तनू-  
नाम् ।

हत्वाय देवा असुरान् यदायन् देवा देवत्वमभिरक्ष-  
माणाः ॥ ५ ॥

आदित्यैः । इन्द्रः । सगणः । मरुद्भिः । अस्माकम् । भूतु ।  
अविता । तनूनाम् ।

हत्वाय । देवाः । असुरान् । यत् । आयन् । देवाः । देवत्वम् ।  
अभिरक्षमाणाः ॥ ५ ॥

जो देवता देवत्वकी रक्षा करनेके लिये असुरोंको मार कर देवत्वको अक्षुण्ण रख सके थे, उन आदित्य और मरुद्गणोंसे सम्पन्न इन्द्र हमारे शरीरके रक्षक बनें ॥ ५ ॥

प्रत्यञ्चमर्कमनयं छवीभिरादित् स्वधामिषिरां पर्यपश्यन्  
अया वाजं देवहितं सनेम मदेम शतहिमाः सुवीराः



प्रत्यश्चम् । अर्कम् । अन्नयन् । शचीभिः । आत् । इत् । स्वधाम् ।

इषिराम् । परि । अपश्यन् ।

अया । वाजम् । देवऽहितम् । सनेम । मदेम । शतऽहिमाः ।

सुऽवीराः ॥ ६ ॥

इति नवमेनुवाके अष्टाविंशं सूक्तम् ॥

देवता शक्तियोंके द्वारा सूर्यको प्रत्येकके सन्मुख लाये हैं और फिर उन्होंने पृथ्वीको हविरूप अन्नसे सम्पन्न देखा है, इसी मायाके द्वारा हम देवताओंका हित करने वाले अन्नको पावें और सुन्दर वीरोंसे सम्पन्न रहकर सौ वर्ष तक जीवित रहें ३ नवम अनुवाकमें अष्टाविंशौं सूक्त समाप्त ( ७४० )

पृष्ठ्यस्य षष्ठेहनि “अपेन्द्र प्राचो मघवन्नमित्रान्” इति सुकीर्त्याख्यस्य सकलसूक्तस्य पञ्चः शंसने प्राप्ते चतुर्थीम् अर्धर्चशः शंसति । तद् उक्तं वैताने । “अपेन्द्र प्राचो मघवन्नमित्रान् इति सुकीर्तिम् । चतुर्थीमर्धर्चशः” इति [ वै० ६. २ ] ॥

सौत्रामण्यां गृहीतेष्वाज्येषु “कुविदङ्ग यवमन्तः” [ २०. १२५. २ ] इति ऋचा पयोग्रहान् गृह्णन्तमध्वर्युम् अभिमन्त्रयते । तद् उक्तं वैताने । “गृहीतेष्वाज्येषु कुविदङ्ग यवमन्त इति पयोग्रहान् गृह्णन्तम्” इति [ वै० ५. ३ ] ॥

तत्रैव वषामार्जनादनन्तरम् “युवं सुराममश्विना” [ २. १२५. ४-७ ] इति चतसृभिर्ऋग्भिः पयःसुराग्रहाणां होमान् अनुमन्त्रयते । तद् उक्तं वैताने । “वषामार्जनाद् युवं सुराममश्विनेति चतसृभिः पयःसुराग्रहाणाम्” इति [ वै० ५. ३ ] ॥

पृष्ठ्यके छठे दिन “अपेन्द्र प्राचो मघवन्नमित्रान्” इस सुकीर्ति नाम वाले सकल सूक्तके पद पद करके शंसनकी प्राप्ति होने पर

चतुर्थीको अर्धर्चरूपमें कहे । इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि— “अपेन्द्र प्राचो मघवन्निमित्रान् इति सुकीर्तिम् । चतुर्थी-मर्धर्चशः” ( वैतानसूत्र ६ । २ ) ॥

सौत्रामण्यमें घृतके ग्रहण करने पर “कुविदंग यवमन्तः” ( २० । १२५ ) ऋचासे पयोग्रहोंको पकड़ते हुए अध्वर्युको अभिमन्त्रित करे । इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि— “गृहीतेष्वाज्येषु कुविदंग यवमन्त इति पयोग्रहान् गृह्णन्तम्” ( वैतानसूत्र ५ । ३ ) ॥

तहाँ ही वषामार्जनके अनन्तर “युवं सुराममश्विना” ( २० । १२५ । ४-७ ) इन चार ऋचाओंसे पयःसुराग्रहके होमोंका अनुमन्त्रण करे । इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि— “वषामार्जनाद् युवं सुराममश्विनेति चतसृभिः पयःसुराग्रहाणाम्” ( वैतानसूत्र ५ । ३ ) ॥

अपेन्द्र प्राचो मघवन्नमित्रानपापाचो अभिभूते नुदस्व  
अपोदीचो अप शूराधराच उरौ यथा तव शर्मन् मदेम  
अप । इन्द्र । प्राचः । मघवन् । मित्रान् । अप । अपाचः ।  
अभिभूते । नुदस्व ।

अप । उदीचः । अप । शूर । अधराचः । उरौ । यथा । तव ।  
शर्मन् । मदेम ॥ १ ॥

हे इन्द्र ! पूर्वकी ओरसे आप हमारे शत्रुओंको दूर करिये, हे अभिभूते ! पश्चिमकी ओरसे आप हमारे शत्रुओंको पीड़ित करिये, हे शूर इन्द्र ! उत्तर और दक्षिण दिशाकी ओरसे आप हमारे शत्रुओंको बाधा दीजिये । जिससे आपके दिये विशाल सुखमें हम आनन्द पा सकें ॥ १ ॥

कुविदङ्ग यवमन्तो यवं चिद् यथा दान्त्यनुपूर्वं विष्युयं  
इहेहैषां कृणुहि भोजनानि ये बर्हिषो नमोवृत्तिं न  
जग्मुः ॥ २ ॥

कुवि॒त् । अङ्ग॑ । यव॑ऽमन्तः । यवम् । चि॒त् । यथा॑ । दान्ति॑ ।  
अनु॑ऽपूर्वम् । वि॒ष्युयं॑ ।

इह॑ऽइह॑ । एषाम् । कृ॒णुहि॑ । भोज॑नानि । ये । बर्हि॑षः । नमः॑ऽवृ॒-  
त्तिम् । न । जग्मुः ॥ २ ॥

हे अग्ने ! बहुतसे यव वाले पुरुष जैसे जौको मिला कर आनु-  
पूर्वक काटते हैं, इसी प्रकार जो कुशाएँ हविसे संपृक्त नहीं हुई  
हैं उनका आप भक्षण करिये ॥ २ ॥

नहि स्थूर्युतुथा यातमस्ति नोत श्रवो विविदे संगमेषु  
गव्यन्त इन्द्रं सख्याय विप्रां अश्वायन्तो वृषणं वाज-  
यन्तः ॥ ३ ॥

नहि॑ । स्थू॒रि । अ॒तुऽथा॑ । या॒तम् । अस्ति॑ । न । उ॒त । श्रवः॑ ।  
वि॒विदे॑ । स॒म्ग॒मेषु॑ ।

गव्य॑न्तः । इन्द्र॑म् । स॒ख्याय॑ । वि॒प्राः । अ॒श्वऽयन्तः॑ । वृष॑णम् ।  
वाज॑यन्तः ॥ ३ ॥

अतुके अनुसार बहुतसा अन्न हमको नहीं मिला है, और  
युद्धोंमें भी हमको अन्न नहीं मिला है, इस लिये इन्द्रको मित्रके



लिये चाहते हुए विप्र, गौ अश्व और अन्नको चाहते हुए उन फलवर्षक इन्द्रकी प्रार्थना करते हैं ॥ ३ ॥

युवं सुराममश्विना नमुचावासुरे सचा ।

विपिपाना शुभस्पती इन्द्रं कर्मस्वावतम् ॥ ४ ॥

युवम् । सुरामम् । अश्विना । नमुचौ । आसुरे । सचा ।

विऽपिपाना । शुभः । पती इति । इन्द्रम् । कर्मऽसु । आवतम् ४

हे अश्विनीकुमारों ! अलंकारोंके देवता तुम दोनों नमुचिके साथ आसुर युद्ध होते समय सुन्दर रमणीय सोमका विशेषरूप से पान करके कर्मोंमें इन्द्रकी रक्षा करो ॥ ४ ॥

पुत्रमिव पितरां वश्विनोभेन्द्रावथुः काव्यैर्दंसनाभिः ।

यत् सुरामं व्यपिबः शचीभिः सरस्वतीत्वा मघवन्न-

भिष्णाक् ॥ ५ ॥

पुत्रम्ऽइव । पितरौ । अश्विना । उभा । इन्द्र । आवथुः । काव्यैः ।

दंसनाभिः ।

यत् । सुऽरामम् । वि । अपिबः । शचीभिः । सरस्वती । त्वा ।

मघऽवन् । अभिष्णाक् ॥ ५ ॥

दोनों अश्विनीकुमारोंने, माता पिताके पुत्रकी रक्षा करनेकी समान, अपनी चतुरता और शत्रुओंको काटनेकी युक्तियोंसे इन्द्र की रक्षा की है, हे मघवन् ! जो आपने सुन्दर रमणीय सोमका पान किया है तो सरस्वती देवी अपनी शक्तियोंसे आपको स्नान करावे ॥ ५ ॥

इन्द्रः सुत्रामा स्ववाँ अवाँभिः सुमृडीको भवतु विश्व-  
वेदाः ।

बाधतां द्वेषो अभयं नः कृणोतु सुवीर्यस्य पतयः स्याम  
इन्द्रः । सुत्रामा । स्ववान् । अवःभिः । सुमृडीकः । भवतु ।

विश्वस्वेदाः ।

बाधताम् । द्वेषः । अभयम् । नः । कृणोतु । सुवीर्यस्य । पतयः ।  
स्याम ॥ ६ ॥

भली प्रकार रक्षा करने वाले धनी इन्द्र रक्षाओंके द्वारा हम  
को सुन्दर सुख प्रदान किया करें और यह बड़े भारी धनसे  
सम्पन्न इन्द्र हमारे शत्रुओंका संहार करें और हमको अभय भी  
देवें, और हम शोभन प्रभाव वाले धनके स्वामी होवें ॥ ६ ॥

स सुत्रामा स्ववाँ इन्द्रो अस्मदाराच्चिद् द्वेषः सनुत-  
युयोतु ।

तस्य वयं सुमतौ यज्ञियस्यापि भद्रे सौमनसे स्याम  
सः । सुत्रामा । स्ववान् । इन्द्रः । अस्मत् । आरात् । चित् । द्वेषः ।  
सनुतः । युयोतु ।

तस्य । वयम् । सुमतौ । यज्ञियस्य अपि । भद्रे । सौमनसे । स्याम ७

इति नवमेनुवाके एकोनत्रिंशं सूक्तम् ॥

भली प्रकार रक्षा करने वाले इन्द्र हमसे दूर ही हमारे शत्रुओं  
को तिरोहित कर डालें अलग २ कर डालें, हम यज्ञके पात्र उन

इन्द्रदेवकी अनुग्रहरूपा बुद्धिमें रहते हुए उनके कल्याणमय भाव को पाते रहें ॥ ७ ॥

नवम अनुवाकमें उन्तीसवाँ सूक्त समाप्त ( ५४१ )

पृष्ठचम्य षष्ठेहनि “वि हि सोतोरसृजत” इति वृषाकप्याख्यं सूक्तं सूत्रोक्तधर्मकं शंसति । तद् उक्तं वैताने । “वि हि सोतोरसृजतेति वृषाकपिम्” इत्यादि [ बै० ६. २ ] ॥

पृष्ठचके छठे दिन “वि हि सोतोरसृजत” यह वृषाकपि नामक सूक्त सूत्रमें कहे हुए धर्म वालेका गान करता है ! इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि—“वि हि सोतोरसृजतेति वृषाकपिम्” इत्यादि ( वैतानसूत्र ६ । २ ) ॥

वि हि सोतोरसृजत नेन्द्रं देवममंसत ।

यत्रामदद् वृषाकपिर्यः पुष्टेषु मत्सखा विश्वस्मादिन्द्र  
उत्तरः ॥ १ ॥

वि । हि । सोतोः । असृजत । न । इन्द्रम् । देवम् । अमंसत ।  
यत्र । अमदत् । वृषाकपिः । अर्यः । पुष्टेषु । मत्सखा । विश्व-  
स्मात् । इन्द्रः । उत्तरः ॥ १ ॥

अभिषव करने वालेसे अलग हुए ( वृषाकपिने ) इन्द्रको देवकी समान माना, ऐसे वृषाकपि देवता जो पुष्टोंमेंस्वामी हैं, वह मेरे सखा हैं, इस कारण मैं इन्द्र सबसे श्रेष्ठ हूँ ॥ १ ॥

परा हीन्द्र धावसि वृषाकपेरति व्यथिः ।

नो अह प्र विन्दस्यन्यत्र सोमपीतये विश्वस्मादिन्द्र  
उत्तरः ॥ २ ॥



परा । हि । इन्द्र । धावसि । वृषाकपेः । अति । व्यथिः ।

नो इति । अह । म । विन्दसि । अन्यत्र । सोमऽपीतये । ० ॥ २ ॥

हे इन्द्र ! आप शत्रुओंको व्यथा देने वाले हैं, आप वृषाकपि से भी अधिक दौड़ते हैं, सोमपानके अतिरिक्त अन्यस्थलमें आप किसीसे नहीं मिलते हैं, अत एव इन्द्रदेव सबसे श्रेष्ठ हैं ॥ २ ॥

किमयं त्वां वृषाकपिश्चकार हरितो मृगः ।

यस्मां इरस्यसीदु न्वर्यो वां पुष्टिमद् वसु विश्वस्मा-  
दिन्द्र उत्तरः ॥ ३ ॥

किम् । अयम् । त्वाम् । वृषाकपि । चकारः । हरितः । मृगः ।

यस्मै । इरस्यसि । इत् । ऊं इति । नु । अर्यः । वा । पुष्टिऽमत् ।

वसु । ० ॥ ३ ॥

क्या इन वृषाकपि ( किरणोंसे कँपाने वाले देव ) ने आपको हरित मृग बना दिया है, कि-जो आप स्वामी होने पर भी इन को पुष्टि-पद धन देते हैं, इन्द्रदेव सबसे श्रेष्ठ हैं ॥ ३ ॥

यमिमं त्वं वृषाकपिं प्रियमिन्द्राभिरक्षसि ।

श्वा न्वस्य जम्भिषदपि कर्णे वराहयुर्विश्वस्मादिन्द्र  
उत्तरः ॥ ४ ॥

यम् । इमम् । त्वम् । वृषाकपिम् । प्रियम् । इन्द्र । अभिरक्षसि ।

श्वा । नु । अस्य । जम्भिषत् । अपि । कर्णे । वराहऽयुः । ० ४

हे इन्द्र ! जिन प्रिय वृषाकपिकी आप रक्षा करते हैं, क्या कुत्ता इनके सामने जँभाई लेता है और क्या कान पर बराहको चाहने वाला जँभाई लेता है ? इन्द्रदेव सबसे श्रेष्ठ हैं ॥ ४ ॥

प्रिया तष्टानि मे कपिर्व्यक्ता व्यदूषत् ।

शिरो न्वस्य राविषं न सुगं दुष्कृते भुवं विश्वस्मा-

दिन्द्र उत्तरः ॥ ५ ॥

प्रिया । तष्टानि । मे । कपिः । विऽभक्ता । वि । अदूषत् ।

शिरः । नु । अस्य । राविषम् । न । सुगम् । दुऽकृते । भुवम् । ०

कपिने मेरे प्रियोंको तनू किया है, व्यक्ताने दूषित किया है, मैं इसके शिरको शब्दित करता हूँ, दुष्कृतमें प्रादुर्भाव सुगम नहीं होता है, इन्द्र सबसे श्रेष्ठ हैं ॥ ५ ॥

न मत्स्त्री सुभसत्तरा न सुयाशुतरा भुवत् ।

न मत् प्रतिच्यवीयसी न सक्थ्युद्यमीयसी विश्वस्मा-

दिन्द्र उत्तरः ॥ ६ ॥

न । मत् । स्त्री । सुभसत्तरा । न । सुयाशुतरा । भुवत् ।

न । मत् । प्रतिऽच्यवीयसी । न । सक्थि । उत्स्यमीयसी । ० ६

मेरी स्त्री सुभसत्तरा नहीं है, और सुयाशुतरा भी नहीं है, और प्रतिच्यवीयसी भी नहीं है । और सक्थियोंको उठाने वाली भी नहीं हैं, इन्द्रदेव सबसे श्रेष्ठ हैं ॥ ६ ॥

उवे अम्व सुलाभिके यथेवाङ्ग भविष्यति ।

भसन्मे अम्ब सक्थि मे शिरो मे वीर्वि हृष्यति विश्वं-  
स्मादिन्द्र उत्तरः ॥ ७ ॥

उवे । अम्ब । सुलाभिके । यथाऽइव । अङ्ग । भविष्यति ।

भसत् । मे । अम्ब । सक्थि । मे । शिरः । मे । विऽइव । हृष्यति । ०

हे उवे अम्ब सुलाभिके अंग ! जैसा होगा तैसा हो, हे अम्ब !  
मेरी कटि मेरी सक्थि और मेरा शिर पत्नीकी समान प्रसन्न  
होरहा है, इन्द्रदेव सबसे श्रेष्ठ हैं ॥ ७ ॥

किं सुबाहो स्वङ्गुरे पृथुष्टो पृथुजाघने ।

किं शूरपत्नि नस्त्वमभ्यमीषि वृषाकपि विश्वंस्मादिन्द्र  
उत्तरः ॥ ८ ॥

किम् । सुबाहो इति सुबाहो । सुऽअङ्गुरे । पृथुस्तो इति पृथु-  
स्तो । पृथुजघने ।

किम् । शूरऽपत्नि । नः । त्वम् । अभि । अमीषि । वृषाकपिम् । ०

हे सुन्दर भुजा वाली, हे सुन्दर अंगुलियों वाली, हे पृथुस्तु  
वाली, हे पृथु जघन वाली, हे शूरपत्नि ! क्या तू हमको वृषा-  
कपिके अभिमुख मारती है, इन्द्र सबसे श्रेष्ठ हैं ॥ ८ ॥

अवीरामिव मामयं शरारुभि मन्यते ।

उताहमस्मि वीरिणीन्द्रपत्नी मरुत्सखा विश्वंस्मादिन्द्र  
उत्तरः ॥ ९ ॥



अवीराम्ऽइव । माम् । अयम् । शरारुः । अभि । मन्यते ।

उत । अहम् । अस्मि । वीरिणी । इन्द्रऽपत्नी । मरुत्सखा । ०

यह अपने शरीरको नष्ट करना चाहने वाला नहुष मुझे वीर ( पति ) से रहित मानता है, परन्तु मैं वीर पतिसे सम्पन्न हूँ, मेरे पति मरुत्सखा इन्द्र हैं, वह सबसे श्रेष्ठ हैं ॥ ६ ॥

संहोत्रं स्मं पुरा नारी समनं वाव गच्छति ।

वेधा ऋतस्य वीरिणीन्द्रपत्नी महीयते विश्वस्मादिन्द्र

उत्तरः ॥ १० ॥

सम्ऽहोत्रम् । स्म । पुरा । नारी । समनम् । वा । अव । गच्छति ।

वेधाः । ऋतस्य । वीरिणी । इन्द्रऽपत्नी । महीयते । ० ॥ १० ॥

पहिले स्त्री होत्ररूप होती है और वह यागमें पुरुषके साथ बैठती है, इस प्रकार वह यज्ञकी रचना करने वाली है, ऐसी वीरिणी इन्द्रपत्नी प्रशंसा पाती है, क्योंकि—इन्द्र सबसे श्रेष्ठ हैं १०

इन्द्राणीमासु नारिषु सुभगामहमश्रवम् ।

नह्यस्या अपरं च न जरसा मरते पतिर्विश्वस्मादिन्द्र

उत्तरः ॥ ११ ॥

इन्द्राणीम् । आसु । नारिषु । सुऽभगाम् । अहम् । अश्रवम् ।

नहि । अस्याः । अपरम् । च न । जरसा । मरते । पतिः । ०

सब नारियोंमें मैं इन्द्राणीको ही सौभाग्यवती समझता हूँ, क्योंकि—इसका पति अन्य वर्षको प्राप्त होकर भी नहीं मरता है,

जैसे, कि-और प्राकृत नारियोंके पति मर जाते हैं और न इस का पति वृद्ध होता है । वह कौनसा पति है ? उत्तर--जो सर्व-श्रेष्ठ इन्द्र हैं, वही इसके पति हैं ॥ ११ ॥

नाहमिन्द्राणि रा॒रण॒ सख्युर्वृषा॑कपे॒ऋते॑ ।

यस्ये॒दम॒प्यं ह॒विः प्रि॒यं दे॒वेषु॑ गच्छ॒ति वि॒श्वंस्मादिन्द्र॑

उत्तरः ॥ १२ ॥

न । अ॒हम् । इन्द्रा॒णि । रा॒रण॒ । सख्युः । वृषा॑कपेः । ऋ॒ते ।

यस्य॑ । इ॒दम् । अ॒प्यम् । ह॒विः । प्रि॒यम् । दे॒वेषु॑ । गच्छ॒ति । ०

इन्द्र कहते हैं, कि-हे इन्द्राणि ! मैं अपने मित्र वृषाकपिको छोड़ कर अन्यत्र कहीं रमण नहीं करता हूँ, क्योंकि-इनकी हवि जलसे संस्कृत होती है, यह मुझे सब देवताओंमें प्रिय है, ऐसा मैं सब देवताओंमें श्रेष्ठ इन्द्र कहता हूँ ॥ १२ ॥

वृषा॑कपायि रेव॒ति सु॒पुत्र॑ आ॒दु सु॒स्नुषे॑ ।

घस॑त् त इन्द्र उ॒त्त॒णः प्रि॒यं का॒चित्करं॑ ह॒विर्वि॒श्वं-

स्मादिन्द्र॑ उत्तरः । १३ ॥

वृषा॑कपायि । रेव॒ति । सु॒पुत्रे॑ । आ॒त् । ऊं इति॑ । सु॒स्नुषे॑ ।

घस॑त् । ते॒ इन्द्रः॑ । उ॒त्त॒णः । प्रि॒यम् । का॒चित्करम्॑ । ह॒विः॥ ०

हे वृषाकपि सूर्यकी-पत्नी-विभूति वृषकपायि ! हे धनवति ! हे सुपुत्रे ! हे माध्यमिका बाणीसे सुस्नुषे ! तेरे इन माध्यमिक उक्त अवश्यायसंस्त्यानोंको यह इन्द्र ( सूर्य ) प्रिये और तुम्हारी इष्ट सुखस्थान जलरूप हविको यह इन्द्र भक्षण करें, क्योंकि-इन्द्र सबसे श्रेष्ठ हैं ॥ १३ ॥

उ॒च्छ॒णो हि मे पञ्च॑द॒श सा॒कं प॑च॒न्ति विं॒शति॑म् ।  
उ॒ताह॑म॒ग्निं पी॒व इ॒दुभा कु॒क्षीः पृ॑ण॒न्ति मे वि॒श्वंस्मा॒  
दिन्द्र॑ उत्तरः ॥ १४ ॥

उ॒च्छ॒णः । हि । मे । पञ्च॑द॒श । सा॒कम् । प॑च॒न्ति । विं॒शति॑म् ।

उ॒त । अ॒हम् । अ॒ग्निः । पी॒वः । इ॒त् । उ॒भा । कु॒क्षी इति॑ । पृ॑ण॒न्ति । मे । ०

मुझ महान् के पन्द्रह साथमें बीसको पकाते हैं, मैं उनका भक्षण करता हूँ अतः मैं स्थूल हूँ, मेरी दोनों कोखें भरी हुई, इन्द्रदेव सबसे उत्तम हैं ॥ १४ ॥

वृ॒षभो न ति॒ग्मशृ॑ङ्गो॒न्तर्यू॑थेषु रो॒रुव॑त् ।  
म॒न्थस्त॑ इन्द्र॒ शं हृ॒दे यं ते॑ सु॒नोति॑ भा॒वयु॑र्वि॒श्वंस्मा॒  
दिन्द्र॑ उत्तरः ॥ १५ ॥

वृ॒षभः । न । ति॒ग्मशृ॑ङ्गः । अ॒न्तः । यू॒थेषु॑ । रो॒रुव॑त् ।

म॒न्थः । ते॒ । इन्द्र॑ । शम् । हृ॒दे । यम् । ते॒ । सु॒नोति॑ । भा॒वयुः । ०

तीखे सींग वाले वृषभके यूथमें बारम्बार शब्द करनेकी समान हे इन्द्र ! आपका मन्थ जिसके हृदयमें सुख प्रदान करता है, वह सुख पाने वाला होता है, क्योंकि—इन्द्र सबसे श्रेष्ठ हैं ॥ १५ ॥

न से॒शे यस्य॑ र॒म्बते॑न्तरा स॒कथ्या॑ ३ क॒पृत् ।  
से॒दी॒शे यस्य॑ रोम॒शं नि॒षेदु॑षां वि॒जृम्भ॑ते वि॒श्वंस्मा॒  
दिन्द्र॑ उत्तरः ॥ १६ ॥



न । सः । ईशे । यस्य । रम्बते । अन्तरा । सक्थ्या । कपृत् ।

सः । इत् । ईशे । यस्य । रोमशम् । निऽसेदुषः । विऽजृम्भते । ०

जिसकी सक्थियोंके बीचमें कपृत् लटकता रहता है, वह ऐश्वर्य नहीं पाता है, और जिस बैठनेकी इच्छा वालेका रोमश जँभाई लेता है वह ( उपभोग करनेमें ) समर्थ होता है । इन्द्रदेव सबसे श्रेष्ठ हैं ॥ १६ ॥

न सेशे यस्य रोमशं निषेदुषो विजृम्भते ।

सेदीशे यस्य रम्बतेन्तरा सक्थ्यो ३ कपृद् विश्वस्मा-  
दिन्द्र उत्तरः ॥ १७ ॥

न । सः । ईशे । यस्य । रोमशम् । निऽसेदुषः । विऽजृम्भते ।

सः । इत् । ईशे । यस्य । रम्बते । अन्तरा । सक्थ्या । कपृत् । ०

जिस ( आसन लगा कर ) बैठने वाले ( योगी ) का रोमश विजृम्भण करता है वह ( योगसाधनमें ) समर्थ नहीं होता और जिसका कपृत् सक्थियोंमें लटकता रहता है ( वह योगसिद्धि में ) समर्थ होता है इन्द्रदेव सबसे श्रेष्ठ हैं ॥ १७ ॥

अयमिन्द्र वृषाकपिः परस्वन्तं हतं विदत् ।

असिं सूनां नवं चरुमादेधस्यान आचितं विश्वस्मा-  
दिन्द्र उत्तरः ॥ १८ ॥

अयम् । इन्द्र । वृषाकपिः । परस्वन्तम् । हतम् । विदत् ।

अ॒सिम् । सू॒नाम् । न॒वम् । च॒रुम् । आ॒त् । ए॒धस्य॑ । अ॒नः ।

आ॒ञ्चितम् १० ॥ १८ ॥

हे इन्द्र ! इन वृषाकपिने अपने नष्ट हुए अतः शत्रुघनको पाया था और एधकी तलवार, सूना, और आचित नवीन चरुको ग्रहण किया है । इन्द्रदेव सबसे श्रेष्ठ हैं ॥ १८ ॥

अ॒यमे॑मि वि॒चाक॑शद् वि॒चिन्वन् दा॒स॒मार्ग्यम् ।

पि॒बामि॑ पा॒क॒सु॒त्वनो॒मि धी॒र॒म॒चाक॑शं वि॒श्व॒स्मादिन्द्र॑

उ॒त्तरः ॥ १९ ॥

अ॒यम् । ए॒मि । वि॒ञ्चाक॑शत् । वि॒ञ्चि॒न्वन् । दा॒सम् । आ॒र्यम् ।

पि॒बामि॑ । पा॒क॒सु॒त्वनः॑ । अ॒भि । धी॒रम् । अ॒चाक॑शम् ॥ १९ ॥

यह मैं कर्म करने वाले आर्यको ढूँढ़ता हुआ और दमकता हुआ आ रहा हूँ, मैं प्रशस्यरूपसे निचोड़े हुए, धीरताप्रद सोमांश का पान कर रहा हूँ, इन्द्रदेव सबसे श्रेष्ठ हैं ॥ १९ ॥

ध॒न्व॑ च॒ यत् कृ॒न्त॒त्रं च॒ क॒ति॑ स्वि॒त् ता वि॒ यो॒ज॒ना॑  
ने॒दी॒य॒सो वृ॒षाक॑पे॒स्तमे॒हि गृ॒ह्णा॑ उप॒ वि॒श्व॒स्मादिन्द्र॑

उ॒त्तरः ॥ २० ॥

ध॒न्व॑ । च॒ । यत् । कृ॒न्त॒त्रम् । च॒ । क॒ति॑ । स्वि॒त् । ता । वि॒ ।

यो॒ज॒ना॑ ।

ने॒दी॒य॒सः । वृ॒षाक॑पे॒ । अ॒स्तम् । आ॒ । इ॒हि॒ । गृ॒ह्णान् । उप॑ ॥

जो मरुस्थल और अन्तरिक्ष है, उनका वियोजन कितना है,

हे वृषाकपे ! उस निकटतम स्थलसे आप घरको आइये, घरों के पास आइये, इन्द्रदेव सबसे श्रेष्ठ हैं ॥ २० ॥

पुनरेहि वृषाको सुविता कल्पयावहे ।

य एष स्वप्नं शनोस्तमेभि पथा पुनर्विश्वस्मादिन्द्र

उत्तरः ॥ २१ ॥

पुनः । आ । इहि । वृषाकपे । सुविता । कल्पयावहे ।

यः । एषः । स्वप्नं शनः । अस्तम् । एभि । पथा । पुनः । ०

हे भगवन् वृषाकपे ! जो आप अपने उदयसे स्वप्नको नष्ट करने वाले हैं, वह आप मार्गसे फिर अस्तको प्राप्त होजाते हैं, जो आप सब जगत्से श्रेष्ठ हैं, वह आप फिर उदयको प्राप्त होजिये, फिर हम शोभन अर्घ्यके उद्देश्यसे जगत्के हितमें प्रवृत्त हुए शोभन कर्मोंकी कल्पना करें अर्थात् उनको सगुण करें ॥ २१ ॥

यदुदञ्चो वृषाको गृहभिन्द्राजगन्तन ।

क्व १ स्य पुल्वघो मृगः कमगं जनयोपनो विश्व-

स्मादिन्द्र उत्तरः ॥ २२ ॥

यत् । उदञ्चः । वृषाकपे । गृहम् । इन्द्र । अजगन्तन ।

क्व । स्यः । पुल्वघः । मृगः । कम् । अगन् । जनऽयोपनः । ०

हे वृषाकपे इन्द्र ( सूर्य ) ! जब आप उत्तरमें रहते हुए सुबनों को प्रदक्षिण करते हुए गृहानुप्रवेशमें अन्तर्हित होते हैं, उस समय आपके घर आने पर-अस्त होने पर-लोक प्रकाशरहित होकर विस्मित होकर कहता है, कि-वह सब प्राणियोंमें रह कर बहुत



सा भक्षण करने वाले सूर्य कहाँ गए, वह जनमोहन सूर्य सबसे श्रेष्ठ हैं ॥ २२ ॥

पशुर्ह नाम मानवी साकं संसूव विंशतिम् ।

भद्रं भलं त्यस्या अभूद् यस्या उदरमामयद् विश्व-  
स्मादिन्द्र उत्तरः ॥ २३ ॥

पशुः । ह । नाम । मानवी । साकम् । संसूव । विंशतिम् ।

भद्रम् । भलं । त्यस्यै । अभूत् । यस्याः । उदरम् । आमयत् ।

विश्वस्मात् । इन्द्रः । उत्तरः ॥ २३ ॥

मानवी पशु प्रसिद्ध है उसने साथ ही साथ बीसको मकट किया है, उसके लिये भद्र हुआ, जिसका उदर रोगसहित था, इन्द्र सबसे श्रेष्ठ हैं ॥ २३ ॥

नवम अनुाक्रमे तांस्तौ सूक्त समाप्त ( ७४२ )

## ❀ अथ कुन्तापसूक्तानि ❀

पृष्ठथस्य षष्ठेहनि “इदं जना उपश्रुत” इति कुन्तापम् अर्ध-  
र्चशः शंसति । तत्र प्रथमाश्चतुर्दश ऋचः पदावग्राहं शंसति ।  
तद् उक्तं वैताने । “इदं जना उपश्रुतेति कुन्तापम् अर्धर्चशः ।  
चतुर्दश पदावग्राहम्” इति [ वै० ६. २ ] ॥

पृष्ठथके छठे दिन “इदं जना उपश्रुत” इस कुन्तापको आधी २  
ऋचा करके पढ़े, इसकी पहिली चौदह ऋचाओंको ( पद पद  
करके ) पदावग्राह पढ़े । इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा, है, कि-  
“इदं जना उपश्रुतेति कुन्तापं अर्धर्चशः । चतुर्दश पदावग्राहम्”  
( वैतानसूत्र ६ । २ ) ॥

इदं जना उपं श्रुत नराशंस स्तविष्यते ।

षष्टिं सहस्रां नवतिं च कौरम आ रुशोमेषु ददन्ते १

हे मनुष्यों ! और हे कौरम नराशंस तुम स्तुति करने वालों के विषयमें यह बात सुनो, कि—हम साठ हजार रुशमोंको देते हैं १

उष्ट्रा यस्य प्रवाहणो वधूमन्तो द्विर्दश ।

वृष्मा रथस्य नि जिहीडते दिव ईषमाणा उपस्पृशः २

जिसके शरीररूपी रथके वधूमान् बीस ऊँट बोभेको ढोने वाले हैं वह धुलोक स्पर्श करते हुए हीडन करते हैं ॥ २ ॥

एष इषाय मामहे शतं निष्कान् दश स्रजः ।

त्रीणि शतान्यर्वतां सहस्रा दश गोनाम् ॥ ३ ॥

हम अन्नके लिये सौ निष्क, दश माला, तीनसौ घोड़े और दश हजार गौश्रोंका दान करते हैं ॥ ३ ॥

वच्यस्व रेभं वच्यस्व वृत्ते न पक्वे शकुनः ।

नष्टे जिह्वा चर्चरीति क्षुरो न भुरिजोशिव ॥ ४ ॥

हे स्तोतः ! जैसे पके हुए फल वाले वृत्त पर बैठा हुआ पक्षी चहचहाता है, इसी प्रकार आप शब्द करिये, हाथोंमें वर्तमान क्षुरा जैसे चलता है इसी प्रकार कर्मके बन्द होने पर भी आपकी जिह्वा चलती रहे ॥ ४ ॥

प्र रेभासो मनीषा वृषा गावं इवेरते ।

अमोतपुत्रका एषाममोत गा इवासते ॥ ५ ॥

बुद्धिसम्पन्न स्तोता वर्षक साँडोंकी समान चल रहे हैं इनके घरमें पुत्र और गौ बैठे हुए से हैं ॥ ५ ॥

प्र रेभ धीं भरस्व गोविदं वसुविदम् ।

देवत्रेमां वाचं श्रीणीहीषुर्नवीरस्तारम् ॥ ६ ॥

हे स्तोतः ! गौ प्राप्त कराने वाली और धन प्राप्त कराने वाली बुद्धि को धारण कर, देवताओंमें इस वाणीका श्रौणन कर, जैसे बाण फैलाने वाले मनुष्यकी रक्षा करता है, इसी प्रकार वाणी तेरी रक्षा करे ॥ ६ ॥

राज्ञो विश्वजनीनस्य यो देवोमर्त्या अति ।

वैश्वानरस्य सुष्ठुतिमा सुनोतां परिक्षितः ॥ ७ ॥

यदि देवता विश्वजनीन राजाके मनुष्योंका अतिक्रमण करता हो तो वह परिक्षित वैश्वानरके सुन्दर स्तोत्रको करे ॥ ७ ॥

परिच्छिन्नः क्षेममकरोत् तम् आसनमाचरन् ।

कुलायन् कृण्वन् कौरव्यः पतिर्वदति जायया ॥ ८ ॥

परिच्छिन्न ( देवता ) कन्याणको करता है, आसन (स्थिति) को विस्तृत करता है, इस प्रकार विस्तृत करता हुआ कौरव्य-पति जायासे कहता है ॥ ८ ॥

कतरत् त आ हराणि दधि मन्थां परि श्रुतम् ।

जायाः पतिं वि पृच्छति राष्ट्रे राज्ञः परिक्षितः ॥ ९ ॥

राजा परिक्षितके राज्यमें जाया पतिसे बूझता है, कि-मन्था में परिश्रुत दधिको तेरे लिये कितना लाऊँ ॥ ९ ॥



अभीवस्वः प्र जिहीते यवः पक्कः पथो बिलम् ।

जनः स भद्रमेधाति राष्ट्रे राज्ञः परिक्षितः ॥ १० ॥

पक्का हुआ यवरूप धन मार्गसे उदररुत बिलको प्राप्त होता है, इस प्रकार राजा परिक्षितके राज्यमें प्राणी कन्याणको प्राप्त होता है ॥ १० ॥

इन्द्रः कारुमंबूबुधदुत्तिष्ठ वि चरा जनम् ।

ममेदुग्रस्य चर्कधि सर्व इत् ते पृणादरिः ॥ ११ ॥

इन्द्रने स्तोतासे कहा, कि-खड़ा हो, जनसमाजमें विचरण कर, मुझ उग्रके प्रतापसे तू कर्म कर तेरा शत्रु तुझको सब कुछ दे जाय ॥ ११ ॥

इह गावः प्रजायध्वमिहाश्वा इह पूरुषाः ।

इहो सहस्रदक्षिणोपि पूषा नि षीदति ॥ १२ ॥

यहाँ गौएँ व्यावें, यहाँ अश्व और पुरुष पकट होवें, और सहस्रों प्रकारकी दक्षिणा देने वाले पूषा यहाँ विराजें ॥ १२ ॥

नेमा इन्द्र गावो रिषन् मो आसां गोप शीरिषत् ।

मासाममित्रयुर्जन इन्द्र मा स्तेन ईशत ॥ १३ ॥

हे इन्द्र ! यह गौएँ हिंसित न हों, और इनका पालन करने वाला गोप भी नष्ट न होवे, इन पर अमित्रता करने वाला वा चोर भी अपना प्रभाव न दिखा सके ॥ १३ ॥

उप नो न रमसि सूक्तेन वचसा वयं भद्रेण वचसा वयम्

वनादधिध्वनो गिरो न रिष्येम कदा चन ॥ १४ ॥

तं प्रतिगिरेति प्रतिकुरत । ओथामोदैवेति पञ्चपदा चतुर्दशी  
एकेन द्वाभ्यां वा प्रणीति ॥

इति नवमेनुवाके एकविंशं सूक्तम् ॥

हे इन्द्र ! आप हमें सूक्तसे प्रसन्न सा करते हैं और  
हम भी आपको कन्याणमय वचनसे आनन्दित करते हैं,  
अन्तरिक्षसे आप हमारी बाणियोंको सुनिये, हम कभी भी नष्ट  
न होवें ॥ १४ ॥

नवम अनुवाकमें एकतीसवाँ सूक्त समाप्त ( ७४३ )

“यः सभेयो विदध्यः” इति षोडशर्चः ॥

“यः सभेयो विदध्यः” एतस्य शंसनप्रकारः पूर्वसूक्ते उक्तः ॥

“यः सभेयो विदध्यः” यह सोलह ऋचा वाला सूक्त है ।

“यः सभेयो विदध्यः” इसका शंसनप्रकार पूर्वसूक्तमें कह  
दिया है ।

यः सभेयो विदध्यः सुत्वा यज्वाथ पूरुषः ।

सूर्य चामूं रिशादसस्तद् देवाः प्रागकल्पयन् ॥ १ ॥

जो सभाके योग्य, यज्ञगृहके योग्य, अभिषव करने वाला  
और यजन करने वाला पुरुष होता है, वह सूर्य ( मण्डल )  
को भेद डालता है और ऊपरके लोकोंमें पहुँच जाता है, इस  
बातको देवताओंने पहिले ही बना रक्खा है ॥ १ ॥

यो जाम्या अप्रथयस्तद् यत् सखायं दुधूर्षति ।

ज्येष्ठो यदप्रचेतास्तदाहुरधरागिति ॥ २ ॥

जो जायिसे विस्तृत करता है और जो मित्रका दुधूर्षण करता  
है, जो अप्रचेता ज्येष्ठ है उसको अधराक् कहते हैं ॥ २ ॥

यद् भद्रस्य पुरुषस्य पुत्रो भवति दाधृषिः ।

तद् विप्रो अब्रवीदु तद् गंधर्वः काम्यं वचः ॥ ३ ॥

जिस मंगलमय पुरुषका पुत्र धर्षणशील होता है, वह विप्र कामना करने योग्य वचनको कह सकता है, वह गन्धर्व होता है ३

यश्च पणि रघुजिष्ठ्यो यश्च देवाँ अदाशुरिः ।

धीराणां शश्वतामहं तदपागिति शुश्रुम ॥ ४ ॥

जो वणिकू रघुजिष्ठ्य और जो देवताओंको हवि आदि न देनेके स्वभाव वाला होता है, हम सुनते हैं, कि-वह शाश्वत धीरोंका अपाक्-मुख फेरने योग्य-होता है ॥ ४ ॥

ये च देवा अयजन्ताथो ये च पराददिः ।

सूर्यो दिवमिव गत्वायं मघवा नो वि रप्शते ॥ ५ ॥

जो स्तुति करने वाले स्तोता यज्ञ करते हैं और जो परादान करते हैं वह स्वर्गमें सूर्यकी समान जाते हैं, हमारे इन्द्र महान् हैं ५

योनाक्ताक्षो अनभ्यक्तो अमणिवो अहिरण्यवः ।

अब्रह्मा ब्रह्मणः पुत्रस्तोता कल्पेषु संमिता ॥ ६ ॥

जो अनाक्ताक्ष है, अनभ्यक्त है, अमणिव अहिरण्यव और अब्रह्मा है, वह ब्रह्माका पुत्र तोता कल्पोंमें संमिता है ॥ ६ ॥

य आक्ताक्षः सुभ्यक्तः सुमणिः सुहिरण्यवः ।

सुब्रह्मा ब्रह्मणः पुत्रस्तोता कल्पेषु संमिता ॥ ७ ॥

जो आक्ताक्ष, सुभ्यक्त, सुमणि, सुहिरण्यव, सुब्रह्मा ब्रह्माके पुत्र तोता हैं वह कल्पोंमें संमिता हैं ॥ ७ ॥



अप्रपाणा च वेशन्ता रेवाँ अप्रतिदिश्ययः ।

अयंभ्या कन्या कल्याणी तोता कल्पेषु संमितां ८

अप्रपाणा वेशन्ता रेवा अप्रतिदिश्य अयंभ्या कन्या कन्याणी तोता कल्पोंमें सम्मित है ॥ ८ ॥

सुप्रपाणा च वेशन्ता रेवान्सुप्रतिदिश्ययः ।

सुयंभ्या कन्या कल्याणी तोता कल्पेषु संमितां ६

सुप्रपाणा वेशन्ता रेवान् सुप्रतिदिश्यय सुयंभ्या कन्या कन्याणी तोता कल्पोंमें सम्मित है ॥ ६ ॥

परिवृक्ता च महिषी स्वस्त्या च युधिगमः ।

अनाशुरश्चायामी तोता कल्पेषु संमितां ॥ १० ॥

परिवृक्ता, महिषी, स्वस्त्या और युधिगम अनाशुर आयामी तोता कल्पोंमें सम्मित है ॥ १० ॥

वावाता च महिषी स्वस्त्या च युधिगमः ।

श्वाशुरश्चायामी तोता कल्पेषु संमितां ॥ ११ ॥

वावाता महिषी स्वस्त्या और युधिगम श्वाशुर आयामी और तोता कल्पोंमें सम्मित हैं ॥ ११ ॥

यदिन्द्रादो दाशराज्ञे मानुषं वि गाहथाः ।

विरूपः सर्वस्मा आसीत् संह यक्षा य कल्पते १२

हे इन्द्र ! जो आपने दाशराजके मनुष्यको विगाहित किया है, आप सबके लिये विरूप हुए थे और आप यक्षके साथ समर्थ होते हैं ॥ १२ ॥

त्वं वृषाच्चुं मघवन्नम्रं मर्याकरो रविः ।

त्वं रौहिणं व्यास्यो वि वृत्रस्याभिन्नच्छिरः ॥ १३ ॥

हे वर्षक मघवन् ! आप मर्याकर रविरूपमें अशुको नम्र करते हैं, और रौहिणको फैले हुए मुख वाला करते हैं और आपने वृत्रासुरके शिरको काट डाला है ॥ १३ ॥

यं पर्वतान् व्यर्द्धधाद् यो अपो व्यगाहथाः ।

इन्द्रो यो वृत्रहान्महं तस्मादिन्द्र नमोस्तु ते ॥ १४ ॥

जिन्होंने पर्वतोंको विशेषरूपसे स्थापित किया है, और जिन्होंने जलका अवगाहन किया है और जो इन्द्र वृत्रासुरका संहार करने वाले हैं, ऐसे हे इन्द्र ! आपके लिये प्रणाम है ॥ १४ ॥

पृष्ठं धावन्तं ह्योरीचैःश्रवसमब्रुवन् ।

स्वस्त्यश्व जैत्रायेन्द्रमा वह सुस्रजम् ॥ १५ ॥

हरिनामक घोड़ोंकी पीठ पर दौड़ते हुए ( इन्द्रको देख कर प्राणियोंने ) उच्चैःश्रवासे कहा, कि-हे अश्व ! तेरा कन्याण हो तू विजयशील कर्मके लिये सुन्दरमाला वाले इन्द्रको सवारी दे १५

ये त्वां श्वेता अजैश्रवसो हार्यो युजन्ति दक्षिणम् ।

पूर्वा नमस्य देवानां बिभ्रदिन्द्र महीयते ॥ १६ ॥

इति नवमेनुवाके द्वात्रिंशं सूक्तम् ॥

जो श्वेत अजैश्रवस हारी आपकी दक्षिण ओर जुतते हैं, हे देवताओंके नमस्य ! हे उन पूर्वाओंको धारण करने वाले आप महर्ष पाते हैं ॥ १६ ॥

नवम अनुवाकमें बत्तीसवाँ सूक्त समाप्त ( ५४३ )

“एता अश्वा आ सवन्ते” इति षट्सप्तत्यष्टादशपदान्त्यः षड्वत्यष्ट प्रति त्वा ॥

“एता अश्वा आ सवन्ते” [ २०. १२६ ] इत्यादि “नील-  
शिखण्डवाहनः” [ २०. १३२ ] इत्यन्तम् ऐतशमलापाख्यं षट्सप्ततिपादसमुदायं पदावग्राहं सूत्रोक्तप्रकारेण शंसति । तद्वृत्तं वैताने । “एता अश्वा आसवन्त इत्यैतशमलापं पदावग्राहम् । तासामुत्तमेन पदेन प्रणौति” इति [ वै० ६. २ ] ॥

“एता अश्वा आसवन्ते” ( २० । १२६ ) इत्यादि “नील-  
शिखण्डवाहनः” ( २० । १३२ ) तक ऐतशमलाप नामक  
छिहत्तर पादसमुदायको पद २ ग्रहण करके सूत्रोक्त रीतिसे पढ़े ।  
वैतानसूत्रमें कहा है, कि—“एताः अश्वा आसवन्त इत्यैतशमलापं  
पदावग्राहम् । तासामुत्तमेन पदेन प्रणौति” ( वैतानसूत्र ६।२ ) ॥

एता अश्वा आ सवन्ते १ प्रतीपं प्राति सुत्वनम् २  
तासामेका हरिक्रिका ॥३॥ हरिक्रिके किमिच्छसि ४

साधुं पुत्रं हिरण्ययम् ॥५॥ काहतं परास्यः ॥ ६ ॥

यत्रामूस्तिस्रः शिशपाः ॥ ७ ॥ परि त्रयः ॥ ८ ॥

पृदाकवः ॥ ९ ॥ शृङ्गं धुमन्त आसते ॥ १० ॥

अयन्महा ते अर्वाहः ॥११॥ स इच्छकं सघाघते १२

सघाघते गोमीद्या गोगन्तीरिति ॥ १३ ॥

पुमां कुस्ते निमिच्छसि ॥ १४ ॥

पल्पं बद्ध वयो इति ॥१५॥ बद्धं वो अघा इति १६



अजागार केविका १७ अश्वस्य वारो गोशपद्यके १८  
श्येनीपती सा ॥१६॥ अनामयोपजिह्विका ॥२०॥

इति नवमेनुवाके त्रयस्त्रिंशं सूक्तम् ॥

ये अश्वा दौड़ती हैं ॥ १ ॥ सुत्वा प्रतीपको पूर्ण करता है २  
उनमेंसे एक हरिक्रिका है ॥ ३ ॥ हे हरिक्रिके ! तू क्या चाहती  
है ॥ ४ ॥ हित रमणीय साधु पुत्रको ॥ ५ ॥ परास्य कहीं अहि-  
सित रहता है ॥ ६ ॥ जहाँ यह तीन शिशपा हैं ॥ ७ ॥  
चारों ओर तीन ॥ ८ ॥ सर्प ॥ ९ ॥ स्निग्धको धौंकते हुए बैठे  
हैं ॥ १० ॥ यह दिन आपका बड़ा घोड़ा है ॥११॥ वह इच्छक  
का सघाघ करता है ॥ १२ ॥ गोमीच्या गोगतियोंको सघाघन  
करता है ॥ १३ ॥ पुरुष और पृथिवी तेरा निमिच्छन करते हैं १४  
हे बद्ध पल्प अन्न है इस प्रकार ॥ १५ ॥ हे बद्ध तुम्हारी अघा  
है ॥ १६ ॥ केविका न जागी ॥ १७ ॥ अश्वका वार गोश-  
पद्यकमें है ॥ १८ ॥ वह श्येनपती है ॥ १९ ॥ वह अनामया  
उपजीविका है ॥ २० ॥

नवम अनुवाकमें त्रैतीसवाँ सूक्त समाप्त ( ७४५ )

को अर्य बहुलिमा हूनि ॥१॥ को असिद्यापयः २  
को अर्जुन्याः पयः ॥३॥ कः काष्ण्याः पयः ॥४॥  
एतं पृच्छ कुहं पृच्छ ॥५॥ कुहाकं पक्कं पृच्छ ॥६॥  
यवानो यतिस्वभिः कुभिः ७ अकुप्यन्तः कुपायकुः ८  
आमणको मणत्सकः ॥९॥ देव त्वप्रतिसूर्य ॥१०॥  
एनश्चिपद्वक्तिका हविः ॥११॥ प्रदुदुदो मघाप्रति १२

भृङ्ग उत्पन्न ॥१३॥ मा त्वाभिसखा नो विदन् १४  
वशायाः पुत्रमा यन्ति ॥१५॥ इरावेदुमयं दत् ॥१६॥  
अथो इयन्नियन्निति ॥१७॥ अथो इयन्निति १८  
अथो श्वा अस्थिरो भवन् १९ उयं यकांशलोककां

इति नवमेनुवाके चतुस्त्रिंशं सूक्तम् ॥

इन बहुतसे बाणोंको कौन स्वामित्वमें रखता है ॥ १ ॥ अस्मि-  
दीका पय कौन है ? ॥ २ ॥ अर्जुनीका पय कौन है ? ॥ ३ ॥  
काष्णीका पय कौन है ? ॥ ४ ॥ इससे बूझ, कुहसे बूझ ॥५॥  
कुहाक पक्वकसे बूझ ॥ ६ ॥ यतिरूप घन वाली पृथिवियोंसे  
मिलता हुआ ॥ ७ ॥ कुपायकु क्रोधमें भर गया ॥ ८ ॥ आप-  
णक मणत्सक ॥ ९ ॥ किंतु हे अप्रतिसूर्य देव ॥१०॥ एनश्चि  
पङ्क्तिका हवि ॥ ११ ॥ प्रदुदुद मघाप्रति ॥ १२ ॥ हे शृंग !  
हे उत्पन्न ! ॥ १३ ॥ मेरा सखा तुझको और मुझको अभि-  
मुख होकर प्राप्त हो ॥ १४ ॥ वशाके पुत्रको प्राप्त होते हैं १५  
हे दत् इरावेदुमय ॥ १६ ॥ इसके उपरान्त यह यह, इसप्रकार १७  
इसके उपरान्त यह इस प्रकार है ॥ १८ ॥ इसके उपरान्त श्वा  
अस्थिर होता है ॥ १९ ॥ उय यंकाशलोकका ॥ २० ॥

नवम अनुवाकमें चौतीसवाँ सूक्त समाप्त ( ७४६ )

आमिनोनिति भंयते ॥१॥ तस्य अनु निभञ्जनम् २  
वरुणो याति वस्वभिः । ३ । शतं वा भारती शवः ४  
शतमाश्वा हिरण्ययाः । शतं रथ्या हिरण्ययाः ।  
शतं कुथा हिरण्ययाः । शतं निष्का हिरण्ययाः ५

अहल कुश वर्त्तक ॥ ६ ॥ शफेन इव ओहते ७  
 आय वनेनतीजनी ॥ ८ ॥ वनिष्ठा नाव गृह्यन्ति ९  
 इदं मह्यं मदूरिति ॥ ११ ॥ ते वृक्षाः सह तिष्ठति १२  
 पाक बलिः ॥ १२ ॥ शक बलिः ॥ १३ ॥  
 अश्वत्थ खदिरो धवः ॥ १४ ॥ अरदुपरम ॥ १५ ॥  
 शयो हत इव ॥ १६ ॥ व्याप पुरुषः ॥ १७ ॥  
 अदूहमित्यां पूषकम् ॥ १८ ॥ अत्यर्धर्च परस्वतः १९  
 दौव हस्तिनो दृती ॥ २० ॥

इति नवमेऽनुवाके पञ्चत्रिंशं सूक्तम् ॥

आमिनोनिति कहा जाता है ॥१॥ उसके पीछे निभञ्जन है २  
 वरुणदेव रात्रियोंके साथ जाते हैं ॥ ३ ॥ सौ भारती बल ॥४॥  
 सौ हित रमणीय घोड़े सौ हिरण्य रथ्या, सौ हिरण्यय कुथ्या  
 और सौ हिरण्यय निष्क ॥ ५ ॥ अहल कुश वर्त्तक ॥ ६ ॥  
 शफसे बहनसा करता है ॥ ७ ॥ आय वनेनती जनी ॥ ८ ॥  
 वनिष्ठा मौका पकड़ी जाती हैं ॥ ९ ॥ यह मुझको प्रसन्न करने  
 वाला है ॥१०॥ वह वृक्षोंके साथ स्थित होती है ॥ ११ ॥ पाक-  
 बलि ॥ १२ ॥ शकबलि ॥ १३ ॥ अश्वत्था खदिर धव ॥१४॥  
 चला, विरामको प्राप्त हो ॥ १५ ॥ सोने वाला मरा हुआसा  
 होता है ॥ १६ ॥ पुरुष व्याप्त होजाता है ॥ १७ ॥ मैं अन्तमें  
 पूषाको दुहता हूँ ॥ १८ ॥ परस्वान् नामक मृगका अतिक्रमण  
 करके अर्धर्च प्रवृत्त होवे ॥१९॥ हाथीकी दृतियोंका दुवन कर २०

नवम अनुवाकमें पैंतीसवाँ सूक्त समाप्त ( ७४७ )



आदलाबुकमेककम् ॥ १ ॥ अलाबुकं निखातकम् २  
 कर्करिको निखातकः ॥ ३ ॥ तद् वात उन्मथायति ४  
 कुलायं कृण्वदिति ॥ ५ ॥ उग्रं वनिषदाततम् ६  
 न वनिषदनाततम् ॥ ७ ॥ क एषां कर्करी लिखत् ८  
 क एषां दुन्दुभिं हनत् ९ यदीयं हनत् कथं हनत् १०  
 देवी हनत् कुहनत् ॥ ११ ॥ पर्यागारं पुनः पुनः १२  
 त्रीण्युष्ट्रस्य नामानि १३ हिरण्य इत्येके अब्रवीत् १४  
 द्वौ वा ये शिशवः ॥ १५ ॥ नीलशिखण्डवाहनः १६

इति नवमेनुवाके षट्त्रिंशं सूक्तम् ॥

इसके अनन्तर अलाबुक ( रामतुरई-लौकी ) एक ॥ १ ॥  
 खोदने वाला अलाबुक ॥ २ ॥ निखातक कर्करिक ॥ ३ ॥  
 यह वायुको उखेड़ता है ॥ ४ ॥ कुलायको करता है ॥ ५ ॥  
 विस्तृत उग्रकी संभक्ति करता है ॥ ६ ॥ अविस्तृतका सेवन  
 नहीं करता है ॥ ७ ॥ इनमेंसे कौन कर्करी लिखता है ॥ ८ ॥  
 इनमेंसे कौन दुन्दुभिको मारती है ॥ ९ ॥ यदि यह मारती है  
 तो कैसे मारती है ॥ १० ॥ देवीने मारा, कुहनन किया ॥ ११ ॥  
 भवनके चारों ओर बारम्बार ॥ १२ ॥ उष्ट्रके तीन नाम हैं १३  
 एक हिरण्य यह बोला ॥ १४ ॥ जो शिशू हैं वे दो हैं ॥ १५ ॥  
 नीलशिखण्डवाहन ॥ १६ ॥

नवम अनुवाकमे छत्तीसवाँ सूक्त समाप्त ( ७४८ )

“विततौ किरणौ द्वौ” इति प्रवह्निकाख्या ऋचः अर्धर्चशः

शंसति । तद् उक्तं वैताने । “विततौ किरणौ द्वाविति प्रवहिकाः”  
इति [ वै० ६. २ ] ॥

“विततौ किरणौ द्वौ” इस प्रवहिका नामक ऋचाको अर्धर्च-  
रूपमें पढ़े । इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि—“विततौ  
किरणौ द्वाविति प्रवहिकाः” इति ( वैतानसूत्र ६ । २ ) ॥

विततौ किरणौ तावा पिनष्टि पूरुषः ।

न वै कुमारि तत् तथा यथा कुमारि मन्यसे ॥ १ ॥

दो किरणों फैली हुई हैं पुरुष उनका पिंशन करता है, हे  
कुमारि ! तू उसको जैसा मानती है वह तैसा नहीं है ॥ १ ॥

मातुष्टे किरणौ द्वौ निवृत्तः पुरुषानृते । न वै० २

हे पुरुष ! अनृतसे निवृत्त हुआ जो तू है, उस तेरी माताकी  
दो किरणों हैं । हे कुमारि ! उसको तू जैसा मानती है वह तैसा  
नहीं है ॥ २ ॥

निगृह्य कर्णिकौ द्वौ निरायच्छसि मध्यमे । न वै० ३

हे मध्यमे ! तू दोनों कानोंको पकड़ कर नहीं देती है, हे  
कुमारि ! उसको तू जैसा मानती है वह तैसा नहीं है ॥ ३ ॥

उत्तानायै शयानायै तिष्ठन्ती वाव गूहसि । न वै० ४

उत्ताना वा शयानाके लिये खड़ी होकर आलिङ्गन करती है,  
हे कुमारि ! उसको तू जैसा मानती है वह तैसा नहीं है ॥ ४ ॥

श्लक्ष्णायां श्लक्ष्णकायां श्लक्ष्णमेवाव गूहसि । न वै०

तू श्लक्ष्णा वा श्लक्ष्णकामें श्लक्ष्ण ही अवगूहन करती है, हे  
कुमारि ! उसको तू जैसा मानती है वह तैसा नहीं है ॥ ५ ॥

अवश्लक्ष्णमिव भ्रंशदन्तलोममतिं हृदे ।

न वै कुमारि तत् तथा यथा कुमारि मन्यसे ॥ ६ ॥

इति नवमेनुवाकेऽसप्तत्रिंशं सूक्तम् ॥

टूटे दाँत और लोमयुक्त सरोवरमें अवश्लक्ष्णकी समान है ।  
हे कुमारि ! उसको तू जैसा मानती है, वह तैसा नहीं है ॥ ६ ॥

नवम अनुवाकमें सैंतीसवाँ सूक्त समाप्त ( ७४१ )

“इहेत्थ प्रागपागुदगधराक्” इति प्रतिराधाख्या ऋचः अर्ध-  
र्चशः शंसति । न संतनोति । तद् उक्तं वैताने । “इहेत्थ प्रागपा-  
गुदधराग् इति प्रतिराधान् । न संतनोति” इति [ वै० ६. २ ] ॥

“इहेत्थ प्रागपागुदगधराक्” इन प्रतिराधा नामक ऋचाओं  
को अर्धचरूपमें पढ़े । विस्मय न करे । इसी बातको वैतानसूत्र  
में कहा है, कि—“इहेत्थ प्रागपागुदगधराग् इति प्रति राधान् ।  
न संतनोति” ( वैतानसूत्र ६ । २ ) ॥

इहेत्थ प्रागपागुदगधराग्—अरालागुदभर्त्सथ ॥ १ ॥

यहाँ इस प्रकार पूर्व पश्चिम उत्तर दक्षिण अरालसे उर्त्तमर्त्सन  
करो ॥ १ ॥

० वत्सा पुरुषन्त आसते ॥ २ ॥

० वत्स पुरुष वनना चाहते हुए बैठे हैं ॥ २ ॥

० स्थालीपाको वि लीयते ॥ ३ ॥

० स्थालीपाक विलीन होता है ॥ ३ ॥

० स वै पृथु लीयते ॥ ४ ॥

० वह बहुत ही लीन होजाता है ॥ ४ ॥



० आष्टे लाहणि लीशायी ॥ ५ ॥

० लाहनमें लीशायी उपभोग करती है ॥ ५ ॥

इहेत्थ प्रागपागुदगधराग्-अदिल्ली पुच्छिलीयते ६

इति नवमेनुवाके अष्टत्रिंशं सूक्तम् ॥

यहाँ इस प्रकार पूर्व पश्चिम उत्तरमें अदिल्ली पुच्छिल होती है ६

नवम अनुवाकमें अड़तीसवाँ सूक्त समाप्त ( ७५० )

“भुगित्यभिगतः” इत्याजिज्ञासेन्याख्यास्तिस्र ऋचः शंसति । तद् उक्तं वैताने । “भुगित्यभिगत इत्याजिज्ञासेन्यास्तिस्रः” इति [ वै० ६. २ ] ॥

“वीमे देवा अक्रंसत” इत्यतीवादाख्या ऋचः अर्धर्चशः शंसति । तद् उक्तं वैताने । “वीमे देवा अक्रंसतेत्यतीवादम्” इति [ वै० ६. २ ] ॥

“भुगित्यभिगतः” इन आजिज्ञासेनी नामक तीन ऋचाओं को पढ़ता है । इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि—“भुगित्यभिगत इत्याजिज्ञासेन्यास्तिस्रः” ( वैतानसूत्र ६ । २ ) ॥

“वीमे देवा अक्रंसत” इन अतीवाद नामक ऋचाओंको आधी २ ऋचा करके पढ़े । इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि—“वीमे देवा अक्रंसतेत्यतीवादम्” ( वैतानसूत्र ६ । २ ) ॥

भुगित्यभिगतः शलित्यपक्रान्तः फलित्यभिष्ठितः ।

दुन्दुभिमाहननाभ्यां जरितरोथामो दैव ॥ १ ॥

भुक् यह अभिगत है, शल् यह अपक्रान्त है, फल यह अभिष्ठित है, हे स्तोतः ! इसके उपरान्त आप दुन्दुभिको ताड़ित करने वाले दो दण्डोंसे क्रीड़ा करिये ॥ १ ॥

कोशबिले रजनि ग्रन्थेर्धानमुपानहि पादम् ।

उत्तमां जनिमां जन्यानुत्तमां जनीन् वर्त्मन्यात् २

कोशबिल रजनिमें ग्रन्थिके धानको जूतेमें पैरको और उत्तमा जनिमा, जन्य और उत्तमा जनियोंको मार्गमें (स्थापित करे) २

अलाबूनि पृषातकान्यश्वत्थपलाशम् ।

पिपीलिकावटश्वसो विद्युत्स्वापर्णशफो गोशफो जरित रोथामो दैव ॥ ३ ॥

लौकी, पृषातक, अश्वत्थ, ढाक, पिपीलिक, अवटश्वस, विद्युत्, स्वापर्णशफ, गोशफ, हे स्तोतः ! इसके उपरान्त तू बल से क्रीड़ा कर ॥ ३ ॥

वीमे देवा अक्रंसताध्वर्यो जिप्रं प्रचरं ।

सुसत्यमिद् गवामस्यसिं प्रखुदसिं ॥ ४ ॥

ये देवता दमक रहे हैं, हे अध्वर्यो ! आप शीघ्रतासे मन्त्रों-का उच्चारण करिये, आप गौओंके लिये सत्य और प्रखुत् हैं ४  
इह इत्येतामर्धर्चशः प्रणवत्यनुते ॥

पत्नी यदृश्यते पत्नी यद्यमाणा जरितरोथामो दैव ।

होता विंष्टीमेन जरितरोथामो दैव ॥ ५ ॥

जो पत्नी है वह पूजन करती हुई ही पत्नी दीखती है, हे जरितः ! इसके उपरान्त आप भयोंकी जीतनेकी इच्छा करिये ५

आदित्या ह जरितरङ्गिरोभ्यो दक्षिणामनयन् ।

तां ह जरितः प्रत्यायस्तामु ह जरितः प्रत्यायन् ६

हे स्तोतः ! आदित्य अंगिराओंसे दक्षिणाको लाये थे, हे जरितः ! उसको वे लाये थे, हे स्तोतः ! उसको वे लाये थे ६ तां हं जरितर्नः प्रत्यंगृभ्णंस्तामु हं जरितर्नः प्रत्यंगृभ्णः अहानेतरसं न विचेतनानि यज्ञानेतरसं न पुरोगवामः

हे हमारे स्तोतः ! उसको उन्होंने ग्रहण किया था, हे हमारे स्तोतः ! उसको आपने ग्रहण किया था, अहानेतरसको नहीं विशेष चेतनोंको और यज्ञानेतरसको नहीं, किंतु विशेष चेतनोंको हम सन्मुख होकर प्राप्त होते हैं ॥ ७ ॥

उत श्वेत आशुपत्वा उतो पद्याभिर्धविष्ठः ।

उतेमाशु मानं पिपति ॥ ८ ॥

श्वेत और आशुपत्वा आप पदमयी ऋचाओंसे युवा होते हैं और इनको शीघ्र मान पूर्ण करता है ॥ ८ ॥

आदित्या रुद्रा वसवस्त्वेनुं त इदं रा १ः प्रतिंगृभ्णीह्यङ्गिरः इदं राधो विभु प्रभु इदं राधो बृहत् पृथु ॥ ९ ॥

हे अंगिरः ! आदित्य वसु और रुद्र तेरे अनुकूल हैं, तू इस धनको ग्रहण कर, यह धन विभु और प्रभु है, और यह धन विशाल और बृहत् है ॥ ९ ॥

देवा ददत्वासुरं तद् वो अस्तु सुचेतनम् ।

युष्मां अस्तु दिवेदिवे प्रत्येव गृभायत ॥ १० ॥

देवता तुम्हे प्राणबल देवें, वह आपको चेतनता देने वाला होवें, तुम्हें प्रत्येक अवसर पर प्राप्त होवें, प्रत्येक अवसर पर आपको प्राप्त होवें ॥ १० ॥



सप्तदश पदान्यष्टादशभिर्व्याख्याता प्रतिगरे विकारः । ॐ ह  
जरितस्तथा ह जरितरिति विपर्यासं जरितुं मतिष्वेवं प्रतिगरामके  
सर्वाश्वतिपाणिनास्त्वमिन्द्र शर्मरिणेति तिस्रो भूतैश्चदो अर्धर्चशः॥

सत्रह पद अठारहसे व्याख्यात होगए, प्रतिगरमें विकार हैं ।  
ओं ह जरितस्तथा ह जरितः इस विपर्यायसे स्तुति करनेके लिये  
तथा प्रतिगरामकमें सर्वाशु हाथसे “त्वमिन्द्र शर्मरिणा” इन  
ऋचाओंके होने पर इनका अर्धर्चरूपमें पढ़े ।

त्वमिन्द्र शर्मरिणा हव्यं पारावतेभ्यः ।

विप्राय स्तुवते वसुवनिं दुरश्रवसे वह ॥ ११ ॥

हे इन्द्र ! आप इस लोक और परलोक दोनों लोकोंके पार  
तक पहुँचने वाले ( देवताओं ) के लिये शर्मरी ( कल्याणप्रद  
अवयव ) से हव्यका वहन करिये । और जिसको अन्न मिलना  
दुस्तर होरहा है उस स्तुति करने वाले विप्रके लिये धनका सं-  
भक्तन करने वाली शक्तिको दीजिये ॥ ११ ॥

त्वमिन्द्र कपोताय च्छिन्नपक्षाय वञ्चते ।

श्यामाकं पक्कं पीलुं च वारस्मा अकृणोर्बहुः ॥ १२ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप परकटे अत एव खिचड़ते हुए कपोतके लिये  
काकुनी, और अखरोटको तथा बहुतसे जलको करिये ॥ १२ ॥

अरंगरो वावदीति त्रेधा बद्धो वरत्रया ।

इरामह प्रशंसत्यनिरामपं सेधति ॥ १३ ॥

इति नवमेऽनुवाके एकोनचत्वारिंशं सूक्तम् ॥

चमड़ेकी रस्सीसे तीन स्थानोंमें बँधा हुआ अरंगर वारम्बार

शब्द करता है । यह पृथ्वी की प्रशंसा करता है और पृथ्वी-  
रहित स्थानका अपसेधन करता है ॥ १३ ॥

मधम अनुशाकमें उन्तालोखवाँ सूक्त समाप्त ( ७५१ )

“यदस्या” इति षोडश आहनस्या वृषाकपिला वैशिषमुत्तमेन  
पादेन प्रणीति ॥

“यदस्या अंहुभेद्याः” इत्याहनस्याख्याः षोडशर्चः वृषाकपि-  
शस्त्रवच्छंसति । तद् उक्तं वैताने । “यदस्या अंहुभेद्या इत्याह-  
नस्या वृषाकपिवत्” इति [ वै० ६. २ ] ॥

“यदस्या अंहुभेद्याः” इन आहनस्य नामक सोलह ऋचाओं  
को वृषाकपिशस्त्रकी समान पढ़े । इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा  
है, कि— ‘यदस्या अंहुभेद्या इत्याहनस्या वृषाकपिवत्’ ( वैतान-  
सूत्र ६ । २ ) ॥

यदस्या अंहुभेद्याः कृधु स्थूलमुपातंसत् ।

मुष्काविदस्या एजतो गोशफे शकुलाविव ॥ १ ॥

जो इस पापभेदिनीका स्थूल कृधु क्षीण होगया है, शकुल  
( सौरा मछली ) की समान इसके मुष्क गोशफमें हिलते हैं १

यदा स्थूलेन पससाणौ मुष्का उपावधीत् ।

विष्वञ्चा वस्या वर्धतः सिकतास्वेव गर्दभौ ॥ २ ॥

जब स्थूल पसः ( शिश्र ) से अणुमें मुष्कोंका प्रहार किया  
तब जैसे रेतमें गधे बढ़ते हैं तैसे ही इस चारों ओर गमन करती  
हुई आच्छादिकामें मुष्क बढ़ते हैं ॥ २ ॥

यदलिपकास्वल्लिका कर्कधूकेवषद्यते ।

वासान्तिकमिव तेजनं यन्त्यवाताय वित्पति ॥ ३ ॥

जो अल्पिकामें अल्पिका है, और जो कर्कधूकाकी समान अव-  
षदन करती है, वासन्तिक तेजनकी समान अवातके लिये वित्पत्  
में जाते हैं ॥ ३ ॥

यद् देवा<sup>१</sup> ललामगुं प्रविष्टीमि<sup>२</sup>नमाविषुः ।

सकुला द<sup>३</sup>दिश्यते नारी<sup>४</sup> सत्यस्या<sup>५</sup>क्षिभुवो<sup>६</sup> यथा ॥ ४ ॥

जब देवता प्रविष्ट सुन्दर गौमें प्रसन्न होते हैं, तब सत्य अक्षि-  
भूकी समान सकुला नारी बार बार अला दीजाती है ॥ ४ ॥

महानग्न्यु<sup>१</sup>त्प्रद्वि मोक्रदुदस्थानासरन् ।

शक्तिकानना स्वचमशकं सक्तु पद्यम ॥ ५ ॥

ऊपर खड़े हुआ पर न दौड़ता हुआ, उत्क्रमण न करता हुआ  
महाअग्नि वृत्त होता है, शक्तिकानन हम स्वचमशक दमकते हुआ  
को प्राप्त होवें ॥ ५ ॥

महानग्न्युलूखलमतिक्रामन्त्यब्रवीत् ।

यथा तव वनस्पते निरघ्नन्ति तथैवति ॥ ६ ॥

महान् अग्नि उलूखलका अतिक्रमण करती हुई कहने लगी  
कि—हे वनस्पते ! जैसे तुझे कूटते हैं, तैसे ही ॥ ६ ॥

महानग्न्युप ब्रूते अष्टोथाप्यभूभुवः ।

यथैव ते वनस्पते पिप्पन्ति तथैवति ॥ ७ ॥

महान् अग्नि कहती है, कि—तू अष्ट होकर भी बारम्बार प्रकट  
होजाता है, हे वनस्पते ! जिस प्रकार तू पूरण होता है तिसी  
प्रकार ॥ ७ ॥



महानग्न्युप ब्रूते अष्टोथाप्यभूभुवः ।

यथा वयो विदाह्यं स्वर्गे नमवदुह्यते ॥ ८ ॥

महान् अग्नि कहता है, कि-तू अष्ट होकर भी बारम्बार प्रकट होजाता है, जैसे अवस्था जीर्ण होकर स्वर्गमें हविकी समान धारण की जाती है ॥ ८ ॥

महानग्न्युप ब्रूते स्वसावेशितं पसः ।

इत्थं फलस्य वृक्षस्य शूर्पं शूर्पं भजेमहि ॥ ९ ॥

महान् अग्नि कहता है कि-यह शिश्र भली प्रकार आवेशित कर दिया है, इस प्रकार हम फलसम्पन्न वृक्ष के छाजमें छाज का भजन करते हैं ॥ ९ ॥

महानग्नी कृकवाकं शम्यया परि धावति ।

अयं न विद्म यो सृगः शीष्णा हरति धाणिकाम् १०

महान् अग्नि कृक शब्द करने वालेपर कर्मसे दौड़ता है। हम जानते हैं कि-वह सृगकी समान शिरसे धाणिकाका हरण करता है

महानग्नी महानग्नं धावन्तमनु धावति ।

इमास्तदस्य गा रक्ष यभ मामञ्चौदनम् ॥ ११ ॥

महान् अग्नि दौड़ते हुए महानग्नके पीछे दौड़ता है। इसकी इन इन्द्रियोंकी रक्षा कर, मेरे साथ मैथुन कर और भात भक्षण कर ११

सुदेवस्त्वा महानग्नीर्वबाधते महतः साधु खोदनम् ।

कुसं पीवरो नवत् ॥ १२ ॥

शोभन दमकने वाला महान् अग्नि भली प्रकार विशेषरूपसे पीड़ा देता है, यह बड़े बड़ोंको कुरेदने वाला है, स्थूल कृशको नष्ट करता है ॥ १२ ॥

वशा दग्धाभिमाङ्गुरिं प्रसृजतोऽग्रतं परे ।

महान् वै भद्रो यम मामेच्छौदनम् ॥ १३ ॥

वशाने इस जली हुई अंगुलिको रचा है, दूसरे उग्रतकी रचना करते हैं महान् कल्याणकारी होता है, मेरे साथ मैथुन कर और भातका भक्षण कर ॥ १३ ॥

विदेवस्त्वा महानग्नीर्विबाधते महतः साधु खोदनम् ।

कुमारिका पिङ्गलिका कार्द भस्मां कुं धावन्ति १४

यह विशिष्ट देवता महान् अग्नि विशेषरूपसे पीड़ा देता है, यह बड़ेको साधु खोद डालता है, कुमारिका पिंगलिका कार्यको करके दौड़ जाती है ॥ १४ ॥

महान् वै भद्रो बिल्वो महान् भद्र उदुम्बरः ।

महाँ अभिक्त बाधते महतः साधु खोदनम् ॥ १५ ॥

महान् बिल्व भद्र है, महान् उदुम्बर भद्र है, जो महान् चारों ओरसे पीड़ा देता है, वह बड़ों २ को भली प्रकार खोदन करने वाला है ॥ १५ ॥

यः कुमारी पिङ्गलिका वसन्तं पीवरी लभेत् ।

तैलकुण्डमिमाङ्गुष्ठं रोदन्तं शुद्धमुद्धरेत् ॥ १६ ॥

इति नवमेनुवाके चत्वारिंशं सूक्तम् ॥

इति कुन्तापसूक्तानि ॥

जो पिंगलिका पीवरी कुमारी वसन्तको पाजावे तो तैलके कुण्डमेंसे अँगूठेकी समान इस कुरेदतेहुए शुद्धका उद्धार करती है

नवम अनुशाकमें चालीसवाँ सूक्त समाप्त ( ७५२ )

सोमयागे “दधिक्रावणः” [ २०. १३७. ३ ] इत्यस्या ऋच आग्नीध्रीये दधिभक्षणे विनियोगः । तद् उक्तं वैताने । “आग्नीध्रीये दधि भक्षयन्ति दधिक्रावण इति” इति [ वै० ३. १३ ] ॥

तथा पृष्ठयषडहे “दधिक्रावणः” इत्येतामृचम् अर्धर्चशः शंसति । तद् उक्तं वैताने । “दधिक्रावणो अकारिषमित्यर्धर्चशः” इति [ वै० ६. २ ] ॥

तत्रैव “सुतासो मधुमत्तमाः” [ २०. १३७. ४-६ ] इति पावमान्याख्यास्तिस्र ऋचः अर्धर्चशः शंसति । तद् उक्तं वैताने । “सुतासो मधुमत्तमा इति पावमानीः” इति [ वै. ६. २ ] ॥

तत्रैव “अव द्रप्सो अंशुमतीम्” [ २०. १३७. ७-८ ] इति तिस्र ऋचः पच्छः शंसति । तद् उक्तं वैताने । “अव द्रप्सो अंशुमतीमतिष्ठदिति पच्छः” इति [ वै० ६. २ ] ॥

सोमयागमें “दधिक्रावणः” ( २० । १३७ । ३ ) ऋचाका आग्नीध्रीय दधिके भक्षणमें विनियोग है । इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि—“आग्नीध्रीये दधि भक्षयन्ति दधि क्रावणः” ( वैतानसूत्र ३ । १३ ) ॥

तथा पृष्ठयषडहमें “दधिक्रावणः” ऋचाको अर्धर्चरूपमें पढ़े । इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि—“दधि क्रावणो अकारिषमित्यर्धर्चशः” ( वैतानसूत्र ६ । २ ) ॥

तहाँ ही “सुतासो मधुमत्तमाः” ( २० । १३७ । ४-६ ) इन पावमानी नामक तीन ऋचाओंको अर्धर्चरूपमें पढ़े । इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि—सुतासो मधुमत्तमा इति पावमानीः” ( वैतानसूत्र ६ । २ ) ॥



तहाँ ही “अव द्रप्सो मधुमतीम्” ( २० । १३७ । ७-६ )  
इन तीन ऋचाओंको पद पद करके पढ़े । इसी बातको वैतान-  
सूत्रमें कहा है, कि—“अव द्रप्सो अंशुमतीमतिष्ठदिति पच्छः”  
( वैतानसूत्र ६ । २ ) ॥

यद्ध प्राचीरजगन्तोरो मण्डूरधाणिकीः ।

हता इन्द्रस्य शत्रवः सर्वे बुद्धुदयाशवः ॥ १ ॥

यत् । ह । प्राचीः । अजगन्त । उरः । मण्डूरधाणिकीः ।

हताः । इन्द्रस्य । शत्रवः । सर्वे । बुद्धुदयाशवः ॥ १ ॥

जब प्राचीन मण्डूरधाणिकी वक्षःस्थलको प्राप्त हुई, तब इन्द्र  
के सब बुद्धुदयाशु शत्रु मारे गए ॥ १ ॥

कपृन्नरः कपृथमुद् दधातन चोदयत खुदत वाज-  
सातये ।

निष्टिग्र्यः पुत्रमा च्यावयोतय इन्द्रं सबाध इह सोम-  
पीतये ॥ २ ॥

कपृत् । नरः । कपृथम् । उत् । दधातन । चोदयत । खुदत । वाजः-  
सातये ।

निष्टिग्र्यः । पुत्रम् । आ । च्यावय । ऊतये । इन्द्रम् । सबाधः । इह ।

सोमऽपीतये ॥ २ ॥

मनुष्य कपृत् है, तुम कपृथको धारण करो, अन्नकी प्राप्तिके  
लिये प्रेरणा करो, रक्षा पानेके लिये पुत्रको उत्पन्न करो और

बाधा देने वाला तुम निष्ठिग्रथ सोमपान करनेके लिये यहाँ इन्द्र का आवाहन करो ॥ २ ॥

दधिक्राव्णो अकारिषं जिष्णोरश्वस्य वाजिनः ।

सुरभि नो मुखां करत् प्र ए आयूंषि तारिषत् ॥३॥

दधिऽक्राव्णः । अकारिषम् । जिष्णोः । अश्वस्य । वाजिनः ।

सुरभि । नः । मुखा । करत् । प्र । नः । आयूंषि । तारिषत् ३

मैं विजयशील इन्द्रके सवारीको धारण करते समय हिनहिना-  
हट करने वाले वेगवान् अश्व (उच्चैःश्रवा) की ( पूजा ) करवा  
चुका हूँ, वह इन्द्रदेव हमें सुगन्धिसम्पन्न और मुख्य बनावें और  
हमारी अवस्थाको उत्कृष्टतासे बतावें ॥ ३ ॥

सुतासो मधुमत्तमाः सोमा इन्द्राय मन्दिनः ।

पवित्रवन्तो अक्षरन् देवान् गच्छन्तु वो मदाः ।

सुतासः । मधुमत्स्तमाः । सोमाः । इन्द्राय । मन्दिनः ।

पवित्रऽवन्तः । अक्षरन् । देवान् । गच्छन्तु । वः । मदाः ॥ ४ ॥

हर्ष देने वाले परम मधुर सोम इन्द्रके लिये अभिषुत होगए  
हैं, पवित्रे ( अँगोछे ) वाले सोम टपक रहे हैं, हे सोमों ! तुम्हारे  
वे हर्षमद प्रभाव देवताओंको प्राप्त हों ॥ ४ ॥

इन्दुरिन्द्राय पवत इति देवासो अब्रुवन् ।

वाचस्पतिर्मखस्यते विश्वस्येशानः ओजसा ॥ ५ ॥

इन्दुः । इन्द्राय । पवते । इति । देवासः । अब्रुवन् ।

वाचः । पतिः । मखस्यते । विश्वस्य । ईशानः । ओजसा ॥ ५ ॥

सोम इन्द्रदेवके लिये पवित्र किया जाता है, इस प्रकार देवता कहते हैं, विश्वके ईश्वर वाचस्पति बलपूर्वक प्रशंसा पाते हैं । ५ ।

सहस्रधारः पवते समुद्रो वाचमीङ्गयः ।

सोमः पतीं रयीणां सखेन्द्रस्य दिवेदिवे ॥ ६ ॥

सहस्रधारः । पवते । समुद्रः । वाचमीङ्गयः ।

सोमः । पतिः । रयीणाम् । सखा । इन्द्रस्य । दिवेदिवे ॥ ६ ॥

यह गमन करने वाला जलसे भरा हुआ सहस्रों धारों वाला सोम पवित्र किया जा रहा है, यह सोम धनोंका स्वामी है और प्रत्येक स्तोत्रके लिये इन्द्रका मित्र बन जाता है ॥ ६ ॥

अव द्रप्सो अंशुमतीमतिष्ठदियानः कृष्णो दशभिः  
सहस्रैः ।

आवत् तमिन्द्रः शच्या धमन्तमप स्नेहितीर्नृमणां  
अधत्त ॥ ७ ॥

अव । द्रप्सः । अंशुमतीम् । अतिष्ठत् । इयानः । कृष्णः ।

दशभिः । सहस्रैः ।

आवत् । तम् । इन्द्रः । शच्या । धमन्तम् । अप । स्नेहितीः ।

नृमणाः । अधत्त ॥ ७ ॥

दश सहस्र किरणोंसे ( रसको ) खेंचने वाले सूर्य पृथ्वीको



प्राप्त होकर बलपूर्वक उस पर खड़े होगए, अपनी शक्तिसे पृथ्वी को मारते हुए उनको दूर करके इन्द्रने अपनी शक्तिसे उसकी रक्षा की और अपने बलसे स्नेहमयी ( जलधारण करने वाली शक्तियों ) को पृथ्वी पर प्रतिष्ठित किया-पृथ्वीको पुष्ट किया ७  
 द्रप्समपश्यं विषुणे चरन्तमुपहरे नद्यो अंशुमत्याः ।  
 नभो न कृष्णमवतस्थिवांसमिष्यामि वो वृषणो  
 युध्यताजौ ॥ ८ ॥

द्रप्सम् । अपश्यम् । विषुणे । चरन्तम् । उपहरे । नद्यः । अंशु-  
 मत्याः ।

नभः । न । कृष्णम् । अवतस्थिवांसम् । इष्यामि । वः । वृषणः ।  
 युध्यत । आजौ ॥ ८ ॥

मैं विषममें विचरण करने वाले शुक्रको अंशुमती नदीके पास विचरण करते हुए देखता हूँ, वह सूर्यकी समान आकाशमें रहते हैं, उनकी मैं शरण लेता हूँ, वह फलवर्षक संग्राममें तुम्हारा युद्ध करें ॥ ८ ॥

अथ द्रप्सो अंशुमत्या उपस्थेधारयत् तन्वं तित्विषाणः  
 विशो अदेवीरभ्याश्चरन्तीर्बृहस्पतिना युजेन्द्रः ससाहे  
 अथ । द्रप्सः । अंशुमत्याः । उपस्थे । आधारयत् । तन्वम् ।  
 तित्विषाणः ।

वि॒शः । अ॒दे॒वीः । अ॒भि । आ॒ऽच॒रन्तीः । बृ॒ह॒स्प॒ति॒ना । यु॒जा ।  
इन्द्रः । स॒स॒हे ॥ ९ ॥

इसके उपरान्त शुक्रने अपने शरीरको सूक्ष्म करके अंशुमती  
क्रोड़में स्थापित कर दिया, जो देवताओंको न मानने वाली प्रजाएँ  
हैं, उनको इन्द्रने बृहस्पतिकी सहायता लेकर नष्ट कर दिया ९  
त्वं ह॒ त्यत् स॒प्त॒भ्यो जा॒य॒मानो॒श॒त्रु॒भ्या अ॒भवः श॒त्रु॒-  
रिन्द्र ।

गू॒ल्हे द्यावा॑पृ॒थि॒वी अ॒न्व॒वि॒न्दो वि॒भु॒मद्भ्यो॒ भुव॑ने॒भ्यो  
रणं॑ धाः ॥ १० ॥

त्वम् । ह॒ । त्यत् । स॒प्त॒भ्यः । जा॒य॒मानः । अ॒श॒त्रु॒भ्यः । अ॒भवः  
श॒त्रुः । इन्द्र ।

गू॒ल्हे इति॑ । द्यावा॑पृ॒थि॒वी इति॑ । अनु॑ । अ॒वि॒न्दः । वि॒भु॒मद्भ्यः ।  
भुव॑ने॒भ्यः । रणम् । धाः ॥ १० ॥

हे इन्द्रदेव ! आप सातों अशत्रुओंसे प्रकट होकर उनके शत्रु  
बन जाते हैं, आपने द्यावापृथिवीका आलिंगन किया है और  
इसके अनन्तर आपने उनको प्राप्त किया है, और विभुत्व वाले  
भुवनोंसे रणको ठान दिया था ॥ १० ॥

त्वं ह॒ त्यद॑प्रति॒मान॒मोजो॑ वज्रेण॒ वज्रिन् धृषि॑तो ज॒घन्थ  
त्वं शु॒ष्ण॒स्यावा॑तिरो॒ वध॑त्रैस्त्वं गा इन्द्र॒ श॒च्येद॑विन्दः

त्वम् । ह । त्यत् । अप॒ति॒ऽमा॒नम् । ओजः । वज्रेण । वज्रिन् ।  
धृषितः । जघन्थ ।

त्वम् । शु॒ण॒स्य । अव । अतिरः । वधत्रैः । त्वम् । गाः । इन्द्र ।

शच्या । इत् । अविन्दः ॥ ११ ॥

हे वज्रधारिन् इन्द्र ! आपने धृषित होकर उस अपतिम ओज (बलासुर) को वज्रसे नष्ट किया था, हे इन्द्रदेव ! आप बल नामक असुरको वध साधन आयुधोंसे दूर कर चुके हैं और आप शक्तिसे गौओंको प्राप्त कर चुके हैं ॥ ११ ॥

तमिन्द्रं वाजयामसि महेवृत्राय हन्तवे । स वृषा वृषभो  
भुवत् ॥ १२ ॥

तम् । इन्द्रम् । वाजयामसि । महे । वृत्राय । हन्तवे ॥ सः । वृषा ।

वृषभः । भुवत् ॥ १२ ॥

हम विशाल वृत्रासुर वा मेघ वा आवरक शत्रुका संहार करनेके लिये उन इन्द्रकी प्रशंसा करते हैं, कामनाओंकी वर्षा करने वाले वह इन्द्र सबमें श्रेष्ठ हों ॥ १२ ॥

इन्द्रः स दामने कृत ओजिष्ठः स मदे हितः । द्युम्नी  
श्लोकी स सोम्यः ॥ १३ ॥

इन्द्रः । सः । दामने । कृतः । ओजिष्ठः । सः । मदे । हितः ॥

द्युम्नी । श्लोकी । सः । सोम्यः ॥ १३ ॥

वह बली इन्द्र पापियोंका निग्रह करनेके लिये रज्जुके रूपमें किये गए हैं, वह प्रसन्नता देने वाले यज्ञमें स्थित होते हैं । वह इन्द्रदेव दमकने वाले हैं, प्रसिद्ध हैं और सौम्य हैं ॥ १३ ॥



गिरा वज्रो न संभृतः सबलो अनपच्युतः । ववक्ष  
ऋष्वो अस्तृतः ॥ १४ ॥

गिरा । वज्रः । न । सम्भृतः । सबलः । अनपच्युतः ॥ ववक्षे ।

ऋष्वः । अस्तृतः ॥ १४ ॥

इति नवमेनुवाके एकचत्वारिंशं सूक्तम् ॥

अच्युत बलवान् इन्द्र पर्वतसे मिलने वाले वज्रकी समान  
बलसे भरे हुए हैं । यह अहिंसित श्रेष्ठ पुरुष (शत्रुओंके धनोको)

यजमानों पर पहुँचाते हैं ॥ १४ ॥

नवम अनुवाकमें इकतालीसवाँ सूक्त समाप्त ( ८५३ )

अतिरात्रे अतिरिक्तोक्त्येषु “महाँ इन्द्रो य ओजसा” इत्यस्य  
विनियोगः “तमिन्द्रं वाजयामसि” [ २०. ४७ ] इत्यनेन सह उक्तः

तथा छन्दोमाख्येषु त्रिष्वहःसु अस्य विनियोगस्तत्रैवोक्तः ॥

तथा त्र्यहाणां तृतीयेष्वहःसु “महाँ इन्द्रो य ओजसा” इत्यस्य  
विनियोगः “अभि प्र वः सुराधसम्” [ २०. ५१ ] इत्यत्र उक्तः

तथा चतुरहाणां चतुर्थेष्वहःसु “महाँ इन्द्रो य ओजसा” [ २०.  
१३८ ] “य एक इद् विदयते” [ २०. ६३. ४ ] इत्येतौ आज्यो-  
क्तस्तोत्रियौ भवतः । तद् उक्तं वैताने । “चतुर्थेषु महाँ इन्द्रो य  
ओजसा य एक इद् विदयत इति” इति [ वै० ७. ३ ] ॥

तथा त्रिककुद्दशाहस्य अष्टमेहनि एष आज्यस्तोत्रियो भवति ।  
तद् उक्तं वैताने । “अष्टमे महाँ इन्द्रो य ओजसेति” इति [ वै० ८. ४ ]

अतिरात्रके अतिरिक्तोक्त्योर्मे “महाँ इन्द्रो य ओजसा” इसका  
विनियोग “तमिन्द्रं वाजयामसि” ( २० । ४७ ) के साथ कह  
दिया है ।

तथा छन्दोम नामक तीन दिनोंमें इसका विनियोग तहाँ ही कहा है ।

तथा त्र्यहोके तृतीय दिनोंमें “महाँ इन्द्रो य ओजसा” इसका विनियोग “अभि प्र चःसुराधसम्” (२० । ५१) में कह दिया है ।

तथा चतुरहोके चौथे दिनोंमें “महाँ इन्द्रो य ओजसा” ( २० । १३८ ) “य एक इद् विदयते” ( २० । ६३, ४ ) ये आज्योक्त्यस्तोत्रिय होते हैं । इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि—“चतुर्थेषु महाँ इन्द्रो य ओजसा य एक इद् विदयत इति” ( वैतानसूत्र ८ । ३ ) ।

तथा त्रिककुद् दशाहके अष्टम दिनमें यह आज्यस्तोत्रिय होता है । इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि—“अष्टमे महाँ इन्द्रो य ओजसेति” ( वैतानसूत्र ८ । ४ ) ॥

महाँ इन्द्रो य ओजसा पर्जन्यो वृष्टिमाँ इव । स्तोमैर्व-  
त्सस्य वावृधे ॥ १ ॥

महान् । इन्द्रः । यः । ओजसा । पर्जन्यः । वृष्टिमान् इव ॥ स्तोमैः ।

वत्सस्य । ववृधे ॥ १ ॥

जो महान् इन्द्रदेव वृष्टि भरे हुए मेघकी समान, वत्सके स्तोम से बढ़ते हैं ॥ १ ॥

प्रजामृतस्य पिप्रतः प्र यद् भरन्त वह्नयः । विप्रा ऋतस्य  
वाहसा ॥ २ ॥

प्रजाम् । ऋतस्य । पिप्रतः । प्र । यत् । भरन्त । वह्नयः ॥

विप्राः । ऋतस्यः । वाहसा ॥ २ ॥

हे अश्विनीकुमारों ! तुम सत्यकी प्रजाको पुष्ट करो, कि—  
जिसका अग्निएँ भरण कर रही हैं और ब्राह्मण यज्ञका वहन  
करने वाले अग्निसे जिसकी रक्षा कर रहे हैं ॥ २ ॥

कण्वा इन्द्रं यदक्रत स्तोमैर्यज्ञस्य साधनम् । जामि  
ब्रुवत आयुधम् ॥ ३ ॥

कण्वाः । इन्द्रम् । यत् । अक्रत । स्तोमैः । यज्ञस्य । साधनम् ॥

जामि । ब्रुवते । आयुधम् ॥ ३ ॥

इति नवमेनुवाके द्विचत्वारिंशं सूक्तम् ॥

कण्वने जिस इन्द्रको स्तोमोंसे यज्ञका साधन बनाया है उसी  
को जामि आयुध बताती हैं ॥ ३ ॥

। नवम अनुवाकमें बयालीसवाँ सूक्त समाप्त ( ७५४ )

अतिरात्रे अतिरिक्तोक्त्येषु स्तोत्रियानुरूपयोरनन्तरम् “आ नून-  
मश्विना युवम्” [ २०. १३६ ] “तं वां रथम्” [ २०. १४३ ]  
इति सूक्तं शंसति । तत्र पूर्वसूक्तस्य दशमीं द्वादशीमृचम् उत्तर-  
सूक्तं च पच्छः शंसति । तद् उक्तं वैताने । “आ नूनमश्विना युवं  
तं वां रथमिति सूक्ते । पूर्वस्य दशमीं द्वादशीमुत्तरं च पच्छः”  
इति [ वै० ४. ३ ] ॥

अतिरात्रके अतिरिक्तोक्त्योंमें स्तोत्रिय और अनुरूपके अनं-  
तर “आ नूनमश्विना युवम्” ( २० । १३६ ) “तं वां रथम्”  
( २० । १४३ ) इन सूक्तोंको पढ़े । इनमें प्रथमसूक्तकी दशमी  
और बारहवीं ऋचाको और अगले सूक्तको भी पद पद करके  
पढ़े । इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि—“आ नूनमश्विना  
युवं तं वां रथमिति सूक्ते । पूर्वस्य दशमीं द्वादशीमुत्तरं च पच्छः”  
( वैतानसूत्र ४ । ३ ) ॥



आ नूनमश्विना युवं वत्सस्य गन्तमवसे ।

प्रास्मै यच्छतमवृकं पृथु च्छर्दिर्युयुत या अरातयः १

आ । नूनम् । अश्विना । युवम् । वत्सस्य । गन्तम् । अवसे ।

प्र । अस्मै । यच्छतम् । अवृकम् । पृथुं । छर्दिः । युयुतम् । याः ।

अरातयः ॥ १ ॥

हे अश्विनीकुमारों ! तुम दोनों वत्सके चलने फिरनेके लिये और इसकी रक्षा करनेके लिये भेड़ियेसे रहित विशाल घर दीजिये और जो इसके शत्रु हों उनको अलग करिये ॥ १ ॥

यदन्तरिक्षे यद् दिवि यत् पञ्च मानुषाँ अनु । नृम्णं तद् धत्तमश्विना ॥ २ ॥

यत् । अन्तरिक्षे । यत् । दिवि । यत् । पञ्च । मानुषान् । अनु ॥

नृम्णम् । तत् । धत्तम् । अश्विना ॥ २ ॥

हे अश्विनीकुमारों ! जो धन अन्तरिक्षमें है, जो धन स्वर्गमें है और जो निषाद पञ्चम मनुष्योंमें हैं उस धनको ( वा बलको ) आप हममें स्थापित करिये ॥ २ ॥

ये वां दंसांस्यश्विना विप्रांसः परिमामृशुः । एवेत् काण्वस्य बोधतम् ॥ ३ ॥

ये । वाम् । दंसांसि । अश्विना । विप्रांसः । परिमामृशुः ॥ एव ।

इत् । काण्वस्य । बोधतम् ॥ ३ ॥

हे अश्विनीकुमारों ! जो ब्राह्मण आपके कर्मोंका परिमर्शन करते हैं, इस सबको काण्वका कृत्य समझो ॥ ३ ॥

अयं वां घर्मो अश्विना स्तोमेन परि षिच्यते ।

अयं सोमो मधुमान् वाजिनीवसू येन वृत्रं चिकेतथः

अयम् । वाम् । घर्मः । अश्विना । स्तोमेन । परि । षिच्यते ।

अयम् । सोमः । मधुमान् । वाजिनीवसू इति वाजिनीवसू ।

येन । वृत्रम् । चिकेतथः ॥ ४ ॥

हे अश्विनीकुमारों ! आपका यह स्तोम घर्मसे परिषिञ्चित होता है, यह सोम मधुसम्पन्न है, हे हविरूप क्रियात्मक धनसे संपन्न अश्विनीकुमारों ! इस सोमसे आप आवरक शत्रुको जानते हैं ४

यदप्सु यद् वनस्पतौ यदोषधीषु पुरुदंससा कृतम् ।

तेन माविष्टमश्विना ॥ ५ ॥

यत् । अप्सु । यत् । वनस्पतौ । यत् । ओषधीषु । पुरुदंससा ।

कृतम् ।

तेन । मा । अविष्टम् । अश्विना ॥ ५ ॥

इति नवमेनुवाके त्रिचत्वारिंशं सूक्तम् ॥

हे अश्विनीकुमारों जलमें वनस्पतिमें और औषधियोंमें जो कृत है, उससे आप मुझको पूर्ण करिये ॥ ५ ॥

नवम अनुवाकमें तैंतालीसवाँ सूक्त समाप्त ( ७५५ )

यन्नासत्या भुरण्यथो यद् वां देव भिषज्यथः ।

अयं वां वत्सो मतिभिर्न विन्धते हविष्मन्तं हि  
गच्छथः ॥ १ ॥

यत् । नासत्या । भुरण्यथः । यत् । वा । देवा । भिषज्यथः ।  
अयम् । वाम् । वत्सः । मतिभिः । न । विन्धते । हविष्मन्तम् ।  
हि । गच्छथः ॥ १ ॥

हे अश्विनीकुमारों ! तुम जो शीघ्रतासे चलने वाले हो, और  
तुम दोनों देवता चिकित्सा करने वाले हो, यह तुम्हारा वत्स  
मतियोंसे विंधित नहीं होता है, तुम हविष्मान्के पास जाते हो ?  
आ नूनमश्विनोऋषि स्तोमं चिकेत वामया ।

आ सोमं मधुमत्तमं घर्मं सिञ्चादथर्वणि ॥ २ ॥

आ । नूनम् । अश्विनोः । ऋषिः । स्तोमम् । चिकेत । वामया ।  
आ । सोमम् । मधुमत्तमम् । घर्मम् । सिञ्चात् । अथर्वणि ॥ २ ॥

ऋषि अपनी संभक्तन करने योग्य बुद्धिसे अश्विनीकुमारों  
के स्तोत्रको जान गए थे, परम मधुर सोम घर्मको अथर्व ( चरण-  
शील कर्म ) में सींचो ॥ २ ॥

आ नूनं रघुवर्तनि रथं तिष्ठाथो अश्विना ।

आ वां स्तोमा इमे मम नभो न चुच्यवीरत ॥ ३ ॥

आ । नूनम् । रघुवर्तनिम् । रथम् । तिष्ठाथः । अश्विना ।

आ । वाम् । स्तोमाः । इमे । मम । नभः । न । चुच्यवीरत ३



हे अश्विनीकुमारों ! तुम शीघ्रतासे चलने वाले रथमें बैठते हो, यह आपके लिये किये हुए मेरे स्तोत्र आकाशकी समान अच्युत रहें ॥ ३ ॥

यदद्य वां नासत्योक्थैराचुच्यवीमहि ।

यद् वा वाणीभिरश्विनेवेत् काण्वस्य बोधतम् ।४।

यत् । अद्य । वाम् । नासत्या । उक्थैः । आऽचुच्युवीमहि ।

यत् । वा । वाणीभिः । अश्विना । एव । इत् । काण्वस्य ।  
बोधतम् ॥ ४ ॥

हे अश्विनीकुमारों ! हम आज उक्थोंसे आपकी शरणमें आ रहे हैं, हे अश्विनीकुमारों ! जो हम वाणीसे आपकी ( स्तुति कर रहे हैं यह ) काण्वकी ही कृपा समझिये ॥ ४ ॥

यद् वां कक्षीवां उत यद् व्यश्व ऋषिर्यद् वां दीर्घ-  
तमा जुहाव ।

पृथी यद् वां वैन्यः सादनेष्वेवेदतो अश्विना चेत-  
येथाम् ॥ ५ ॥

यत् । वाम् । कक्षीवान् । उत । यत् । विऽअश्वः । ऋषिः । यत् ।

वाम् । दीर्घऽतमाः । जुहाव ।

पृथी । यत् । वाम् । वैन्यः । सादनेषु । एव । इत् । अतः ।

अश्विना । चेतयेथाम् ॥ ५ ॥

इति नवमेनुवाके चतुश्चत्वारिंशं सूक्तम् ॥

हे अश्विनीकुमारों ! कक्षीवान् व्यश्व और दीर्घतमा नामक ऋषियोंने जो आपके निमित्त आहुति दी है, और जो वेनका पुत्र पृथी है, वह आपके सदनोंमें ही है, हे अश्विनीकुमारों ! इस लिये प्रबुद्ध होइये ॥ ५ ॥

नवम अनुवाकमें चौवालीसवाँ सूक्त समाप्त ( ७५६ )

यातं छर्दिष्पा उत नः परस्पा भूतं जगत्पा उत नस्त-  
नूपा ।

वर्तिस्तोकाय तनयाय यातम् ॥ १ ॥

यातम् । छर्दिःऽपौ । उत । नः । परःऽपा । भूतम् । जगत्ऽपौ ।

उत । नः । तनूऽपा ।

वर्तिः । तोकाय । तनयाय । यातम् ॥ १ ॥

हे अश्विनीकुमारों ! आप हमारे भवनकी रक्षा करते हुए प्राप्त हूजिये, श्रेष्ठ रक्षक होते हुए आप प्राप्त हूजिये, जगत्के रक्षक होते हुए प्राप्त हूजिये और हमारे शरीरके रक्षक बनते हुए प्राप्त हूजिये, पुत्र और पौत्रके लिये वर्तन करते हुए प्राप्त हूजिये ॥१॥

यदिन्द्रेण सरथं याथो अश्विना यद् वा वायुना भवथः

समोकसा ।

यदादित्येभिर्ऋभुभिः सजोषसा यद् वा विष्णोर्वि-

क्रमणेषु तिष्ठथः ॥ २ ॥

यत् । इन्द्रेण सरथम् । याथः । अश्विना । यत् । वा । वायुना ।

भवथः । समूऽओकसा ।

यत् । आदित्येभिः । ऋभुऽभिः । सऽजोषसा । यत् । वा ।

विष्णोः । विऽक्रमणेषु । तिष्ठथः ॥ २ ॥

हे अश्विनीकुमारों ! आप इन्द्रके साथ एक रथमें बैठ कर जाते हैं, और आप वायुके साथ एक स्थानमें रहने वाले हैं, और आप आदित्य तथा ऋभुओंके साथ समान प्रीति रखने वाले हैं और आप विष्णुके विक्रमणोंमें रहते हैं ॥ २ ॥

यद्वाश्विनावहं हुवेय वाजसातये ।

यत् पृत्सु तुर्वणे सहस्तच्छ्रेष्ठमश्विनोरवः ॥ ३ ॥

यत् । अद्य । अश्विनौ । अहम् । हुवेय । वाजऽसातये ।

यत् । पृत्ऽसु । तुर्वणे । सहः । तत् । श्रेष्ठम् । अश्विनोः । अवः

हे अश्विनीकुमारों ! मैं जो आपको अन्नप्राप्तिके लिये आह्वान कर रहा हूँ, हे यजमानोंको शीघ्रतासे सेवन करने वाले ! जो आप संग्रामोंमें शत्रुओंको दबाने वाले हैं, वही आपकी श्रेष्ठ रक्षा है ३  
आ नूनं यातमश्विनेमा हव्यानि वां हिता ।

इमे सोमासो अधि तुर्वशे यदाविमे कण्वेषु वामथ ४

आ । नूनम् । यातम् । अश्विना । इमा । हव्यानि । वाम् । हिता ।

इमे । सोमासः । अधि । तुर्वशे । यदौ । इमे । कण्वेषु । वाम् ।

अथ ॥ ४ ॥

हे अश्विनीकुमारों ! आप अवश्य आइये, ये हव्य आपका हित करने वाले हैं, यह सोम मनुष्य यदुमें और कण्वमें हैं अब आप दोनों आइये ॥ ४ ॥



यन्नासत्या पराके अर्वाके अस्ति भेषजम् ।

तेन नूनं विमदाय प्रचेतसा छर्दिर्वत्साय यच्छतम् ५

यत् । नासत्या । पराके । अर्वाके । अस्ति । भेषजम् ।

तेन । नूनम् । विमदाय । प्रचेतसा । छर्दिः । वत्साय । यच्छतम् ।

इति नवमेनुवाके पञ्चचत्वारिंशं सूक्तम् ॥

हे अश्विनीकुमारों ! जो औषधि दूर वा पास है, आप अपने ज्ञानयुक्त मनसे विशेषमद करनेके लिये उसको दीजिये और वत्सके लिये घर दीजिये ॥ ५ ॥

नवम अनुवाकमें पैगालीसवाँ सूक्त समाप्त ( ७५७ ) ।

अभुत्स्यु प्र देव्या साकं वाचाहमश्विनोः ।

व्यावर्देव्या मतिं वि रातिं मर्त्येभ्यः ॥ १ ॥

अभुत्सि । ऊं इति । प्र । देव्या । साकम् । वाचा । अहम् । अश्विनोः ।

वि । व्यावः । देवि । आ । मतिम् । वि । रातिम् । मर्त्येभ्यः ।

मैं ज्ञानमय बुद्धिसे अश्विनीकुमारोंको साथ रहनेवाला जानता हूँ, हे बुद्धिदेवि ! आप हमारी मतिको प्रकाशित करिये और मनुष्योंको धन प्रदान करिये ॥ १ ॥

प्र बोधयोषो अश्विना प्र देवि सूनृते महि ।

प्र यज्ञहोतरानुषक् प्र मदाय श्रवो बृहत् ॥ २ ॥

प्र । बोधय । उषः । अश्विना । प्र । देवि । सूनृते । महि ।

प्र । यज्ञहोतः । आनुषक् । प्र । मदाय । श्रवः । बृहत् ॥ २ ॥

( हे स्तोतः ! ) आप प्रातःकालके समय अश्विनीकुमारोंको ( अपने स्तोत्रको ) जताइये, हे सूनुते देवि ! आप उसको प्रशंसनीय करिये और हे यज्ञहोतः ! आप विशाल कीर्तिको चारों ओर फैलाइये ॥ २ ॥

यदु॑षो यासि॑ भानु॒ना सं सूर्ये॑ण रोचसे ।

आ हा॒यम॒श्विनो॒ रथो॑ वर्तिर्या॑ति नृपाय्य॑म् ॥ ३ ॥

यत् । उ॒षः । यासि॑ । भा॒नुना॑ । सम् । सूर्ये॑ण । रोच॒से ।

आ । ह । अ॒यम् । अ॒श्विनोः॑ । रथः॑ । वर्तिः॑ । या॒ति । नृ॒पाय्य॑म्

हे अश्विनीकुमारोंके रथ ! तू अपनी कान्तिसे उषाको प्राप्त होता है और सूर्यके साथ दम होता है, और अश्विनीकुमारोंका रथ घोड़ोंके नृपाय्य मार्गमें आता है ॥ ३ ॥

यदा॑पीतासो अ॒ंशवो॑ गावो॒ न दु॒ह ऊ॒धभिः॑ ।

यद्वा॒ वाणी॑रनू॒षत॒ प्र दे॒व॒यन्तो॑ अ॒श्विना॑ ॥ ४ ॥

यत् । आ॒पीता॑सः । अ॒ंशवः॑ । गावः॑ । न । दु॒हे । ऊ॒धभिः॑ ।

यत् । वा । वा॒णीः । अनू॑षत । प्र । दे॒व॒यन्तः॑ । अ॒श्विना॑ ॥ ४ ॥

जब किरणों पी हुईंसी होती हैं, तब गौएँ ऐनोंसे दुही जाती हैं, हे अश्विनीकुमारों ! उस समय ऋत्विज स्तुति करते हैं, और वाणी आपकी स्तुति करती है ॥ ४ ॥

प्र दु॒म्नाय॑ प्र शर्व॑से प्र नृ॒षा॒ह्याय॑ शर्म॑णे । प्र दत्ता॑य

प्रचे॑तसा ॥ ५ ॥

प्र । द्युम्नाय । प्र । शवसे । प्र । नृऽसहाय । शर्मणे ।

प्र । दत्ताय । प्रऽचेतसा ॥ ५ ॥

मैं प्रकृष्टरूपसे धन पानेके लिये, और मनुष्योंको दबाने वाला श्रेष्ठ बल पानेके लिये तथा कन्याएँ और दत्त पानेके लिए प्रकृष्ट ज्ञान वाले मनसे ( आपकी स्तुति करता हूँ ) ॥ ५ ॥

यन्नूनं धीभिर्गश्वना पितुर्योना निषीदथः । यद्वा  
सुम्नेभिरुक्थ्या ॥ ६ ॥

यत् । नूनम् । धीभिः । अश्वना । पितुः । योना । निऽसीदथः ॥

यत् । वा । सुम्नेभिः । उक्थ्या ॥ ६ ॥

इति नवमेनुवाके षट्चत्वारिंशं सूक्तम् ॥

जो आप बुद्धियोंसे अपने पालकके कारणमें बैठते हैं और जो सुखप्रद कारणोंसे प्रशंसनीय होते हैं ( इस कारण मैं आप की स्तुति करता हूँ ) ॥ ६ ॥

नवम अनुवाकमें छियालीसवाँ सूक्त समाप्त ( ७५८ )

“तं वां रथम्” इत्यस्य विनियोगः “आ नूनमश्वना युवम्” [ २०. १३६ ] इत्यत्र उक्तः ॥

अतिरात्रे अतिरिक्तोक्थे “मधुमतीरोषधीः” [ २०. १४३. ८. ६ ] इति द्वे ऋचौ परिधानीयाशस्त्रयाज्ये क्रमेण भवतः । तद् उक्तं वैताने । मधुमतीरोषधीरिति परिधानीया । उत्तरा याज्या” इति [ वै० ४. ३ ] ॥

“तं वां रथम्” इसका विनियोग “आ नूनमश्वना युवम्” ( २० । १३६ ) में कह दिया है ।

अतिरात्रके अतिरिक्तोक्थमें “मधुमतीरोषधीः” ( २०।१४३।



= ६ ) ये दो ऋचाएँ क्रमशः परिधानीया और शस्त्रयाज्या होती हैं। इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि—“मधुमतीरोषधीरिति परिधानीया उत्तरा याज्या” ( वैतानसूत्र ४ । ३ ) ॥

तं वां रथं वयमद्या हुमेव पृथुञ्जयमश्विना संगतिं गोः ।

यः सूर्या वहति वन्धुरायुर्गिर्वाहसं पुरुतमं वसूयुम् ?

तम् । चाम् । रथम् । वयम् । अद्य । हुवेम । पृथुञ्जयम् । अश्विना ।

समुञ्जतिम् । गोः ।

यः । सूर्याम् । वहति । वन्धुरायुः । गिर्वाहसम् । पुरुतमम् ।

वसूयुम् ॥ १ ॥

हे अश्विनीकुमारों ! हम आज आपके उस रथका आह्वान करते हैं, जो आपका रथ विशाल बेंग-वाला है, गौओंकी संगति करने वाला है जो ऊँचेनीचे स्थानमें जाने वाला आपका रथ सूर्याका वहन करता है, उस वाणीका वहन करने वाले पुरुतम वसुको प्राप्त कराने वाले रथ का मैं आह्वान करता हूँ ॥ १ ॥

युवं श्रियमश्विना देवता तां दिवो नपाता वनथः

शचीभिः ।

युवोर्वपुरभि पृक्षः सचन्ते वहन्ति यत् ककुहासो

रथं वाम् ॥ २ ॥

युवम् । श्रियम् । अश्विना । देवता । ताम् । दिवः । नपाता

वनथः । शचीभिः ।

यु॒वोः । व॒पुः । अ॒भि । पृ॒क्षः । स॒च॒न्ते । व॒ह॒न्ति । यत् । क॒कु॒  
हासः । रथे । वाम् ॥ २ ॥

हे अश्विनीकुमारों ! आप लक्ष्मीके अधिष्ठात्री देवता हैं और उसको धूलोकसे नहीं गिरने देते हैं और आप शक्तियोंसे उस का सेवन करते हैं, अन्न आपके शरीरसे संयुक्त होते हैं और जो विशाल ( घोड़े ) रथमें आपका वहन करते हैं, वह आपके शरीरसे संयुक्त होते हैं ॥ २ ॥

को वाम॑द्या॒ करते रा॒तह॑व्य ऊ॒तये॑ वा सु॒तपे॑या॒य वा॒र्कैः ।  
ऋ॒तस्य॑ वा व॒नुषे॑ पू॒र्व्याय॑ नमो॑ येमा॒नो अ॒श्विना॑  
व॑वर्त॒त् ॥ ३ ॥

कः । वाम् । अद्य । करते । रातहव्यः । ऊतये । वा । सुतपे॒  
याय । वा । अर्कैः ।

ऋतस्य । वा । वनुषे । पूर्व्याय । नमः । येमानः । अश्विना ।  
आ । ववर्त॒त् ॥ ३ ॥

आज कौन हवि देने वाला आपकी सेवा कर रहा है, और कोन रक्षा पानेके लिये और अभिषुत सोमका पान करनेके लिये मन्त्रोंसे आपका आवाहन कर रहा है, यज्ञका सेवन करने वाले ( इन्द्रके लिये ) प्रणाम है, और जो उपरम करता हुआ इन अश्विनीकुमारोंको लाता है उसके लिये प्रणाम करता है ॥ ३ ॥

हि॒र॒ण्यये॑न पुरु॒भू रथे॑ने॒मं य॒ज्ञं ना॑स॒त्योप॑ यातम् ।

पिबाथ॑ इन्मधु॑नः सोम्य॑स्य दध॑थो रत्नं॑ विध॒ते जना॑य ४

हिरण्य॑येन । पुरु॒भू इति॑ पुरु॒ऽभू । रथे॑न । इ॒मम् । य॒ज्ञम् । ना॒  
स॒त्या । उप॑ । या॒तम् ।

पिबा॑थः । इत् । मधु॑नः । सोम्य॑स्य । दध॑थः । रत्न॑म् । वि॒ध॒ते ।

जना॑य ॥ ४ ॥

हे महान् रूपमें प्रकट होने वाले अश्विनीकुमारों ! आप हित  
रमणीय रथसे इस यज्ञमें आइये । मधुर सोमके अंशको पीजिये  
और सेवा करने वाले मनुष्यके लिये रत्न दीजिये ॥ ४ ॥

आ नो॑ यातं दि॒वो अ॒च्छा पृथि॒व्या हि॒र॒ण्य॑येन  
सुवृ॑ता रथे॑न ।

मा वाम॑न्ये नि यम॑न् देव॒यन्तः॑ सं यद् द॒दे नाभिः॑  
पूर्वा॑ वाम् ॥ ५ ॥

आ । नः॑ । या॒तम् । दि॒वः । अ॒च्छ । पृथि॒व्याः । हि॒र॒ण्य॑येन ।  
सु॒वृ॒ता । रथे॑न ।

मा । वाम् । अ॒न्ये । नि । यम॑न् । देव॒यन्तः॑ । सम् । यत् । द॒दे ।  
नाभिः॑ । पूर्वा॑ । वाम् ॥ ५ ॥

हे अश्विनीकुमारों ! तुम हित रमणीय सुवृत् रथके द्वारा द्यु-  
लोकसे पृथिवीलोकके अभिमुख होकर आओ दूसरे पूजन करने  
वाले आपको वशमें न कर सकें मैं तुम दोनोंको पूर्व ( नवीन )  
बंधनकारिणी ( स्तुति ) प्रदान करता हूँ ॥ ५ ॥



नू नो रयिं पुरुवीरं बृहन्तं दत्ता मिमाथामुभयेष्वस्मे ।  
 नरो यद् वामशिवना स्तोममावन्तसधस्तुतिमाजमी-  
 ल्हासो अगमन् ॥ ६ ॥

नु । नः । रयिम् । पुरुवीरम् । बृहन्तम् । दत्ता । मिमाथाम् ।  
 उभयेषु । अस्मे इति ।

नरः । यत् । वाम् । अशिवना । स्तोमम् । आवन् । सधस्तुतिम् ।  
 आजमील्हासः । अगमन् ॥ ६ ॥

हे अश्विनीकुमारों ! आप इस यजमानके लिये दोनों लोकोंमें बहुतसे-वीर्यसे उत्पन्न होने वाले उन पुत्र पौत्र आदि-वीरोंसे सम्पन्न धनको दोनों लोकोंमें प्रदान करिये, हे अश्विनीकुमारों ! जो मनुष्य आपकी स्तुति करते हैं, वह स्तुतिके साथ ही आजमीढ़ होकर प्राप्त होते हैं ॥ ६ ॥

इहेह यद् वां समना पपृक्षे सेयमस्मे सुमतिर्वाजरत्ना ।  
 उरुष्यतं जरितारं युवं ह श्रितः कामो नासत्या युव-  
 द्रिक् ॥ ७ ॥

इहइह । यत् । वाम् । समना । पपृक्षे । सा । इयम् । अस्मे इति ।  
 सुमतिः । वाजरत्ना ।

उरुष्यतम् । जरितारम् । युवम् । ह । श्रितः । कामः । नासत्या ।  
 युवद्रिक् ॥ ७ ॥

जिस प्रकार आप एकसे मन वाले हों तिस प्रकार आप इस

को वाजरत्ना सुपतिसे संयुक्त करिये, हे अश्विनीकुमारों ! आप  
इस स्तोताकी रक्षा करिये इसकी कामना आप पर ही निर्भर है ७  
मधुमतीरोषधीर्द्याव आपो मधुमन्नो भवत्वन्तरिक्षम् ।  
क्षेत्रस्य पतिर्मधुमान्नो अस्त्वरिष्यन्तो अन्वेनं चरेम ८  
मधुमतीः । ओषधीः । द्यावः । आपः । मधुमत् । नः । भवतु ।  
अन्तरिक्षम् ।

क्षेत्रस्य । पतिः । मधुमान् । नः । अस्तु । अरिष्यन्तः । अनु ।  
एनम् । चरेम ॥ ८ ॥

औषधियें हमारे लिये मधुमती होवें, द्यूलोक हमारे लिये मधु-  
मय हो, अन्तरिक्ष हमारे लिये मधुमय हो, क्षेत्रका पति हमारे  
लिये मधुमय हो और इसके पीछे हम नष्ट न होते हुए विचरण करें  
पनाय्यं तदश्विना कृतं वां वृषभो दिवो रजसः

पृथिव्याः ।

सहस्रं शंसा उत ये गविष्ठौ सर्वा इत् तां उप याता  
पिबध्यै ॥ ९ ॥

पनाय्यम् । तत् । अश्विना । कृतम् । वाम् । वृषभः । दिवः ।  
रजसः । पृथिव्याः ।

सहस्रम् । शंसाः । उत । ये । गोऽष्टौ । सर्वान् । इत् । तान् ।  
उप । यात । पिबध्यै ॥ ९ ॥

नवमेनुवाके सप्तद्वारिंशं सूक्तम् ॥ इति नवमोऽनुवाकः ॥

आपकी स्तुतिरूप किया हुआ कर्म ब्रह्मलोक और पृथ्वीलोक पर ( फलकी ) वर्षा करने वाला है, गोपूजामें जो सैंकड़ों स्तोत्र हैं सोमपान करके उन सबको आप प्राप्त होते हैं अर्थात् सोम-पान करानेसे इन सब स्तोत्रोंके पाठका फल मिलता है ॥ ६ ॥

नवम अनुवाकमें सैंतालीसवाँ सूक्त समाप्त ( ७५९ )

नवम अनुवाक समाप्त

इति श्रीअथर्ववेदसंहिताका विंशकाण्ड ऋषिकुमार

प० रामस्वरूपशर्मात्मज सनातनधर्मपताका

सम्पादक ऋ० कु० प० रामचन्द्र

शर्मा कृत सायणभाष्यानुकूल

भाषानुवाद सहित

समाप्त.

॥ विंशः काण्डः समाप्तः ॥

॥ अथर्ववेदसंहिता पूर्णा ॥













## वैदिक-संहिता

- ☆ ऋग्वेद संहिता। मूलमात्र (गुटका)
- ☆ ऋग्वेद संहिता। मूलमात्र।
- ☆ ऋग्वेद संहिता। भाषामात्र। रामगोविन्द त्रिवेदी
- ☆ ऋग्वेद संहिता। सायणाचार्य कृत भाष्य एवं हिन्दी व्याख्या सहित। 1-8 भाग सम्पूर्ण
- ☆ ऋग्वेद संहिता। (प्रथम अध्याय, सूक्त 1-19)  
हिन्दी व्याख्या तथा हिन्दी अंग्रेजी अनुवाद। सम्पादक-प्रो. उमाशंकर शर्मा 'ऋषि'
- ☆ शुक्लयजुर्वेद संहिता। मूलमात्र (गुटका)
- ☆ शुक्लयजुर्वेद संहिता। सम्पा. श्री रामस्वरूप शर्मा 'गौड़'
- ☆ शुक्लयजुर्वेद संहिता। मूलमात्र। (गौड़ भाषा संस्करण)
- ☆ शुक्लयजुर्वेद संहिता। पदपाठ एवं सायणभाष्य संवलित तत्त्वबोधिनी हिन्दी व्याख्या सहित। डॉ. रामकृष्ण शास्त्री
- ☆ सामवेद संहिता। मूलमात्र (गुटका)
- ☆ सामवेद संहिता। सायणभाष्य तथा पं. रामस्वरूप शर्मा 'गौड़' कृत हिन्दी भाषानुवाद सहित।
- ☆ अथर्ववेद संहिता। मूलमात्र (गुटका)
- ☆ अथर्ववेद संहिता। सायणभाष्य तथा पं. रामस्वरूप 'गौड़' कृत हिन्दी भाषानुवाद सहित। 1-8 भाग



चौखम्बा विद्याभवन  
वाराणसी